

नमः परमात्मने वीतरागाय ।

पदच्छेदसहित भाषानुवाद ।

ॐ नमः परमात्मने वीतरागाय

=(१) आरम्भमें परमात्मा वीतरागकेलिये नमस्कार हो ।
=(२) मंगलमय ईश्वर वीतरागके लिये प्रणाम हो ।
=(३) ब्रह्म चिदात्मा वीतरागके लिये प्रणति हो ।
=(४) पंचपरमेष्ठी परमब्रह्म रागरहितकेलिये नमस्कार हो ।
(ओम् शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमेंसे चार आरम्भ मंगलप्रय, ब्रह्म, पंचपरमेष्ठी अर्थोंको लेकर अनुवाद किया है)

---

१ । संस्कृत भाषाका नियम है कि ग्रंथकार तथा सूत्रकार भी अपने अपने ग्रंथकी आदिमें एक ऐसा मांगलिक शब्द लाते हैं जो शुभका याचक हो और उसका कुछ अर्थ और तात्पर्य भी निकलता हो जैसे यह ॐ दिया है ॥ पूज्यपाद स्वामीने "मोक्षमार्गस्य" दिया है। इसीप्रकार श्रीउमास्वामी सूरिने इस तत्त्वार्थमोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रका प्रारम्भ 'सम्यग्' शब्द (सम्यक् शब्द) लाकर किया है ॥ श्रीयुत पाणिनिने अष्टाध्यायीके प्रथम सूत्र "वृद्धिरादैच्" में (वृद्धिसंज्ञक आ ऐ औ हैं) वृद्धि पद दिया है । ॐ, मोक्ष, सम्यक्, वृद्धि ये चारों शब्द मंगलवाची हैं और जिस जिस शास्त्रमें आये हैं उसके प्रकरण और तात्पर्यसे भी संबंध रखते हैं जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा । वृद्धिरादैच्का अर्थ ऊपर लिख ही दिया है ।

इस शब्दका रूप यथार्थमें ओम्-ओम्-ओम्-ॐ ऐसा है । यदि इसके पश्चात् कोई शब्द हो जिसका आरम्भ किसी व्यंजनसे हो तो निम्नलिखित व्याकरणोंके सूत्रानुसार मूका अनुस्वार हो जाता है जैसे ओं नमः । ओं नमः । ओं नमः । ॐ नमः । ओं तत्सत् । ओं तत्सत् । ओं तत्सत् । ॐ तत्सत् । अनुस्वार होनेका नियम इस प्रकार है-

(१) मोऽनुस्वारः । श्रीअभयनन्दिविरचित जैनेन्द्रव्याकरणकी महावृत्ति । ५ । ४ । ७ और अष्टाध्यायी ८ । ३ । २३ ।

इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और 'हलि' शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' । ८ । ३ । २२ । सूत्रसे ली गई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (पदस्य १ मः १ अनुस्वारः १ हलि १) का अर्थ, मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई शब्द अर्थात् व्यंजन पश्चात्‌में हो तो, यह होता है ॥

(२) नुममो अं । ५ । ४ । ११ । श्रीगुणनंदिविरचित जैनेन्द्रप्रक्रिया पृष्ठ १९ तथा शब्दार्णवचंद्रिका श्रीसोमदेवसूरिविरचिता पृष्ठ २११

इस सूत्रमें 'हलि' ५ । ४ । १० वें सूत्रसे अनुवृत्ति आती है ॥ और सूत्रार्थ—

नुकः १ = नुक् (= न्) जो सदैव अपदान्त हो जाता है और

मः १ अं १ = पदान्त मकारको अं अनुस्वार होता है—

हलि १ = व्यंजन यदि उक्त न् और म् के पश्चात् आवे तो और वह अनुस्वार एक बिंदी है । अकार उच्चारण वा बोलनेके लिये है । जैसे-रन्नरम्यते = रंरम्यते अतिशय रमता है । यन्—यम्यते = यंयम्यते = बहुत यम करता है । पापम् हंति = पापं हंति = पापको नाश करता है । व्रतम् रक्षति = व्रतं रक्षति = व्रतको पालता है । धर्मम् शृणोति = धर्मं शृणोति = धर्मको सुनता है ।

(३) मम्मो हलि तौ । १ । १ । १११ । शाकटायनव्याकरणं ।

ममागमस्य १	= मम् आगमको जो सदैव अपदान्त होता है
पदान्तस्य १ च* मकारस्य १	= और पदान्त मकारको
परस्योऽनुनासिकोऽनुस्वारः १ पर्यायेण १	= परसवर्ण अनुनासिक और अनुस्वार पर्याय अर्थात् विकल्पसे
भवति हलि ७ परे ७	= हो जाते हैं यदि मम् तथा मकारके कोई व्यंजन परे हो । जैसे क्रम धातुका कर्मणिप्रधान चंक्रम्यते चङ्क्रम्यते रूप होते हैं इस शब्दमें च और क के मध्यका म आगम है । त्वम् करोषि = त्वङ्करोषि त्वं करोषि ।

इस शब्दको तथा अन्य शब्दोंको जिनके अंतमें पदान्त अकार होता है और जिनके पश्चात् किसी व्यंजनसे प्रारम्भ होनेवाले शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता है जैसे केवल ओं-ओं-ओं-ॐ-सम्यग्दर्शनं [सूत्र २ अध्याय १] मोक्षशास्त्रं (सूत्र ४ अ० १) ज्ञानं (सूत्र ९) ऐसा लिख

देते है वह उपर्युक्त वैयाकरणों द्वारा रचित सूत्र द्वारा अशुद्ध है । इसमें संदेह नहीं है ऐसे रूप कलापव्याकरण अर्थात् कातंत्र रूप माला व्याकरणके निम्नलिखित सूत्रानुसार विकल्पसे शुद्ध समझे जा सके हैं ।

मोऽनुस्वारं व्यंजने ॥

मः ∮ अनुस्वारं ∮ व्यंजने ∮ = पदान्तके मकारको अनुस्वार होता है व्यंजनके परे रहते, अर्थात् यदि व्यंजन म् के पश्चात् आवै तो यथा त्वम् यासि=त्वं यासि । यहांतक तो कातन्त्ररूपमालाके रचयिताका मत उपर्युक्त तीन वैयाकरणोंसे मिलता है । परंतु

वा विरामे ॥

वा* मकारस्य ∮ पदान्तस्य ∮ = अनुस्वारं ∮ भवति T विरामे ∮= म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि अनुस्वार हो जाता है यदि म्के पश्चात्में विराम हो अर्थात् जो म्के पीछे कोई भी वर्ण वा अक्षर न आवै । जैसे देवानाम्=देवानां । रामाणाम्=रामाणां देवम्=देवं ।

हम (अनुवादक) ने विरामकी अवस्थामें सर्वत्र म् को लिखा है । म् को अनुस्वार उसी अवस्थामें किया है जहां मकारके पश्चात् कोई शब्द व्यंजनसे प्रारम्भ हुआ है ।

कहीं कहीं पर हमको जैसे पद्मचन्द्र कोषकी आदिमें तथा श्रीमत् श्रीशचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायीके आदिमें

" ॐ म् चिदात्मने नमः " ' ओम् परमात्मने नमः ' वाक्य मिलते हैं अर्थात् आरम्भमें व्यंजनसे आनेवाले शब्दोंके लानेपर भी म् का अनुस्वार नही हुआ । इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पदमें और धातु उपसर्गोंमें और समास इन तीनों स्थानोंमें सदा संधि होती है । परन्तु वाक्यमें वक्ता चाहै तो संधि करै, चाहै न करे । जब हमको संधि करनी होती है तभी पदांत मकारको अनुस्वारमें परिवर्तन करते है ॐम् चिदात्मने नमः । ओम् परमात्मने नमः इन दोनों वाक्योंमें हमने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाहैं तो ॐ चिदात्मने नमः और ओं परमात्मने नमः वाक्य होंगे ।

इस शब्दके ऊपर ँ अर्द्ध चन्द्राकार चिन्हके लगानेसे यह अभिप्राय है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है क्योंकि इसका उच्चारण नासिका ओष्ठ द्वारा होता है इसी प्रकार ङ् का उच्चारण कंठ नासिका द्वारा, ञ् का तालु नासिका द्वारा, ण् का मूर्धा नासिका द्वारा, न का दंत नासिका द्वारा होता है और उसके स्थानमें यह अनुस्वार हुआ है । शुद्ध वा स्वच्छ अर्थात् अमिश्रित वा निरानिरी नासिका द्वारा बोला जानेवाला अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है ।

कहीं कहीं पर ओ और म् के मध्यमें ऐसा ३ तीनकासा चिन्ह कर देते हैं अर्थात् ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् लिखते है। यह '३' चिन्ह प्रगट करता है कि ओ स्वर प्लुत संज्ञक है क्योंकि स्वर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं अर्थात् एकमात्रिक—द्विमात्रिक—त्रिमात्रिक—स्वर क्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, और प्लुत संज्ञक हैं । भावार्थ—जिस स्वरके बोलनेमें उ के तुल्य काल लगे उसको ह्रस्व जिसके उच्चारणमें दीर्घ ऊ के समान काल लगे उसको दीर्घ और जिसके बोलनेमें बहुत बड़े वा खिंचे हुये ऊ के बराबर समय लगे उस स्वरको प्लुत कहते हैं जैसे मधु थूयते सोम३सुत । बहुधा कुक्कूट प्रातः कालमें बोलते हैं उनकी बोलीमें इस ह्रस्व दीर्घ प्लुतका एक अच्छा उदाहरण मिलता है जैसे कु-कू-कू ३ ॥ उपर्युक्त चिन्हके लिखनेसे प्रायः तीनकी गणनाका बहुधा पाठकोंको भ्रम हो जाता है इसलिये ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ओ३म् के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्-ओम्-ओम्-ओम् लिख देते हैं इस ३ चिन्हकी धारणा उच्चारणके समय हृदयमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर, गाने रोने चिल्लाने आदिकमें बोला जाता है। हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लेखकोंने अज्ञानताके वशमें अथवा प्रमादके वशमें आकर प्लुत ३ चिन्हको उ समझ कर ओउम् ऐसा यहां तक अशुद्ध लिखा दिया है। ओउम् किसी प्रकारसे शुद्ध नहीं है।

इस शब्दको सर्व जैनमतावलम्बियोंने आर्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोंने वेदान्तियों आदिकने मंगलीक माना है और ग्रंथकारोंने तथा शास्त्रकारोंने अपनी २ रचनाकी आदिमें इस शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है ॥

"ओम्" अव्यय.....प्रणव ! अ उ और म् इन तीनोंसे बना हुआ एक अक्षर। आरम्भ स्वीकार-मानना-हटाना-मंगल-ब्रह्म-जानने योग्य निकालना (पद्म चन्द्रकोष पृष्ठ ८७)

" स्यादोमेवं परमं मते " ओम्, एवं, परमं ये तीन नाम अंगीकारके है (अमरकोष वर्ग २४ श्लोक १२)

जैन सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाचक निम्नलिखित आर्या छंद द्वारा है ॥

अरहंता ǀ असरीरा ǀ आइरिया ǀ तह उवज्झया ǀ मुणिणो ǀ = अर्हंत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके
अर्हन्तः ǀ अशरीराः ǀ आचार्याः ǀ तथा उपाध्यायाः ǀ मुनयः ǀ
पढमक्खर-णिप्पण्णो ǀ ओंकारो ǀ पंचपरमेट्ठी ǀ = प्रथम अक्षरसे निष्पन्न वा सिद्ध हुआ
प्रथम-अक्षर-निष्पन्नः ǀ ओंकारः ǀ पंचपरमेष्ठी ǀ = ओंकार वा ओम् सो पंचपरमेष्ठी (का वाचक) है। अर्थात् अर्हंतका आदिका अक्षर 'अ' अशरीरी (सिद्ध) का आदिका अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर आ उपाध्यायका आदिका अक्षर उ मुनियों (साधुओं) का आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार

अ+अ+आ+उ+म्+ये पांच अक्षरोंमें से आदिके अक्षर अ+अ = मिलकर 'आ' हो जाते हैं क्योंकि जब ए-ऐ-ओ औके अतिरिक्त किसी ह्रस्व वा दीर्घ स्वरके पश्चात् वही स्वर ह्रस्व वा दीर्घ आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें वही स्वर दीर्घ 'अकः सवर्णे (अचि) दीर्घः। अष्टा० ६-१-१०१। सूत्रसे होजाता है। अ+अ+आ+उ+म्=आ+आ+उ+म् हो गये। अब आ+आ+ दोनों मिलकर पूर्वोक्त सूत्रसे ही एक आ हो गये। यदि अ-आके पश्चात् इ-उ-ऋ-ऌ (ह्रस्व वा दीर्घ) आवें तो दोनों स्वरोंके स्थानमें (एक अनुकूल) गुण हो जाता है॥ इसलिये—आ+उ+म्=मिला कर ओम्=हो गये इसलिये ओम् शब्द पांच परमेष्ठीका वाचक हुआ।

ओम् शब्द अव्यय है अर्थात्

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु = तीनों लिंगोंमें और [च] सर्व विभक्तियोंमें समान रहे।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् = और समस्त वचनोंमें जो विकारको प्राप्त न हो वह अव्यय है।

स्मरण रहे कि ॐम् अव्यय [जिसका उच्चारण ओम् है] वही अव्यय नहीं है जो ऊम् है। ऊम् एक न्यारा और भिन्न अव्यय है जिसका अर्थ कोषसे बोलना और प्रश्न निंदा है"। देखो पद्मचंद कोष पृष्ठ ८१॥ इन तीनों अर्थोंमेंसे ओम् किसी भी एक अर्थमें नहीं जाता है॥ ऊम् और ॐम् का उच्चारण भी भिन्न २ है।

२। नमः= स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट्, हित, सुख इनके अर्थसे जिस शब्दका योग हो उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

(१) नमः जैसे ओं नमः परमात्मने ४। वीतरागाय ४। गुरवे ४। नमः। नमः श्रीवर्धमानाय (वर्द्धमानकेलिये नमस्कार है) यदि नमस् शब्दके साथ क्रियाका योग हो तो विकल्पसे चतुर्थी होती है जैसे गुरवे ४। नमस्कृत्य = गुरुकेलिये प्रणाम करके अथवा गुरुं २ नमस्कृत्य = गुरुको प्रणाम करके।

(२) स्वस्ति, जैसे राज्ञे स्वस्ति = राजाके लिये मंगल वा कल्याण हो। तुभ्यं स्वस्ति = तुम्हारे लिये कल्याण वा मंगल हो—क्षेम हो।

(३) स्वाहा = जैसे अग्नये स्वाहा-अग्निके लिये अर्पण हो। अग्नये ४। वायवे ४। वरुणाय ४। इन्द्राय ४। प्रजापतये ४। सूर्याय ४। चन्द्रमसे ४।

जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

अथ श्रीमत्पूज्यपादाचार्यविरचिता सर्वार्थसिद्धिः प्रारभ्यते ।

अथ श्रीमत्-पूज्यपाद-आचार्यविरचिता $\frac{1}{1}^{11}$	= अब (अथ) श्रीमान् पूज्यपाद आचार्यकृत
सर्वार्थसिद्धिः $\frac{1}{1}^{11}$	= सर्वार्थसिद्धि अर्थात् उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थसूत्र पर संस्कृतवृत्ति
प्रारभ्यते $\frac{1}{1}$ ॥ प्रथमः $\frac{1}{1}$ अध्यायः $\frac{1}{1}$	= प्रारम्भ की जाती है । पहिला वा आदि पर्व ॥

वा स्वाहा = आगकेलिये, पवनके लिये, वरुण देवताके लिये, इन्द्रके लिये, विश्वकर्माके (प्रजापति) के लिये भानुके लिये, मयंकके लिये, अर्पण हो ।

(४) स्वधा-जैसे-पित्रे $\frac{1}{1}$ स्वधा = पिताकेलिये अर्पण हो-प्रदान हो । पितृभ्यः $\frac{1}{1}$ स्वधा = पितरोंकेलिये अर्थात् बाप-दादा-परदादा इत्यादि बड़े पुरुषोंके लिये अर्पण हो ।

(५) अलम्-जैसे अलं मल्लोऽयम् अपरमल्लाय $\frac{1}{1}$ यह मल्ल दूसरे मल्लके लिये बहुत है । अलं अन्नम् इदम् क्षुधायै $\frac{1}{1}^{11}$ = अन्न इस भूखके लिये बहुत है । अलं जलं पिपासायै $\frac{1}{1}^{11}$ = जल प्यासके लिये बस है, बहुत है । कृष्णः दैत्येभ्यः $\frac{1}{1}$ अलम् = कृष्णजी असुरोंके लिये समर्थ हैं ।

(६) वषट्-जैसे इन्द्राय $\frac{1}{1}$ वषट् = इन्द्रके लिये पूजा वा सत्कार हो । शिखायै $\frac{1}{1}^{11}$ वषट् = शिखाकी ज्वालाकेलिये सत्कार वा सन्मान हो ॥

(७) हित-जैसे साधुभ्यः $\frac{1}{1}$ हितम = साधुओंके लिये हितकारी है ।

(८) सुख-जैसे: सद्भ्यः सुखम् = सज्जनोंके लिये सुखकारी है ।

१ । श्रीमत् (शब्दार्थ शोभावाला) एक प्रकारकी उपाधि है जो प्रतिष्ठा आदर वा सम्मानके लिये व्यक्तिवाचक नामके प्रथम लाते हैं तथा बोलते हैं । २ । पूज्यपादः-' पूज्यपादस्वामी नन्दिसंघके आचार्य थे। देवनन्दि और जिनेन्द्रबुद्धि ये दो नाम भी इन्हींके हैं । गणरत्नमहोदधिके कर्त्ताने आपका नाम चन्द्रगोमि भी बतलाया है । विक्रम संवत् ३०८ जेठ सुदी १० को आपका जन्म हुआ था, ऐसा पट्टावलिवोंसे प्रतीत होता है । जैनाभिषेक, समाधिशतक, चिकित्साशास्त्र और जैनेन्द्रव्याकरण आदि ग्रंथ भी आपके बनाये हुए हैं " ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम-सूत्रकी उत्थानिका पृष्ठ २ ।.....सात खपै अथवा ' ये भेद परवारोंमें बहुत पुराने समयमें हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि विक्रम संवत् १४० में

जगत्प्रसिद्धवकील कृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

प्रथमोऽध्यायः ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

जो नंदिसंघके पट्टपर जिनचन्द्र नामके आचार्य हुए हैं, वे चौसखा परवार थे और संवत् ३४८ में जो पूज्यपाद आचार्य हुए हैं, वे पद्मावती-पुरवार थे; ऐसा पट्टावलियोंमें लिखा हुआ मिलता है।" जैनहितैषी छठा भाग अंक ११-१२ पृष्ठ ४५। ऐसा जान पड़ता है कि पूज्यपाद स्वामीका अस्तित्व ३४८ विक्रम संवत्में था परंतु जन्म संवत् ३०८ जेष्ठ सुदी १० को हुआ था। "सिद्धिप्रिय, पंचवास्तुक आदि कई ग्रंथ भी पूज्यपादके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं परन्तु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद भट्टारकके बनाये हुये हैं।" जैनहितैषी छठा भाग पृष्ठ ४४ अंक ५-६ "पूज्यपाद द्वितीयकृत-पूजाकल्प, सिद्धप्रिय, पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका (श्लो० ३००००), जैनेन्द्रपंचाध्यायीकी टीका, पंचवास्तुक, श्रावकाचार, वैद्यक, जैनेन्द्र व्याकरणकी लघुटीका ॥...इस बातको तो अन्य धर्मके विद्वान भी मानते हैं कि, काशिकाका कर्त्ता कोई जैनी है" जैनहितैषी (मासिक पत्र) भाग ६ अंक ५-६ वां पृष्ठ ४६ ॥

१। अव प अथवा ओ अक्षर पदके अन्तमें हों पश्चात् इस पदान्त प अथवा ओके अकार (अ) आवे तो यह अ, प अथवा ओमें समा जाता है वा अन्तर्गत हो जाता है अर्थात् न तो यह अकार बोला ही जाता है और न लिखा ही जाता है। इस अके स्थानमें बहुधा ऽ ऐसा चिन्ह कर दिया जाता है जैसे कि (१) मुने+अव मुनेव वा मुनेऽव (२) ते+अत्र=तेत्र वा तेऽत्र (३) प्रथमोऽध्यायः वाक्योंसे प्रगट है ॥ इस चिन्ह ऽ को अर्ध अकार कहते हैं ॥

२ यह श्लोक मंगलाचरणरूप श्रीमत्पूज्यपादकृत है ॥ श्रीउमास्वामिसूरि कृत तत्त्वार्थसूत्रका भाग नहीं है ॥ इसके संबंधमें पं० जयचंदजीने लिखा है कि "तहां प्रथमही सर्वार्थसिद्धिटीकाकार मंगल अर्थि आप्तका असाधारण विशेषरूप श्लोक रच्या है, सो लिखिये है ॥ "मोक्ष-मार्गस्य नेतारं इत्यादि" । अधिकतर प्रतियोंमें यह तत्त्वार्थसूत्र "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" ॥ इस सूत्र ही करि प्रारम्भ किया है परंतु कुछ प्रतियां ऐसी हैं जिनसे यह झलकता है कि उपर्युक्त श्लोक भी सूत्रकारने रचा है सो यह भूल है क्योंकि भाष्यकारोंकी यह प्रथा है कि प्रथम वे मंगलाचरण लिखते हैं जैसे कि श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिककी आदिमें "प्रणम्य सर्वविज्ञान" इत्यादि और श्री-मद्विद्यानंदिस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिककी 'आदिमें, 'श्रीवर्धमानमाध्याय' इत्यादि ऐसे भिन्न भिन्न दो श्लोक मंगलाचरण रूप दिये हैं ॥ सभाष्य

जगत्प्रसहाय वकीलकृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां

मोक्षमार्गस्य ६। नेतारम् २।	= मोक्षपथके प्रवर्तावनवालेको वा चलानेवालेको
भेत्तारम् २। कर्मभूभृत म् ६।	= कर्मरूपी पर्वतोंके भेदनेवालेको अथवा विनाश करनेवालेको

तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके रचयिताने भी ' सम्यग्दर्शनशुद्धं ' इत्यादि आर्याछंद मंगल रूपमें दिया है ॥ इसही प्रकार पूज्यपाद स्वामीने भी 'मोक्षमार्ग स्य नेतारं' इत्यादि दिया है ॥ यदि हम इसको उमास्वामिकृत श्लोक मान लें तो पूज्यपाद स्वामीका मंगलाचरण कहां है वह कौनसा श्लोक है? मूल सूत्रकार सूत्रसे ही ग्रन्थका आरंभ करते हैं और सूत्रकी आदिमें ही एक दो शब्दका ऐसा प्रयोग करते हैं कि वह शब्द मंगलाचरणको भी पूरा करता है और साथहीमें प्रकरण और विषयके अभिप्राय को भी सूचित करता रहता है जैसे कि हम इस ग्रन्थकी आदिमें लिख चुके हैं ।

१ । नेतारं-यह शब्द 'नी' भ्वादि प्रथमगणकी धातुमें तृच् प्रत्यय जोड़नेसे और नी को गुण करदेनेसे बनता है जैसे नी + तृच्=ने+तृच् (नीको गुण करदेनेसे) इस रूपमें च इत्संज्ञक है अर्थात् च् का लोप हो जाता है और नेतृ शेष रह जाता है। नेतृ=प्रवर्तावनवाला-चलानेवाला बतानेवाला।

२ । भेत्तारं--यह शब्द भिदृ भ्वादि प्रथमगण अथवा रुधादि सप्तमगणके उभयपदी धातु (परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी) से सकर्मकमें तृच् प्रत्यय लगानेसे और भिदृकी इकारको गुण (ए) करदेनेसे बना है । भिद् + तृच्, गुणसंज्ञा करनेसे = भेद्+तृच् हुआ । अष्टाध्यायीके ८ । ५ । ५५ खरि च (खरि झलां चरः स्युः = जब खर् पश्चात्में हो तब झलोंको चर् हो ।

(अर्थात् जब ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् परे हो तब झ्-झ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स्-ह्-को च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् हो) सूत्र द्वारा भेद्के द् का त् होकर भेत्तृच् रूप हुआ । च् का इत्संज्ञक होनेके हेतुसे लोप प्राप्त हुआ तब भेत्तृ ऐसा रूप भेदनेवालेके अर्थमें हुआ ॥

३ । ज्ञातारं—यह शब्द ज्ञा (=जानना—समझना) क्र्यादि नवमगणके परस्मैपद सकर्मक धातुमें तृच् प्रत्यय लगानेसे ज्ञा+तृच् ऐसा रूप बना । च् इत्संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त हुआ इसलिये ज्ञातृ जाननेवालेके अर्थमें बन गया है ॥

नेतारं- भेत्तारं-ज्ञातारं---ये तीनों शब्द कर्म-द्वितीया विभक्ति एक वचन पुलिङ्गमें हैं । द्वितीया विभक्ति इसप्रकारसे बनती है कि ऋकारान्त

ज्ञातारं॥ विश्वतत्त्वानां॥[1] = संसार (विश्व) के अथवा समस्त (विश्व) तत्त्वोंके जाननेवालेको,

पुल्लिंग शब्दके ऋकी वृद्धि होजाती है अर्थात् ऋकार आरमें पलट जाता है। उसके पश्चात् अम् द्वितीया विभक्तिका प्रत्यय जोडनेसे नेतार् + अम्। भेत्तार् + अम्। ज्ञातार् + अम् रूप हुये = नेतारम्-भेत्तारम्-ज्ञातारम् = नेतारं-भेत्तारं ज्ञातारं क्योंकि इन प्रत्येकके पीछे व्यंजनसे आरम्भ होनेवाले शब्द (श्लोकमें) भेत्तारं, कर्म और विश्व क्रमसे हैं। केवल भेत्तारंमें दुहरा तकार है इसलिये नेतारं वा ज्ञातारंमें दुहरा तकार बोलना अथवा लिखना अशुद्ध है।

१। तत्त्वानां-तत्त्वानां—ये दोनों प्रकारके पाठ प्रायः मिलते हैं। तत्त्व और तत्त्वमें कुछ भेद नहीं है।

(१) तत्त्व-तद्-"(त्रि०) तन्+अदि। पहिले कहा हुआ। बुद्धिमें ठहरा हुआ।...दूरका विषय। अज्ञ।" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६५ तन् प्रथम भ्वादिगण अष्टम तनादिगण और दशम चुरादिगणका धातु अद्धा करना, उपकार करना, फैलाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। तन्+अदि से व्याकरणके नियमानुसार तद् बन गया 'तद्' ऐसा सर्वनाम संज्ञा है (= तदिति सर्वनामपदम्)। और सर्वनाम संज्ञा समानता वा सदृशभावमें प्रवर्तती है (सर्वनाम च सामान्ये वर्तते) तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है (= तस्य भावः तत्त्वम्)" सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ५॥ तद्+त्व, उपर्युक्त 'खरि च' सूत्रद्वारा = तत्+त्व = तत्त्व होता है। इस तद्-तत् में त्व प्रत्यय, भाव अर्थमें आया है। तत्त्व अमरकोषमें यथार्थ, सार, सद्भाव इत्यादि अर्थोंमें है॥

(२) "तत्त्व, (न०) तन्+किप्। ततो भावः। तस्य भावः। त्वथा तलोपः। सद्भाव-स्वरूप" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १६५। अब श्रीपूज्यपादकृत जैनेन्द्र-व्याकरणके ४-३-६७ वें सूत्र [पिति कृति तुक् = प्रांतस्य तुगागमः भवति पिति कृति परतः अर्थात् ह्रस्व (अ) अंतमें जिसके हो उसको तुक् (= त्) का आगम होता है यदि उस ह्रस्वांतके पश्चात् ऐसा कृत् प्रत्यय आवे जिस प्रत्ययके अंतमें प् हो। यहां पर किप् ऐसा कृत् प्रत्यय है जिसके अंतमें प् है। किप् प्रत्यय सारा ही उड़ जाता है॥] द्वारा तन्+किप् = तन्+तुक् = तत्पश्चात् पद्मचन्द्रकोषमें लिखा है ततो भावः। तस्य भावः। इसलिये त्व-ता दो प्रत्यय भाववाचीयोंमेंसे ता स्त्रीलिंग प्रत्ययको छोड़कर त्व लगानेसे तत्त्व बना। पुनः उसी कोषमें लिखा है त्व वा तलोपः विकल्पकरि त्वके तका लोप हो गया और तत्त्व शब्द रह गया॥ हमारी समझमें नहीं आया कि किस नियमसे त्का लोप हो गया॥ आगल विद्वान् मानीयर विलियम महाशयने अपने संस्कृत कोष पृष्ठ २६५ में तत्त्व शब्द लिखनेके पश्चात् तत्त्व शब्द लिख

वंन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

वन्दे तद्गुणलब्धये ॥१॥ = उन्हीं (मोक्षमार्गप्रणयन--कर्मभेदन--विश्वतत्त्वज्ञान) गुणोंकी प्राप्तिकेलिये प्रणाम करता हूं वा वंदना करता हूं अर्थात् मैं पूज्यपाद आचार्य इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका रचयिता उक्त तीनों गुणोंके उपार्जनके लिये उसको जो मोक्षमार्गका नेता है, जो कर्मोंका विनाशक है, जो जड चेतन सर्व वस्तुओंका युगपद् एक समयमें ज्ञाता है, नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

है और यह मत प्रगट किया है कि तत्त्व शब्दके स्थानमें तत्व तुल्य अर्थ ईस का कुछेक कुछ हो है; कुछ भी हो प्रमादवश वा असावधानीसे वा सुगमताके हेतुसे तत्व शब्द इस वृत्तिमें तथा अन्य अन्य कोश व शास्त्रोंमें पचासों स्थानों लिखा है ॥ इसलिये तत्व तत्त्व दोनों एक हैं ॥

१। कहीं कहीं पर वंदे और कहीं कहीं वन्दे शब्द पुस्तकोंमें आया है, उनमें वंदे अशुद्ध है। (देखो अष्टाध्यायी ८। ३। २४, ८। ४। ५८, और ८। ४। ६६ वें सूत्र ॥

२। लब्धि शब्द स्त्रीलिङ्ग है । लब्धये चतुर्थी (सम्प्रदान) विभक्तिका एक वचन है इसका रूप ऐसे बना है कि ए चतुर्थीका चिन्ह है इ अथवा ई का गुण ए है, उ अथवा ऊ का गुण ओ है ऋ का = अर् है ऌ का अल् है। स्त्रीलिंग संज्ञाके अंतके इ वा ई चतुर्थी (सम्प्रदान) पंचमी (अपादान) और षष्ठी (संबंध) विभक्तियोंके प्रत्ययोंके पहिले अपनी अपनी गुण संज्ञामें पलट जाते हैं इसलिये लब्धिका लब्धे हो जाता है। ए चतुर्थीका चिन्ह जोड़नेसे लब्धे+ए हुआ । संस्कृतमें दो स्वर विना मिले हुये प्रायः नहीं रह सके हैं । वर्तमान दशामें जो नियम लागू है वह यह है कि पहिले आये हुये ए ऐ ओ औ का यथासंख्य [=क्रमसे] परिवर्तन अय्, आय्, अव्, आव्में हो जाता है तब पश्चातका स्वर जोड़ देते हैं जैसे लब्धेकी ए का अय् होकर लब्धय् हो गया पश्चात् ए जोड़नेसे (जो चतुर्थीका चिन्ह है) लब्धय्+ए हुआ अर्थात् लब्धये हो गया ॥ संक्षेपतः ए ऐ ओ औ का क्रमसे अय् आय् अव् आव् हो जाता है यदि इनके पीछे कोई स्वर आवै तो, एचोऽयवायावः अष्टाध्यायी ६। १। ७८ वां सूत्र ।

कश्चिद्भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे कचिदाश्रमपदे मुनिपरिषण्मध्ये सन्निषण्णं मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं

कश्चित्* भव्यः १। प्रत्यासन्ननिष्ठः १।	= कोई भव्य अत्यन्त निकट है सिद्धि जिसके
प्रज्ञावान् १। स्वहितम् २। उपलिप्सुः १। विविक्ते ७।१।१	= बुद्धिमान् अपने हितको इच्छुक निर्जन
परमरम्ये ७।१।१ भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे ७।१।१ कचित्*	= अत्यन्त सुन्दर भले जीवोंके विराम (=विश्राम) स्थानमें (=आस्पदे) किसी (=कचित्)
आश्रमपदे ७।१।१ मुनिपरिषण्मध्ये ७।१।१ सन्निषण्णं २।	= आश्रम स्थानमें (=पदे) मुनियोंकी सभामें बैठे हुये
अवाग्विसर्गं २।१।१	= वचन (=वाग्) दान (=विसर्ग) रहित (=अ) अर्थात् विना ही वचनके

१ चित् अथवा अपि इन दो अव्ययोंको यदि किम्के सर्व लिंगोंके साथ जोड़ दें तो वह [अर्थात् जुड़ा हुआ] वाक्य अनिश्चित अर्थ का द्योतक होगा जैसे किंचित् = कुछ वस्तु अथवा कोई वस्तु : कश्चित् [=कः १। चित्] कोई पुरुष अथवा कोई जन । देखो भागडारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२६ ।

२ भव्यः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन भविष्यति इति भव्यः = सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भावकरि, जो होगा अथवा परिणमेगा सो भव्य है [राजवार्तिक पृष्ठ ७७]

३ क्वचित्—क्व—क्वचन—क्वचित्—ये तीनों अव्यय 'कहाँ' अर्थमें आते हैं (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १२०)

४ यथार्थमें यह शब्द वाच् स्त्रीलिंगी वाक्य, वचन, वाणी, कहना आदि अर्थोंमें आता है और वाचा शब्द भी स्त्रीलिंगी है और इसी अर्थमें आता है [देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३४२]

वाच्का चकार ग् में कैसे पलट गया ? चोः कुः [झलि पदान्ते] अष्टा० ८-२-३०॥ जैनेन्द्रव्याकरण ५ । ३ । ६५वां सूत्र । च्-क्-ज्-क्-श् चु] के स्थानमें क्रमसे क्-ख्-ग्-घ्-ङ्-(=कु) हों यदि झल् प्रत्याहार पश्चात्में हो वा पदान्तमें च्-क् ज्--झ्--श् हो इसलिये वाच्के पदान्त चकारका क् होकर वाक् होगया ॥

वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागमकुशलं

वपुषा ३ [1]	=अच्छे स्वरूप [=वपुः] वा प्रशस्ताकारकरि (=वपुषा) अर्थात् अपने शरीरहीकी शांत मुद्राकरि
मूर्तम् १। इवअ मोक्षमार्गम्२। निरूपयन्तं२। युक्ति–आगम–कुशलं२।	=मानो मूर्तिक मोक्षमार्गको निरूपण करते, युक्ति तथा आगममें प्रवीण

क का परिवर्तन गूमें हो जानेका यह नियम है कि जब किसी शब्दके अन्तका व्यंजन [ङ्–ञ्–ण्–न्–म् व्यंजनोंको छोड़कर) दूसरे शब्दके प्रथम घोष व्यंजन (=ग्—घ्—ङ् । ज्—झ्—ञ् । ड्—ढ्—ण् । द्—ध्—न् । ब्—भ्—म् । य्—र्—ल् व्—ह्) वा प्रथम स्वरके साथ संधित वा संयोजित किया जावे तो यह अंतका व्यंजन अपने वर्गके तीसरे व्यंजनमें परिवर्त्तित हो जाता है अतः अवाक्+विसर्गका अवाग्+विसर्ग हो गया । क्रियाविशेषण सदा नपुंसकलिंग एवं एक वचन होता है इसलिये यहां अवाग्विसर्ग निरूपण क्रियाका विशेषण होनेसे नपुंसक लिंग एवं एक वचन होगया है ।

इसी प्रकार नगरात्+आगच्छतिका नगराद् = आगच्छति = नगरादागच्छति होगया (भा० मार्गोपदेशिका पृष्ठ २८) ।

१ । वपुषा—वपुस् नपुंसक लिंगी शब्द प्रशस्ताकार वा अच्छे स्वरूपके अर्थमें है । (पद्म० को० पृ० ३२६) यहां पर शांत मुद्रारूप शरीर इस तात्पर्यमें लिया है ॥ वपुसमें आट् (= आ) तृतीयाकरण विभक्तिका चिन्ह लगाकर और स् को निम्नलिखित नियमसे ष् में पलट कर वपुषा बना लिया है ॥

जब स् जो कि अपदान्त हो और जो आदेश अथवा प्रत्ययका अंश वा टुकड़ा हो, अ—आको छोड़कर किसी स्वरके पीछे आवे, य्—र्—ल्—व् के पश्चात् आवे, क्—ख्—ग्—घ्-ङ् के परे आवे, अथवा ह् के पश्चात् आवे तो वह स् पलट कर ष् हो जाता है, अष्टाध्यायीके ८—३ के ५५—५७—५९ सूत्रोंके अनुसार ॥

परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं निर्ग्रंथाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परिपृच्छति स्म । भगवन्

परहित-प्रतिपादन-एक-कार्यम् १	=दूसरेके हित कहनेका है केवल (एक) काम जिन (आचार्य) को
आर्य-निषेव्यं २	=श्रेष्ठ पुरुषोंकरि सदा (=नि) सेवने योग्य
निर्ग्रंथ—आचार्य-वर्यम् ३ उपसद्य-	=निर्ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहरहित दिगम्बर आचार्योंमें मुख्य तिनको प्राप्त होकर
स-विनयं ३ ।। परि-पृच्छति ४ स्म ॐ भगवन्ं ५	=विनयसहित पूछता हुआ कि हे स्वामी !

१ । निषेव्यं—नि (अव्यय) =सदा (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २०१) भ्वादि प्रथम गणके सेव् आत्मनेपदी धातुमें यय प्रत्यय लगानेसे बना है । ण इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होता है और केवल य रह जाता है और इसलिये नि+सेव्+यय=नि+सेव्+य=नि+सेव्य. पूर्वोक्त नियमसे (देखो पृष्ठ १५) सकारका परिवर्तन षकारमें हो गया और निषेव्य रूप प्राप्त हुआ जो द्वितीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है ।

२ उपसद्य—यह शब्द संबंधकभूत कृदन्त है । इसके बनानेका यह नियम है कि धातुमें त्वा प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे श्रु (=सुनना) धातुमें त्वा प्रत्यय लगानेसे श्रुत्वा (=श्रवण करके) बनता है । यदि धातुसे पहिले उपसर्ग जोड़ा जाय तो त्वा प्रत्ययके स्थानमें य लगाते हैं जैसे भू धातुके पहिले अनु उपसर्ग लाकर अनुभू बनाया इसका संबंधकभूत कृदन्त अनुभूमें य जोड़नेसे अनुभूय (=अनुभव करके) हुआ । इसी प्रकार प्रथम भ्वादि छठे तुदादि अथवा दशवें चुरादिगणके सद् धातुमें उप उपसर्ग लगानेसे उपसद् (=प्राप्त होना) शब्द बना पश्चात् य लगानेसे उपसद्य (=प्राप्त होकर) ऐसा शब्द बना । इसी सम्बन्धकभूत कृदन्तके बनानेमें अन्य विशेष यह है कि यदि धातुके अंतमें ह्रस्व स्वर हो तो इस य से पहिले त् जोड़ा जाता है जैसे अनुकृत्य=अक्षरशः लिपि करके । अतीत्य=उलंघन करके । यदि धातु सेट् हो तो त्वा के पहिले धातुमें इ लगाकर संबंधकभूत कृदन्त बनाते हैं जैसे जीव धातुमें इ जोड़नेसे जीव+इ हुआ पश्चात् त्वा लगाकर जीवि त्वा बना (देखो भागडारकार मार्गोपदेशिका पृष्ठ ६१) ।

३ परि एक अव्यय है जो यहां पर वाक्यभूषणके लिये आया है ।

४ स्म एक अव्यय है ॥ "स्मि+इ । अतीत (बीतगया) पादको पूरा करना ." देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २३० ॥

५ भगवन्—यह भगवन् पुल्लिंग शब्दका सम्बोधन है ॥

जगरूपसहायवकील कृत पदच्छेद विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

किं खलु आत्मने हितं स्यादिति ॥ सँ आह मोक्ष इति ॥ स एवं पुनः प्रत्याह किंस्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति ॥

किं* खलु आत्मने १।१ हितं १।१।१ स्यात् ५ इति सः १।१ आह ५	=आत्माके लिये क्या हितकारी है ? आचार्य (=सः) कहते हैं
मोक्षः १।१ इति * । सः १।१ एव *	=मोक्ष (आत्माके लिये हितकारी) है वह (= स एव) ही
पुनः * प्रति+आह (= प्रत्याह)	=फिर (=पुनः) पलटकर (=प्रति) पूछता है (आह) कि
किंस्वरूपः १।१ असौ १।१ मोक्षः १।१ कः १।१ च	=यह (=असौ) मोक्ष किस (=किं) स्वरूप है और क्या
अस्य ६।१ प्राप्ति–उपायः १।१ इति	=इस मोक्षकी प्राप्तिका साधन वा उपाय है ।

६ इति—बस अलम् यहां पर वाक्यकी समाप्तिके लिये है ।

७ स आह, स, एव विसर्जनीयके पहिले अकार (अ) हो, और उसके पश्चात् में अ स्वरके अतिरिक्त कोई, अन्य स्वर आवे तो विसर्गका लोप होजाता है। जैसे सः आह = स आह । सः एव = स एव । बुधः इच्छति = बुध इच्छति इत्यादि (देखो भाएडारकार मार्गोपदेशिका पृष्ठ१५)

८ प्रत्याह--प्रति+आह उलट कर (=प्रति) अथवा फिर (=प्रति) पूछता है-प्रश्न करता है । प्रति=फिर-उलट कर (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २४६) इसलिये अनुवादमें पुनः के लिये फिर शब्द लाये हैं और प्रति शब्दके लिये लौटकर वा पलटकर शब्द अनुवादमें लाये हैं ।

आह–यह रूप ब्रू (=कहना–बोलना) द्वितीय अदादि गण उभय पद (परस्मै-पद, और आत्मने-पद) धातुसे बना है ॥ अन्यपुरुष एक वचन वर्तमान कालमें इस शब्द (ब्रू) का रूप आह बिना किसी व्याकरणके नियमसे बना है ॥ आह=बोलता है–कहता है । परन्तु श्रीआचार्यकेलिये सन्मान, आदर वा प्रतिष्ठा प्रगट करनेके लिये बहुवचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल क्रियामें "कहते हैं" ऐसा अनुवाद किया है ।

९ असौ–यह शब्द कर्ता प्रथम कारक एक वचन पुल्लिंग अदस् शब्दका है अदस् शब्दका अर्थ वह अथवा यह दोनों हैं यहां पर 'असौ'का अर्थ 'यह' ऐसा किया है क्योंकि 'कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति' इस वाक्यमें अस्य शब्द इदम् शब्दकी षष्ठी विभक्ति पुल्लिंग एक वचन है जिसका अर्थ है 'इस (मोक्ष) का ।'

१० प्राप्त्युपाय–जब इ, उ, ऋ, और ऌ (ह्रस्व हो अथवा दीर्घ हो) असमान स्वरके पहिले हो तो यथाक्रम (क्रमसे) य् व् र् और ल् का

आचार्य आह–निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति ॥

आचार्यः ।। आह ‡	= आचार्य कहते हैं।
आत्मनः ।। निर्-अवशेष–निराकृत-कर्ममल–कलंकस्य ।।	= आत्माके (=आत्मनः) समस्त कर्ममल कलंकरहित हो जानेको
अशरीरस्य ।।।	= (आत्माके) शरीररहित हो जानेको
अचिन्त्य–स्वाभाविक–ज्ञानादि–गुणम् ।।।	= (आत्माके) स्वाभाविक अचिंत्य ज्ञानादिगुण प्रगट हो जाना।
अव्याबाध–सुखम् ।।।	= (आत्माके) बाधारहित सुखकी प्राप्ति [और]
आत्यन्तिकम् ।।। अवस्थान्तरं ।।।	= (आत्माकी संसार अवस्थासे) अत्यन्त भिन्न दशाका हो जाना
मोक्षः ।। इति *	= ऐसी मोक्ष है ॥

प्रयोग उनके स्थानमें होता है। जैसे प्रा प् त् इ+उपाय = प्रा प् त् य्+उपाय = प्राप्त्युपाय ।

तृणानि+अत्ति+अश्वः = तृणान् इ+अत् इ+अश्वः = तृणान् य्+अत् य्+अश्वः (तृणान्यत्त्यश्वः—घोड़ा तिनके अर्थात् घास खाता है।) इस ही प्रकार कर्तर् इ+आत्मने=कर्तर्य्+आत्मने = कर्तर्यात्माने (सं. स. वृत्ति १०८) मूर्तमिव मोक्षमार्गमवागविसर्गं वपुषा निरूपयन्तं; युक्त्यागमकुशलं; परहितप्रतिपादनैककार्यम्; आर्यनिषेव्यं; निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम् ये पांच विशेषण निर्ग्रन्थ आचार्य महाराजके हैं जिनके समीप भव्य जैन कर प्रश्न करता है।

तस्यात्यन्तपरोक्षत्वाच्छद्मस्थाः प्रवादिनस्तीर्थकरम्मन्यास्तस्य स्वरूपमस्पृशन्तीभिर्वाग्भिर्युक्त्याभासनिबन्धनाभिरन्यथा परिकल्पयन्ति 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं, तच्च ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखमिति॥ तत्सदप्यसदेव, निराकारत्वात् खरविषाणवत् ॥ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुणोच्छेदः पुरुषस्य मोक्ष इति च ।

तस्य ६।१ अत्यन्तपरोक्षत्वात् ५।१।१
छद्मस्थाः ३।१ प्रतिवादिनः ३।१
तीर्थकरम्मन्याः ३।१
तस्य ६।१ स्वरूपम् २।१।१ अस्पृशन्तीभिः ३।१।१
युक्ति+आभासनिबन्धनाभिः ३।१।१ वाग्भिः ३।१।१
अन्यथा * परिकल्पयन्ति T
चैतन्यं १।१।१ पुरुषस्य ६।१ स्वरूपं १।१।१
तत् १।१।१ च* ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखम् १।१। इति

तत् १।१।१ सत् १।१।१ अपि * असत् १।१।१ एव *
निराकारत्वात् ५।१।१ खरविषाणवत्*
च पुरुषस्य ६।१ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुण—उच्छेदः १।१ मोक्षः १।१ इति

=तिस मोक्षके अतिशय (बहुत) परोक्ष होनेसे
=अल्पज्ञानी प्रतिवादी (अन्यथी)
=जो अपनेको धर्मका उत्पादक मानते हैं (वे)
=उस (मोक्ष) के स्वरूपका स्पर्शतक न करनेवाले
=युक्तिसहित सरीखे दीखनेवाले वचनोंकर
=और प्रकार (=उलटा) कल्पे हैं । जैसे—
=[सांख्यमती मानता है कि] आत्माका (पुरुषस्य) स्वरूप चैतन्य है और वह [स्वरूप] ज्ञेयाकार [पदार्थों] को नहीं जानता है ।
(इसप्रकार मोक्षका स्वरूप कहता है)
=सो [ऐसा मानना] ठीक है तो भी ठीक नहीं है
=क्योंकि [वह] निराकार है गधाके सींगवत् मिथ्या [कल्पना] है
=और आत्माके बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि विशेष गुणोंका नाश होजाना सो मोक्ष है [ऐसा वैशेषिक मतवाले मानते हैं]

१ । "वैशेषिक"—कणाद मुनिका रचा हुआ एक शास्त्र, । कणादके शास्त्रका माननेवाला । एकाक्षरकोष पृष्ठ ३७० ।

तदपि परिकल्पनमसदेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् ॥ प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति च । तस्य खरविषाणवत्कल्पना तैरेवाहृत्य निरूपिता । इत्येवमादि ॥ तस्य स्वरूपमनवद्यमुत्तरत्र वक्ष्यामः ॥ तत्प्राप्त्युपायं प्रत्यपि ते विसंवदन्ते–' ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षात्तत्प्राप्तिः,

तत् ;111 अपि परिकल्पनम् ;111 असत् ;111 एव * = वह भी सब कल्पना झूठी ही है
विशेषलक्षणशून्यस्य ;111 अवस्तुत्वात् ;111 = [क्योंकि] विशेषणरहित कोई वस्तु ही नहीं होती
च प्रदीपनिर्वाणकल्पम् ;111 =बहुरि दीपकके विनाशके समान [बुझ जानेके सदृश]
आत्मनिर्वाणम् ;111 इति =आत्माका [ज्ञानादि गुणोंका] नाश होजाना मोक्ष है इसप्रकार [मोक्षका स्वरूप बौद्धमती मानें हैं]

तस्य ;1 कल्पना ;111 खरविषाणवत्* =उसका [मोक्षका] वह स्वरूप गधाके सींगके तुल्य
तैः ;3 एव आहृत्य* निरूपिता ;111 इति एवम्* आदि ;111 = [तैः एव] उनने ही असिद्ध ठहरा दिया है । इसीप्रकार और भी हैं

तस्य ;1 स्वरूपम् ;111 अनवद्यम् ;111 उत्तरत्र* वक्ष्यामः T =उस [मोक्ष] का स्वरूप यथार्थ आगें (हम) कहेंगे
तत्प्राप्ति–उपायं ;1 प्रति * अपि * ते विसंवदन्ते T = तिस [मोक्ष] के साधनके प्रति भी वे [अन्यवादी] वाद = विवाद करते हैं अर्थात् मोक्षके उपार्जनके उपयोंको भी एकमत दूसरे मतके विरुद्ध बताता है ।

ज्ञानात् ;111 एव चारित्रनिरपेक्षात् ;111 तत्प्राप्तिः ;11 =ज्ञान [मात्र] सेही चारित्रके विना संबंधसे तिस [मोक्ष] की प्राप्ति [बताते हैं]

१। " कल्प " सादृश्य अर्थमें कल्पप् प्रत्यय होता है जैसे—पितृकल्पः, गुरुकल्पः = गुरुके समान, निर्वाणकल्पम् । पद्मचंद्रकोष पृष्ठ १०१ ।

श्रद्धानमात्रादेव वा, ज्ञाननिरपेक्षाच्चारित्रमात्रादेवेति च ॥ व्याध्यभिभूतस्य तद्विनिवृत्त्युपायभूतभेषजविषयव्यस्तज्ञानादिसाधनत्वाभाववत् ॥ एवं व्यस्तं ज्ञानादि मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति । किं तर्हि ? तत्त्रितयं समुदितमित्याह—

वा * श्रद्धानमात्रात् ५।१।१ एव *
च * ज्ञाननिरपेक्षात् ५।१।१ चारित्रमात्रात् ५।१।१ एव* इति
व्याधि–अभिभूतस्य ६।१
तद्–विनिवृत्ति–उपाय–भूत–भेषज–विषय–व्यस्त–ज्ञानादि–साधनत्व–अभाववत् * एवं *
व्यस्तं १।१।१ ज्ञानादि १।१।१
मोक्ष–प्राप्ति–उपायः १।१ न भवति
किं १।१।१ तर्हि*
तत्–त्रितयं १।१।१ समुदितं १।१।१
इति–आह

= अथवा श्रद्धान [विश्वास] मात्रसे ही [ज्ञान चारित्रके विना मोक्षकी प्राप्ति कहते हैं]
= बहुरि ज्ञान संबंधसे रहित चारित्रमात्रसे ही इसप्रकार (मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं)
= रोगसे घबराये हुए (रोगी) के
= उस (रोग) के दूर करनेके कारणभूत
= औषधके संबंधमें ज्ञान, श्रद्धान, आचरणमें कोई एक
= साधन जिसप्रकार दूर करनेमें असमर्थ हैं तिस प्रकार
= ज्ञान–चारित्र–श्रद्धानमेंसे एक एक (= व्यस्त)
= मोक्षके प्राप्तिका साधन नहीं होता है
= तौ (= तर्हि) क्या (मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है ?)
= उन तीनों (ज्ञान–दर्शन–चारित्र) की एकता है
= ऐसे [श्रीउमास्वामी आचार्य सूत्र] कहते हैं

१ अभिभूत (त्रि०) घबराया हुआ, दबाया हुआ। पद्मचन्द्रकोष देखो पृष्ठ ३७।
२ व्यस्त (त्रि०) सारे पदार्थोंमेंसे एक एक। देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३७२

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि ३।१।१ = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र (इन तीनोंका समुदाय अथवा संगम)
मोक्ष—मार्गः १।१ = मोक्षका मार्ग है अथवा मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है अर्थात् पदार्थों के यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धान व प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है जिस जिस भांति जीवादिक पदार्थ तिष्ठे हैं तिस तिसप्रकार जानना सो सम्यग्ज्ञान है। संसारके हेतुओं (आस्रव-बन्ध) की निवृत्ति करनेके लिये उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके कर्मका ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। अनुभवसे यह बात प्रत्यक्ष है कि संसारके जितने कार्य हैं उन सबमें ही प्रथम ज्ञान, दूसरे श्रद्धान वा विश्वास तीसरे आचरणकी आवश्यक्ता होती है यदि इन तीनोंमेंसे एक भी घाटि हो तो कोई कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं हो सक्ता है वैसे ही मोक्षकी प्राप्तिमें भी इन तीन हीकी आवश्यक्ता है। ध्यान रहै कि प्रथम ज्ञान होता है उसके पश्चात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति होते ही वही ज्ञान जो सम्यग्दर्शनके पहिले कुज्ञान या सम्यग्ज्ञान हो जाता है (विशेष जाननेकेलिये नीचेका वृत्त्यर्थ देखो)

"१ इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थकी रचनाके विषयमें कर्णाटकभाषाकी तत्त्वार्थवृत्ति नामकटीकाकी प्रस्तावनामें एक बड़ी मनोरंजक कथा लिखी है, वह इस प्रकार है कि;—

सौराष्ट्र (गुजरात) देशके किसी नगरमें एक पवित्रान्तः करण और नित्यनैमित्तक क्रियाओंमें तत्पर श्रद्धावान् द्वैपायक नामक श्रावक रहता था। वह बड़ा विद्वान् था। और इसलिये चाहता था कि किसी उत्तम ग्रन्थकी रचना करूं, परन्तु गार्हस्थ्यजंजालके कारण अनवकाशवशतः कुछ कर नहीं सका था। निदान एकदिन उसने प्रतिज्ञा की कि, प्रतिदिन जब एक सूत्र बना लूंगा, तब ही भोजन करूंगा, अन्यथा उपवास करूंगा। और मोक्षशास्त्रके बनानेका निश्चय करके उसी दिन उसने "दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" यह प्रथम सूत्र बनाया। तथा विस्मरण हो जानेके भयसे अपने घरके एक खम्भेपर उसे लिख दिया।

इसके पश्चात् दूसरे दिन वह श्रावक किसी कार्यके निमित्त कहीं अन्यत्र चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारके लिये आये। मुनिके दर्शनसे द्वैपायककी सुशीला गुणवती भार्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवधाभक्तिपूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त मुनिराजने खंभेपर लिखा हुआ वह सूत्र जो द्वैपायकने लिखा था, देखकर किंचित् विचार किया और तत्काल ही उसके पहिले सम्यक् विशेषण लिख कर वहांसे चल दिये। तदनन्तर जब द्वैपायक आया, तो उसे अपने लिखे हुए सूत्रमें सम्यक् विशेषण अधिक लिखा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, और साथ ही सूत्रकी शुद्धता (निर्दोषता) से आनंद भी हुआ। भार्याके पूछनेसे विदित हुआ कि, मुनिराज आहारके निमित्त पधारे थे, कदाचित् वे लिख गये होंगे। तब श्रावक उसी समय बड़ी आतुरतासे उनके ढूंढनेको निकला। यत्र तत्र बहुत भटकनेके पश्चात् एक रमणीक वनमें उसे उक्त मुनिराजके दर्शन हुए। वे एक बड़े भारी मुनियोंके संघके नायक थे। उनकी मुद्राके दर्शनमात्रसे वह श्रावक जान गया कि इन्हीं महात्माने मेरे सूत्रको शुद्ध करनेकी कृपा की होगी और गद्गद होके उनके चरणोंपर पड़ गया। बोला, भगवन्! उस मोक्षशास्त्रको आप ही पूर्ण कीजिये। ऐसे महान् ग्रन्थके रचनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। आपने बड़ा उपकार किया, जो मेरी बड़ी भारी भूल सुधार दी। सच है दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग नहीं है. किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग है। अतएव "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" ही परिपूर्ण और विशुद्ध सूत्र है। श्रावकके उक्त आग्रह और प्रार्थनाको मुनिराज टाल नहीं सके, और निदान उन्होंने इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) को रचके पूर्ण किया। पाठक! वे मुनिराज और कोई नहीं, हमारे इस लेखके मुख्यनायक भगवान् उमास्वामी ही थे।"

भगवद्उमास्वामि श्रीमत्कुन्द कुन्द आचार्य जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकी है उनके शिष्य थे। उमास्वामि सूरिका जन्म दिगम्बर सम्प्रदायकी पट्टावलियोंके अनुसार विक्रमशक ५७ (=विक्रम सम्वत् १९२) में हुआ था १९ वर्षकी अल्प वयमें आपने जिन दीक्षा ग्रहणकी और

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतेः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा।

सम्यग्+इति अ+व्युत्पन्नः १।१

=सम्यग् ऐसा (पद) अव्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति रहित) वाला

वा व्युत्पन्नः १।१ शब्दः १।१

=अथवा व्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति) वाला शब्द हो सक्ता है अर्थात्। यह अव्युत्पत्ति पक्ष अपेक्षा तो रूढि संज्ञक है

अञ्चतेः ५।१ क्वौ ७।१ समञ्चति T इति सम्यक् १।१ इति*

= और व्युत्पत्तिपक्ष अपेक्षा सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च धातुसे पूजन वा प्रशंसार्थमें (अञ्च = पूजायाम् गतौ) क्विप् प्रत्यय करनेपर सम्यक् बनता है।

अस्य ६।१ अर्थः १।१ प्रशंसा १।१।

=इस (सम्यक् शब्द) का अर्थ (इस सूत्रविषै) प्रशंसा है।

प्रशस्त=उत्तम=प्रशंसनीय

---

२५ वर्ष दीक्षित रहनेके पश्चात् कार्तिक शुक्ला ८ विक्रमशक १०१ में नंदिसंघके पट्ट पर विराजमान होकर आचार्य पद लाभ किया॥ उन्हों ने ४० वर्ष ८ दिन आचार्य पद पर सुशोभित रहकर परम धर्मका उपदेश किया। इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एक है॥ तत्त्वार्थ सूत्र दोनों संप्रदायोंमें माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायका मत है कि वे दिगम्बर आचार्य थे, और उनका नाम उमास्वामि है। श्वेताम्बर आम्नायवाले उनको उमास्वातिके नामसे श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं है श्रीमदुमास्वामिने एक ही तत्त्वार्थ शास्त्र रचा था। पश्चात् अपने अपने माने हुये पदार्थोंके प्रतिपादनके लिये जहां तहां सूत्रोंमें पाठ भेद कर दिया गया है। प्रायः ऐसा होता है कि जो ग्रन्थ अति उत्तम होता है और जिसका रचयिता अत्यंत मान्य और प्रतिभाशाली प्रसिद्ध होता है उस ग्रन्थ तथा आचार्यको प्रत्येक शाखाकी जनता अपनाया करती है॥ यही कारण है कि जहां तहां सूत्रोंमें भेद है॥

१। सम्यग्:—सम् उपसर्गमें अञ्च धातु पूजन वा प्रशंसा अर्थमें जोडकर तथा क्विप् प्रत्यय लगानेसे सम्+अञ्च+क्विप् ऐसा रूप हुआ। इस सम् उपसर्गके स्थानमें समिक आदेश अष्टाध्यायी ६-३-९३ सूत्रसे होकर समि+अञ्च+क्विप् बना। क्विप् प्रत्यय सारा ही उडजाता है और

अगरूपसहायवकीच्छत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः॥ उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते। भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।

सः $_{1}$ प्रत्येकं $_{111}$ परिसमाप्यते T
सम्यग्दर्शनं $_{111}$ सम्यग्ज्ञानं $_{111}$
सम्यक्चारित्रं $_{111}$ इति*
एतेषां $_{111}$ स्वरूपं $_{111}$ लक्षणतः*
च विधानतः* पुरस्तात् * विस्तरेण $_{111}$ निर्देक्ष्यामः T
उद्देशमात्रं $_{111}$ तु * इदं $_{111}$ उच्यते T
भावानां $_{1}$ याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं $_{111}$
दर्शनस्य $_{111}$ सम्यक् विशेषणम् $_{111}$
येन $_{1}$ येन $_{1}$ प्रकारेण $_{1}$ जीवादयः $_{1}$ पदार्थाः $_{1}$
व्यवस्थिताः $_{1}$ तेन $_{1}$ तेन $_{1}$ अवगमः $_{1}$ सम्यग्ज्ञानम् $_{111}$

=सम्यक् पद अलग अलग (तीनोंपर) लगाया जाता है
=तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
=सम्यक्चारित्र इसप्रकार (तीनों पद) होते हैं।
=इन (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र)के स्वरूपको लक्षण
=तथा भेदसे आगे विस्तारकरि कहेंगे।
=परंतु संक्षेपमात्र यह (इस सूत्रमें) कहा जाता है
=पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धानको ग्रहण करनेके लिये
=दर्शनके सम्यक् (पद) विशेषण है
=जिस २ भांति जीवादिक पदार्थ
=तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है।

धातु प्रायः हलन्तही रहता है इसलिये सम्+अञ्च् रूप हुआ। अब इ, उ, ऋ, और ऌ, (ह्रस्व अथवा दीर्घ हों) किसी असमान स्वरके प्रथम आवें तो यथाक्रमसे य्—व्—र्—ल् का प्रयोग उनके स्थानमें हो। इसलिये सम्+अञ्च् = सम्यञ्च् हुआ। (देखो अष्टाध्यायी ६-१-७७ वां सूत्र) सम्यञ्चके ञ् का लोप होकर सम्यच् सिद्ध हुआ। पद्मनन्द्रकोष पृष्ठ ४१४ में सम्यच् को अव्यय भी लिखा है॥ सम्यक् का क् घोष, अक्षरके पहिले ग् में पलट जाता है इसलिये सम्यग् दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूप हुये और अघोष अक्षरके पहिले क् में इस क् का परिवर्तन हो जाता है इसलिये सम्यक्चारित्र हुआ॥ इस सूत्रके प्रत्येक शब्द दर्शन-ज्ञान और चारित्रके साथ सम्यग्-सम्यक् पद लाना चाहिये।
(१) कृदि वह है जो प्रकृति और प्रत्ययके अर्थकी अपेक्षा किये बिना समुदाय शक्ति (सार शब्द सामर्थ्य) से "अर्थकोतावै।" कृदि वह है जो

मोहसंशयविपर्ययनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम् । संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम् । अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्यर्थं

मोह–संशय–विपर्यय–निवृत्ति–अर्थ ।111	= अनध्यवसाय (मोह, विमोह,) संदेह, तथा विभ्रम वर्जनेके लिये
सम्यग्विशेषणम् ।111	= (ज्ञानके पहले) सम्यग् विशेषण (लगाया) है ।
संसारकारणनिवृत्तिं ।11 प्रत्यागूर्णस्य ।1 ज्ञानवतः ।1	= संसारके हेतुओं (आस्रव बन्ध) की निवृत्ति करनेको उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके
कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः ।1 सम्यक्चारित्रं ।111	= कर्मको ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग (सो) सम्यक्चारित्र है ।
अज्ञानपूर्वक–आचरणनिवृत्ति–अर्थम् ।111	= अज्ञानपूर्वक चारित्रको दूर करनेके अर्थ [चारित्र इस पदमें]

नाम किसीका हो परन्तु न आप किसी दूसरे शब्दसे निकला हो न उससे कोई दूसरा शब्द निकल सके, अर्थात् न किसी ठहराये हुये नियमके साथ किसी धातुसे बना हो और न वह आप धातु हो (हिन्दी व्याकरण पृष्ठ १७)

१ द्रव्य संग्रह (सम्यग्दर्शनके प्रकरण) गाथा ४२ में मोह-संशय-विपर्यय इन्हीं तीन विशेषणोंके लिये "संशय विमोह विब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स' ऐसा वाक्य आये हैं ॥ पं० जयचंदजीने मोहका अनुवाद इसी सूत्रके अर्थ करनेमें "विमोह" किया है । "संशय विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थोंके जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं" पन्नालालजी कृत भाषाटीका पृष्ठ १ । "अध्यवसाय–यह ऐसा ही है इस प्रकार किसी विषयके विचारमें निश्चय करना" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १७ । इसलिये मोह शब्दका अनुवाद अनध्यवसाय किया है । "जाननेकी इच्छाके अभावमें अनिश्चितरूप तथा विकल्प रहित जो सूक्ष्म ज्ञान हो, उसे अनध्यवसाय कहते हैं । जैसे–मार्गमें चलते समय पांवसे छुए हुए अनेक धूलिकंटक पाषाण वालू तृण आदिकोंका स्पर्श होनेपर 'कुछ' है इसप्रकार विकल्परहित तथा अनिश्चितरूप (जिसमें अनेक कोटियोंका अवलंबन नहीं हो, ऐसा) ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय है" पन्ना० तत्त्वार्थ पृष्ठ १ सं स वृत्तिके दूसरे संस्करणमें मोहके स्थानमें अनध्यवसाय पाठ है

२ संशय—"अनिश्चितानेककोट्यवलम्बनं संशयः" । जिन जिन पदार्थोंके ज्ञानमें संशय हो उनमें समान रहनेवाले धर्मके दर्शनसे तथा उनके विशेष धर्मके अदर्शनसे जो अनेक पदार्थोंका अवलम्बन करनेवाला ज्ञान होता है उसको संशय कहते हैं । जैसे यह पदार्थ स्थाणु (=ठूंठादि विहीन वृक्ष = ठूंठ) है वा पुरुष है ? सीप है वा चांदी है ।

३ "समान चिन्ह देखने पर अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थके निश्चय होनेको विपर्यय कहते हैं–जैसे रस्सीमें सर्पका निश्चित-ज्ञान । विपर्यय शब्द के लिये उक्त द्रव्य संग्रहके आर्याछन्दमें 'विब्भम (= विभ्रम) शब्द आये हैं इसलिये विपर्ययका अनुवाद हमने विभ्रम किया है ॥

सम्यग्विशेषणम् ॥ स्वयं पश्यति दृश्यतेऽनेनेति दृष्टिमात्रं वा दर्शनम् ॥ जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानम् । चरति चर्यतेऽनेन चरणमात्रं वा चारित्रम् । नन्वेवं स एव कर्त्ता स एव करणमित्यायातम् । तच्च विरुद्धं

सम्यग्विशेषणम् ३।१।१
स्वयं * पश्यति T इति दर्शनम् ३।१।१

दृश्यते T अनेन ३।१।१ इति दर्शन ३।१।१
वा दृष्टिमात्रं ३।१।१ इति दर्शनम् ३।१।१

जानाति ज्ञानम् ३।१।१

ज्ञायते अनेन ३।१।१ ज्ञानम् ३।१।१
वा * ज्ञप्तिमात्रं ३।१।१ ज्ञानम् ३।१।१

चरति चारित्रम् ३।१।१

चर्यते अनेन ३।१।१ चारित्रम् ३।१।१

वा * चरणमात्रं ३।१।१ चारित्रम् ३।१।१

ननु * एवं * सः ३।१ । एव कर्ता ३।१ सः ३।१ एव * करणं ३।१।१
इति आयातम् ३।१।१ तत् ३।१।१ विरुद्धं ३।१।१

= सम्यग्विशेषण (लगाया) है ।
= आपही आप श्रद्धान करे सो दर्शन है [यहां कर्तृसाधन भया, करनेवाला आत्मा है सो ही दर्शन है]
= श्रद्धिये जिसकरि सो दर्शन है [यहां करण साधन भया]
= अथवा श्रद्धान सो दर्शन है [यहां भाव साधन हुआ, दर्शन क्रियाको ही दर्शन कहा]
= जो जाने सो ज्ञान है [यहां कर्तृसाधन हुआ, जाननेवाले आत्माहीको ज्ञान कहा]
= जाकरि जानिये [सो] ज्ञान है [यहां करण साधन हुआ]
= अथवा जानना सो ज्ञान है [यहां भाव साधन भया, जानना रूप क्रियाको ज्ञान कहा]
= आचरता है सो चारित्र है [यहां कर्तृसाधन हुआ क्योंकि आत्मा ही चारित्र है]
= जिसकरि आचरण किया जाय सो चारित्र है [इसप्रकार करण साधन भया]
= अथवा आचरण मात्र है सो चारित्र है [यहां भाव साधन भया] अर्थात् आचरनेहीको चारित्र कहा गया ।
= प्रश्न—इसप्रकार तो वहां कर्ता वही करण [= साधन]
= ऐसा प्राप्त हुआ सो विरुद्ध है ।

सत्यं, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा ।भिधानात् । यथाऽग्निर्दहतीन्धनं दाहपरिणामेन ॥ उक्तः कर्त्रादिभिः साधनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते । अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत् ॥ ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पाच्तरत्वाच्च ॥ नैतद्युक्तं,

सत्यं, स्वपरिणाम–	=[नहीं, यह] ठीक है क्योंकि अपने परिणाम
परिणामिनोः ६¹ विवक्षायां ७¹¹ तथा	=और परिणामी (दोनोंकी) भेद विवक्षामें वैसा
विधानात् ५¹¹¹	=विधान है। अर्थात् वही कर्ता वही कर्म वही करण हो सकता है
यथा अग्निः १¹ दहति T इन्धन २¹¹¹ दाहपरिणमेन ३¹	=जैसे अग्नि अपने दाह परिणामसे लकडीको जलाती है ।
उक्तः १¹ कर्त्रादिभिः ३¹	=(भावार्थ) कहा गया जो कर्ता कर्म क्रियासे
साधनभावः १¹	=साधनभाव (कर्तादिको प्रधान मानकर कीहुई व्युत्पत्ति)
पर्यायपर्यायिणोः ६¹ एकत्व–अनेकत्वं २¹¹¹ प्रति अनेकान्त–	=यह पर्याय और पर्यायवालेके एकपना और अनेकपना अनेकांतसे
उपपत्तौ ७¹¹ स्वातन्त्र्य–पारतन्त्र्य–	=स्वीकार कर लेनेपर स्वतंत्रता और परतंत्रताकी
विवक्षा–उपपत्तेः ६¹¹ एकस्मिन् ७¹ अपि न विरुद्धयते T	=विवक्षा होनेसे एक पदार्थमें भी विरुद्ध नहीं पडता है
अग्नौ ७¹¹ दहनादिक्रियायाः ६¹¹	=जैसे–अग्निमें दहन आदि क्रियाकी
कर्त्रादि–साधनभाववत्*	=[पृथक् और एक मान लेनेपर] कर्ता आदिमें सिद्धि हो जाती है ।
ज्ञानग्रहणमादौ १¹ न्याय्यं १¹¹	=(प्रश्न) सूत्रमें ज्ञानका लाना आदि विषे उचित था
दर्शनस्य ६¹¹¹ तत्पूर्वकत्वात् ५¹¹¹	=क्योंकि दर्शनके उस ज्ञानका कारणपना है
अल्पाच्तरत्वात् ५¹¹² + च*	=दर्शनसे ज्ञानके अल्प अक्षर होनेके कारण [क्योंकि व्याकरणमें द्वंद समासविषे जिस शब्दमें अल्प अक्षर होते हैं वह प्रथम आता है] सेभी प्रथम लाना योग्य है ।
न +एतद् १¹¹¹ युक्तं १¹¹¹	=उत्तर–यह तुम्हारा कहना या तर्क ठीक नहीं है

युगपदुत्पत्तेः ॥ यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति तदैव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाऽविर्भवति । घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशावाभिव्यक्तिवत ॥ अल्पाच्तरादभ्यार्हितं पूर्वं निपतति । कथमभ्यर्हितत्वं ? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ॥ चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं,

युगपत् + उत्पत्तेः ५।१ = क्योंकि दर्शनज्ञानकी एक काल उत्पत्ति है
यदा * + अस्य ६।१ दर्शनमोहस्य ६।१ = जब इस (आत्मा) का दर्शन मोहका
उपशमात् ५।१ क्षयात् ५।१ वा क्षयोपशमात् ५।१ वा = उपशमसे क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे
आत्मा १।१ सम्यग्दर्शनपर्यायेण ३।१ आविर्भवति T = चेतन सम्यग्दर्शनकी पर्यायसहित प्रकाशित होता है । अर्थात् चेतनके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है

तदा+एव-तस्य ६।१ मति+अज्ञान श्रुत+अज्ञान निवृत्तिपूर्वकं १।१।१ = तभी तिस चेतनके कुमति कुश्रुतका अभाव होकर
मतिज्ञानं १।१।१ च* श्रुतज्ञानं १।१।१ आविर्भवति = मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रकट होते हैं ।
घनपटलविगमे ७।१ सवितुः ६।१ = बादलोंकी ओटके दूर होनेपर सूर्यके
प्रतापप्रकाश–अभिव्यक्तिवत् * = तेज व धूप (= आतप) के (एक साथ) प्रगट होनेके सदृश दर्शन व ज्ञानकी उत्पत्ति एक साथ है।

अल्पाच्तरात् ५।१।१ अभ्यर्हितं १।१।१ पूर्वं १।१।१ निपतति T = थोडे अक्षर वाले (अल्प* अच् शब्द) से पूज्य (व्याकरणके अनुसार) पहले आता है ।

कथम् * अभ्यर्हितत्वं १।१।१ = कैसे दर्शनको ज्ञानसे पूज्यपना है ?
ज्ञानस्य ६।१।१ सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ५।१।१ = सम्यग्दर्शन ज्ञानको सम्यक् नाम देनेका हेतु है ।
चारित्रात्पूर्वं १।१।१ ज्ञानं १।१।१ प्रयुक्तं १।१।१ = सूत्रमें चारित्रसे पहले ज्ञान कहा ।

तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥ सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। तत्प्राप्त्युपायो मार्गः। मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तेःकृता भवति ॥ अतः सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः ॥ तत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थ मिदमुच्यते—

तत्पूर्वकत्वात् ५।१ चारित्रस्य ६।१	= क्योंकि चारित्रके पहिले वह ज्ञान होता है अर्थात् चारित्र तब ही सम्यक् होता है जिस समय सम्यग्ज्ञान हो लेता है।
सर्वकर्मविप्रमोक्षः १।१ मोक्षः १।१	= समस्त कर्मका अत्यन्त अभाव [सो] मोक्ष है।
तत्प्राप्ति + उपायः १।१ मार्गः १।१	= उस [मोक्ष] की प्राप्तिके लिये यत्न करना [सो] मार्ग है
मार्गः १।१ इति च एकवचननिर्देशः १।१	= और [सूत्रमें] मार्ग [शब्द] एकवचनमें कहा है
समस्तस्य ६।१ मार्गभावज्ञापनार्थः १।१	= सो समस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके [एक ही] मार्गभाव जनानेके लिये है।
तेन ३।१ व्यस्तस्य ६।१ मार्गत्वनिवृत्तेः १।१ कृता १।१ भवति	= तिस [मार्ग शब्द एकवचन] करि जुदे जुदे [सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र] को मार्गपनाका बर्जना होता है।
अतः सम्यग्दर्शनं १।१ सम्यग्ज्ञानं १।१	= इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान [भले प्रकारका ज्ञान]
सम्यक्चारित्रं १।१ +इति+एतत् १।१ त्रितयं १।१ समुदितं १।१	= भले प्रकारका आचरण ऐसे ये तीनों मिले हुए
मोक्षस्य ६।१ साक्षात्मार्गः १।१ वेदितव्यः १।१	= मोक्षका प्रत्यक्ष मार्ग जानना चाहिये।
तत्र+आदौ ७।१+ उद्दिष्टस्य ६।१।१	= तहां (सूत्रमें) आदिविषै उपदेशित
सम्यग्दर्शनस्य ६।१।१	= सम्यग्दर्शनका
लक्षणनिर्देशार्थम् १।१।१ इदम् १।१।१ उच्यते	= लक्षण कहनेकेलिए यह (अर्थात् आगेका सूत्र) कहा जाता है।

१ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एक देशपना परम्परा मोक्षका कारण है और समस्तता (=पूर्णता) साक्षात् मोक्षका कारण शास्त्रमें है यहां ऐसा सम्बन्ध जानेका भाव है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि टीका का भावानुवाद।

॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची। कथम्? तदिति सर्वनामपदम्। सर्वनाम च सामान्ये वर्तते। तस्य भावस्तत्त्वम्॥ तस्य कस्य?

(क) सूत्रार्थ—तत्त्वार्थ = तत्त्वेन ¹₁₁₁ + अर्थः ¹₁ = यथावस्थित रूप करि [तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [अर्थः] उसका जो श्रद्धान

श्रद्धानं ¹₁₁₁

सम्यग्दर्शनम् ¹₁₁₁ = सो सम्यग्दर्शन है—अथवा

[ख] तत्त्वार्थ = तत्त्वम् ¹₁₁₁ एव + अर्थः ¹₁₁₁ = यथावस्थित [= तत्त्वं] ही [= एव] वस्तु [= अर्थः] की

श्रद्धानं ¹₁₁₁ सम्यग्दर्शनम् ¹₁₁₁ प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है।

[ग] तत्त्वार्थ (= तत्त्वम् ¹₁₁₁ एव + अर्थः ¹₁) = जो जिस प्रकार अवस्थित है [= तत्त्वं] उस ही [= एव] वस्तु

श्रद्धानं ¹₁₁₁ सम्यग्दर्शनम् ¹₁₁₁ = (अर्थः) की उस ही प्रकार प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि टीका भावानुवाद।

तत्त्वशब्दः ¹₁ भावसामान्यवाची ¹₁ = (इस सूत्रमें) तत्त्व शब्द (वस्तुके) भाव स्वरूप वा धर्मका वाचक है

कथम्। तद्-इति सर्वनाम-पदम् ¹₁₁₁। = (तत्त्व) कैसे (भाव सामान्यवाची) है तद् ऐसा शब्द सर्वनाम पद है

सर्वनाम ¹₁₁₁ च सामान्ये ¹₁₁₁ वर्तते। = और सर्वनाम सादृश्य प्रयोजकधर्म [बराबरीको बतलानेवाले धर्म] में वर्तता है

तस्य ¹₁₁₁ भावः ¹₁ तत्त्वम् ¹₁₁₁॥ तस्य ¹₁₁₁ कस्य ¹₁₁₁। = तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है॥ वह (भाव) किसका है?

---

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। (२) वाचक—यह शब्द नकारान्त वाचिन् पुंल्लिंगका प्रथमा विभक्ति एक वचन है॥ स् प्रथमा विभक्ति पुंल्लिंग एक वचनका चिन्ह है इस स् को वाचिन् में जोड़नेसे वाचिन्+स् हुआ॥ अब पदान्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला व्यंजन रह जाता है और अन्यका लोप हो जाता है (भावडारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ ६७) वाचिन्+स्, वाचिन् जिस पुंल्लिंग शब्दके अन्तमें इन् हो तो उस का प्रथमा विभक्ति एक वचनमें और विभक्तियोंके सर्व वचन प्रत्ययोंके पहिले जो व्यंजनसे (प्रत्यय)

योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः । अर्यत इत्यर्थो निश्चीयत इत्यर्थः ॥ तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः । अथवा भावेन भाववतोऽभिधानं तदव्यतिरेकात् । तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः । तत्त्वार्थस्य श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं प्रत्येतव्यम् ।

यः ।१। अर्थः ।१। यथा अवस्थितः ।१। तथा तस्य ।६। भवनम् ।१। = जो वस्तु जैसी दशा [अवस्था] में है तैसा तिसका होना

इति अर्थः ।१। अर्यते T इति+अर्थः ।१। = ऐसा अर्थ [तत्त्व शब्दका] है ॥ जो प्राप्त [=ग्रहण] किया जाय सो अर्थ [=पदार्थ] है [ओढ़नेसे अर्थ बना है ॥

निश्चीयते T इति–अर्थः ।१। = निश्चय किया जाय ऐसा तात्पर्य है ॥ ऋ धातुको गुण अर् करके यह (य)

तत्त्वेन ।३।। अर्थः ।१ तत्त्वार्थः ।१। = यथावस्थित रूप करि [=तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [=अर्थः] सो तत्त्वार्थ है ।

अथवा भावेन ।३। भाववतः ।५। अभिधानं ।१।। = अथवा भाव करि भाववान्का कथन किया गया है

तद्–अव्यतिरेकात् ।५। = क्योंकि उन [दोनों भाव और भाववानमें] अभिन्नता है । इससे

तत्त्वम् ।१।।। एव अर्थः ।१। तत्त्वार्थः ।१। = यथावस्थित [=तत्त्वं] ही [=एव] वस्तु (=अर्थः) तत्त्वार्थ है ।

तत्त्व+अर्थस्य ।६। = यथावस्थित रूप करि [=तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [अर्थः] उसका अथवा यथावस्थित [तत्त्व] वस्तु [=अर्थः] की

श्रद्धानं ।१।। तत्त्वार्थश्रद्धानं ।१।। सम्यग्दर्शनं ।१।। प्रत्येतव्यम् ।१।। = प्रतीति [सो] तत्त्वार्थ श्रद्धान है [और वह ही] सम्यग्दर्शन निश्चयसे समझना चाहिये । सम्यग्दर्शन शब्दके अर्थका इसप्रकार श्रद्धान करना चाहिये ।

आरम्भ होते ही लोप हो जाता है । जैसे—वाचिन्, शशिन् =वाचि, शशि और वाग्भ्याम्, वाग्भिः, वाग्भ्यः; शशिषु इन सर्वमें न् का लोप हो गया है ॥ शशिन्= चन्द्रमा । ६ पुंलिंग—प्रथमा विभक्ति एक वचनमें ही दीर्घ हो जाती है इसलिए ऐसा रूप बना कि वाचिन् ॥ वाचिन् +स =वाचि=वाची ॥ (भावदार० पृष्ठ १०५ से १०६ तक)

तत्त्वार्थश्च वक्ष्यमाणो जीवादिः ॥ दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते । धातूनामनेकार्थत्वाददोषः । प्रसिद्धार्थत्यागः कुत इति चेत्, मोक्षमार्गप्रकरणात् ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं हि आत्मपरिणामो मोक्षस्य साधनं युज्यते । भव्यजीवविषयत्वात् ॥ आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः ॥

तत्त्वार्थः १।१ च वक्ष्यमाणः १।१ जीव-आदिः १।१ =और आगे कहे जानेवाले (=वक्ष्यमाणः) जीवादिक तत्त्वार्थ हैं ॥

दृशेः १।१ आलोकार्थत्वात् १।१ श्रद्धान अर्थगतिः १।१ न उपपद्यते=दृशि (धातु) का देखना अर्थ होनेसे प्रतीति अर्थका ग्रहण प्राप्त नहीं होता है

धातूनाम् ६।३ अनेक-अर्थत्वात् १।१ अदोषः १।१ =धातुओंके अनेक अर्थ होनेसे (दृश् धातुका श्रद्धान अर्थ लेनेमें) दोष नहीं है

प्रसिद्ध-अर्थ-त्यागः १।१ कुतः इति चेत् * =विख्यात अर्थ (दृश्का देखना) का परित्याग क्यों (किया) ऐसे संदेह होनेपर

मोक्षमार्ग-प्रकरणात् ५।१ =(कहते हैं) कि (यहां) मोक्षमार्गका विषय है ॥

तत्त्वार्थश्रद्धानं १।१ हि* आत्मपरिणामः १।१ =तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय करके चेतनका परिणाम है (और वही)

मोक्षस्य ६।१ साधनं १।१ युज्यते T =मोक्षका कारण युक्त है

भव्यजीव-विषयत्वात् ५।१ =क्योंकि (तत्त्वार्थ श्रद्धान) भव्य जीवका ही विषय अथवा अधिकार प्राप्त है

आलोकः १।१ तु* चक्षुरादिनिमित्तः १।१ सर्वसंसारिजीव-साधारणत्वात् ५।१ न मोक्षमार्गः १।१ युक्तः १।१ =देखना तो नेत्र आदि जन्य है, (सो देखना) समस्त संसारी जीवोंके समान होनेसे मोक्षका मार्ग ठीक (=युक्त) नहीं बनता है [क्योंकि सबके मोक्षमार्गका प्रसंग आता है] ॥

---

(१) स् अथवा विसर्ग जो अ-आको छोड़कर किसी स्वरके पहिले हो और उस (उक्त स् अथवा विसर्ग) के पश्चात् कोई स्वर हो अथवा घोष अक्षर : =ग्-घ्-ह् । ज्-झ्-ञ् । ड्-ढ्-ण् । द्-ध्-न् । ब्-भ्-म् । य्-र्-ल्-व्-ह्) मेंसे कोई एक आवे तो उक्त स् अथवा विसर्गका परिवर्तन र् में हो जाता है जैसे दृशेः आलोक=दृशेरालोक ; अर्थगतिः न=अर्थगतिर्न । बहिस् इति=बहिर् इति=बहिरिति । (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २७) । नृपतिः रक्षति=नृपति र् रक्षति । र् के पश्चात् र् होवे तो पहिला र् गिर जाता है और गिरनेवाले र् के पहिला स्वर (ऋ छोड़कर) यदि ह्रस्व हो तो दीर्घ हो जाता है जैसे नृपति र् रक्षति=नृपती रक्षति ।

अर्थश्रद्धानमिति चेत्सर्वार्थग्रहणप्रसङ्गः । तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्गः । सत्ताद्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तत्त्वमिति कैश्चित्कल्प्यत इति ॥ तत्त्वमेकत्वमिति वा सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः ॥ पुरुष एवेदं सर्वमित्यादि कैश्चित्कल्प्यते इति तस्मादव्यभिचारार्थमुभयोरुपादानम् ॥

अर्थ–श्रद्धानम् १।१ इति चेत् *	=अर्थ श्रद्धान इसप्रकार यदि (=चेत्, सूत्र) होता तो (उत्तर–अर्थ शब्दके)
सर्व–अर्थ–ग्रहण–प्रसंगः १।१	=समस्त अभिधेयोंके स्वीकार करनेका संयोग आता । भावार्थ–अर्थ नाम धनका भी है, अर्थ नाम प्रयोजन आदिका है, उनका भी श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता ।
तत्त्व–श्रद्धानम् १।१।१ इति चेत्	=तत्त्वश्रद्धान ऐसा (सूत्र) यदि (=चेत्) होता तो
भावमात्र–प्रसंगः १।१	=(उत्तर) भाव वा बहपना मात्रका प्रसंग आता वा केवल (=मात्र) सत्ता होनापन–विद्यमानताका ही प्रसंग आता अर्थात् इस भाव-होनापन, बहपना–विद्यमानता सत्ताहीका श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरता
सत्ता–द्रव्यत्व–गुणत्व–कर्मत्वादि १।१।१।१ तत्त्वम् १।१।१	=सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, आदि तत्त्व है
इति * कैश्चित् * कल्प्यते T इति ॥	ऐसा किन्होंकरि (वैशेषिकोंसे) माना गया है वा कल्पना की गई है ॥
वा * तत्त्वं १।१ एकत्वं १।१	=एकपना तत्त्व है ऐसा (किन्होंसे अर्थात् वैयास वेदान्तियोंकरि कल्पना की जाती है
इति सर्व–ऐक्य–ग्रहण-प्रसंगः १।	=(इसप्रकार) सब पदार्थोंकी एकताके ग्रहणका प्रसंग आता अर्थात् सब पदार्थ भेदरहित एकरूप हो जाते
पुरुषः १। एव * इदं १।१।१ सर्वं १।१ इत्यादि १।१	=एक पुरुष ही यह सर्व वस्तु है इत्यादिक
कैश्चित् कल्प्यते Tइति तस्मात् ५। अव्यभिचार–अर्थम् १।	=किन्होंसे कल्पना की जाती है तिस कारणसे निर्दोषता दिखावनेके लिये
उभयोः ६।२ उपादानं १।१	=दोनों (तत्त्व और अर्थ) का ग्रहण (सूत्रमें) किया गया है

(१) तत्त्वमेकत्वमिति कैश्चित्कल्प्यते वा ऐसा पूर्ण वाक्य है ॥ (२) कल्प्-कृप् भ्वादि प्रथम गणके आत्मनेपदी धातु हैं जिनके रूप जब उनका प्रयोग किया जाता है कल्प् हो जाते हैं इस कल्प में य कर्मणि प्रयोगका प्रत्यय लगाकर कल्प्य हुआ पश्चात् ते आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय ओडकर कल्प्यते बना लिया ।

तद्द्विविधम्, सरागवीतरागविषयभेदात् ॥ प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्याभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम् । आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् ॥ अथैतत्सम्यग्दर्शनं जीवादिपदार्थविषयं कथमुत्पद्यत इत्यत आह ॥

सरागवीतरागविषय–
भेदात् ₁ तत् ₁ द्विविधं ₁
प्रशम–
संवेग–
अनुकम्पा–
आस्तिक्यादि–
अभिव्यक्तिलक्षणं ₁ प्रथमम् ₁
आत्म–विशुद्धिमात्रम् ₁ इतरत् ₁
अथ एतत् ₁ सम्यग्दर्शनम् ₁
जीव–आदि–पदार्थविषयम् ₁
कथं* उत्पद्यते T इति अतः आह T

=सराग विषय और वीतराग विषय (= निमित्त अथवा प्रकरण)
=भेदसे वह तत्त्वार्थ श्रद्धान स्वरूप सम्यग्दर्शन दो प्रकार है ॥
=प्रशम–क्रोध, मान, माया, लोभ संबंधी रागद्वेषादिकका अभाव
=संवेग पांच परिवर्तनरूप संसारसे भय
= अनुकंपा त्रस स्थावर सर्व प्राणियोंपर दयाका प्रादुर्भाव
= अस्तित्व आदिका [जीवादिक तत्त्वोंको युक्ति आगमकरि जैसाका तैसा = मानना] आविर्भाव [प्रगट] रूप सो पहला (सराग सम्यग्दर्शन) है अर्थात् ये चार चिन्ह जिसके प्रगट होवें उसके सराग सम्यग्दर्शन जानो ।
=केवल [मात्र] आत्माकी विशुद्धता ही दूसरा [वीतराग सम्यग्दर्शन] है
= अब [अथ] यह सम्यग्दर्शन
= जीव–अजीव–आस्रव–बन्ध–संवर–निर्जरा और मोक्ष हैं विषय जिसके
=कैसे उत्पन्न होता है इसलिये [आचार्य उत्तरसूत्र] कहते हैं कि—

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ ७ में निर्वेद (=संसारके पदार्थोंमें घृणापूर्वक वैराग्य) यह पांचवा लक्षण भी कहा है ॥ हमारे यहांके "आदि" को आस्तिक्यके साथ दिया है उसमें (रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक १३७) अन्तर्गत हो जावेगा ॥

(२) अर्यत इति—अर्यत शब्दमें ऋ ग्यादि प्रथम गणका धातु अनिट् परस्मै पद, प्राप्त करना अर्थमें यहां पर आया है ॥ ऋ का गुणसंज्ञक अर् है ॥ अर्में य कर्मणि प्रधानका चिन्ह जोडनेसे अर्य ऐसा रूप हुआ पश्चात् वर्तमान क्रिया; अन्य-पुरुष एक वचन आत्मनेपदीका चिन्हते लगानेसे अर्यते (प्राप्त किया जाता है) ऐसा रूप बना क्योंकि कर्मणि प्रधानमें सदा आत्मनेपदी क्रियामें प्रत्यय लगाये जाते हैं ॥ अर्यते इति = अर्यत इति । क्योंकि यदि पदान्त य्–व् जिसके पहिले अ–आ हो और जिनके पश्चात् अश् प्रत्याहारका कोई अक्षर हो अर्थात् अ–इ–उ–ऋ–ऌ–ए–ओ–ऐ–औ ह्–य्–व्–र्–ल्–ञ्–म्–ङ्–ण्–न्–झ्–भ्–घ्–ढ्–ध्–ज्–ड्–ग्–ड्–द् मेंसे कोई अक्षर हो तो उक्त य्–व्का शाकल्य मुनिके मतमें (अर्थात् विकल्पसे) लोप हो जाता है ॥ (व्योः पदस्य लोपः शाकल्यस्य (अष्टाध्यायी ८—३—१९) । उत्पद्यते इति = उत्पद्यत इति

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

निसर्गः स्वभाव इत्यर्थः । अधिगमोऽर्थावबोधः । तयोर्हेतुत्वेन निर्देशः ॥

कस्याः क्रियायाः । का च क्रिया । उत्पद्यत इत्यध्याहियते ।

तद् [1] निसर्गात् [2] अधिगमात् [3] वा उत्पद्यते T = सूत्रार्थ—वह [सम्यग्दर्शन] स्वभावसे अथवा वा परोपदेशसे उत्पन्न होता है अर्थात् जो तत्त्वार्थ श्रद्धान विना किसी बाह्य उपदेशके अपने आप ही हो उसको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं और जो जीवादिक तत्त्वोंका श्रद्धान परके उपदेशसे हो उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं । सूत्रार्थ

निसर्गः [1] स्वभावः [2] इति अर्थः [1] अधिगमः अर्थ-अवबोधः = निसर्ग है सो स्वभाव है ऐसा अर्थ है । अधिगम है सो पदार्थका ज्ञान है

तयोः [2] हेतुत्वेन [111] निर्देशः [1] कस्याः [3] = उन दोनों [निसर्ग और अधिगम] को [सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका] साधनपना वा कारणपना करिकरा । किसका [साधनपना करि कहा]

क्रियायाः [3] । का [111] च * क्रिया [1]— = क्रियाका [तो वह] क्रिया कौनसी है ?

उत्पद्यते T इति * अध्याहियते T = उत्पन्न होता है । ऐसा वाक्य अध्याहार किया गया है अर्थात् ऊपरके सूत्र को स्पष्ट करनेकेलिये उसमें " उत्पद्यते " वाक्य जोडा गया है ।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एक है । (२) निसर्ग-परिणाम-स्वभाव अपरोपदेश (=दूसरेके उपदेशादिका अभाव) ये सब एकार्थ वाचक अर्थात् पर्याय-शब्द हैं सभाष्य पृष्ठ ८ (३) "अधिगम, अभिगम, आगम, निमित्त, श्रवण, शिक्षा तथा उपदेश ये सब समानार्थक ही हैं" सभाष्य० पृष्ठ ८ ॥

(४) तन्निसर्ग. तद्निसर्ग, (पदान्तस्य) "हलोऽनुनासिकेऽनुनासिकः स्वः (वा)" १ । १ । १०६ शाकटायनव्याकरण = जब अनुनासिक परे हो (= अनुनासिके) पदान्त व्यंजनके स्थानमें (=पदान्तस्य $\frac{8}{1}$ हलः $\frac{6}{1}$) सवर्ण (= स्वः $\frac{1}{1}$) अनुनासिक (= अनुनासिकः $\frac{1}{1}$) विकल्पसे हो (= वा) जैसे " तद् नयनं, तन्नयनम्" । पदान्तस्य "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" अष्टाध्यायी ८-४-४५ ॥ जैसे एतद् मुरारि वा एतन्मुरारिः । "यरां झो वा ङे" ५ । ४ । १२५ जैनेन्द्रव्याकरणम् ॥ पदान्त व्यंजन (हको छोड़कर) के स्थानमें (=यरः $\frac{6}{1}$) विकल्पसे (वा) अनुनासिक हो । (= ङः $\frac{1}{1}$ ८) यदि अनुनासिक परे हो (= ङे०) ॥ इसलिये तद् निसर्ग और तन्निसर्ग दोनों पाठ ठीक है ॥

सोपस्कारत्वात् सूत्राणाम्। तदेतत्सम्यग्दर्शनं निसर्गादधिगमाद्वोत्पद्यत इति ॥ अत्राह। निसर्गजे सम्यग्दर्शनेऽर्थाधिगमः स्याद्वा न वा। यद्यस्ति, तदपि अधिगमजमेव, नार्थान्तरम्। अथ नास्ति, कथमनवबुद्ध—तत्त्वस्यार्थश्रद्धानमिति ॥ नैष दोषः। उभयत्र सम्यग्दर्शने

सोपस्कारत्वात् ‡ सूत्राणाम् ‡	= क्योंकि सूत्रोंको अध्याहारसहितपना होता है अर्थात् सूत्रोंमें उनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये क्रिया आदिका अध्याहार किया जाता है—क्रिया आदि जोड़ी जाती है, लगाई जाती है ।
तत् ‡ एतत् ‡ सम्यग्दर्शनं ‡ निसर्गात् ‡ वा अधिगमात् ‡ उत्पद्यते T इति	= सो [= तद्) यह (= एतद्) तत्त्वार्थश्रद्धान स्वभावसे अथवा परोपदेशसे उत्पन्न होता है
अत्र आह T निसर्गजे ‡ सम्यग्दर्शने ‡ अर्थ—अधिगमः ‡।	= यहाँ प्रश्न करता है (= आह) कि स्वभावजनित तत्त्वार्थश्रद्धानमें पदार्थका ज्ञान
स्यात् T वा न * वा *। यदि * अस्ति T तद् ‡	= है। अथवा नहीं है यदि [पदार्थका ज्ञान] है [तो] वह
अपि अधिगमजम् ‡ एव	= भी अधिगमज ही हुआ
न * अर्थ—अंतरम् ‡	= और अर्थ विषें कुछ भेद नहीं हुआ अर्थात् दोनों एक ही ठहरे
अथ न अस्ति T, कथम् * अनवबुद्धतत्त्वस्य ‡ अर्थ—श्रद्धानम् ‡ इति।	= यदि (निसर्गज सम्यग्दर्शनमें अर्थबोध) नहीं है (तब) कैसे बिना जाने = तत्त्वार्थका श्रद्धान हुआ
न * एषः ‡[1] दोषः ‡। उभयत्र * सम्यग्दर्शने ‡	= यह दूषण नहीं है। क्योंकि दोनों सम्यग्दर्शनोंमें

१ अध्याहार-"वाक्यको पूरा करनेकेलिये शब्दका" जोड़ना पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १८ (२) क्षयोपशमोवा-जब विसर्गके पहिले अ हो और इसी विसर्गके परे अ हो अथवा ग्-घ्-ङ्। ज्-झ्-ञ्। ड्-ढ्-ण्। द्-ध्-न्। ब्-भ्-म्। य्-र्-ल्-व्-ह्। में से कोई अक्षर आवे तो यह विसर्ग उ में परिवर्तन होजाता है॥ फिर यह उ जिसके पहिले अ है दोनों (अ+उ) मिलकर ओ हो जाते हैं जैसे क्षयोपशमः वाक्य क्षयोपशम उ वाक्य = क्षयोपशम+अ+उ वाक्य = क्षयोपशम+ओ वाक्य क्षयोपशमो वाक्य भण्डारकार मार्ग० पृष्ठ १५।

अन्तरङ्गो हेतुस्तुल्यः । दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा । तस्मिन्सति यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम्, यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तं स्यात् तदुत्तरमित्यनयोरयं भेदः ॥

तद्ग्रहणं किमर्थम् । अनन्तरनिर्देशार्थम् । अनन्तरं सम्यग्दर्शनं तादित्यनेन प्रतिनिर्दिश्यते । इतरथा मोक्षमार्गोऽपि प्रकृतस्तस्याभिसम्बन्धः स्यात् । ननु च अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषधो वेति

अन्तरङ्गः १।१ हेतुः १।१ तुल्यः १।१ = अन्तरङ्ग कारण समान है । और वह
दर्शनमोहस्य १।१ उपशमः १।१ क्षयः १।१ क्षयोपशमः १।१ वा = दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम है
तस्मिन् ७।१ सति ७।१ यद् १।१ बाह्य-उपदेशात् ५।१ = तिस अभ्यन्तर कारणके होनेपर (= सति) जो परोपदेश
ऋत * प्रादुर्भवति T = विना प्रगट होता है
तद् १।१ नैसर्गिकं १।१ यद् १।१ परोपदेशपूर्वकं १।१ = वह निसर्गज या स्वभावजनित [सम्यग्दर्शन] है जो दूसरेके उपदेशपूर्वक
जीवादि— = जीवादि तत्त्वोंके
अधिगम-निमित्तं १।१ स्यात् T तद् १।१ उत्तरम् १।१ = जाननेका कारण हो वह दूसरा अधिगमज सम्यग्दर्शन है
इति अनयोः ६।२ अयं १।१ भेदः १।१ = ऐसे इन दोनोंमें यह भेद है
तद्-ग्रहणं १।१ किमर्थम् १।१ = सूत्रमें "तद्" शब्दका लाना किस लिये है
अनंतर-निर्देश-अर्थम् १।१ = निकटस्थको बतलानेकेलिये (तद्) है
अनन्तरं १।१ सम्यग्दर्शनं १।१ तद्-इति*अनेन १।१ = लगता ही सम्यग्दर्शन (शब्द जो दूसरे सूत्रके अंतमें है) इस "तद्" शब्दसे
प्रतिनिर्दिश्यते T । इतरथा मोक्षमार्गः १।१ अपि*प्रकृतः १।१ = बतलाया गया है। अन्यथा (यदि तद् न लाते तो) मोक्षमार्ग भी वर्णनीय है
तस्य ६।१ अभिसम्बन्धः १।१ स्यात् T ननु च* = उसका [निसर्ग अधिगमके साथ] संबंध हो जाता [मोक्षके ये भेद हो जाते]
अनन्तरस्य ६।१ विधिः १।१ वा भवति प्रतिषेधः १।१ = प्रश्न—निकटस्थका विधान होता है अथवा [= वा] निषेध होता है
वा इति [अर्थात् तद् निकटताके लिये लाओ वा मत लाओ]

[1]अनन्तरस्य सम्यग्दर्शनस्य ग्रहणं सिद्धमिति चेन्न, प्रत्यासत्तेः प्रधानं बलीय इति मोक्षमार्ग एव सम्बध्येत तस्मात्तद्वचनं क्रियते। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम्। अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह—

अनन्तरस्य [ष] सम्यग्दर्शनस्य [ष] ग्रहणं [प्र] सिद्धम् [प्र]
इति चेत् * न *। प्रत्यासत्तेः [ष] प्रधानं [प्र] बलीयः [प्र] [बलीयस्]
इति मोक्षमार्गः [प्र] एव सम्बध्येत T

=निकटका (दूसरे सूत्रके अन्तके) सम्यग्दर्शनका ग्रहण (बिना तद् शब्द के सूत्रमें लाये हुये) सिद्ध है
=ऐसी (इति) शंका [=चेत्] ठीक नहीं है। क्योंकि निकटस्थसे मुख्य बलवान होता है
=इसप्रकार मोक्षमार्ग ही (जो दूसरे सूत्रमें आये हुये सम्यग्दर्शनसे दूर है किंतु उससे प्रधान होनेसे—निसर्ग और अधिगमके साथ) संबंधमें नियमानुसार आजाता।

तस्मात् * तद् [प्र] वचनं [प्र] क्रियते T।
तत्त्वार्थश्रद्धानं [प्र] सम्यग्दर्शनम् [प्र]
इति उक्तम् [प्र]। अथ * किं [प्र] तत्त्वम् [प्र]
इति अतः * इदम् [प्र] आह।

=इससे तद् लाया गया है।
=तत्त्वार्थका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है
=ऐसा [दूसरा सूत्र] कहा गया है। अब तत्त्व क्या है यह इसलिये (निम्न सूत्र) कहते हैं

---

१ यह नियम है कि दो शब्द हों उनमेंसे एक शब्द निकट और दूसरा शब्द (किसी शब्द जिससे सम्बंध करना है वा मिलाना है) दूर हो परन्तु यह दूसरा शब्द प्रधान हो तो इस प्रधान शब्दका सम्बंध मिलानेवाले शब्दके साथ समझा जावेगा। जैसे "निसर्गादधिगमाद्वा" यदि ऐसा सूत्र होता तो निसर्ग और अधिगमके साथ प्रथम सूत्रके मोक्षमार्ग शब्दका संबंध होता न कि दूसरे सूत्रके सम्यग्दर्शन शब्दका क्योंकि यद्यपि दर्शन शब्द निसर्ग और अधिगम शब्दोंके निकट है परन्तु मोक्षमार्ग शब्द जो दूर है प्रधान होनेसे निसर्ग और अधिगमके साथ सम्बंध कर जाता इस सम्बंधको दूर करनेके लिये सूत्रमें तद् शब्द दूसरे सूत्रके दर्शन शब्दको प्रगट करनेके लिये लाये हैं।

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४॥

तत्र चेतनालक्षणो जीवः । सा च ज्ञानादिभेदादनेकधा भिद्यते । तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः । शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः । आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः । आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः । एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा । कृत्स्नकर्मविप्रयोगलक्षणो मोक्षः ॥ एषां प्रपञ्चः

जीव-अजीव-आस्रव-बन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः ।१। तत्त्वम् ।२॥ =जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये [सात] तत्त्व हैं अर्थात् चेतना लक्षण जीव है, चेतनारहित अजीव है; कर्मोंके आनेका द्वार आस्रव है; चेतन और कर्मोंके परस्पर प्रदेशोंका नीर क्षीरके सदृश एक क्षेत्रावगाह संबन्ध सो बन्ध है । शुभाशुभ कर्मोंके आगमन द्वारको रोकना सो संवर है; आत्माके प्रदेशोंसे कर्मोंका एक देश पृथक् होना सो निर्जरा है; समस्त कर्मोंका सर्वथा नाश सो मोक्ष है।

तत्र * चेतनालक्षणः ।१। जीवः ।१। स ।१॥ च ज्ञानादिभेदात् ।१। =तहाँ चेतना लक्षण जीव है और वह चेतना ज्ञानादिके भेदसे

अनेकधा * भिद्यते ।१। =(अर्थात् ज्ञान चेतना, कर्म चेतना, कर्मफलचेतना) नाना प्रकार भेदरूप है

तद्विपर्ययलक्षणः ।१। अजीवः ।१। =उस (जीव) से विरुद्ध लक्षणवाला [अर्थात् चेतनारहित] अजीव है

शुभ-अशुभ-कर्म आगमनद्वाररूपः ।१। आस्रवः ।१। =भले बुरे कर्मोंके आनेका द्वार सो आस्रव है

आत्मकर्मणोः ।६॥ अन्योऽन्यप्रदेश— =चेतन और कर्मके परस्पर प्रदेशोंका

अनुप्रवेश-आत्मकः ।१। बन्धः ।१। =(दूध पानीके समान एकमेक होकर एक क्षेत्रावगाह] संबंधरूप बन्ध है

आस्रवनिरोध लक्षणः ।१। संवरः ।१। =शुभाशुभ कर्मोंके आगमनद्वारके रोकनेरूप संवर है

एकदेश-कर्म-संक्षयलक्षणा ।१॥ निर्जरा ।१॥ =[आत्माके प्रदेशोंसे] कर्मोंका एकदेश पृथकरूप होना सो निर्जरा है

कृत्स्नकर्मविप्रयोग-लक्षणः ।१। मोक्षः ।१। एषां ।६॥ प्रपञ्चः ।१। =समस्त कर्मोंका सर्वथा नाशरूप मोक्ष है । इनका विस्तार

---

(१) श्वेताम्बर और दिगंबर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ।

उत्तरत्र वक्ष्यते। सर्वस्य फलस्यात्माधीनत्वादादौ जीवग्रहणम्। तदुपकारार्थत्वात्तदनन्तरमजीवाभिधानम्। तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमास्रवग्रहणम्। तत्पूर्वकत्वात्तदनन्तरं बन्धाभिधानम्। संवृतस्य बन्धाभावात्तत्प्रत्यनीकप्रतिपत्त्यर्थं तदनन्तरं संवरवचनम्। संवरे सति निर्जरोपपत्तेस्तदानन्तरे निर्जरावचनम्। अन्ते प्राप्यत्वान्मोक्षस्यान्ते वचनम्॥ इह पुण्यपापग्रहणं च कर्तव्यं नवपदार्था इत्यन्यैरप्युक्तत्वात्॥ न कर्तव्यम्। तयोरास्रवबन्धे चान्तर्भावात्॥ यद्येवम्

उत्तरत्र*वक्ष्यते T ॥ सर्वस्य ¦ष्ठा फलस्य ¦ष्ठा आत्म-	= आगे कहेंगे । सबके फलको चेतनके
अधीनत्वात् ¦ष्ठा आदौ ¦सप्त जीवग्रहणम् ¦प्रा ।	आधीन होनेसे आदिमें जीवका प्रतिपादन किया ।
तद् उपकार अर्थत्वात् ¦ष्ठा तद् अनन्तरम् ¦अ।	= उस जीवका उपकारी होनेसे उसके समीप ही
अजीव-अभिधानम् ¦प्रा। तद् उभयविषयत्वात् ¦	= अजीव कहा गया है । तब (जीव अजीव दोनोंके संबन्ध होनेसे
तद् अनन्तरम् ¦अ आस्रव-ग्रहणम् ¦ ।	= उसके निकट आस्रवका उपादान किया गया है ।
तत्पूर्वकत्वात् ¦ष्ठा तद्अनन्तरम् ¦अ	= उस (आस्रव) जन्य होनेसे (आस्रवपूर्वक बंध होनेसे) फिर
बंधअभिधानम् ¦प्रा । संवृतस्य ¦ बंध अभावात् ¦ष्ठा	= बन्ध कहा गया है । संवरके होनेसे बन्धका अभाव होता है अतः
तत्प्रत्यनीक प्रतिपत्ति अर्थम् ¦अ	= उस (बन्ध) के प्रतिपक्षीको जतावनेकेलिये
तद्-अनन्तरं ¦अ संवरवचनम् ¦प्रा । संवरे ¦स सति ¦स	= उस [बन्ध] के लगता ही संवर कहा है क्योंकि संवर होनेपर
निर्जरा—उपपत्तेः ¦ष्ठा तद् अति ¦स निर्जरावचनम् ¦प्रा	= निर्जराकी प्राप्ति होती है [अतः] उसके नि- टमें निर्जराका कथन है
अंते ¦स प्राप्यत्वात् ¦ष्ठा मोक्षस्य ¦स अंते ¦स वचनम् ¦प्रा	= अंतमें प्राप्त हो-से मोक्षका सबके पीछे कथन है ।
इह पुण्य-पाप-ग्रहणं ¦प्रा च कर्तव्यं ¦प्रा नव-पदार्थाः ¦प्र इति	= यहां पुण्य और पापका ग्रहण भी करना चाहिये । नो पदार्थ ऐसे
अन्यैः ¦स अपि* उक्तत्वात् ¦प्रा । न कर्तव्यम् ¦प्रा	= और [आचार्यों] ने भी कहे है । [उत्तर] नहिं करना चाहिये ।
तयोः ¦ष्ठा आस्रवे ¦स बंधे ¦स च अंतर्भावात् ¦स यदि एवम्	= क्योंकि दोनोंका आस्रव और बन्धमें गर्भित किया है । जो ऐसे है तो

१ । वक्ष्+स्यते (= भविष्यत् कालका प्रत्यय आत्मनेपदी एक वचन अन्यपुरुष) = वक्ष्+ष्यते (टिप्पणी पृष्ठ १४—१५) = वक्ष्यते = कहेगा प्रतिष्ठार्थ = कहेंगे । २ संस्कृत शब्द तीनों लिंगमें आता है इससे लिंग नहीं लिखा है ।

आस्रवादिग्रहणमनर्थकम्, जीवाजीवयोरन्तर्भावात् । नानर्थकम् । इह मोक्षः प्रकृतः सोऽवश्यं निर्देष्टव्यः । स च संसारपूर्वकः । संसारस्य प्रधानहेतुरास्रवो बन्धश्च । मोक्षस्य प्रधानहेतुः संवरो निर्जरा च । अतः प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिदर्शनार्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः ॥

जीव-अजीवयोः ¦ अन्तर्भावात् ¦ आस्रव आदि ग्रहणम् ¦ अनर्थकम् ¦ = जीव अजीवमें गर्भित होनेसे आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा तथा मोक्षका भी ग्रहण व्यर्थ है । [तब जीव-अजीव दो तत्व कहने थे]

न अनर्थकम् ¦ = [आचार्य कहते हैं] व्यर्थ नहीं है ।

इह मोक्षः ¦ प्रकृतः ¦ = यहां मोक्ष अधिकृत है अर्थात् इस तत्त्वार्थ सूत्रमें मोक्षका प्रकरण है

सः ¦ अवश्यं निर्देष्टव्यः ¦ । सः ¦ च संसारपूर्वकः ¦ = सो अवश्य कहना चाहिये और वह [मोक्ष] (संसारसे होती) है ।

संसारस्य ¦ प्रधानहेतुः ¦ आस्रवः ¦ बन्धः ¦ च = संसारके मुख्य कारण आस्रव और बन्ध हैं।

मोक्षस्य ¦ प्रधानहेतुः ¦ संवरः ¦ निर्जरा ¦ च = मोक्षका मुख्य कारण संवर और निर्जरा है ।

अतः * प्रधानहेतु- = इसलिये मुख्य साधन [आस्रव और बन्ध, संवर और निर्जरा तथा]

हेतुमत्फल-निदर्शन-अर्थत्वात् ¦ = साधनयुक्त [=साधन सहित] फल [मोक्ष] दिखलानेका अभिप्राय होनेसे

पृथक् * उपदेशः ¦ कृतः ¦ ॥ = भिन्न उपदेश [सातों तत्वोंका] किया है ॥ यहां पर भावार्थ ऐसा है कि प्रश्न कर्ता दो तत्व जीव और अजीवका वर्णन किया जाना स्वीकार करता है अन्य पांच तत्वों में तर्क है । उत्तरमें कहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षमार्गका प्रकरण का विषय है अतः मोक्षका निरूपण यहांपर करना अभीष्ट है और वह मोक्ष संसार-पूर्वक [=से] होता है । संसारके प्रधान साधन आस्रव—बन्ध हैं और मोक्षके प्रधानहेतु संवर-निर्जरा हैं । एवं संसारके साधनभूत आस्रव-बन्धका निरूपण और मोक्षके साधन संवर-निर्जराका निर्देश और साध्यरूपफल [=हेतुमत्फल] मोक्षका निरूपण पृथक् पृथक् कहना आवश्यक समझा है ।

---

(१) सः और एषः का अन्तका स् अथवा विसर्ग जब सः वा एषः के पश्चात् वाक्यमें कोई व्यंजन आवे तो गिरजाता है । सः गुरुः = सगुरुः

दृश्यते हि सामान्येऽन्तर्भूतस्यापि विशेषस्य यथोपयोगं पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम् । क्षत्रिया आयाताः सुरवर्मापीति ॥ तत्त्वशब्दो भाववाचीत्युक्तः स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचनैः सामानाधिकरण्यं प्रतिपद्यते ? ॥ अव्यतिरेकात्तद्भावाध्यारोपाच्च सामानाधिकरण्यं भवति । यथा उपयोग एवात्मेति ॥ यद्येवं तत्तलिङ्गसंख्यानुवृत्तिः प्राप्नोति । विशेषणविशेष्यसम्बन्धे सत्यपि शब्दशक्ति-

---

दृश्यते T हि * सामान्ये ३।१ अन्तर्भूतस्य ६।१ अपि = क्योंकि = हि) देखा जाता है कि सामान्यमें गर्भित है तो भी
विशेषस्य ६।१ = मुख्यका

पृथक् * उपादानं १।१ प्रयोजनं-अर्थम् १।१ यथोपयोगं * = न्याय ग्रहण प्रयोजनकेलिये आवश्यकता अनुसार [यथा-उपयोग] किया जाता है

क्षत्रियाः १।३ आयाताः १।३ सुरवर्मा १।१ अपि इति * = जैसे क्षत्री आगये (आयाता) सुरवर्मा (क्षत्री) भी [आगया] है

तत्त्वशब्दः १।१ भाववाची १।१ इति उक्तः १।१ सः १।१ कथं * = तत्त्व शब्द (सूत्रमें) भाववाची है ऐसा कहा जाता है सो कैसे [तत्त्व शब्द]

जीवादिभिः ३।३ द्रव्यवचनैः ३।३ = जीव-अजीव आश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा मोक्ष द्रव्यवाची शब्दोंके स

सामानाधिकरण्यं १।१ प्रतिपद्यते T अव्यतिरेकात् ५।१ = समानाधिकरणताको प्राप्त होता है । (जीवादि और तत्त्व दोनों) अभेदरूप होनेसे

च तत्-भाव-अध्यारोपात् ५।१ = और उस (तत्त्व) का भाव [जीवादिमें] लगानेसे [अध्यारोपात]

सामानाधिकरण्यं १।१ भवति T = समानाधिकरण (तत्त्वका जीवादिकके साथ) हो जाता है अर्थात् द्रव्य, और भाव दोनोंमें अभेदपना होनेसे समानाधिकरण बनता है

यथा* उपयोगः १।१ एव आत्मा १।१ इति । यदि एवं = जैसे उपयोग (ज्ञान-दर्शन) ही चेतना है ऐसा (कहना) है जो इसप्रकार है तो

तत्-तत्-लिंग-संख्या- = उन (तत्-जीवादि सातोंके उस) तत्त्वशब्द में लिङ्ग संख्याकी अनुवृत्ति

अनुवृत्तिः १।१ आप्नोति । = प्राप्त होती है । अर्थात् मोक्षाः बहुवचन पुल्लिंग है वैसे ही तत्त्व भी बहुवचन

विशेषण-विशेष्य— = पुंलिंग चाहिये । (उत्तर) विशेषण (जीवादि) और विशेष्य [तत्त्व] के

संबंधे ७।१ सति ७।१ अपि शब्द-शक्ति = संबंध होनेपर भी शब्दकी शक्तिकी

व्यपेक्षया उपात्तलिङ्गसङ्ख्याव्यतिक्रमो न भवति ॥ अयं क्रम आदिसूत्रेऽपि योज्यः ॥ एवमेषामुद्दिष्टानां सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च संव्यवहारविशेषव्यभिचारनिवृत्त्यर्थमाह। नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः

व्यपेक्षया [तृ] उपात्त–लिङ्गसङ्ख्या—	=अपेक्षासे पाईहुई (प्राप्त गृहीत) लिंग संख्याका
व्यति–क्रमः [प्र] न भवति ॥ अयं [प्र] क्रमः–आदि–	=विपर्यय नहीं होता है। यह नियम प्रथम
सूत्रे [स] अपि* योज्यः [प्र]	=सूत्रमें भी योग्य लागू हुआ है अर्थात् पहिले सूत्रमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि बहुवचन नपुंसक लिंग है और मोक्षमार्गः एकवचन पुलिंग है।
एवं एषाम् [ष] उद्दिष्टानां [ष] सम्यग्दर्शनादीनाम् [ष]	=इस प्रकार ये कथित सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र।
च जीवादीनां [ष] संव्यवहार–विशेष	=और (=च) जीवादि (सात तत्वों) का लोकव्यवहारमें [अनेकप्रकार] विशेष
व्यभिचार–निवृत्ति–अर्थम [च]	=दोष (आता) है तिनके–निराकरण करनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्र)
आह T	कहते हैं। अर्थात् भिन्न भिन्न पदवाले सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि सात तत्वोंका स्वरूप नामप्रकारसे मानते हैं और उन सम्यग्दर्शनादि और जीवादिकका 'यथार्थ स्वरूप सपक्षे विना अन्यथापन' आता है तिस विशेष व्यभिचार अथवा नामप्रकारके दोषोंका निराकरण करनेके लिये "नामस्थापना" इत्यादि सूत्र कहा जाता है ॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

नाम–स्थापना–द्रव्य–भावतः तद्–	=नाम, स्थापना, द्रव्य, और भावसे उन [सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवादि
न्यासः [प्र]	=तत्वोंका] निक्षेप अथवा लोक व्यवहार [न्यास] होता है अर्थात्

[क] गुण जाति द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षा विना ही अपनी इच्छानुसार लोकव्यवहारके लिये किसी पदार्थकी संज्ञा करनेको नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी पुरुषका नाम इन्द्रराज है परन्तु उसमें इन्द्रके समान गुण जाति द्रव्य क्रिया कुछ भी

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है समन्वय० पृष्ठ ६, १० सूक्ष्मदृष्टिसे पढ़ो)

अतद्गुणे वस्तुनि संव्यवहारार्थं पुरुषाकारान्नियुज्यमानं संज्ञाकर्म नाम ।

नहीं है । उसके माता पिताने केवल व्यवहारार्थ नाम रख लिया है । लोकमें ब्रह्मदत्त, कृष्णचन्द्र, बलभद्र, जिनदत्त, हाथीसिंह, रत्नसिंह, मोतीसिंह, इत्यादि नाम रख लेते हैं । गुण जाति द्रव्य क्रियाकी अपेक्षासे ये नाम नहीं रक्खे जाते, इसीको नाम निक्षेप कहते हैं ।

[ख] धातु, काष्ठ, पाषाण, मिट्टीके चित्रादिक तथा गोटोंके खेलमें घोड़ा हाथी-नृपति-मनुष्य-इत्यादिक तदाकाररूप अथवा अतदाकाररूप मान लेना वा कल्पना कर लेना सो स्थापना निक्षेप है । जो पदार्थ जिस आकारका हो उसको वैसा ही पत्थर काष्ठ मृत्तिकादिका बनाकर उसमें उसीकी स्थापना करनेको तदाकार स्थापना कहते हैं और जिसमें वस्तुका यथार्थ आकार न हो ऐसे किसी भी पदार्थमें किसीकी कल्पना वा स्थापना करनेको अतदाकार स्थापनाकहते हैं । जैसे महावीर स्वामीकी वीतरागरूप जैसीकी तैसी शान्तमुद्रायुक्त धातु पाषाणमय प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना यह तदाकार स्थापना है और किसी खेलमें गोटोंमें नृप—ऊंट—अश्व—हाथी इत्यादिकी कल्पना करना सो अतदाकार स्थापना है ॥ नाम निक्षेप और स्थापना निक्षेपमें यह भेद है कि पहिलेमें पूज्य अपूज्यका भाव नहीं है दूसरेमें प्रतिष्ठा—आदर और पूज्यबुद्धि होती है ।

(ग) जो भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्य निक्षेप है जैसे भविष्यत्में होनेवाले राजपुत्र, अर्थात् युवराजको राजा कहना अथवा कोई पुरुष जो पहले राजाका मंत्री था अब मंत्री पदसे च्युत कर दिया गया हो उसको अब भी मंत्री महाशय कहके बात चीत करना ।

(घ) जिस पदार्थकी वर्तमानमें जो पर्याय हो उसको उसी रूप कहना सो भाव निक्षेप है जैसे राज्य करता हो उसीको राजा कहना ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ॥

अतद्गुणे ७।ण वस्तुनि ७।ण संव्यवहार-अर्थ १।ण	= पदार्थमें वह गुण (क्रिया—जाति-द्रव्य) न होने पर लोक व्यवहारके लिये
पुरुषाआकारात् ५। नियुज्यमानं १।ण	= इससे वा आग्रहसे नियत किया हुआ
संज्ञाकर्म १।ण नाम १।ण	= नाम रखना सो नाम (निक्षेप) है

काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना। गुणैर्द्रोष्यते गुणान्द्रोष्यतीति वा द्रव्यम्। वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः॥ तद्यथा। नामजीवः, स्थापनाजीवः,

काष्ठ-पुस्त चित्रकर्म-अक्ष-निक्षेपादिषु $_{7}^{}$	= काठ, पुस्तक, मूरत बनाने (= चित्रकर्म) और फासा फेंकने आदिमें
सः $_{1}^{1}$ अयम् $_{1}^{1}$ इति * स्थाप्यमाना $_{1}^{11}$	= वह (= सः) यह है ऐसे संस्थापन, आरोपण वा कल्पना करना
स्थापना $_{1}^{11}$ (न्यासः $_{1}^{1}$) गुणैः $_{3}^{1}$ द्रोष्यते T	= (सो) स्थापना (निक्षेप) है। गुणोंकरि (जो) परिणाया जायगा वा प्राप्त किया जायगा [ऐसा द्रव्य है
वा* गुणान् $_{2}^{1}$ द्रोष्यति T इति * द्रव्यम् $_{1}^{111}$	= (सो द्रव्य है) अथवा [= वा] गुणोंको (जो) परिणवैगा प्राप्त होगा
वर्तमान-तत्-पर्याय-उपलक्षितं $_{1}^{111}$ द्रव्यं $_{1}^{111}$	= उपस्थित वा विद्यमान वही (उसी ही) पर्यायसहित द्रव्य
भावः $_{1}^{1}$ तद्यथा * नामजीवः $_{3}^{1}$ स्थापनाजीवः $_{1}^{1}$	= सो भाव (निक्षेप=स्याम) है। जैसे नाम जीव, स्थापना जीव,

(१) क—गुणपर्यायवद्द्रव्यम् (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र ३८) गुण और पर्यायसंयुक्त द्रव्य है ॥ सूत्र ५ में गुणको प्रधानकरि द्रव्य की परिभाषा दी है और भविष्यत्काल (लृट्) के कर्मणि प्रधान और कर्तरि प्रधानमें है अर्थात् द्रु भ्वादि प्रथम गणका धातु है इसको गुण संज्ञक होनेसे द्रो हो जाता है. स्यते-भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्मणि प्रधान प्रत्यय है और स्यति भविष्यत्काल (लृट् लकार) का कर्तरि प्रधान प्रत्यय है। द्रो+स्यते। द्रो+स्यति। स् का परिवर्तन ष् में टिप्पणी पृष्ठ १५ से लेकर द्रोष्यते (प्राप्त किया जायगा) द्रोष्यति (प्राप्त होगा) रूप हुए। (ख)—इस सूत्रकी टिप्पणी २ में भी गुणको मुख्य मानकरि द्रव्यकी परिभाषा भूतकृदन्तमें (जो धातुमें त निष्ठा प्रत्यय जोडनेसे बनता है) दी है हमारी समझमें यहांपर सामान्यभूतकालके अर्थमें भूतकृदन्तको लिया है ॥ गुणैर्गुणान्वा द्रुतं गतं प्राप्तमिति द्रव्यमित्यप्यधिकः पाठः पुस्तकान्तरे दृश्यते ॥

गुणैः $_{3}^{1}$ द्रुतं $_{1}^{11}$ गतं प्राप्तम् $_{1}^{111}$ इति द्रव्यम् = गुणोंकरि जो प्राप्त (=द्रुतं-गतं) किया गया ऐसा द्रव्य है

वा गुणान् $_{2}^{111}$ द्रुतं $_{1}^{111}$ गतं $_{1}^{111}$ प्राप्तम् $_{1}^{111}$ = अथवा गुणोंको जिसने प्राप्त किया (द्रुतं-गतं) ऐसा द्रव्य है ॥

अपि अधिकः $_{1}^{1}$ पाठः $_{1}^{1}$ पुस्तकान्तरे $_{1}^{111}$ दृश्यते इति = इसप्रकार भी अधिक पाठ अन्य पुस्तकोंमें देखा गया है ॥

(ग)—अध्याय ५ सूत्र २ की वृत्तिमें "यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि" यहां पर्यायको मुख्य मानकर वर्तमान कालमें द्रव्य की परिभाषा है ॥ स्वरूपके अनुसार पर्यायोंकरि प्राप्त किये जाते हैं अथवा जो पर्यायोंको प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं इस प्रकार द्रव्यकी परिभाषा गुणको मुख्य और पर्यायको प्रधान करि भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों क्रियायोंमें कही है ॥

द्रव्य निक्षेपका मानचित्र जो संसारी जीवोंको लागू होता है

आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्
आत्मा जो किसी वस्तुको जानता तो हो परंतु उसका उपयोग ध्यान वा चिंतवन उस समय उस ज्ञात वस्तुकी ओर न हो जैसे किसी ज्योतिषी-को अवकि यह स्नान कर रहा हो ज्योतिषी कह कर बुलाना

नो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्
किसी वस्तु के जानने वाले के शरीर को ज्ञाता कहना, इसके तीन भेद हैं

(१) ज्ञायक शरीरनो आगम द्रव्य निक्षेप

अतीत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें उसकथनको जानताथा अवधि पूर्णहो-जानेपरवह ज्ञान जाता-रहा तबभी उसशरीरको भूतज्ञायकशरीर कहना

अनागत ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थके कथनके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर उसकथनका ज्ञानकार नहीं है परंतु अगामीकालमें उसकथनको जानेगा तब भीउसको उससमय ज्ञानकार कहनासोभविष्यत् ज्ञायकशरीरहै

वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसी पदार्थकेकथन केज्ञाता पुरुषका शरीर ज्ञान-कारतोहै परंतु पूर्णरूपसे उसकथनका ज्ञानकारनहीं उसकोजानकररहाहैउसका वह शरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्यहै

(२) भावीनो आगम द्रव्य निक्षेप अर्थात्
किसी को जो मृत्युके पश्चात् अन्य भव पावैगा इसही भवमें उसको उस अन्य भव वाला कह देना। जैसे कोई पशुमृत्यु- के पीछे मनुष्य होगा उसको इस पशु भवमें ही मनुष्य कहना

(३) तद् व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य निक्षेप

कर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीके शरीरको द्रव्य कर्म वर्गणाओंरूप (जिनको वह अन्य भवमें पावेगा, कहना जैसेभावी नो आगम द्रव्यनिक्षेपके उक्त उदाहरणमें पशुके शरीरको मनुष्यनामक नामकर्मके द्रव्यकर्म-वर्गणाओं रूप कहदेना

नो कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यनिक्षेप अर्थात् किसीकेशरीरको नो कर्म वर्गणाओं रूप (जिनकोअन्यभवमेंपावैगा) कहनाजैसे भावीनोआगम-द्रव्यनिक्षेपके दृष्टान्तमें पशुकेशरीरको द्रव्यनोकर्म-वर्गणा (आहारा दिकनोकर्म वर्गणा जिनसे शरीरबढ़ताहै) रूप कह देना.

द्रव्यजीवो भावजीव इति चतुर्धा जीवशब्दार्थो न्यस्यते ॥ जीवनगुणमनपेक्ष्य यस्य-कस्यचिन्नाम क्रियमाणं नामजीवः । अक्षनिक्षेपादिषु जीव इति वा मनुष्यजीव इति वा व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः ॥

द्रव्यजीवः १।१ भावजीवः १।१ इति चतुर्धा * = द्रव्यजीव, भावजीव ऐसे चार प्रकार

जीवशब्द अर्थः १।१ न्यस्यते T जीवनगुणम् १।१ = जीव शब्दका अर्थ स्थापित वा निक्षेप किया जाता है । जीवन गुणकी

अनपेक्ष्य+यस्य ६।१ कस्यचित्* नाम १।१।१ = अपेक्षा न करके जिस किसीका नाम

क्रियमाणं १।१।१ नामजीवः १।१ = रक्खा गया वा किया गया सो नाम जीव (निक्षेप) है जैसे—किसीने अपने कार्यालयका नाम जीव रख लिया इस अवस्थामें पत्र सूचना इत्यादि सर्व इसी 'जीव' कार्यालयमें आवेंगे यद्यपि इस कार्यालयमें जीवन गुण नहीं पाया जाता है । इस संज्ञाका नाम जीव कहेंगे ॥

वा* अक्षनिक्षेप-आदिषु ७।१ जीवः १।१ इति = फांसाके फेंकने आदिमें जीव ऐसा

व्यवस्थाप्यमानः १।१ स्थापनाजीवः १।१ = आरोपण किया हुआ (= व्यवस्थाप्यमान) सो स्थापना जीव है (जैसे किसी गोटमें जो जड़ पदार्थ है यह स्थापना कर ली कि इसको प्रत्येक व्यवहारमें 'जीव' कहेंगे)

वा [अक्षनिक्षेपादिषु ७।३] मनुष्यजीवः १।१ = अथवा फांसाके फेंकने आदिमें (किसी गोटमें विशेष रूपसे) मनुष्य जीव

इति व्यवस्थाप्यमानः स्थापनाजीवः १।१ = ऐसी स्थापना करना सो स्थापना जीव निक्षेप है [जैसे किसी गोटको जब कापमें खाया जावे तब कहा जावे कि यह मनुष्य जीव है यद्यपि यह गोट जड है]

(१) न्यस्यते —यह शब्द = नि + अस् + य + ते—अस् = फेंकना दिवादि चतुर्थ गणके सकर्मक परस्मैपद धातुमें कर्मणि प्रधान य प्रत्यय जोड़कर पीछे से वर्तमानकाल अन्य पुरुष एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगा देनेसे बनता है । अस् = होना अदादिगण अकर्मक भी धातु है इसमें य प्रत्यय यहां नहीं लगाया है ॥

द्रव्यजीवो द्विविधः । आगमद्रव्यजीवः । नोआगम द्रव्यजीवश्चेति ॥ तत्र जीवप्राभृतज्ञायी मनुष्य-जीवप्राभृतज्ञायी वा अनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्यजीवः ॥ नोआगमद्रव्यजीवस्त्रेधा व्यवतिष्ठते । ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदात् ।

द्रव्यजीवः १ । द्विविधः १¹ आगमद्रव्यजीवः १¹	= द्रव्य जीव दो प्रकार है आगम द्रव्यजीव
च * नोआगमद्रव्यजीवः १¹ इति * तत्र *	= और (= च) नो आगम द्रव्यजीव इस प्रकार है । तहां
जीव-प्राभृत-ज्ञायी १¹	= जीवके कथनके शास्त्रको (प्राभृत जैसे गोम्मटसारमें जीवकांडको) जाननेवाला
अनु उपयुक्तः १ । आत्मा १¹ आगम द्रव्यजीवः १ ।	= उपयोगरहित चेतन आगमद्रव्यजीव है अर्थात् जिस कालमें उस जीवके कथनके आगमको जाननेवाले आत्माका (उस शास्त्रमें) ध्यान वा चिंतवन हो उस कालमें उस आत्माको आगम द्रव्यजीव कहते हैं ।
वा मनुष्य-जीव-प्राभृत-	= अथवा [विशेषरूपसे] वह आगम जिसमें मनुष्यके जीवका कथन हो
ज्ञायी १¹	= उसका ज्ञाता [= ज्ञायिन् । इस मनुष्य जीव प्राभृतमें]
अनुपयुक्तः १¹ आत्मा १¹ आगम द्रव्यजीवः १¹	= उपयोग रहित-लक्ष्यरहित [जिस समय हो] सो आगमद्रव्यजीव है
नोआगम द्रव्यजीवः १¹ त्रेधा * ज्ञायकशरीर-	= नोआगमरूप जीव तीन प्रकार ज्ञायक शरीर
भावि-तद्व्यतिरिक्त-भेदात् १ । व्यवतिष्ठते T	= भावि, तद्व्यतिरिक्त भेदसे व्यवस्थित हैं वा विशेषकरि विद्यमान हैं

(१) विसर्गके पीछे च अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है (जैसे जीवः चेति = जीवश्चेति) त् अथवा थ् आवे तो वह विसर्ग स् में और ट् वा ठ् आवे तो ष् में क्रमसे पलट जाता है जैसे जीवः त्रेधा = जीवस्त्रेधा । रामः टीकते = रामष्टीकते ॥ (२) व्यवतिष्ठते स्था धात्वादि प्रथम गणका परस्मैपद धातु है । इस धातुको जब प्रयोगमें लाते हैं तो विना किसी व्याकरणके नियमके 'तिष्ठ' हो जाता है भ्वादि: गणका अ विकरण है ति परस्मैपद, अन्यपुरुष एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे तिष्ठति = ठहरता है परन्तु अब उपसर्ग लगानेसे, अथवा वि+अव दोनों उपसर्ग लगानेसे यह आत्मनेपदी हो जाते हैं और अवतिष्ठते व्यवतिष्ठते रूप बन जाते हैं ते आत्मनेपद, अन्य पुरुष, एकवचन वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय है ॥

तत्र ज्ञातुर्यच्छरीरं त्रिकालगोचरं तज्ज्ञायकशरीरम्। सामान्यापेक्षयानोआगमभाविजीवो नास्ति। जीवनसामान्यस्य सदापि विद्यमानत्वात्॥

=अर्थात् नो आगम द्रव्य जीवके ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीव [२] भावी नोआगम द्रव्यजीव [३] तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव ये तीन भेद हैं।

तत्र * ज्ञातुः [१] यत् [१॥] शरीरं [१॥] त्रि-काल-गोचरं [१॥] तत् [१॥] ज्ञायकशरीरम् [१॥]

=तहां ज्ञाताका जो [=यत्] शरीर तीन [भूत-भविष्यत्-वर्तमान] =कालसंबंधी [=कालगोचर] वह ज्ञायक शरीर [नोआगमद्रव्य जीव] है भावार्थ:जीवके कथनके शास्त्रके ज्ञाता(पुरुष)का शरीर पूर्वमें जीवके कथनके शास्त्रको जानता था अवधि पूर्ण हो जानेपर वह ज्ञान जाता रहा तबभी उस शरीरको भूतज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य जीव कहतेहैं॥ जो शरीर जीव के कथनके शास्त्रका जानकार नहीं परंतु आगामीकालमें उस कथनको जानेगा तबभी उसको इस समय जीवके कथनके शास्त्रका जानकार कहना सो भविष्यत्ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्य जीवहै॥ जो शरीर जीवके कथनके शास्त्रका जानकार तोहै परंतुपूर्ण रूपसे उस कथनको जानकार नहीं हुआ है उसको प्राप्त कर रहाहै उसका वहशरीर वर्तमान ज्ञायक शरीर नोआगम द्रव्य जीवहै॥ स्मरण रहे कि भविष्यत् ज्ञायक शरीरमें जीवके शास्त्रका जानने वाला (ऐसा ज्ञायक) शरीरहै परन्तु भावीनो आगमद्रव्य में जो शरीर आगे जाकर मनुष्य आदि जीवन पर्याय प्राप्त करैगा उन्हें उनके शास्त्र जानने की अवश्यकता नहीं है। अज्ञायक होकर ही प्राप्तकर सकेगा ऐसे ज्ञायक पना और अज्ञायक पनाका दोनों में भेद वा अंतर है। आगम द्रव्य में आत्माका ग्रहण किया है नोआगम द्रव्य में उसके परिकर शरीर कर्म वर्गणा आदिका ग्रहण किया है॥

सामान्यअपेक्षया [१॥] नोआगम भाविजीवः [१] नअस्ति [१]=सामान्य वा विशेष रहित अपेक्षासे नो आगम भावी द्रव्यजीव नहीं है अर्थात् सामान्य विधानसे शास्त्रका ज्ञाता भविष्यत् में होने वाला जीव नहीं हो सक्ताहै

जीवनसामान्यस्य [१॥] सदापि* विद्यमानत्वात् [१॥] =क्योंकि जीवन-सामान्य सदा ही विद्यमानहै अर्थात् जीव जीवन भावकरिसदैवहैही

(१) यत्—के पश्चात् च्-छ्-ज्-झ्-ञ् मेंसे कोई अक्षर आवै तो इसका परिवर्तन च् में होजाता है जैसे तत्+क्षुद्रजन्तुषु=तच्छुद्रजन्तुषु; यत्+छरीरं=यच्छरीरं। अष्टाध्यायी ८-४-४०। तत् ज्ञायक= तज् ज्ञायक, टिप्पणी पृष्ठ १५ देखो। ( ) जब किसी शब्द वा रूपके

विशेषापेक्षया त्वस्ति गत्यन्तरे जीवो व्यवस्थितो मनुष्यभवप्राप्तिं प्रत्यभिमुखो मनुष्यभाविजीवः। तद्व्यतिरिक्तः कर्म नोकर्म विकल्पः॥

विशेष–अपेक्षया ¦॥ तु* (नोआगमभाविजीवः ¦) =परंतु विशेष अपेक्षासे [नोआगम भावी द्रव्यजीव] होता है।
अस्ति I गति-अन्तरे ¦॥ जीवः¦व्यवस्थितः¦ मनुष्य-=[जैसे कोई] जीव जो अन्यगति में विद्यमान है (और) नर
भवप्राप्तिं ¦॥ प्रति* अभिमुखः ¦ =भव पानेको उपस्थित (सन्मुख) है (उसको उस ही अन्य गतिमेंही मनुष्य कहना सो)
मनुष्य–भावि–जीवः ¦ =मनुष्यभावी [नो आगम द्रव्य] जीव है [इस भावी नो आगमद्रव्य जीव निक्षेपमें
जीव तत्त्वके ज्ञानकी वा जीवतत्त्व के जाननेकी अपेक्षा नहीं है] अर्थात् जो शरीर आगे
भव में जाकर मनुष्यादि जीवने पर्याय प्राप्तकरेगा उसको जीव तत्त्वके ज्ञान प्राप्त करने
की आवश्यकता नहींहै वह अज्ञायक हो करही मनुष्यादि भव प्राप्त करसकैगा
तद्—
व्यतिरिक्तः ¦।
कर्म–नोकर्म–विकल्पः ¦। =उन[ज्ञायक शरीर नो-आगम द्रव्य जीव निक्षेप, भावी नो आगम द्रव्य जीव निक्षेप]से
=भिन्न [नो आगमद्रव्य जीव निक्षेप] अर्थात् तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यजीव निक्षेपहैसो
=कर्म, नोकर्म दो भेदरूप है भावार्थ सामान्य जीव अपेक्षासे तो किसी कर्म के उदयसे
जीव नहीं होता है और विशेष जीव अपेक्षा मनुष्य नामा नामकर्म के द्रव्यरूपकर्म
वर्गणाओंको मनुष्यनाम तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य मनुष्य जीव कहते हैं और
(२) मनुष्य आहारादिक

अंतमें क्-ख्-ग्घ्। च्-छ्-ज्-झ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्-। त्-थ्-द्-ध्। प्-फ्-ब्-भ् में से कोई एक अक्षर विद्यमान हो और श् इन बीस अक्षरों में से किसी के पश्चात् हो और इस श् के परे-पीछे कोई स्वर अथवा य्-र्-ल्-व्-ए-ङ्-म्-ण्-न्-म् हो तो यह श् विकल्पकरिके छ् में पलट जाता है जैसे यत्+शरीरं अथवा यच्+शरीरं =यच्छरीरं। (१) मनुष्यभावी=भविष्यत् समयमें होनेवाला मनुष्य। (२) प्रति अव्ययके पहिले जो संज्ञा आती है वह द्वितीया विभक्तिमें होती है जैसे प्राप्तिम्—प्रति।

भावजीवो द्विविधः । आगमभावजीवो नोआगम भावजीवश्चेति । तत्र जीवप्राभृतविषयोपयोगाविष्टो मनुष्यजीव प्राभृतविषयोपयोगयुक्तो वा आत्मा आगम भावजीवः । जीवनपर्यायेण मनुष्य जीवत्वपर्यायेण वा समाविष्ट आत्मा नोआगम भावजीवः ॥

भावजीवः $_{1}^{1}$ द्विविधः $_{1}^{1}$ आगमभावजीवः $_{1}^{1}$
च नोआगम भावजीवः $_{1}^{1}$ इति तत्र
जीव–प्राभृत–विषय–
उपयोग–आविष्टः $_{1}^{1}$
आत्मा $_{1}^{1}$ आगम भावजीवः $_{1}^{1}$
वा मनुष्य जीव–प्राभृत विषय–
उपयोगयुक्तः $_{1}^{2}$ आत्मा $_{1}^{1}$ आगम भावजीवः $_{1}^{1}$
जीवन–पर्यायेण $_{1}^{2}$ समाविष्टः $_{1}^{1}$ आत्मा $_{1}^{1}$
नो आगमभाव जीवः $_{1}^{1}$ ।
वा मनुष्य जीवत्व–पर्यायेण $_{1}^{1}$ समाविष्टः $_{1}^{1}$
आत्मा $_{1}^{1}$ नोआगम भावजीवः $_{1}^{1}$ ।

करता है जिससे शरीर वृद्धिको प्राप्त होता है यह नोकर्म है इसलिये आहारादिक तद्व्यतिरिक्तका दूसरा भेद नोकर्म द्रव्य जीव है
= भावजीव (निक्षेप) दो प्रकार है । आगमभावजीव (निक्षेप)
=और (=च) नोआगम भावजीव (निक्षेप) ऐसे हैं । तहां
= जीवके (कथनका) शास्त्रके अभिधेय (=विषय) वा वाच्य अर्थ [विषयके]
= चिंतवन आदि व्यापारमें (= उपयोग) लगा हुआ अथवा खिन्न (आविष्ट)
= आत्मा (सो) आगम भावजीव (निक्षेप) है
= वा [विशेष अपेक्षासे] मनुष्य जीवके [कथनका] शास्त्रके अभिधेय
= उपयोगसहित चेतना सो मनुष्य आगम भाव जीव [निक्षेप] है
= जीवन पर्यायकरि संयुक्त [= समाविष्ट] चेतना
= सो नोआगम भाव जीव [निक्षेप] है
= अथवा [विशेष अपेक्षाकरि] मनुष्य जीवन पर्यायकरि संयुक्त [आविष्ट]
= चेतना सो मनुष्य नोआगम भाव जीव [निक्षेप] है ॥

---

१ औदारिक–वैक्रियिक– आहारक–शरीर
त्रयस्य $_{1}^{111}$ च षट्पर्याप्तीनां $_{1}^{1}$
योग्य–पुद्गलानाम् $_{1}^{1}$ आदानं $_{1}^{111}$ नोकर्म $_{1}^{111}$

=औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर
=तीनोंके और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास भाषा मन) पर्याप्तियोंके
=योग्य पुद्गल परमाणुओंका ग्रहण करना नोकर्म है ॥

एवमितरेषामपि पदार्थानामजीवादीनां नामादिनिक्षेपविधिर्नियोज्यः । स किमर्थः ? अप्रकृत-निराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च ॥ निक्षेपविधिना नामशब्दार्थः प्रस्तीर्यते ॥

एवम् इतरेषाम् ३ । अपि अजीवादीनाम् ३ ।	= इसप्रकार अन्य भी अजीवादिक
पदार्थानाम् ३ नाम-आदि-निक्षेप-विधिः १ ।	= पदार्थोंके नामादि निक्षेप विधि
नियोज्यः १ । सः १ किमर्थः १ ।	= लगालेनी चाहिये । वह [निक्षेप विधि] किस प्रयोजनके लिये है ?
अप्रकृत-निराकरणाय ४ । । ।	= [उत्तर] प्रकरणरहित [के कथन] को पृथक् करनेके लिये
च प्रकृत-निरूपणाय ४ । । ।	= और जिसका विषय है उसको कहनेके लिये [यह निक्षेपादि बंध] है [अर्थात् लोकव्यवहार अभिप्रायके अनुकूल, और उचित प्रकरणमें पदार्थ जाने केलिये जिस वस्तुका जो वाच्य [अर्थ] प्रकरणमें है जिस रूपमें उपयोगी है उसका वह अर्थ ग्राह्य हो, उसके विरुद्ध न हो यह निक्षेप विधि है]
निक्षेपविधिना ३ । नामशब्दार्थः १ । प्रस्तीर्यते ट	= निक्षेप विधि करि नाम वा संज्ञा शब्दोंका अर्थ विस्तृत किया गया है । अर्थात् इस निक्षेप विधिसे व्याकरणके अनुसार जो नाम अथवा संज्ञा शब्द हैं उनके अभिप्रायका बखान वा वर्णन किया गया है नाम शब्दार्थके अतिरिक्त अन्य शब्दोंके अर्थोंके विवरण वा पसारसे यह निक्षेप विधि लागू नहीं है ॥

[१] किमर्थः । किमर्थम् ये दोनों समासरूपमें ॥ इनमें (किम् अर्थः और किम्-अर्थम्) ऐसे प्रत्येकके साथ दो २ विभक्ति नहीं हो सकी वरन एक एक अर्थात् किमर्थः प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग है और किमर्थम् प्रथमा विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग समझा जायेगा

(२) प्रस्तीर्यते—स्तृ-स्वादि-और क्र्यादि-उभयपदी-सकर्मक सेट धातु है ऋतः ५ इत् ५ धातोः ५ (ऋतः इद्धातोः अष्टाध्यायी ७-१-१००) ऋकारान्त धातु अङ्गको इकारादेश हो ॥ इस इ के पश्चात् र् (उरण् रपरः १-१-५१) सूत्रसे आजाता है ॥ अतः स्तृ = स्तिर् । हल् व्यंजन परे हो तो और इ-ई जिस धातुके अंतमें हो तो उस धातुका उपधा (= अंत अक्षरसे पहिलेका) इ-ई दीर्घ हो जाता है ८ २-७७ । अतः स्तिर स्तीर् प्र उपसर्ग, य कर्मणि प्रत्यय, ते अन्य पुरुष, एक वचन, आत्मनेपदी, वर्तमान क्रियाका प्रत्यय लगाकर प्रस्तीर्यते बना ॥

अथ षष्ठसहायवर्णीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ५

तच्छब्दग्रहणं किमर्थम्? सर्वसङ्ग्रहार्थम्। असति हि तच्छब्दे सम्यग्दर्शनादीनां प्रधानानामेव न्यासेनाभिसम्बन्धः स्यात्। तद्विषयभावेनोपगृहीतानामप्रधानानां जीवादीनां न स्यात्।

निक्षेप-विधिना नामादिशब्द-अर्थः [1] प्रस्तीर्यते T
= निक्षेप विधिसे नाम-स्थापना-द्रव्य भाव शब्दोंसे [परस्पर]
= जो प्रयोजन-अभिप्राय है वह विस्तृत किया जाता है, विवरण किया जाता है अर्थात् ऐसा है कि लोकव्यवहारमें कोई मनुष्य नामको भाव समझ जाय तथा नामको स्थापना समझ जाय और स्थापनाको भावादिक जान जाय इत्यादि व्यभिचार दूर करनेके लिये और यथार्थ समझानेके लिये यह निक्षेप विधि है। द्रव्यार्थिक नयसे तो नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप हैं। पर्यायार्थिक नयसे भाव निक्षेप है

तद्-शब्द-ग्रहणं 1 1 11 किमर्थम् 1 11 । सर्व-सङ्ग्रह-अर्थम् 1 11 ।
= [इस सूत्रमें] तद् शब्दका प्रयोग किस लिये है ? सब = [सम्यग्दर्शनादिक तीन और जीवादि सात तत्त्वों] के संग्रहके लिये [तद्] है

असति 1 11 हि * तद्-शब्दे 1 सम्यग्दर्शन-आदीनां 1 । प्रधानानाम् 1 एव * न्यासेन 1 । अभिसम्बन्धः 1 । स्यात् T
= क्योंकि (हि-इस सूत्रमें) तद् शब्दके न होनेपर सम्यग्दर्शन आदि [तीन] मुख्योंका ही न्यास (= निक्षेप) शब्दसे = संयोग वा ग्रहण होता [जीवादिक सात तत्त्वोंके ग्रहण करनेसे सहज ले]

तद्-विषयभावेन 1 उपगृहीतानां 1 । अप्रधानानाम् 1 जीवादीनाम् 1
= उन (सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र के प्रकरण भावकरि स्वीकृत = गौण जीवादि सात तत्त्वोंका

न्यासेन 1 । अभि सम्बन्धः 1 न स्यात् T
= (सूत्रमें तद् शब्द न आते तो न्यास शब्दसे ग्रहण वा सम्बन्ध) न होता अर्थात् तद् शब्द सूत्रमें न आते तो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका तो न्यास-निक्षेप-वा लोकव्यवहार ठहरता परन्तु जीवादि सात तत्त्वोंका निक्षेप न ठहरता

(१) कहीं कहीं पर "नाम शब्द, के स्थानमें नामादि शब्द ऐसा पाठ है ॥ वहां पर कोई ऐसा अर्थ लेते हैं । हमने दो प्रकारके अर्थ लिख दिये हैं ॥

तच्छब्दग्रहणे पुनः क्रियमाणे सति सामर्थ्यात्प्रधानानामप्रधानानां च ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ एवं नामादिभिः प्रस्तीर्णानामधिकृतानां तत्त्वाधिगमः कुतः ? इत्यत इदमुच्यते ।

पुनः तद्–शब्द–ग्रहणे ७।१।१ । क्रियमाणे ७।१।१ । सति ७।१।३ = और [= पुनः] तद् शब्दके ग्रहण किये जानेपर [उस तद् शब्दकी]
सामर्थ्यात् ५।१।१ प्रधानानाम् ६।१।१।१ अप्रधानानां च = शक्तिसे मुख्य [सम्यग्दर्शनादि] का और गौण (सप्त तत्त्वों) का
ग्रहणं १।१।१।१ सिद्धं १।१।१।१ भवति एवं नामादिभिः ३।१।१।१ = ग्रहण सिद्ध हो जाता है । इसप्रकार नामादि निक्षेप करि
प्रस्तीर्णानाम् ६।१।१ । अधिकृतानां ६।१।१।१ तत्त्व– = प्रकरण वालोंके (विस्तारका सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वोंका) यथार्थ
अधिगमः १।१ कुतः इति अतः इदम् १।१।१ । उच्यते = ज्ञान (अधिगम) क्योंकर होता है इसलिये यह [सूत्र] कहा जाता है कि

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

प्रमाण–नयैः ३।२ = सूत्रार्थ प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे और द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसे
अधिगमः १।१ = (उक्त सम्यग्दर्शनादि और जीवादि सात तत्त्वोंके स्वरूपका ज्ञान) होता है ।

पदच्छेद तथा विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद ।

(१) इस सूत्रकी टिप्पणीमें प्रस्तीर्णको हम प्रमाणित कर चुके हैं ॥ भूत कृदन्तका त लगानेसे प्रस्तीर्त हुआ ॥ रेफ और दकारसे परे (रदाभ्याम् ५।२) निष्ठा (भूत कृदन्त) के त कारके स्थानमें (=निष्ठातः ५।१) न (= नः १।१) आदेश हो और पहिलेकी (=पूर्वस्य) दकारके स्थान में (दः ६।१) भी (=च) (नकारका आदेश) हो इसलियेप्रस्तीर्न हुआ और भिद्+त=भिन्+न हुआ ॥ (देखो अध्यायी रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२) यदि न् उसही शब्दमें झ्—र्—ष् के पश्चात् आवे तो इस नका ण हो जाता है । यदि कोई स्वर और य्-व्-म्-ह् । क्-ख्-ग्-घ्-ङ् । च्-छ्-ज्-झ् ञ् मेंसे कोई अक्षर इस न और झ्-र्-अथवा ष् के मध्य आजावै तौ भी उक्त परिवर्तन हो जावैगा (जैसे शरीराणि—कार्माणि-नारकाणाम् इत्यादि) परन्तु पदान्तमें न् होनेसे यह परिवर्तन न होगा जैसे नरान् ॥ इसलिये प्रस्तीर्ण हुआ प्रस्तीर्णानाम् षष्ठी बहुवचन नपुंसक लिंग है और प्रस्तीर्णम् नपुंसक लिंग है एकवचन है

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सामान्य अपेक्षासे एकसा है ।

नामादिनिक्षेपविधिनोपक्षिप्तानां जीवादीनां तत्त्वं प्रमाणाभ्यां नयैश्चाधिगम्यते । प्रमाणनया वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः । तत्र प्रमाणं द्विविधम् । स्वार्थं परार्थं च । तत्र स्वार्थं प्रमाणं श्रुतवर्ज्यम् । श्रुतं पुनः स्वार्थं च भवति परार्थं च ।

नामादि-निक्षेप-विधिना ३।१ उपक्षिप्तानां ३।१।१ =नाम-स्थापना द्रव्य भाव निक्षेप विधानसे अंगीकृत वा स्वीकृत
जीवादीनां ३।१। तत्त्वं १।१।१ प्रमाणाभ्यां ३।२।२ =जीवादिकोंका यथार्थ स्वरूप (=तत्त्वं) प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणोंसे
च* नयैः ३।२ अधिगम्यते T । प्रमाण- =और (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) नयोंसे जाना जाता है । प्रमाण
नयाः १।२ वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पाः १।३ =और जो आगे कहे जानेवाले लक्षण और भेदसंयुक्त हैं
तत्र प्रमाणं १।१।१ द्विविधम् १।१।१ स्वार्थं १।१।१ च =तहां प्रमाण दो प्रकार हैं । स्वार्थ और
परार्थं १।१।१ तत्र स्वार्थं प्रमाणं १।१।१ श्रुतवर्ज्यं १।१।१ =परार्थ । तहां स्वार्थ प्रमाण श्रुत (=वचन) रहित है अर्थात्
=मतिज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान स्वार्थरूप ही हैं
पुनः श्रुतं १।१।१ स्वार्थं १।१।१ च*भवति T =और (पुनः) श्रुतज्ञान स्वार्थ (=ज्ञानरूप) होता है (=भवति)
परार्थं १।१।१ च भवति =और (=च) परार्थ (अर्थात् वचनरूप) भी (=च) होता है [भवति]

(१) "जीवादीनां" शब्द लानेसे यह न समझलेना चाहिये कि प्रमाण और नयोंसे जीवादिक सात तत्वोंका ही ज्ञान होता है सम्यग्दर्शनादि तीनका ज्ञान नहीं होता है । हमारी समझमें जीवादीनां वाक्यके पहले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य रह गया है और पाठ "सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां" होना चाहिये सम्यग्दर्शनादीनां प्रधान होनेसे जीवादीनां वाक्यसे प्रथम होना चाहिये अथवा यों समझ लो कि जीवादीनांमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और सातों तत्व ऐसे दशों गर्भित हैं जैसा कि इसी सूत्रके नीचे दी हुई तत्वार्थराजवार्तिककी पंक्तिसे प्रगट है । "प्रमाणनयास्तैरधिगमो भवति सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां =सम्यग्दर्शन आदिका (और) जीवादिका प्रमाण और नय तिनकरि ज्ञान होता है ।

(२) कहीं कहीं "प्रमाणेभ्यः" पाठ है वहां पांच ज्ञान लेने और यह पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग है ।

(३) गम् भ्वादि प्रथम गण-परस्मैपद धातु जाना अर्थमें है अधि उपसर्ग लगानेसे परस्मैपदी ही बना रहता है । अधिगम्=जानना । य कर्मणि प्रत्यय और ते वर्तमानकालकी क्रिया अन्यपुरुष-एकवचन-आत्मनेपदी लगानेसे अधि+गम्+य+ते=अधिगम्यते रूप (जाना गया है) इस अर्थमें बन जाता है ।

ज्ञानात्मकं स्वार्थम् । वचनात्मकं परार्थम् ॥ तद्विकल्पा नयाः ॥ अत्राह । नयशब्दस्य अल्पाच्तरत्वात् पूर्वनिपातः प्राप्नोति । नैष दोषः । अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः । अभ्यर्हितत्वं च सर्वतो बलीयः । कुतोऽभ्यर्हितत्वम् ? नयप्ररूपणप्रभवयोनित्वात् ॥

ज्ञान-आत्मकं १।ग स्वार्थम् १।ग वचन-आत्मक १।ग	=स्वार्थ ज्ञान स्वरूप है । वचनरूप
परार्थम् १।ग । तद्-विकल्पाः १।३ नयाः १।३	=परार्थ है । उस (श्रुत प्रमाण) के भेद नय हैं
अत्र आह T नयशब्दस्य १ । अल्प-अच्तरत्वात् १।ग	=यहां [शिष्य] पूछता है कि नय शब्दके थोडे अक्षर होनेसे [द्वंद्वसमासमें]
पूर्व-निपात १।१ प्राप्नोति T	=प्रथम पतन वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् द्वंद समासका नियम है कि
	जो शब्द मिलाये जावें उनमेंसे थोडे अक्षरवाला शब्द पहिले लाना चाहिये
	पश्चात् बहुत अक्षरयुक्त शब्द । इसलिये प्रमाणनयैरधिगमः सूत्रके स्थानमें
	" नयप्रमाणैरधिगमः " सूत्र होना चाहिये
प्रमाणस्य १।ग अभ्यर्हितत्वात् १।ग न एषः १।१ दोषः १।१	=उत्तर-प्रमाणको [नयसे] पूज्यपना वा प्रधानपना होनेसे यह दोष नहीं है
तत्पूर्व-निपातः १।१ च अभ्यर्हितत्वं १।१।ग	= (कि) उस (प्रमाण) का इस सूत्रमें प्रथम ग्रहण है और श्रेष्ठपना
सर्वतः * बलीयः १।१।१।ग कुतः अभ्यर्हितत्वम् १।१	=सबसे बलिष्ठ होना है । क्योंकर (नयोंसे प्रमाणोंमें) प्रधानपना है
नय प्ररूपण-प्रभव-योनित्वात् ५।ग	=क्योंकि नयके भेदोंकी उत्पत्तिका (=प्रभव = कारण = =योनि] प्रमाण है

(१) प्राप्नोति = प्र + आप् + नु + ति + आप् स्वादि पंचमगणका परस्मैपद धातु है । स्वादिगणका नु विकरण और प्र उपसर्ग तथा ति परस्मैपद एक वचन अन्य, पुरुष. वर्तमानकालका प्रत्ययसे प्र + आप् + नु + ति बनालिया । अङ्गके अंतका स्वर और अगके उपांतक ह्रस्व स्वरके पित्संज्ञक (मि-सि-ति । अम्-स्-तु । आनि-आव- आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आमहै । आत्मनेपदी) प्रत्ययके पहिले गुण आदेश हो जाता है प्राप्नो + ति = प्राप्नोति । २) जो समुचित और समुच्चय मिलकर बना हो उसको द्वन्द समास कहते है ॥ द्वन्द समासका चिन्ह 'और' (दो शब्दोंके बीचमें) है ॥ और शब्द द्वन्द (समासका चिन्ह) से जो पहले शब्द) हो वह समुचित और पीछेका शब्द समुच्चय कहलाता है जैसे प्रमाण और नय = प्रमाणनयौ इसमें प्रमाण शब्द समुचित है और नय समुच्चय है [३] बलीयस् शब्द त्रिलिंगी है यहांपर नपुंसक लिंग एक वचन प्रथमा विभक्तिमें है (देखो पद्मचंद्रकोष पृष्ठ २६४)

एवं उक्तं प्रगृह्य प्रमाणतः परिणतिविशेषादर्थावधारणं नय इति। सकलविषयत्वाच्च प्रमाणस्य। तथा चोक्तम् "सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति ॥" नयो द्विविधः। द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। पर्यायार्थिकनयेन भावतत्त्वमधिगन्तव्यम्। इतरेषां त्रयाणां द्रव्यार्थिकनयेन सामान्यात्मकत्वात् ॥

एवं * हि * उक्तम् ¦111	= क्योंकि (= हि) इसप्रकार (नयका लक्षण आगम वा शास्त्रमें) कहा गया है कि
प्रमाणतः * प्रगृह्य परणति–	= प्रमाणसे ग्रहणकरि [सत्व-असत्व-नित्य-अनित्य इत्यादि]
विशेषाद् ¦ अर्थ-अवधारणं ¦111 नयः ¦ इति	= भेदसे पदार्थका [= अर्थ] निश्चय करना ऐसी नय है
च प्रमाणस्य ¦111 सकलविषयत्वात् ¦111	= और प्रमाणका संपूर्ण विषयभाव (धर्म और धर्मी) है
तथा च * उक्तम् ¦111	= जैसा कि कहा गया है ॥
सकल आदेशः ¦ प्रमाण-आधीनः ¦	= सकलादेश प्रमाणके आश्रय है–पदार्थके सब देशोंको कहै सो प्रमाण है
विकल-आदेशः ¦ नय–आधीनः ¦ इति *	= विकलादेश नयके आधार है—पदार्थके एक देशको कहै सो नय है
नयः ¦ द्विविधः ¦ द्रव्यार्थिकः ¦	= नय दो प्रकार वा दो भांति है। द्रव्यार्थिक [नय]
च पर्यायार्थिकः ¦ । पर्यायार्थिकनयेन ¦	= और पर्यायार्थिक [नय]। पर्यायार्थिक नयसे
भावतत्वम् ¦111 अधिगन्तव्यम् ¦11 1	= भावतत्व अथवा पर्यायतत्व अर्थात् भावनिक्षेपका स्वरूप जानना चाहिये
इतरेषां ¦111 त्रयाणां ¦111(नाम-स्थापना-द्रव्याणां)	= अन्य तीन (नाम-स्थापना-द्रव्य निक्षेप) का
सामान्य-आत्मकत्वात् ¦111 द्रव्यार्थिक–	= सामान्यस्वरूप होने (के हेतु) से द्रव्यार्थिक
नयेन ¦1 (अधिगन्तव्यम्)	= नयकरि जानना चाहिये (= शब्दार्थ ज्ञान किया जाना चाहिये क्योंकि द्रव्यार्थिक नय सामान्यको ग्रहण करती है)

---

१ प्रग्रह्य संबन्धकभूतकृदन्त वा सम्बन्धकसूचक भूतकृदन्त है ॥ (२) भावतत्वके स्थानमें पर्यायतत्त्व पाठ अन्य पुस्तकमें है अर्थ दोनोंका एक ही है (३) त्रयाणांके स्थानमें 'नामस्थापनाद्रव्याणां' यह वाक्य अन्य प्रतिमें है, हमारी समझमें "त्रयाणां नामस्थापनाद्रव्याणां" समस्त वाक्य हो तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है ॥

द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ द्रव्यार्थिकः ॥ पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः ॥ तत्सर्वं समुदितं प्रमाणेनाधिगन्तव्यम् ॥ एवं प्रमाणनयैरधिगतानां जीवादीनां पुनरप्यधिगमोपायान्तरप्रदर्शनार्थमाह—

द्रव्यम् [1] 11 अर्थः [1] प्रयोजनम् [1] 111 अस्य [1]	= द्रव्य है विषय प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति * असौ [1] । द्रव्यार्थिकः [1]	= ऐसा यह द्रव्यार्थिक [नय] है
पर्यायः [1] अर्थः [1] प्रयोजनम् [1] 11 अस्य [1]	= पर्याय है विषय [अर्थ] प्रयोजन जिसका [अथवा इसका]
इति असौ [1] पर्यायार्थिकः [1] । तत्सर्वं [111] समुदितं [111]	= ऐसा यह पर्यायार्थिक [नय] है । ये सब इकट्ठे
प्रमाणेन [111] अधिगन्तव्यम् [111] एवं *	= प्रमाणकार जाने जाते हैं । इसप्रकार
प्रमाणनयैः [1] अधिगतानां [1] जीवादीनां [1]	= प्रमाण और नयोंसे ज्ञात वा जाने गये (सम्यग्दर्शनादि और) जीवादि तत्त्वोंका
पुनः * अपि * अधिगम-उपाय अन्तर—	= फिर भी जाननेका अन्य उपाय
प्रदर्शनार्थम् [111] आह [1]	= दिखानेके लिये (आचार्य निम्न सूत्रको) कहते हैं कि—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः[3] ॥ ७ ॥

निर्देश-स्वामित्व-साधन-अधिकरण-स्थिति-विधानतः * सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च अधिगमः भवति॥ ७ ॥

---

(१) अयम् सर्वनाम यह अथवा यह इन दो अर्थोंमें आता है। यहां पर यह ऐसा अर्थ है क्योंकि अस्य शब्दसे इसका संबंध है जो षष्ठी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग इदम् (=यह) शब्दका है। असौ प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग यहां पर है ।

(२) जीवादीनां-यहां पर भी आठवें सूत्रकी वृत्तिके आदिमें जो टिप्पणी दी है उसके अनुसार "सम्यग्दर्शनादीनां" के कथनको भी अग्रिम सातवें सूत्रमें गर्भित समझ-लो क्योंकि तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सातवें सूत्रके नीचे ये वाक्य हैं " केषामधिगमः ? जीवादीनां सम्यग्दर्शनादीनां च " सातवें सूत्रमें किनका अधिगम है जीवादि सात तत्त्व और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रोंका ।

(३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है ।

निर्देशः स्वरूपाभिधानम् । स्वामित्वमाधिपत्यम् । साधनमुत्पत्तिनिमित्तम् । अधिकरणमधिष्ठानम् । स्थितिः कालपरिच्छेदः । विधानं प्रकारः ॥

निर्देशतः स्वामित्वतः,
साधनतः, अधिकरणतः
स्थितितः,
च विधानतः* सम्यग्दर्शनादीनां तथा
जीवादितत्त्वानां तथा अधिगमः हि भवति

= सूत्रार्थ–वस्तुके नाम संकीर्तन वा स्वरूप कथनसे, अधिपतिपनासे,
= उत्पत्तिके निमित्तसे (जैसे–निसर्गसे अधिगमसे) आधार वा अधिष्ठानसे
= कालकी मर्यादा–कालके प्रमाण–कालकी सीमा अथवा कालपरिच्छेदसे,
= भेदसंख्या वा भेद प्रभेदके कथनसे, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका
= तथा जीवादिक सात तत्वोंका ज्ञान [= अधिगमः] होता है ॥ 'ऐसा भावार्थ है कि इन निर्देशादिकका द्वंद्व समासकरि बहुवचनरूप करण अर्थ प्रमाण नयकी क्यों जानना । संक्षेपतें तो अधिगमका उपाय प्रमाण नय कहे । बहुरि मध्यम स्थानतें शिष्यके आशयके वशकरि इनि निर्देश आदि अनुयोग करि कहना । तहां कहा वस्तु है ? कौनके है ? काहेकरि है ? कौन विषै है ? कितेक काल है ? के प्रकार है ऐसे छह प्रश्न होय हैं, इनका उत्तर कहना ते निर्देशादिक हैं' सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ५९ ।

स्वरूप-अभिधानं तथा निर्देशः तथा आधिपत्यं तथा
स्वामित्वम् तथा उत्पत्तिनिमित्तं तथा साधनम् तथा
अधिष्ठानम् तथा अधिकरणम् तथा काल–
परिच्छेदः तथा स्थितिः तथा विधानं तथा प्रकारः तथा

= (वस्तुके) स्वरूप (मात्र)का कथन सो निर्देश है । (वस्तुका) अधिपतिपना
= सो स्वामित्व है । (वस्तुकी) उत्पत्तिका कारण सो साधन है
= (वस्तुका) आधार (सो) अधिकरण है । कालका
= प्रमाण वा मर्यादा (सो) स्थिति है । वस्तुका प्रकार वा भेद [सो] विधान है

(१) विधान शब्दमें तसिल् (=तस्) प्रत्यय लगानेसे विधानतः शब्द बना है ॥ अष्टाध्यायी ' तद्धिताश्चासर्वविभक्तिः १ । १ । ३८ वें सूत्र से यह अव्यय है पंचमी विभक्तिका हेतु अर्थ देता है ॥ द्वन्द्व समास तोड़नेसे प्रत्येक छहो शब्दमें यह तसिल् प्रत्यय लगेगा निर्देशतः आदि यह उक्त रूप हो जावेंगे ॥ इस् इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होकर केवल तस् रह जाता है ।

तत्र सम्यग्दर्शनं किमिति प्रश्ने तत्त्वार्थश्रद्धानमिति निर्देशः । नामादिर्वा ॥ सम्यग्दर्शनं कस्येत्युक्ते सामान्येन जीवस्य ॥ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां पर्याप्तकानामौ-

तत्र * सम्यग्दर्शन १।ग किम् १।ग इति प्रश्ने ७।१	=तहां सम्यग्दर्शन क्या है ऐसा प्रश्न होने पर
तत्त्वार्थ-श्रद्धानं १।ग इति निर्देशः १।१	=तत्त्वार्थका श्रद्धान यह (=इति) निर्देश (अनुयोग) है ।
वा नामादिः १।१ सम्यग्दर्शनं १।ग	=अथवा नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव सो निर्देश (अनुयोग) है तत्त्वार्थ श्रद्धान
कस्य ६।१ इति उक्ते ७।ग सामान्येन ३।ग	=किसके होना है ऐसा प्रश्न होनेपर (करते हैं कि) सामान्य अपेक्षाकरि
जीवस्य ६।१ । विशेषेण ३।१ गति-अनुवादेन ३।१	=जीवके होता है । विशेषकरि गतिके कथनानुसारसे
नरक-गतौ ७।ग सर्वासु ७।ग पृथिवीषु ७।ग	=नरक गतिमें सब पृथिवीनमें (अर्थात् प्रथम नरकसे लेकर सातवे नरकतकके)
पर्याप्तकानां ६।ग नारकाणां ६।ग	=पर्याप्त नारकियोंके

नरक गतिके सम्यक्त्वका मानचित्र

- प्रथम नरकमें कौन कौन सम्यक्त्व
  - पर्याप्तक नारकियोंके तीनों सम्यक्त्व
  - अपर्याप्तक नारकियोंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व
- दूसरे नरकसे सातवेंतक कौन २ सम्यक्त्व
  - पर्याप्तक नारकियोंके उपशम और वेदक सम्यक्त्व
  - अपर्याप्तक नारकियोंके कोई सम्यक्त्व नहीं

(श्लोक) प्रथमायां त्रितयं स्यात्पर्याप्तानां द्वयं तदितरेषाम् । अशमजमितरास्वपि वाऽक्षयजं पर्याप्तकानां तु ॥ १ । सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १५ ।

प्रथमायां ७।१ त्रितयं १।१ स्यात् T पर्याप्तानां ६।ग	=पहले (नरक) में पर्याप्तक (नारकियों) के तीनों सम्यक्त्व हैं
अशमजम् १।१ तद्	=उपशम (सम्यक्त्व) वर्जित (अ-शमजं) उन (=तद्-प्रथम नरकके पर्याप्तकों) से
इतरेषाम् ६।ग द्वयम् १।१	=भिन्न (इतरेषाम् अर्थात् पहले नरकके अपर्याप्तकों)के दो (वेदक क्षायिक सम्यक्त्व) है
इतरासु ७।ग अपि वा पर्याप्तकानां ६।ग तु *	=और (=तु) अन्य अवशेष (अर्थात् दूसरी पृथिवी वा नरकसे सातवें) में पर्याप्तक नारकियोंके भी (दो)
अक्षयजं १।१	=क्षायिक सम्यक्त्वको छोड़कर (अक्षयजं, औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व) है ।

औपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति ॥ प्रथमायां पृथिव्यां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति।

औपशमिकं $_{1}^{m}$ च क्षायोपशमिकं $_{1}^{m}$ अस्ति	= औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है
प्रथमायां $_{1}^{f}$ पृथिव्यां $_{1}^{f}$	= पहले नरकमें अर्थात् भूमिके अपबहुलभागमें जहां प्रथम नरक है उसमें
पर्याप्त–अपर्याप्तकानाम् $_{3}^{m}$ क्षायिकं $_{1}^{n}$	= पर्याप्तक और अपर्याप्तक (नारकियों) के क्षायिक (सम्यग्दर्शन)
च * क्षायोपशमिकं $_{1}^{n}$ अस्ति T	= और (च) क्षायोपशमिक [सम्यग्दर्शन] होता है

(१) रत्नप्रभा नाम पृथ्वी है जो एक लाख अस्सी सहस्र (१८००००) योजनकी मोटी है । उसकी मोटाईके स्कन्धमें तीन विभाग हैं उन में सोलह सहस्र (१६०००) योजनका मोटा ऊपरका खर भाग है । तिस (खरभाग) में चित्रावज्रा वैडूर्य इत्यादि एक २ सहस्र योजनकी मोटी सोलह पृथ्वी हैं और तिस खर भागके नीचे पंक भाग है सो चौरासी सहस्र योजन मोटा है । इस पंक भागके नीचे अस्सी सहस्र योजन मोटा अब्बहुल भाग है उस अब्बहुल भागमें प्रथम नरक है उसमें संक्लेशित नारकी रहते हैं ॥ नारकियोंके बसनेके लिये तीस लाख बिले हैं और तेरह प्रस्तर (=पटल) हैं । इसलिये "भूमिके अब्बहुल भागमें जहां प्रथम नरक है उसमें" यह वाक्य अनुवादमें लाये हैं ।

सामान्येन सम्यग्दर्शनस्य स्वामी जीवो भवतीति स्वामित्वमुच्यते ( ) विशेषेणैं तु चतुर्दशमार्गणानुवादेन स्वामित्वमुच्यते (संस्कृत सर्वार्थ०)

(२) सामान्येन $_{1}^{n}$ सम्यग्दर्शनस्य $_{1}^{n}$ स्वामी $_{1}^{m}$	= संक्षेप (अपेक्षा) से सम्यक्त्वका अधिपति
जीवः $_{1}^{m}$ भवति T इति स्वामित्वम् $_{1}^{n}$ उच्यते T	= चेतन होता है । ऐसा अधिपतिपन वर्णित है
(३) विशेषेण $_{1}^{m}$ तु * चतुर्दश-मार्गणा—	= और (=तु) विस्तारसे अथवा भेद प्रभेदसे चौदह मार्गणा (गति–इन्द्रिय—काय–योग–वेद–कषाय–ज्ञान–संयम–दर्शन—लेश्या—भव्य—सम्यक्त्व—संज्ञा—वा संज्ञी और आहारक) की
अनुवादेन $_{3}^{m}$ स्वामित्वम् $_{1}^{n}$ उच्यते T	= अपेक्षासे अधिपतिपना कहा गया है

(४) वच् (=कहना) अदादि द्वितीय गणका द्विकर्मक परस्मैपद अनिट् धातु है ॥ च का परिवर्तन (नीचेके नियमसे) ड में होकर उच बना, य कर्मणि प्रत्यय और ते (अन्य पुरुष—एकवचन–आत्मनेपदी–वर्तमान कालकी क्रियाका चिन्ह) लगानेसे उच्यते बन गया । वच्-स्वप्-यज् वप्-वह्-चस्-वद्-ब्रह-व्यध्-वश्-व्यच् व्रश्च-प्रच्छ्-भ्रस्ज-धातुके य्-र्-ल्-व् का परिवर्तन क्रमसे इ–उ–ऋ–ल् में केवल परस्मैपदमें और कर्मणिप्रधान य प्रत्ययके पहिले हो जाता है । देखो अष्टाध्यायी ६–१–१५ वचिस्वपियजादीनां किति' और १६ वां सूत्र ।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां पर्याप्तकानामौपशमिकमस्ति। क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति॥ तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति।

तिर्यग्-गतौ ३ॱ॥ पर्याप्तकानाम् ६ॱ॥ तिरश्चां ६॥	=तिर्यंचगतिमें पर्याप्तक तिर्यंचोंके
औपशमिकम् १ॱ॥ अस्ति T क्षायिकं १ॱ॥	=उपशम सम्यक्त्व होता है॥ क्षायिक सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिकं १ॱ॥ पर्याप्त-अपर्याप्तकानां ६ॱ	=और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक और अपर्याप्तक तिर्यंचोंके
अस्ति तिरश्चीनाम् ६ॱ॥ क्षायिकं १ॱ॥ न* अस्ति	=होता है। तिर्यंचनियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है

(१) पर्याप्तानां त्रितयं ह्यं तिरश्चामशान्तमितरेषाम्। क्षायिकवर्ज्यं द्वितयं पर्याप्तास्वेव तत्स्त्रीषु। सर्वार्थ० पृ० १५।

पर्याप्तानां ६ॱ॥ त्रितयं १ॱ॥ अशान्तम् १ॱ॥	=पर्याप्तक (तिर्यंचों) के तीनों (सम्यक्त्व) होते हैं। उपशमवर्जित (अशान्तम्)
इतरेषाम् ६ॱ॥ तिरश्चाम् ६ॱ॥ द्वयं १ॱ॥	=अन्य वा अवशेष (=इतरेषाम्) अर्थात् अपर्याप्तक तिर्यंचोंके दो होते हैं
क्षायिक-वर्ज्यं १॥॥ द्वितयं १॥॥	=क्षायिक (सम्यक्त्व) छोड़कर दो (औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व)
पर्याप्तासु ७॥ एव • स्त्रीषु ७॥	=उन (तिर्यंचों) की (=तद्) पर्याप्तक ही (=एव) स्त्रियोंमें (न कि अपर्याप्तक तिर्यंचनियोंमें) होते हैं। भावार्थ ऐसा है कि भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचोंके तीनों सम्यक्त्व होते हैं और अपर्याप्तक तिर्यंचोंके वेदक (=क्षायोपशमिक) और क्षायिक-सम्यक्त्व हैं कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचोंके उपशम और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं। कर्मभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोंके और भोगभूमिकी पर्याप्तक तिर्यंचनियोंके औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होते हैं॥ स्मरण रहे कि कर्मभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंचके भी कोई सम्यग्दर्शन नहीं है जैसा कि निम्न मानचित्रसे प्रगट है

भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके तीनों सम्यक्त्व	भोगभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंचके वेदकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व	कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके उपशम और वेदकसम्यक्त्व	भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनीके और कर्मभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचनी के उपशम और वेदक सम्यक्त्व	कर्मभूमिके अपर्याप्तक तिर्यंच तिर्यंचिनीके भोगभूमिकी अपर्याप्तक तिर्यंचनीके सम्यक्त्व नहीं है

कुत इत्युक्ते

कुतः * इति उक्ते सति =क्योंकर । (तिर्यंचनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता) ऐसा पूछनेपर कहते हैं कि

(१) सर्वार्थसिद्धिसंस्कृतवृत्तिकी हमारे पास इस समय दो संस्करण वा आवृत्ति हैं । उनमें तिरश्चीनां क्षायिकं नास्ति वाक्यके पश्चात्-न-पर्याप्तकानाम् तक पाठभेद "भाव" के अतिरिक्त नहीं है किन्तु क्रममें अन्तर है जो निम्न लिखित शब्दशः दोनों पाठोंसे जान लो

प्रथम आवृत्तिका पाठ

नास्ति । औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव ना पर्याप्तिकानाम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् । कुतः इत्युक्ते मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति । क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते । न तिर्यक्स्त्रीषु भाववेद—स्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात् । एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् । मानुषीणां इत्यादि

दूसरी आवृत्ति वा संस्करणका पाठ

नास्ति । कुत इत्युक्ते मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति । क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते । न तिर्यक्स्त्रीषु । द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात् । एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् ॥ औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव ना पर्याप्तकानाम् । मानुषीणां इत्यादि

(क) प्रथम आवृत्ति सर्वार्थसिद्धिमें भाव शब्द अशुद्ध है दूसरी आवृत्तिमें इसके स्थानमें द्रव्य शब्द है सो ठीक है क्योंकि द्रव्यवेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असम्भव है भाववेद स्त्रीके क्षायिक सम्यक्त्व हो सका है । हमने अपने पाठमें "द्रव्य" रक्खा है ।

(ख) दूसरी आवृत्तिके पाठका क्रम ही ठीक है क्योंकि भाष्यकारके कथन करनेपर कि तिर्यंचिनियोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है शिष्यने तिर्यंच गतिके शेषभागको सम्यक्त्वके संबंधमें पूर्ण होनेके पहिले ही तत्काल प्रश्न कर दिया कि कुत इत्युक्ते । = क्योंकर । तब आचार्यने मनुष्यः कर्मभूमिज···तासां क्षायिकासम्भवात् । वाक्योंमें उत्तर देकर अवशेष भाग (तिर्यंचोंके सम्यक्त्व होनेके सम्बंधमें) औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तकानाम् । पीछे कहा । पश्चात् 'मनुष्यगतौ' मनुष्यगतिमें सम्यक्त्व कहा

(ग) "एवं तिरश्चामप्यपर्याप्तकानां क्षायोपशमिकं ज्ञेयम् । न पर्याप्तकानाम् ।" यह वाक्य दोनों प्रतियोंमें अशुद्ध और व्यर्थ है क्योंकि कोई सम्यक्त्व ऐसा नहीं कि जीवको पर्याप्त अवस्थामें न हो परन्तु अपर्याप्तक अवस्थामें हो । (२) क्षायोपशमिकं पर्याप्तापर्याप्तकानामस्ति" वाक्य और उसके अर्थके विरुद्ध पड़ता है । हमने पाठमें इसको नहीं रक्खा है ।

मनुष्यः कर्मभूमिज एव दर्शनमोहक्षपणप्रारम्भको भवति । क्षपणप्रारम्भकालात्पूर्वं तिर्यक्षु बद्धायुष्कोऽपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्पुरुषेष्वेवोत्पद्यते । न तिर्यक्स्त्रीषु । द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासंभवात् । औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् ॥

मनुष्यः ।१। कर्म-भूमेजः ।१। एव दर्शनमोह-	=कर्मभूमिका जन्मा ही (=एव) मनुष्य दर्शन मोहकी प्रकृतियोंको
क्षपणा-प्रारम्भकः ।१। भवति ।	=क्षपावनेका प्रारम्भ करनेवाला होता है (और वह दर्शनमोहका क्षपण केवली अथवा श्रुतकेवलीके निकट अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत इन चार गुणस्थानोंमें होता है)
क्षपणा-प्रारंभकालात् ।५। पूर्वं ।१।। तिर्यक्षु ।७।	=क्षपण करनेके प्रारंभ समयसे पहिले तिर्यंचों (=तिर्यंच गति) में
बद्ध-आयुष्कः ।१। अपि उत्कृष्टभोगभूमितिर्यक्-	=आयु बांधनेवाला भी उत्तम भोगभूमिके तिर्यंच
पुरुषेषु ।७। एव * उत्पद्यते	=पुरुष (पुल्लिग अर्थात् द्रव्य पुरुष) में ही जन्म लेता है वा उपजता है
न तिर्यक्स्त्रीषु ।७।	=न कि (उत्तम भोगभूमिकी) तिर्यंचनियोंमें [जन्म लेता है]
द्रव्यवेदस्त्रीणां ।६। तासां ।६। क्षायिक-असंभवात् ।५।	=क्योंकि तिन द्रव्य वेद तिर्यंच स्त्रियोंके क्षायिक सम्यक्त्वका होना असंभव है
औपशमिकं ।१।। क्षायोपशमिकं ।१।। च पर्याप्ति—	=उपशम सम्यक्त्व और वेदकसम्यक्त्व पर्याप्तिक
कानां ।६। [तिरश्चीनां ।६।] एव न, अपर्याप्तिकानां ।६।	= [तिर्यंचनियों) के ही होता है न कि अपर्याप्तिकोंके

(१) पर्याप्तक किसी तिर्यंचके, देवके अथवा नारकीके क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारम्भ नहीं होता है ॥

(२) तिरस् (तिरः) अञ्चति गच्छति इति तिर्यङ्=वक्रगामी अर्थात् वक्र (=तिरः) गमन करता है (अञ्चति=गच्छति) ऐसा वक्रगामी तिर्यङ् है तिर्यञ्च पुल्लिग है और पशु-पक्षी-टेढ़ा चलनेवाला—वक्रगामी अर्थमें है जहां व्याकरणके नियमसे ञ् का लोप होकर और च् का परिवर्तन क् में होकर तिर्यक् हो गया है वहां पश्चात् सु प्रत्यय सप्तमी बहुवचन लगानेसे तिर्यक्+सु हुआ=तिर्यक्+षु (देखो टिप्पणी पृष्ठ १५)=तिर्यक्षु ॥ और जहांपर ञ् का लोप तो न हुआ परन्तु ञ् का परिवर्तन ङ् में और च् का परिवर्तन क् में हुआ और इसमें सु जोड़ा तब तिर्यङ्क्+सु=तिर्यङ्क्+षु (टिप्पणी पृष्ठ १५) तिर्यङ्क्षु रूप हुआ । क् को ख् में परिवर्तन करनेसे तिर्यङ्ख्षु भी रूप बनगया । ऐसे तिर्यञ्च शब्दकी सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुल्लिगके तिर्यक्षु—तिर्यङ्क्षु—तिर्यङ्ख्षु तीन रूप हुये ॥

सर्वार्थ-सिद्धि

६५

मनुष्यगतौ मनुष्याणां पर्याप्तापर्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् ॥ मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति पर्याप्तिकानामेव नापर्याप्तिकानाम् । क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव ॥

मनुष्य-गतौ ‡।। पर्याप्त–अपर्याप्तकानां ‡।	=नरगतिमें पर्याप्तक और अपर्याप्तक
मनुष्याणां ‡। क्षायिकं ‡।। च क्षायोपशमिकं ‡।। अस्ति	=मनुष्योंके क्षायिक और (=च) वेदक सम्यग्दर्शन हैं
औपशमिकं ‡।। पर्याप्तकानां ‡। एव* न*	=औपशमिक सम्यक्त्व पर्याप्तक (मनुष्यों) के ही होता है न कि
अपर्याप्तकानाम् ‡। । पर्याप्तिकानां ‡।। एव	=अपर्याप्तक (मनुष्यों) के ॥ पर्याप्तिक ही (=एव)
मानुषीणां ‡।। त्रितयम् ‡।। अपि अस्ति ॥	=स्त्रियोंके तीनों (उपशम-वेदक-क्षायिक-सम्यक्त्व) ही होते हैं
न–अपर्याप्तिकानाम् ‡।। क्षायिकं ‡।।	=अपर्याप्तिक स्त्रियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं होता है और क्षायिक
पुनः* भाव-वेदेन ‡। एव*	= सम्यक्त्व भाववेदकर ही है अर्थात् भाव स्त्रीके है द्रव्य स्त्रीके नहीं है

(गाथा) नृणां पर्याप्तानां त्रयमितरेषां द्वयं तु शमवर्ज्यम् । त्रयमपि नारीषु स्यात्पर्याप्तास्वेव नान्यासु ॥ ३ ॥

नृणां (नृणां) ‡। पर्याप्तानां ‡। त्रयम् ‡।।	=पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) होते हैं
इतरेषाम् ‡।	=और अन्य वा भिन्न (इतरेषाम्–मनुष्यों) के अर्थात् अपर्याप्तक मनुष्योंके
शमवर्ज्यम् ‡।। द्वयं ‡।।	=उपशम सम्यक्त्वरहित (शमवर्ज्यम्) दो (वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं)
त्रयं ‡।। अपि नारीषु ‡। स्यात् पर्याप्तासु ‡। एव न* अन्यासु ‡। (स्यात्)	=तीनों (सम्यक्त्व) ही पर्याप्तिक ही स्त्रियोंमें होते हैं (क्षायिक केवल भावस्त्रीके होता है) =(कोई भी सम्यक्त्व) इतर (स्त्रियोंमें अर्थात् अपर्याप्तिक स्त्रियोंमें) नहीं होता है

मनुष्यगतिमें सम्यक्त्वका मानचित्र ।

(क) पर्याप्तक मनुष्योंके तीनों (उपशम, वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व, होते हैं

(ख) अपर्याप्तक मनुष्योंके क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं

(ग) पर्याप्तिक मनुष्यणीके (औपशमिक—क्षायोपशमिक-क्षायिक) तीनो होते हैं परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व भाव-स्त्रीके होता है द्रव्यस्त्रीके नहीं । अपर्याप्तक स्त्रीके सम्यक्त्व नहीं होता है ।

देवगतौ सामान्येन देवानां पर्याप्तापर्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति । औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेच्चारित्रमोहोपशमेन सह मृतान्प्रति ।

देवगतौ ।ग।। सामान्येन ।तृ।। पर्याप्त-अपर्याप्तकानां ।ष।।	=देवगतिमें सामान्य (अपेक्षा) से पर्याप्तक और अपर्याप्तक
देवानां ।ष।। त्रितयम् ।ना।। अपि* अस्ति ।र	=देवोंके तीनों (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) ही होते हैं
औपशमिकम् ।ना।। अपर्याप्तकानां ।ष।। कथम्*	=उपशम सम्यक्त्व अपर्याप्तक (देवों) के कैसा
इति चेत्* चारित्रमोह-उपशमेन ।तृ।	=ऐसे प्रश्न होनेपर [कहते हैं कि] चारित्रमोहनीय कर्मप्रकृतिके
सह* मृतान् ।द्वि।। प्रति*	=उपशमसहित मरण करनेवाले [जीवों] को [=प्रति] होता है भावार्थ-किसी जीवके चारित्रमोहनीय कर्मकी प्रकृतियोंका उपशम होय और वह जीव उपशमश्रेणीमें मरण करै तोउस जीवके अपर्याप्तक देव अवस्थामें द्वितीय उपशम सम्यक्त्व होता है परन्तु उपशम सम्यग्दर्शन अपर्याप्त अवस्थामें किसी भी जीवके नहीं होता है ।

[श्लोक] पर्याप्तापर्याप्तकदेवेषु त्रितयमस्ति सम्यक्त्वम् । देवेष्वकल्पजेषु पर्याप्तेष्वत्तयजमेव ।

पर्याप्त—अपर्याप्तक देवेषु ।स।। त्रितयम् ।ना।।	=पर्याप्तक और अपर्याप्तक देवोंमें तीनों (उपशम—वेदक—क्षायिक)
सम्यक्त्वम् ।ना।। अस्ति । अकल्पजेषु ।स।। पर्याप्तेषु ।स।	=सम्यग्दर्शन है । कल्पवासियोंसे भिन्न पर्याप्तक
देवेषु ।स।	=देवोंमें अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें
अक्षयजम् ।ना।। एव *	=क्षायिक वर्जित वा रहित ही (दो उपशम और वेदक सम्यक्त्व) है

देवगतिमें सम्यग्दर्शनका मानचित्र ।

(सामान्यकरि) पर्याप्त और अपर्याप्त देवोंके तीन सम्यग्दर्शन हैं ॥

(विशेषकरि) भवनवासी-व्यन्तर और ज्योतिषी देव और उनकी देवियोंके सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें उपजी देवियोंके (१) क्षायिक सम्यक्त्व नहीं (२) अपर्याप्त अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं, पर्याप्त अवस्थामें उपशम वेदक सम्यक्त्व है ।

विशेषेण भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्तकानामौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति॥

विशेषेण ‖ भवनवासिन्-व्यन्तर-ज्योतिष्काणां	= विशेषकरि भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी
देवानां ‖ च देवीनां ‖ सौधर्म-ऐशान-	= देवोंके और [=च] इनकी देवियोंके और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके
कल्पवासिनीनां ‖ क्षायिकं ‖ न * अस्ति T	= कल्पवासिनी देवियोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है (सौधर्म, और ऐशान दो स्वर्गोंमेंही कल्पवासिनी देवी उत्पन्न होती हैं इनही दो स्वर्गोंसे सोलह स्वर्ग पर्यंत चली जाती हैं)
तेषां ‖	= उन (भवनवासी, व्यन्तर, और ज्योतिषी देव और देवियां और सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी कल्पवासिनी देवी)
पर्याप्तकानाम् ‖ औपशमिकं ‖	= पर्याप्तकोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायोपशमिकं अस्ति T	= और वेदक सम्यक्त्व [क्षायोपशमिक सम्यक्त्व] होता है अर्थात् इन सबोंके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता और अपर्याप्तक अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं है

(१) आयुष्क-चतुष्क-ज्योतिष्क शब्द आयुस्-चतुस्-ज्योतिस् शब्दोंमें कन् (क) प्रत्यय अपने २ अर्थमें लगानेसे बने हैं अर्थात् क जोड़ देनेसे इनका वही अर्थ रहता है जो क जोड़नेसे पहिले था॥ आयुष्क-चतुष्क ज्योतिष्कका वही अर्थ है जो आयुस्-चतुस् और ज्योतिस् शब्दों का है॥ इनके स् की षत्वादि षूमें कैसे हो जाती हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ १५॥

(श्लोक) क्षायिकमविरतदृष्टिप्रभृतिषु सम्भवति वेदकं तु पुनः॥ अस्त्यप्रमादकान्तेष्वौपशमं चौपशान्तान्तम्॥

क्षायिकम् ‖ अविरतदृष्टिप्रभृतिषु ‖	= क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान, आदिकोंमें
सम्भवति T	= संभव है (=होसक्ता है) अर्थात् चौथे गुणस्थानसे चौदहवें तक है
पुनः * वेदकं ‖ तु * अस्ति	= और (=पुनः) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तो (=तु) (चौथे अविरत गुणस्थानसे)
अप्रमादकं—अन्तेषु ‖ च * औपशमम् ‖	= अप्रमत्त (सातवां गुणस्थान) के अंत तकमें है। और [=च] उपशम सम्यक्त्व
उपशान्तातम् ‖	=[चौथे गुणस्थानसे] उपशान्त कषाय ग्यारहवां गुणस्थान तक है

१ सामान्य अपेक्षासे सम्यग्दर्शन जीवके होता है विशेष अपेक्षासे गतिके अनुवादकरि

नरकगतिमें और तिर्यंचगतिमें और मनुष्यगतिमें और देवगतिमें चित्रमात्र चित्रके अनुसार होता । है

- प्रथम नरक
  - पर्याप्तक नारकियोंके तीनों सम्यक्त्व
  - अपर्याप्तक नारकियोंके क्षायिक सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व
- दूसरेसे सातवें नरकतक
  - पर्याप्तक नारकिनके वेदक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व
  - अपर्याप्तक नारकिनके कोई भी सम्यक्त्व नहीं
- कर्मभूमिके तिर्यंच और तिर्यंचनीके और भोगभूमिकी तिर्यंचनी के पर्याप्तक अवस्थामें उपशम सम्यक्त्व वेदकसम्यक्त्व हों
- अपर्याप्तक अवस्थामें कोई भी सम्यक्त्व नहीं और क्षायिकसम्यक्त्व कभी न हो
- भोगभूमिके पर्याप्तक तिर्यंचके तीनों सम्यक्त्व अपर्याप्तक के वेदक-सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व
- मनुष्य पर्याप्तक के तीनों सम्यक्त्व अपर्याप्तक के वेदक-सम्यक्त्व क्षायिक-सम्यक्त्व
- मनुष्यणी पर्याप्तकके उपशम वेदक-सम्यक्त्व अपर्याप्तक के कोई भी सम्यक्त्व न हों भाव-स्त्रीके क्षायिक हो द्रव्यके नहीं
- देवकल्पवासी पर्याप्तक के और अपर्याप्तकके तीनों सम्यक्त्व हों
- भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव-देवांगनाओंके और कल्पदेवांगनाओंके पर्याप्त अवस्थामें उपशम सम्यक्त्व वेदकसम्यक्त्व हो अपर्याप्तके कोई भी सम्यक्त्व न हो क्षायिकसम्यक्त्व कभी न हो

इन्द्रियानुवादेन पञ्चेन्द्रियाणां संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ २ ॥ कायानुवादेन त्रसकायिकानां त्रितयमप्यस्ति, नेतरेषाम् ॥ ३ ॥ योगानुवादेन त्रयाणां योगिनां त्रितयमप्यस्ति । अयोगिनां क्षायिकमेव ॥ ४ ॥

इन्द्रिय–अनुवादेन ‡१ पंचेंद्रियाणां ‡१ संज्ञिनां ‡१	=इन्द्रियके कथनानुसारकरि पंचेंद्रिय सैनीके के नहीं है
त्रितयम् ‡१।१ अपि अस्ति न * इतरेषाम् ‡१	=तीनों ही सम्यक्त्व हैं अन्य [असैनी और पांच इन्द्रियोंसे न्यून इन्द्रियवाले]
काय–अनुवादेन ‡१ त्रसकायिकानां ‡१ त्रितयम् ‡१।१	=कायकी अपेक्षासे त्रसकायजीवोंके तीनों [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व]
अपि * अस्तिT न * इतरेषाम् ‡१	=ही [= अपि] हैं अन्योंके अर्थात् थावर जीवोंके [कोई भी सम्यक्त्व] नहीं है
योग–अनुवादेन ‡१ त्रयाणां ‡१ योगिनां ‡१ त्रितयं ‡१।१	= योगकी विवक्षाकरि तीनों [मन–वचन–काय] योगवालोंके तीनों
अपि अस्ति अयोगिनां ‡१ क्षायिकम् ‡१।१ एव अस्ति	= ही [सम्यग्दर्शन] हैं योगरहित [अयोगिकेवली भगवान्] के क्षायिक है

---

(१) पंचेंद्रियाणां— पाँच है इन्द्रिय जिनके यहां पंचेन्द्रिय शब्द पुल्लिंग है क्योंकि बहुव्रीहि समास है परन्तु पञ्चेन्द्रियाणि अध्याय २ सूत्र १५ में नपुंसकलिंग है ।

[२] त्रितयम् अपि अस्ति वाक्यका शब्दार्थ अनुवाद तीनों ही है होना चाहिये—संस्कृतकी बोल चालमें त्रितयम् अस्ति ठीक है परन्तु भाषामें बुरा और हिंदीकी बोल चालकी प्रणालीके विरुद्ध है इसलिये तीनों ही हैं अनुवाद करना पड़ता है ॥ त्रितयम् । तीनोंका भाग २ तीन भागवाला (३) तीनों-तीन तीन संख्यावाला (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३७८) (४)

(विग्रह) ये चार अर्थमें आता है ॥ इन चारो अर्थोंमेंसे-तीनों तीन अर्थ लगता है अन्य अर्थ लेनेसे अनुवाद नहीं बनता है यदि ऐसा अनुवाद करें "तीनोंमेंसे एक सम्यक्त्व होता है" तौभी ठीक नहीं होता है क्यों कि यहां पर नाना जीवोंकी अपेक्षा कथन है और तीनों योग वाले जीवोंके एक समयमें सर्व जीवोंकी अपेक्षासे तीनों ही प्रकारके सम्यक्त्व विद्यमान होते है और यही श्रीआचार्यका अभिप्राय है कि पृथक् पृथक् सम्यग्दर्शनके भेद लिये आवें जैसा कि इसी वाक्यके पिछले भाग "अयोगिनां क्षायिकम् एव अस्ति" (अयोगियोंके क्षायिक ही है) से प्रगट है । इस भागका अनुवाद शब्दशः ठीक बन जाता है । श्रीपूज्यपादसूरिने एक अस्तिके प्रयोगसे दोनों आशय बहुवचन और एकवचनके लिये हैं और संस्कृतके भी बोल चालके अनुसार शुद्ध है ॥ अन्यत्र भी हमने बहुवचनकी क्रियामें अनुवाद किया है जहां एकसे अधिक सम्यक्त्वके भेदोंसे तात्पर्य्य है ।

वेदानुवादेन त्रिवेदानां त्रितयमप्यस्ति । अपगतवेदानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ५ ॥ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां त्रितयमप्यस्ति । अकषायाणामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति ॥ ६ ॥ ज्ञानानुवादेन आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलज्ञानिनां क्षायिकमेव ॥ ७ ॥ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापन–

वेद–अनुवादेन ।। त्रिवेदानां ।।	=वेदकी अपेक्षाकरि तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष–नपुंसक) वालोंके
त्रितयम् ।।। अपि * अस्ति अपगत-वेदानाम् ।।	=तीनोंही (औपशमिक-क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व) हैं वेदरहितोंके
औपशमिकं ।।। च क्षायिकं ।।। अस्ति T	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं
कषाय–अनुवादेन ।। चतुष्कषायाणां ।।	=कषायके कथनानुसारकरि चारो [क्रोध-मान-माया-लोभ] कषायवालोंके
त्रितयम् ।।। अपि अस्ति । अकषायाणाम् ।।	=तीनोंही (उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व) हैं और कषायरहितोंके
औपशमिकं ।।। च क्षायिकं ।।। अस्ति । ज्ञानअनुवादेन	=उपशम और क्षायिक (सम्यग्दर्शन) हैं । ज्ञानकी अपेक्षाकरि
आभिनिबोधिक–श्रुत–अवधि–मनः पर्यय—	=मति (=आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि मनःपर्यय
ज्ञानिनां ।। त्रितयम् ।।। अपि * अस्ति	=ज्ञानवालोंके तीनों (उपशम-वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
केवल–ज्ञानिनां ।। क्षायिकम् ।।। एव *	=केवलज्ञानियोंके अर्थात् सयोग केवली और अयोगकेवली भगवन्के क्षायिक ही है
संयम–अनुवादेन ।। सामायिक-च्छेदोपस्थापन–	=संयमकी अपेक्षाकरि सामायिक और छेदोपस्थापन

(१) च्छेदोपस्थापन—यदि छ के पहिले कोई स्वर हो तो यह छ च्छ में पलट जाता है । यह परिवर्तन करो अथवा मत करो यदि छ से पहिले आनेवाला स्वर दीर्घ और पदान्त हो तो । जैसे सामायिकच्छेदोपस्थापन वाक्यमें कर्मे जो अ है वह छ के प्रथम है इससे च्छ हो गया । इच्छति=चाहता है—शीर्षाणि अच्छिद्यन्त = मस्तक छेदे गये । गच्छति = जाता है । अपदान्त दीर्घस्वर छ से प्रथम आवे जैसे ह्रीच्छति=लज्जा करता है । यदि छ से प्रथम दीर्घ पदान्त स्वर हो जैसे लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मीछाया=लक्ष्मीकी परछाई । यहां विकल्पसे दो रूप हुये । विशेष यह है कि यदि छ से पहिले मा निषेध वाचक प्रत्यय हो अथवा आ उपसर्ग हो तो छका परिवर्तन च्छमें अवश्य ही होगा जैसे आच्छाया=ईषच्छाया अर्थात् कुछ छाया । आच्छादयति = ढकता है । माच्छिदत् = नहीं छेदा । माच्छैत्सीत् = नहीं छेदा है । अष्टाध्यायी ६-१-७३-७८-७९-९६

संयतानां त्रितयमप्यस्ति । परिहारविशुद्धिसंयतानामौपशमिकं नास्ति । इतरत् द्वितयमप्यस्ति । सूक्ष्मसाम्परायथाख्यातसंयतानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति । संयतासंयतानां च त्रितयमप्यस्ति ॥८॥ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलदर्शनिनां क्षायिकमेव ॥ ९ ॥

संयतानां ष० त्रितयम् १।१ अपि * अस्ति T	= संयमियोंके तीनों [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व] ही हैं
परिहारविशुद्धिसंयतानां ष० औपशमिकं १।१	= परिहार विशुद्धि संयमियोंके उपशम सम्यग्दर्शन
न अस्ति । इतरत् १।१ द्वितयम् १।१ अपि अस्ति	= नहीं है । अन्य दो [वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व) ही हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात संयतानां औपशमिकं १।१	= सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात संयमवालोंके उपशम सम्यग्दर्शन
च क्षायिकं १।१ अस्ति । च संयतासंयतानां ष०	= और क्षायिक सम्यक्त्व है । और देशव्रतियोंके [पांचवां गुणस्थानवालोंके]
त्रितयम् १।१ अपि अस्ति	= तीनों औपशमिक-क्षायोपशमिक-और क्षायिक सम्यक्त्व ही है
दर्शन-अनुवादेन ३।१ चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शन	= दर्शनके कथनानुसार चक्षुदर्शनवालोंके अचक्षुर्दर्शन वालोंके
अवधिदर्शनिनां ष० त्रितयम् १।१ अपि अस्ति	= और अवधि दर्शनवालोंके तीनों (उपशम-वेदक- क्षायिक सम्यक्त्व) हैं ।
केवलदर्शनिनां ष० क्षायिकं १।१ एव (अस्ति)	= केवल दर्शनियोंके सयोगकेवली अयोगकेवलीके क्षायिक ही (सम्यग्दर्शन) है

(१) इतरत्—कर्ता प्रथमा विभक्तिके सु प्रत्यय और कर्म द्वितीया विभक्तिके अम् प्रत्ययोंके स्थानमें अदड् आजाय यदि सु अम् पांच सर्वनाम कतर (दोमेंसे कौन) कतम (बहुतोंमेंसे कई) इतर (दूसरा) अन्य (दूसरा) और अन्यतर (दो मेंसे एक) के परे आवे तो (अष्टाध्यायी—अदड् उतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७-१-२५) जैसे इतर+अदड् =इतरत् । इतरत् तिष्ठति = दूसरा ठहरता है—इतरत् पश्य = दूसरेको देख । इतरके अकार से लोप हो जाता है अर्थात् अदड् प्रत्ययमें इत्सञ्ज्ञक ड् का यह प्रभाव है कि वह अष्टाध्यायी ६-४-१४३ वें सूत्र टेः (डिति-भस्य) द्वारा इन पांचों शब्दोंके अन्तके अ का लोप कर देता है ॥ और इतरद्—इतरत् दो रूप हुये ॥

(२) सर्वार्थसिद्धिवचनिका मुद्रित पृष्ठ ६१ में "संयतासंयतके अरु असंयतके तीन ही हैं" ऐसा वाक्य आये हैं और इस संस्कृत वृत्तिमें असंयतानां वाक्य आये नहीं है इसका कारण यह है कि यहां पर कथन संयमकी अपेक्षासे है न कि असंयमकी अपेक्षासे, श्री आचार्यने संयतासंयत तो ले लिया क्योंकि संयम उस पांचवें गुणस्थानमें कुछ कुछ पाया जाता है । यदि असंयतानां शब्द लाते तो आचार्य विषयान्तर हो जाते क्योंकि विषय वा प्रकरण तो संयमका है । इसमें संदेह नहीं कि चौथे गुणस्थानवर्ती असंयतके तीनों ही सम्यक्त्व होते हैं ॥ यदि यह विषय होता कि किस किस स्थानमें कौन कौन सम्यक्त्व है तो असंयत आते सो प्रकरण नहीं है अतः वृत्तिमें असंयतानां शब्द नहीं आये ।

लेश्यानुवादेन षड्लेश्यानां त्रितयमप्यस्ति । अलेश्यानां क्षायिकमेव ॥१०॥ भव्यानुवादेन भव्यानां त्रितयमप्यस्ति, नाभव्यानाम् ॥ ११ ॥सम्यक्त्वानुवादेन यत्र यत्सम्यग्दर्शनं तत्र तदेव ज्ञेयम् ॥ १२ ॥ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां त्रितयमप्यस्ति, नासंज्ञिनाम् । तदुभयव्यपदेशरहितानां क्षायिकमेव ॥ १३ ॥ आहारानुवादेन आहारकाणां त्रितयमप्यस्ति । अनाहारकाणां छद्मस्थानां त्रितयमप्यस्ति ॥ केवलिनां समुद्घातगतानां क्षायिकमेव ॥ १४ ॥

लेश्या-अनुवादेन ‡। षड्लेश्यानां ‡। = लेश्याकी अपेक्षाकरि छह (कृष्ण-नील-कापोत, पीत-पद्म-शुक्ल] लेश्यावालोंके
त्रितयम् ‡॥। अपि * अस्ति ‡ अलेश्यानां ‡। = तीनों ही [उपशम-वेदक-क्षायिक सम्यक्त्व] हैं लेश्यारहित [अयोग केवली]के
क्षायिकम् ‡॥। एव * १० भव्य-अनुवादेन ‡। = क्षायिक ही [सम्यग्दर्शन] है । भव्यकी विवक्षा करि
भव्यानां ‡। त्रितयम् ‡॥। अपि अस्ति । = भव्य जीवनके तीनोंही [सम्यक्त्व] हैं । अभव्य जीवोंके
अभव्यानाम् ‡। न * ॥ ११ ॥ सम्यक्त्व— = (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है । सम्यग्दर्शनके
अनुवादेन ‡। यत्र * यद् ‡॥। सम्यग्दर्शनम् ‡॥। = कथनानुसार करि जहां जो (= यद्) सम्यक्त्व है
तत्र * तद् ‡॥। एव ज्ञेयम् ‡॥। ॥ १२ ॥ = तहां वोही (= तद् सम्यक्त्व) जानना चाहिये अर्थात् उपशममें उपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशममें क्षायोपशम सम्यक्त्व क्षायिकमें क्षायिक सम्यक्त्व जानना

संज्ञा-अनुवादेन ‡। संज्ञिनां ‡। त्रितयम् ‡॥। अपि = संज्ञी (= सैनी) के अनुवादकरि सैनी जीवोंके तीनोंही
अस्ति । न-असंज्ञिनाम् ‡। । तद्-उभय— = (सम्यक्त्व हैं) असैनियोंके (कोई भी सम्यग्दर्शन) नहीं है । उन दोनों
व्यपदेश-रहितानां ‡। क्षायिकम् ‡॥। एव * १३ = नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली भगवान) के क्षायिक ही है
आहार-अनुवादेन ‡। आहारकाणां ‡। त्रितयम् ‡॥। = आहारकी अपेक्षासे आहारकनके तीनोंही
अपि अस्ति अनाहारकाणां छद्मस्थानां ‡ त्रितयं = सम्यग्दर्शन हैं आहारक वर्जित छद्मस्थोंके तीनोंही (उपशम-वेदक-क्षायिक)
अपि अस्ति केवलिनां ‡। समुद्घातगतानां ‡। = ही हैं केवली समुद्घात करनेवाले (अनाहारक) अर्थात् सयोग केवली [जब समुद्घात करैं तब अनाहारक हैं] और अयोग केवली [अनाहारक होते हैं]

क्षायिकम् ‡। एव * ॥ १४ ॥ = क्षायिक ही (सम्यक्त्व) है ॥

सर्वार्थ-
७२

३ । साधनं द्विविधम् । आभ्यन्तरं बाह्यं च ॥ आभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा । बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः ॥ सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः ॥ चतुर्थीमारभ्य आसप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च ॥ तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्बदर्शनम् ॥

साधनं ॥ द्वि-विधम् ॥	=साधन अर्थात् सम्यक्त्वके होनेके कारण अथवा हेतु दो प्रकार है
आभ्यन्तरं ॥ बाह्यं ॥ च आभ्यन्तरं ॥	=अन्तरंग और बहिरंग [साधन] अन्तरंग [कारण तो]
दर्शनमोहस्य ॥ उपशमः ॥ क्षयः ॥ क्षयोपशमः ॥	=दर्शन मोहनीय [कर्म] का उपशम, क्षय वा क्षयोपशम है । [नरक पर्यंत
वा बाह्यं ॥ प्राक्चतुर्थ्याः ॥	=बहिरंग [साधन] चौथे [नरक] से पहिले [अर्थात् पहिले-दूसरे-तीसरे-
नारकाणां ॥ सम्यग्दर्शनस्य ॥ साधनं केषांचित्	=नारक जीवोंके सम्यक्त्वका कारण कितनेके
जातिस्मरणं ॥ केषाञ्चित् धर्मश्रवणं ॥	=जातिस्मृति कितनेकके धर्मका सुनना (और)
केषाञ्चित् वेदना-अभिभवः ॥ चतुर्थीं ॥ आरभ्य	=कितनेकके दुःखका भोगना है चौथी पृथिवी (=नरक) से लेकर
आसप्तम्याः ॥ नारकाणां ॥ जातिस्मरणं ॥	=सातवीं पृथिवी (नरक) तक नारकी जीवोंके जातिका स्मरण
च वेदना-अभिभवः ॥ तिरश्चां ॥ केषाञ्चित्	=और (च) दुःखका भोगना (सम्यक्त्वके कारण) है । तिर्यंचोंके कितनेकके
जातिस्मरणं ॥ केषाञ्चित् धर्मश्रवणं ॥	=जातिस्मरण (अर्थात् पूर्व जन्मकी स्मृति) कितनेकके धर्मका सुनना
केषाञ्चित् * जिनबिम्बदर्शनं ॥	=कितनेकके भगवानका बिंब देखना (सम्यक्त्वके कारण) है

१ अभ्यन्तर 'बीच, बीचका स्थान पद० कोष पृष्ठ ३८ । आभ्यन्तर=भीतर होनेवाला ॥ अतः आभ्यन्तर शब्द सर्वार्थसिद्धि द्वितीय आवृत्तिका ठीक है न कि अभ्यन्तर प्रथम आवृत्तिका (२) केषाम् चित्=म् का परिवर्तन (मांऽनुस्वारः उक्त सूत्रसे) अनुस्वारमें होगया ॥ इस अनुस्वारका परिवर्तन परसवर्ण चवर्गके ञ् में (पदान्तस्यानुस्वारस्य यमि परे परसवर्णो वा अष्टाध्यायी ८-४-५८ सूत्रसे) होगया अतः केषाम् चित्=केषाञ्चित् । चित्+जाति=चिज्जाति (देखो टिप्पणी पृष्ठ ४६) चित् के च् का परिवर्तन ज्में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १४-१५) (३) आरभ्य संबंध सूचक भूत कृदंत है । (४) आ-सप्तम्याः आङ् मर्यादाभिविध्योः २।१।१२ वा अष्टाध्यायी २।१।१२ सूत्र : मर्यादा (अर्थात् जो सीमा कहें उसके बाहर बाहर) और अभिविधि अर्थमें (अर्थात् जो सीमा कहें उसको मिलाकर) वर्तमान जो आङ् (=आ) वह पंचमी अपादान विभक्तिके साथ विकल्पसे (=वा) समासको प्राप्त हो और वह समास ।

मनुष्याणामापि तथैव ॥ देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमदर्शनं केषाञ्चिद्देवर्द्धिदर्शनम् ॥ एवं प्रागानतात् ॥

मनुष्याणाम् ‡ा अपि * तथा * एव *	=मनुष्योंके भी वैसाही अर्थात् तिर्यंचोंके समान जातिस्मरण-धर्मश्रवण और जिनबिम्ब दर्शन ये तीन ही सम्यग्दर्शन होनेके साधन वा कारण हैं
देवानां ‡ा केषांचित् * जातिस्मरणं ‡॥ केषांचित् धर्मश्रवणं ‡॥ केषांचित् * जिनमहिमदर्शनं ‡॥ केषांचित् * देव+ऋद्धि-दर्शनम् ‡॥ एवं * प्राग्-आनतात् ‡ा	=देवोंके कितनेकके जातिका स्मरण आजाना कितनेकके =धर्मका सुनना, कितनेकके भगवानके (पंचकल्याणकके) महत्वका देखना =कितनेकके देवनकी ऋद्धि देखना इत्यकार =आनत (तेरहवेंस्वर्ग) से पहिले पहिले अर्थात् सहस्रार बारहवें स्वर्ग तक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण वा साधन हैं

अव्ययी भाव संज्ञक हो पंचमी विभक्तिके साथ समास न करे तो द्वितीया विभक्तिके साथ अव्ययी भाव समास हो। मर्यादा अर्थमें जैसे आमुक्तेः संसारः मुक्तिकी सीमाके बाहर संसार है—एक मुक्तिकी सीमा मानलो और एक संसारकी, दोनों सीमा एक दूसरेसे चिपटी हुई हैं। यहां आङ् उपसर्गका यह प्रभाव है कि मुक्तिकी सीमासे संसारकी सीमाको बाहर बाहर रखता है। आमुक्ति ‡ा संसारः ‡। का भी यही अर्थ है। अभिविधि अर्थमें जैसे आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाश पर्यंत अथवा आकाशको सम्मिलित करते हुये एक एक द्रव्य हैं अध्याय ५ सूत्र ६। इसका यह अर्थ नहीं है कि आकाशके बाहर बाहर एक एक द्रव्य हैं क्योंकि जैनसिद्धांतके अनुसार काल जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश यह द्रव्य हैं उनमें जीव अनन्तानन्त है। पुद्गल परमाणु जीवोंसे अनन्तगुणे हैं कालद्रव्यके अणु असंख्यात हैं। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य एक एक हैं। आकुमारेभ्यो यशः सीतायाः अथवाआकुमारं यशः सीतायाः=सीताका यश लडकों पर्यंत भी है अर्थात् सीताके यशके जाननेमें लडके भी सम्मिलित हैं। ऐसे ही आसप्तम्या नारकाणांमें नारकियोंके सातवां नरक पर्यंत अभिविधि अर्थमें आ ङ् उपसर्ग है अर्थात् आङ्के प्रभावसे सातवां नरक भी सम्मिलित है॥ (१) प-पे-ओ-औ स्वरोंको छोड कर यदि पहिले कोई स्वर आवे और उसके पश्चात् ह्रस्व ऋ हो तो इस ऋको स्वरके साथ मिलादो अथवा मत मिलावो जैसे देव+ऋद्धि=देव+अर्द्धि=देवर्द्धि, देवऋद्धि भी रूप ठीक है यदि पहिले आया हुआ स्वर दीर्घ हो तो इसको ह्रस्व कर देते हैं जैसे ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

आनतप्राणतारणाच्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वाऽन्यत्त्रितयमप्यस्ति । नवग्रैवेयकवासिनां केषांचिज्जातिस्मरणं केषांचिद्धर्मश्रवणम् ॥ अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न सम्भवति । प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः ॥

आनत–प्राणत–आरण—	= आनत [तेरहवें स्वर्ग] प्राणत (चौदहवें स्वर्ग) आरण [पंद्रहवें स्वर्ग]
अच्युतदेवानां ‖ देव-ऋद्धि दर्शनं ‖ मुक्त्वा	= अच्युत [सोलहवें स्वर्ग] के देवोंके देवोंकी ऋद्धि अवलोकन छोड़कर
अन्य–त्रितय ‖ अपि *	= अन्य तीनों (जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनमहत्त्वदर्शन) ही
अस्ति ।	= [सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके कारण] हैं ।
नवग्रैवेयक-वासिनां ‖	= (सोलह स्वर्गके ऊपर) नवग्रैवेयकके [नव पटलोंमें] रहने वालोंके
केषांचित् * जातिस्मरणं ‖ केषांचित् *	= कितनेकके जातिस्मरण कितनेकके
धर्मश्रवणं ‖	= धर्मका सुनना (ये दोही सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके कारण) हैं
अनुदिश—	= [नव ग्रैवेयकोंके नो पटलोंके ऊपर) नव अनुदिशके एक पटलके विमानोंमें
अनुत्तर—	= और (उनके ऊपर) अनुत्तरके पांच [विजय-वैजयंत-जयंत–अपराजित
विमान-वासिनां ‖ इयम् ‖ कल्पना ‖ न संभवति = सर्वार्थसिद्धि] विमान वासियोंके यह साधन नहीं संभवे है	
प्राग् एव * गृहीत-सम्यक्त्वानां ‖ तत्र उत्पत्तेः ‖ = क्योंकि पहले (जन्ममें] ही प्राप्त सम्यग्दर्शनवालोंकी वहां उत्पत्ति होती है	

(१) धर्मश्रुति–जातिस्मृति–सुरर्द्धि–जिन— = धर्म श्रवण करना, जातिस्मरण करना, देव ऋद्धि अवलोकन करना जिन भगवानके
महिमदर्शनम् ‖ बाह्यम् ‖ = (गर्भादिक कल्याणके समयका) महत्व देखना (सम्यक्त्वके उत्पत्तिके) बाहिरी कारण है

(२) प्रागेव = प्राग्–एव । यह शब्द प्रायः तीन अर्थोंमें आता है (१) प्रकर्षेण अंचति गच्छति इति प्राङ् सुगन्ता अर्थात् अतिशय करि वा बहुत अधिकतासे गमन करता है (अञ्चति = गच्छति) सो प्राङ् अथवा सुगन्ता है ॥ २ ॥ प्रकर्षेण अंच्यते पूज्यते इति प्राङ् पूज्यः अतिशयकरि पूजा जाता है ऐसा प्राङ् वा पूज्य है ॥ इस दोनों अर्थोंमें प्र उपसर्गमें अञ्च् धातु लगानेसे प्राञ्च् शब्द बना है । ॥ पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २५७ में " प्राञ्च [त्रि) प्र + अच् + क्विन् पहिला समय और देश,' ऐसा अर्थ दिया है यहां पर पहिला देश अर्थात् पहिला स्थान इस अर्थमें आया है ।

(४) अधिकरणं द्विविधम् । आभ्यन्तरं बाह्यं च ॥ आभ्यन्तरं स्वस्वामिसम्बन्धार्हो एव आत्मा विवक्षातः कारकप्रवृत्तेः ॥ बाह्यं लोकनाडी । सा कियती ? एकरज्जुविष्कम्भा चतुर्दशरज्ज्वायामा ॥ (५) स्थितिरौपशमिकस्य जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मौहूर्तिकी । क्षायिकस्य संसारिणो जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी । उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सान्तर्मुहूर्ताष्टवर्षहीनपूर्वकोटिद्वयाधिकानि । मुक्तस्य सादिरपर्यवसाना क्षायोपशमिकस्य जघन्यान्तर्मौहूर्तिकी । उत्कृष्टा षट्षष्टिसागरोपमाणि [६] विधानं सामान्यादेकं सम्यग्द-

---

अधिकरणं ;॥॥ द्विविधम् ;॥॥ आभ्यन्तरं ;॥॥ च बाह्यं ;॥॥ आभ्यन्तरं ;॥॥ स्व-स्वामि—सम्बन्ध-अर्हः ;॥ एव आत्मा ;॥ कारकप्रवृत्तेः ;॥ विवक्षातः * बाह्यं ;॥॥ लोकनाडी ;॥ । सा ;॥॥ कियती ;॥ एक-रज्जु-विष्कम्भा ;॥ चतुर्दशरज्जु-आयामा ;॥॥ औपशमिकस्य ;॥॥ स्थितिः ;॥ जघन्या ;॥॥ च उत्कृष्टा ;॥॥ अन्तर्मौहूर्तिकी ;॥ संसारिणः ;॥ क्षायिकस्य ;॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्तिकी ;॥॥ उत्कृष्टा ;॥॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ;॥॥ स-अन्तर्मुहूर्त-अष्टवर्षहीन-पूर्वकोटिद्वय—अधिकानि ;॥॥ मुक्तस्य ;॥ सआदिः ;॥ अपरि-अवसाना ;॥ क्षायोपशमिकस्य ;॥॥ जघन्या-अन्तर्मौहूर्तिकी ;॥ उत्कृष्टा ;॥॥ षट्षष्टिसागरोपमाणि, विधानं ;॥॥ सामान्यात् ;॥॥ एकं ;॥॥ सम्यग्दर्शनम् ;॥॥

=(४) आधार दो प्रकार है । अंतरंग और [च]
=बहिरंग [सम्यक्त्वका आधार] आभ्यन्तर अपना अधिपति [=स्वस्वामिन्]
=सम्बन्धके योग्य आत्मा ही है । क्योंकि कारकका व्यवहारकी
=अपेक्षासे है । बाह्य [सम्यक्त्वका आधार] लोकनाड़ी है सो
=कितनी है ? एकराजू चौड़ी है (और) चौदहराजू
=लंबी है [५] उपशम सम्यग्दर्शनकी स्थिति [ठहराव टिकाव] ठहरती है
=जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकी है ; पंदेसे न्यून समय तकउपशम सम्यक्त्व
=संसारी जीवके क्षायिककी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्तकी है पीछे मुक्ति है
=(क्षायिक सम्यक्त्वकी) उत्कृष्ट (स्थिति] तेतीस सागर प्रमाण
=आठसाल अन्तर्मुहूर्तसहित न्यून दो करोड पूर्व
=अधिक है [३३ सागर+२०००००० पूर्वमेंसे ८ वरस अंतर्मुहूर्त न्यून है]
=मोक्षजीवके [क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति] आदि सहित और असमाप्ति है
=वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य (स्थिति) अन्तर्मुहूर्त है
=(६] उत्कृष्ट [स्थिति—वेदक सम्यक्त्वकी] छयासट सागर प्रमाण है ।
=सामान्य [विवक्षा] से सम्यग्दर्शन एक प्रकार है

---

१. कियत् (त्रि०) (किम् परिमाणे वतुप्, किमः कादेशः वस्य यः कितना परिमाण कितना पद्म० १०८) शब्दसे कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है ॥

दर्शनम् । द्वितयं निसर्गजाधिगमजभेदात् । एवं संख्येया विकल्पाः शब्दतः ॥

निसर्गजाधिगमजभेदात् ।। द्वितयं ।।।	=स्वभाव जनित और परोपदेश जनित भेदसे [सम्यक्त्व] दो प्रकार है
एवं ।। शब्दतः ।। संख्येयाः ।। विकल्पाः ।।	=इसप्रकार शब्द (की अपेक्षा) से संख्यात भेद हैं

(१) आज्ञामार्गसमुद्भव मुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् । विस्तारार्थाभ्यां भवमव परमावगाढं च ॥ १ ॥ इति दशविधम् ॥

आज्ञा-समुद्भवम् ।।। मार्ग-समुद्भवम् ।।। उपदेशात् ।।	=आज्ञासे उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) मार्गसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) उपदेशसे
भवम् ।।। सूत्रात् ।।। भवम् ।।। बीजात् ।।। भवम् ।।।	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) सूत्रसे उत्पन्न, बीजसे उत्पन्न,
संक्षेपात् ।। भवम् ।।। विस्तारात् ।। भवम् ।।। अर्थात् ।।	=संक्षेपसे उत्पन्न (सम्यक्त्व) विस्तारसे उत्पन्न अर्थसे
भवम् ।।। अवगाढं ।।। च परम-अवगाढं ।।। इति	=उत्पन्न (सम्यग्दर्शन) अवगाढ़ और (च) परम अवगाढ़ (सम्यक्त्व) ऐसे
दश-विधम् ।।।	=(शब्दसे सम्यक्त्व) दश प्रकार हैं

इस आर्या छंदमें वर्णित दश विध सम्यग्दर्शनके अर्थ स्पष्ट करनेके लिये निम्न लिखित तीन स्रग्धरावृत्त (स्रग्धरा छंद) कहते हैं—

स्रग्धरा— आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरचितं वीतरागाज्ञयैव । त्यक्तग्रंथप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्तेः ।
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपधाता । या संज्ञानागमाब्धिप्रभृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः ॥ १ ॥

यद् ।।। उत * विरचितं ।।। वीतराग-आज्ञया ।।।	=और (=उत) जो (=यद्) वीतरागकी आज्ञाकरि ही (एव) श्रद्धान किया
एव आज्ञा-सम्यक्त्वं ।।।	=जाय (जो वीतरागके वचन पर ही विश्वास किया जाय) सो आज्ञा सम्यक्त्व
उक्तं ।।। त्यक्तग्रंथप्रपञ्चं ।।	=कहाजाता है । शास्त्र विस्तारके (श्रवण) विना
शिवम् ।। अमृतपथं ।। मोहशान्तेः ।।।	=कल्याणरूप मोक्षमार्गमें (शब्दार्थ अमर मार्ग) मोहकी शांति होनेसे (अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके उपशम, क्षयोपशम और क्षय होनेसे)
(२) श्रद्दधत् ।। मार्गश्रद्धानम् ।।। आहुः T	=श्रद्धान वा रुचि करनेको मार्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं (आहुः)
पुरुष-वर-पुराण-उपदेश-उपधाता ।।। या ।।। संज्ञान	=श्रेष्ठ प्राचीन पुरुषों (तीर्थंकरादिक) के उपदेश जनित जो श्रेष्ठ ज्ञान (अस) से
आगम-अब्धि-प्रभृतिभिः ।।। उपदेशादिः ।।	=उत्पन्न हुआ आगमरूपी समुद्र (तिस) के विस्तारोंकरि (प्रति) उपदेशादिक
आदेशदृष्टिः ।	=(सो) आदेशदृष्टि है (उत्कृष्ट पुरुषोक्त शास्त्रादिकके पढ़नेसे सुननेसे जो श्रद्धान हो)

(१) डु कृञ् करना अदादिगणके धातुसे अन्य पुरुष बहुवचन परस्मैपद वर्तमान काल आहुः विना नियमके बना है (२) श्रद्दधत् श्रद्दधन् क्योंकि

अद्दधत् के त् का परिवर्तन न् में हो जाता है (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३६) अत् (अव्य०) विश्वास पद्म पृष्ट ३६० ॥ धा जुहोत्यादि तृतीय गण का उभय परस्मैपदी और आत्मनेपदी सकर्मक अनिट् धातु धारण वा पकड़ने अर्थमें है। इस गणके धातुओंके रूप बनानेमें यदि धातुमें पहिले व्यंजन हो और पश्चात् एक स्वर हो तो धातुको दुहरा देते हैं अतः धाधा होगया और दुहराये हुये भागको व्याकरणमें अभ्यास कहते हैं यहाँ प्रथम धा अभ्यास है अभ्यासमें वर्गका दूसरा और चौथा अक्षर क्रमसे उसी वर्गके प्रथम और तीसरे अक्षरमें पलट जाता है इसलिये धाधा = दाधा अष्टाध्यायी ८-४-५४) और अभ्यासके दीर्घ स्वरका ह्रस्व हो जाता है (अ० ७-४-५६) अतः दाधा = दधा । धा का आ क्रिया के डित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले गिर जाता है । अति बहुवचन अन्य पुरुष परस्मैपद वर्तमान काल जुहोत्यादि गणका डित् प्रत्यय है इसके पहिले धा का आ गिरकर केवल दध् रूप रह जाता है अब अत् दध् रूप हुआ ॥ अत्के त् का द्में परिवर्तन टिप्पणी पृष्ठ १५से हुआ । अद्दध् ॥ अद्दधत् वर्तमान कृदन्त है और प्रपन्ने शिवम्, अमृतपदं तीनों शब्द द्वितीया विभक्ति पुल्लिंग एकवचन अद्दधत् क्रियाके कर्म है । वर्तमान कृदन्त बनानेका प्रायः यह नियम है कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्य पुरुष बहुवचन वर्तमान कालकी क्रिया बनानेसे पहिले कोई धातु ग्रहण करता है पश्चात् धातु आत्मनेपदी हो जिसका वर्तमान कृदन्त बनाना है तो आन प्रत्यय लगा दो (जैसे दध् + आन दधान वा अत् + दध् + आन अदधान यदि धातुका परस्मैपदमें प्रयोग हो तो अत् प्रत्यय लगादो इसलिये अद्दध् + अत् = अद्दधत् — विश्वास (अद्) करते हुये दधत् = अद्दधान (खण्डेरा) आकर्ण्याचारसूत्रंमुनिचरणविधेः सूचनं अद्दधानः । सूक्तोऽसौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ।

केश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थान् । संक्षेपेणैव बुध्वा रुचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः । ४ से ६ तक भेद है

मुनिचरणविधेः ।। सूचनं ।।। आचार सूत्रं ।।।	=मुनिके आचरणके विधानका जतलानेवाले आचार सूत्रको
आकर्ण्य अद्दधानः ।। असौ ।। सूत्रदृष्टिः ।। सूक्तः ।।	=सुनकर विश्वास (=अद्) करना वा धरना (=दधान) वह सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कहा गया है अर्थात् मुनिका आचरण सुननेसे जो तत्त्वार्थ श्रद्धान हो सो सूत्र सम्यक्त्व है
दुर्-अधिगम-गतेः ।। अर्थसार्थस्य ।।	=कठिनाईसे (दुर्) ज्ञान (अधिगम) प्राप्त होनेवाले (गतेः) पदार्थोंके समूहका
कैश्चित् * बीजैः ।।।	=कैइकके बीजाक्षर (जैसे ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः इत्यादि) करि
असम-शम-वशात् ।।	=असाधारण (असम) मोहनीय कर्मके उपशम (क्षय-क्षयोपशम) के वशसे

जात-उपलब्धेः ‖ बीजदृष्टिः ‖

= उत्पन्न हुआ [= जात] ज्ञान (= उपलब्धेः) सो बीजदृष्टि सम्यक्त्व है ॥ (में है (वा "बीज सकल समय दल सूचना व्याजमें" ऐसा भी अनगारधर्मामृत अ०२ श्लो० ६२

पदार्थान् ‖ संक्षेपेण ‖ एव कृत्वा + रुचिम् ‖ उपगतवान् ‖ साधु-संक्षेपदृष्टिः ‖

= पदार्थोंको सामान्यसे ही जानकर श्रद्धानको
= प्राप्त होनेवाला प्रशस्त वा भली [= साधु) संक्षेपदृष्टि (= सम्यक्त्व है) अर्थात् संक्षेप रूपसे पदार्थोंको जानकर जो श्रद्धान होय सो संक्षेप सम्यक्त्व है)

(श्लोक) यः श्रुत्वा द्वादशांगीं कृतरुचिरिह तं विदुः विस्तारदृष्टिं । सन्ज्ञातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्वन्तरेणार्थदृष्टिः ॥
दृष्टिः साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता या ऽवगाढा । कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ॥ ३ ॥

यः ‖ श्रुत्वा द्वादशांगीं ‖ कृतरुचिः ‖ इह * तं ‖ विदुः T विस्तारदृष्टिम् ‖

= जो (भव्य) द्वादशांग वाणीको सुनकर इसलोकमें (= इह) श्रद्धानी हो तिसको
= विस्तारदृष्टि जानों (द्वादशांगको सुनकर जो रुचि हो वह विस्तार सम्यक्त्व है।

प्रवचन-- वचनानि ‖ अन्तरेण* कुतश्चित्* सज्ञातार्थात् ‖ अर्थ-दृष्टिः ‖

= आगम वा शास्त्रके वाक्योंके विना (देखे वा सुने) किसी (= कुतश्चित्)
= पदार्थ (के निमित्त) से उत्पन्न हुआ (जो श्रद्धान) सो अर्थदृष्टि (सम्यक्त्व) है अर्थात् दृष्टान्तादिक रूप पदार्थोंसे जो श्रद्धान हो सो अर्थ सम्यक्त्व है

स--अङ्ग-अङ्ग-बाह्य-प्रवचनम् ‖ अवगाह्य+ उत्थिता ‖ वा ‖ दृष्टिः ‖ अवगाढा ‖ (दृष्टिः ‖)

= अङ्ग और अङ्गबाह्यसहित उत्तम (वा श्रेष्ठ) शास्त्रको जानकर (= अवगाह्य)
= उत्पन्न हुई (= उत्थिता) जो (= वा) रुचि (= दृष्टि) सो अवगाढ सम्यक्त्व है (जो श्रुतकेवलीके सम्यग्दर्शन हो सो अवगाढदृष्टि वा अवगाढ सम्यक्त्व है)

कैवल्य--आलोकित--अर्थे ‖ इह* परमावादिगाढा ‖ इति* रूढा ‖

= केवलज्ञानकरि देखे गये पदार्थमें इसलोकमें (= इह, श्रद्धान)
= सो परम अवगाढ (दृष्टि = सम्यक्त्व) है ऐसा प्रसिद्ध है अर्थात् इसलोकमें जो = (वीतराग सर्वज्ञ) केवलीका श्रद्धान है सो परमावगाढ़ दृष्टि है ॥

* अर्थदृष्टि यहांपर पुल्लिंग भी हो सक्ता है ॥ (२) सा अङ्ग भी हो सकता है फिर दृष्टिः शब्दका सांकेतिक होगा अर्थात् सा ‖ दृष्टिः ‖ (१) सम्यक्त्वके कहनेवाले शब्दोंकी संख्या होनेसे उपर्युक्त सम्यग्दर्शनके संख्यात भेद हुये ॥ आत्मानुशासनसे ।

असङ्ख्येया अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धातृश्रद्धातव्यभेदात् ॥ एवमयं निर्देशादि विधिर्ज्ञानचारित्रयो-
र्जीवाजीवादिषु चागमानुसारेण योजयितव्यः ॥ किमेतैरेव जीवादीनामधिगमः भवति उत अन्योऽप्यधि-
गमोपायोऽस्तीति परिपृष्टोऽस्तीत्याह—

श्रद्धातृ-श्रद्धातव्य—
भेदात् ;पं असंख्येयाः ;प्र च अनन्ताः ;प्र भवन्ति ।
एवम् अयम् ;प्र निर्देश-आदि-विधिः ;प्र ज्ञान-
चारित्रयोः ;षष्ठी च जीवाजीवादिषु ;सप्त
आगम-अनुसारेण ;तृ योजयितव्यः ;प्र
किम् ;प्र एतैः ;तृ
जीवादीनाम् ;षष्ठी
अधिगमः ;प्र भवति उत * अन्यः ;प्र अपि अधिगम
उपायः ;प्र अस्ति इति परिपृष्टः अस्ति इति आह ।

=विश्वास करनेवाले और प्रतीत करने योग्य [वस्तु] के
=भेदसे असंख्यात और अनंत [भेद सम्यक्त्वके) होते हैं
=ऐसे यह निर्देशादिक क्रम (सम्यग्दर्शनकी भांति] ज्ञान
=और चारित्रमें: तथा (=च] जीव-अजीव आदि (सात तत्वों] में
=शास्त्रके अनुकूल लगाया जाना चाहिये ।
=क्या इन [निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और
=विधान] अनुयोगों करि ही जीवादिक सात तत्वों (और सम्यग्दर्शनादिका
=ज्ञान होता है अथवा भिन्न भी जाननेका
=उपाय है ऐसा प्रश्न किया गया है (सो आचार्य) ऐसा कहते हैं कि

(१) विसर्गसे पहिले आ हो और उसके पश्चात् कोई स्वर वा घोष व्यंजन आवे तो यह विसर्ग गिर जाता है जैसे नरः इमे = नरा इमे। और यदि विसर्गके पहिले अ हो और उसके पश्चात् अ को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो भी इस विसर्गको गिरा देते हैं जैसे बुधः इच्छति = बुध इच्छति और दो स्वर जो विसर्गके गिरने पर रह जाते हैं एक दूसरेमें सम्मिलित नहीं होते हैं ॥ जैसे असंख्येयाः अनन्त = असङ्ख्येयाः अनन्त अत्र असङ्ख्यानन्त ऐसा वाक्य नहीं हो सक्ता है ॥ (२) एतैः पुलिंग और नपुंसकलिंग दोनोंमें है यहां अनुयोगैः शब्द जो पुलिंग होता है गुप्त है अतः इसको हमने पुलिंग माना है ॥ (३) जीवादीनां वाक्यके पहिले सम्यग्दर्शनादीनां वाक्य अधिक समझ लेना चाहिये जैसा कि हम टिप्पणी सूत्र ६ में लिख चुके हैं ।

सूत्र–सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

सदित्यास्तित्वनिर्देशः । प्रशंसादिषु वर्तमानो नेह गृह्यते । संख्या भेदगणना ।

पदच्छेदः– सत्–संख्या–क्षेत्र–स्पर्शन–काल–अन्तर–भाव–अल्पबहुत्वैः ¦॥॥ च
(सम्यग्दर्शनादीनां ¦॥॥ च जीवादीनां ¦॥॥ अधिगमः)

सत्–संख्या—	=सूत्रार्थ–(पदार्थकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व; (वस्तुके) परिणामोंकी वा भेदोंकी गणना
क्षेत्र–	=[वस्तुका वर्तमान कालमें] निवास अथवा [वस्तुका] वर्तमान स्थान वा आधार,
स्पर्शन–काल—	=[पदार्थका] त्रिकाल गोचर निवास, [वस्तुका] तीनों कालमें विचरनेका क्षेत्र; समयकी मर्यादा
अन्तर—	=विरहकाल, वियोग काल, विछोइ काल, [अर्थात् जो एक परिणामोंसे दूसरे परिणाम जाय फिर तिसही परिणामको आवै तिसके बीच जितना काल लगे उसको वस्तुका विहरकाल कहते हैं]
भाव–(च)	=उपशम, क्षायोपशमिकादि परिणाम, (और)
अल्प-बहुत्वैः ¦॥॥	=एक वस्तुको दूसरेकी अपेक्षा थोडी बहुत कहना, परस्परकी अपेक्षासे हीनपना अधिकपनाका होने
सम्यग्दर्शनादीनां ¦॥॥ च	=करि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका और
जीवादीनां ¦॥॥ अधिगमः ¦॥	=जीव–अजीव–आस्रव–बन्ध–संवर–निर्जरा–मोक्षका अधिगम होता है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ।

सत्-इति अस्तित्व-निर्देशः ¦॥	=(इस सूत्रमें) सत् ऐसा (शब्द पदार्थकी) विद्यमानताका जतलानेवाला है
प्रशंसादिषु ¦॥ वर्तमानः ¦॥	=(सत् शब्द) प्रशंसादिक अर्थोंमें प्रवर्तता है
न * इह * गृह्यते T	=[सो] इस स्थानमें [=इह] नहीं लिया गया है
संख्या ¦॥ भेदगणना ¦॥	=संख्या (वस्तुके) भेदकी गणना अथवा गिनती है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायोंमें एकसा है ॥ साध्वर्चित प्रशस्तेषु सत्येऽस्तित्वे च सम्मतः ।

(२) साधु-अर्चित-प्रशस्तेषु ¦॥ सत्ये ¦॥॥ =सदाचारी, पूज्य, बहुत उत्तम, यथार्थ वा ठीक
च * अस्तित्वे ¦॥॥ सम्मतः ¦॥ =और विद्यमानता (अर्थों) में (सत्शब्द) स्वीकृत है । (इस सूत्रमें अस्तित्व अर्थ लिया है)

क्षेत्रं निवासो वर्तमानकालविषयः । तदेव स्पर्शनं त्रिकालगोचरम् । कालो द्विविधः। मुख्यो व्यावहारिकश्च । तयोरुत्तरत्र निर्णयो वक्ष्यते । अन्तरं विरहकालः । भावः औपशमिकादिलक्षणः । अल्पबहुत्वमन्योऽन्यापेक्षया विशेषप्रतिपत्तिः ॥ एतैश्च सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां चाधिगमो वेदितव्यः ॥ ननु च " निर्देशादेव सद्ग्रहणं सिद्धम् । विधानग्रहणात्संख्यागतिः । अधिकरणग्रहणात्क्षेत्रस्पर्शनावबोधः ।

क्षेत्रं ।।। वर्तमानकालविषयः ।। निवासः ।। तद् ।।। = क्षेत्र (पदार्थका) विद्यमान समय संबन्धी निवास है वही निवास वा क्षेत्र है।
एव स्पर्शनं ।।। त्रिकाल-गोचरम् ।।। = (यदि) तीनकाल गोचर हो [पदार्थके तीन कालमें विचरनेका क्षेत्र] स्पर्शन है
कालः ।। द्वि-विधः ।। मुख्यः ।। च व्यवहारिकः ।। = काल दो प्रकार है। एक निश्चयकाल और [=च] व्यवहार [काल]
तयोः ।। उत्तरत्र * निर्णयः ।। वक्ष्यते ।
अन्तरं ।।। विरह-कालः ।। = उन दोनोंका आगे निर्णय कहा जायगा ।
= अंतर विच्छेद, वियोग वा विछोह समय [का नाम] है अर्थात् जो एक परिणामसे दूसरे परिणाम जाय पुनः तिसही परिणामको आवे तिसके बीच जितना काल लगे सो विरह काल है तिसहीको अंतर कहते हैं
औपशमिक-आदि-लक्षणः ।। = औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक लक्षण—संयुक्त
भावः ।। अन्योऽन्य-अपेक्षया ।।। विशेषप्रतिपत्तिः ।।। = (जीवके) भाव हैं। एक दूसरेकी अपेक्षासे थोडे बहुतका ज्ञान करना
अल्पबहुत्वम् ।।। च एतैः ।।। सम्यग्दर्शनादीनां ।।। = अल्प बहुत्व है। बहुरि इन [आठ अनुयोगों] करि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का
च जीवादीनां ।।। अधिगमः ।। वेदितव्यः ।। = और जीवादिक सात तत्त्वोंका अधिगम [स्वरूपका ज्ञान] जानना चाहिये
ननु * च निर्देशात् ।। एव सद्ग्रहणं ।।। सिद्धम् ।।। = प्रश्न। (पिछले सूत्रमें) निर्देश शब्दसे ही सत् शब्दका ग्रहण सिद्ध है
विधान-ग्रहणात् ।।। संख्या-गतिः ।।। = विधान शब्दके ग्रहणसे (इस सूत्रके) संख्याका ज्ञान हो जाता है
अधिकरणग्रहणात् ।।। क्षेत्र-स्पर्शन अवबोधः ।। = अधिकरण शब्दके लानेसे क्षेत्र [और] स्पर्शनका ज्ञान होता है

---

१ ननु च। इसका शब्दशः अनुवाद होगा " और प्रश्न " संस्कृतमें ऐसे च का प्रयोग ठीक है परन्तु भाषामें यदि हम 'और प्रश्न' ऐसा अनुवाद करें तो बोल चालके विरुद्ध होगा इसलिये "प्रश्न" केवल यही अनुवाद " ननु च " वाक्यका किया है॥

स्थितिग्रहणात्कालसङ्ग्रहः । भावो नामादिषु सङ्गृहीत एव । पुनरेषां किमर्थं ग्रहणमिति ॥ सत्यं, सिद्धम् ॥ विनेयाशयवशात्तत्त्वदेशनाविकल्पः ॥ केचित्संक्षेपरुचयः । केचिद्विस्तररुचयः । अपरे नातिसङ्क्षेपेण[२] नातिविस्तरेण प्रतिपाद्याः ॥ सर्वसत्त्वानुग्रहार्थो हि सतां प्रयास इति अधिगमाभ्युपायभेदोद्देशः कृतः । इतरथा हि "प्रमाणनयैरधिगमः"

स्थिति-ग्रहणात् ;॥॥ काल-सङ्ग्रहः ;। = स्थितिशब्दके लानेसे (इस सूत्रके) कालका ग्रहण होता है (और)
भावः ;। नामादिषु ;॥॥ सङ्गृहीतः ;। एव = भाव शब्द नामादि निक्षेपमें गर्भित है ही (= एव–देखो पंचवासूत्र)
पुनर्* एषां ;॥॥ ग्रहणं ;॥॥ किमर्थं ;॥॥ इति = फिर इन (सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल-भाव) का ग्रहण क्यों किया है
सत्यं* सिद्धम् ;॥॥ विनेय-आशय-वशात् ;। = हां (पिछले सूत्र और नामादि निक्षेपसे) सिद्ध है शिष्यके अभिप्राय वशसे
तत्त्व-देशना-विकल्पः ;। = तत्त्वके उपदेशका भेद किया है (अर्थात् जुदे २ प्रकारसे वर्णन किया है]
केचित्* संक्षेप-रुचयः ;। = कोई (शिष्य) संक्षेप इच्छावाले हैं (थोडेसे कहनेमें बहुत समझ लेते हैं)
केचित् विस्तर-रुचयः ;। = कितनेही विस्तार रुचिवाले हैं (बहुत कथन करनेसे समझ पाते हैं]
अपरे ;। न* अतिसंक्षेपेण ;॥॥ न अति = अन्य वा इतर (शिष्य) न बहुत संक्षेपकरि न बहुत
विस्तरेण ;॥॥ प्रतिपाद्याः ;। = विस्तारसे समझाये जाते हैं (अर्थात् मध्यम कथन करनेसे समझते हैं)
सर्वसत्त्व-अनुग्रह-अर्थः ;। हि सतां ;। प्रयासः ;। = समस्त प्राणियोंके उपकारके लिये ही सत्पुरुषोंका परिश्रम होता है
इति अधिगम-अभ्युपाय-भेद-उद्देशः ;। कृतः ;। = ऐसे ज्ञान करनेके अच्छे उपायोंके भेदसे कथन किया है [मिश्रतासे कथन है]
इतरथा* हि* प्रमाणनयैरधिगमः ;। = नहीं (=इतरथा) तो (हि) "प्रमाण और नयोंसे ज्ञान होता है" ऐसे

---

(१) नामादयस्त्रयः द्रव्यार्थिकनयविषयाः । भावः पर्यायार्थिकनयविषयो यतः ॥
नाम-आदयः ;। त्रयः ;। द्रव्यार्थिक-नयविषयाः ;। = नाम, स्थापना, द्रव्य, (निक्षेप) द्रव्यार्थिक नय (नैगम, संग्रह, व्यवहार) के विषय हैं
यतः* भावः ;। पर्यायार्थिक-नय-विषयः ;। = क्यों कि भाव निक्षेप पर्यायार्थिक-नय (ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत) का विषय है

(२) सङ्क्षेपेण शब्द क्रियाविशेषण है अतः नपुंसक लिंग है यद्यपि ये शब्द पुल्लिंग हैं ।

इत्यनेनैव सिद्धत्वादितरेषां ग्रहणमनर्थकं स्यात्॥ तत्र जीवद्रव्यमधिकृत्य सदाद्यनुयोगद्वारानिरूपणं क्रियते॥ जीवाश्चतुर्दशसु गुणस्थानेषु व्यवस्थिताः॥ १ मिथ्यादृष्टिः। २ सासादनसम्यग्दृष्टिः ३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः। ५ संयतासंयतः। ६ प्रमत्तसंयतः। ७ अप्रमत्तसंयतः। ८ अपूर्वकरणस्थाने उपशमकः क्षपकः। ९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः।

अनेन ‖ एव सिद्धत्वात् ‖ इतरेषां ‖ ग्रहणम् ‖ = इस (सूत्र) करि ही सिद्ध होनेतें अन्य (पांचवें-छठवें-आठवें सूत्रोंका) ग्रहण
अनर्थकं ‖ स्यात् ⊤ तत्र * जीवद्रव्यम् ‖ = निःप्रयोजन वा व्यर्थ होता [अतः मेरेसे कहना योग्य है] तहां चेतन द्रव्यको
अधिकृत्य÷सत्-आदि-अनुयोगद्वार-निरूपणं ‖ = आश्रयकर सत् आदि [आठ] प्रश्नोंद्वारा कथन वा उपदेश
क्रियते ⊤ जीवाः ‖ चतुर्दश—गुणस्थानेषु ‖ = किया है ॥ और जीव चौदह गुणस्थानोंमें
व्यवस्थिताः ‖ = व्यवस्थित हैं वा तिष्ठ हैं [और वे गुणस्थान निम्न लिखित हैं)
१ मिथ्यादृष्टिः ‖ । २ सासादनसम्यग्दृष्टिः ‖ = १ मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थानवर्ती। २ सासादन सम्यग्दृष्टि द्वितीयगुणस्थानवाले
३ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ‖ । ४ असंयतसम्यग्दृष्टिः ‖ = ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि [मिश्रगुणस्थानवर्ती] ४ अविरत सम्यग्दृष्टि
५ संयतासंयतः ‖ ६ प्रमत्तसंयतः ‖ ७ अप्रमत्तसंयतः ‖ = ५ संयतासंयमी वा देशविरतसंयमी ६ प्रमत्तसंयमी, ७ अप्रमत्तसंयमी,
८ अपूर्वकरणस्थाने ‖ उपशमकः ‖ = [८ क] अपूर्वकरण [गुण] स्थानमें उपशम करनेवाला [उपशमक]
(अपूर्वकरणस्थाने) क्षपकः ‖ = (८ ख) अपूर्वकरण (गुण) स्थानमें क्षय करनेवाला [क्षपक]
९ अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने ‖ उपशमकः ‖ = [९ क] अनवृत्तिबादरसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला
[अनिवृत्तिबादरसाम्परायस्थाने] क्षपकः ‖ = [९ ख] अनिवृत्तिबादरसाम्पराय [गुण] स्थानमें क्षय करनेवाला क्षपक

(१) अनेन—इद म् शब्दकी तृतीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनोंमें हो सकती है यहां पर सूत्र शब्दसे सम्बन्ध रखता है अतः नपुंसक लिंगमें है इदम्का अनया—तृतीया विभक्ति स्त्री लिंगका रूप है (२) इतरेषाम्—इतर शब्दकी षष्ठी नपुंसक लिंग वा पुल्लिंग हो सकती है यहां पर सूत्र शब्दसे संबंधित है अतः नपुंसक लिंगमें है। (३) क्रियते—कर्मणि प्रधानमें यदि धातुके अंतमें ऋ हो और इस ऋ के पहिले कोई संयोग संलग्न व्यंजन न हो तो ऋ के स्थानमें रि लाते हैं पश्चात् य कर्मणि प्रत्यय और ते एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमानकालकी क्रियाका चिन्ह लगानेसे क्रियते बन जाता है जैसे कृ=कि क्रिय+ते=क्रियते।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने उपशमकः क्षपकः। ११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः। १२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः। १३ सयोगकेवली। १४ अयोगकेवली चेति॥ एतेषामेव जीवसमासानां निरूपणार्थं चतुर्दशमार्गणास्थानानि ज्ञेयानि॥ गती-न्द्रिय-काय-योग-वेद-कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञा-ऽऽहारका इति॥ तत्र सत्प्ररूपणा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च॥ सामान्येन तावत् अस्ति मिथ्यादृष्टिः।

१० सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ‡ा उपशमकः ‡ा	= १० क, सूक्ष्मसाम्पराय (गुण) स्थानमें उपशम करनेवाला उपशमक
[सूक्ष्मसाम्परायस्थाने] क्षपकः ‡ा	= १० ख, [सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें] नाश करनेवाला क्षपक
११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थः ‡ा	= ११ उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ
१२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थः ‡ा	= १२ कषायविनाशक वीतराग छद्मस्थ
१३ सयोगकेवली ‡ा च अयोगकेवली ‡ा इति	= १३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली॥ ऐसे [१४ गुणस्थानवर्ती] हैं
एतेषाम् ‡ा एव जीवसमासानां ‡ा निरूपण-अर्थं ‡ाा	= इनही गुणस्थानोंके [= जीवसमासानां] कथनके लिये
चतुर्दश-मार्गणा-स्थानानि ‡ाा ज्ञेयानि ‡ाा	= चौदह मार्गणास्थान जानने योग्य हैं (और वे)
गति-इन्द्रिय-काय-योग-वेद—	= गति [चार] इंद्रिय [पांच] काय [छह] योग [पन्द्रह] वेद [तीन]
कषाय-ज्ञान-संयम-दर्शन-लेश्या—	= कषाय (पच्चीस) ज्ञान (आठ) संयम (सात) दर्शन (चार) लेश्या [छह]
भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञा-आहारकाः ‡ा इति॥	= भव्य (दो) सम्यक्त्व (तीन) संज्ञा (दो) आहारक (दो) ऐसे मार्गणा हैं
तत्र सत्प्ररूपणा ‡ाा द्विविधा ‡ाा सामान्येन ‡ा	= वहां सत्प्ररूपणा दो प्रकार है सामान्यकरि अथवा संक्षेपकरि
च विशेषेण ‡ा। सामान्येन ‡ाा तावत् *	= और (= च) विशेषकरि। संक्षेपकरि प्रथम (तावत्)
मिथ्यादृष्टिः ‡ा अस्ति	= मिथ्यादृष्टि सत्‌रूप है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका अस्तित्व होनापन [वर्तमान] है

(१) " ऐसे चौदह गुणस्थान जानने। बहुरि इनिकूं जीवसमास संज्ञा भी कही है " सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ६७॥ इसलिये हमने यहां जीवसमासका अनुवाद गुणस्थान किया है॥ " जहां जीव पाइये सो जीवसमास कहिये " जीवसमास ५७ हैं और ६८ भी हैं जीवाः ‡ा सम्यग् ‡ाा आसते T येषु इति जीवसमासाः ‡ा = जिन स्थानोंमें (= येषु) जीव अधिक (= सम्यग्) तिष्ठते हैं सो जीवसमास है॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिरित्येवमादि ॥ विशेषेण—गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु आद्यानि चत्वारि गुणस्थानानि सन्ति । तिर्यग्गतौ तान्येव संयतासंयतस्थानाधिकानि सन्ति । मनुष्यगतौ चतुर्दशापि सन्ति । देवगतौ नारकवत् ॥ इन्द्रियानुवादेन एकेंद्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । पंचेन्द्रियेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥ कायानुवादेन पृथिवीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् ॥ त्रसकायेषु चतुर्दशापि सन्ति ॥

अस्ति सासादनसम्यग्दृष्टिः ।। एवम् इत्यादि = सासादन सम्यग्दृष्टि सत् स्वरूप है । ऐसे [= एवम्] इत्यादि
अर्थात् तीसरे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान पर्यंत अस्तित्व जानो

विशेषेण ।। गति अनुवादेन ।। नरकगतौ ।।। = भेद प्रभेद करि गतिके कथनानुसारसे नरकगतिमें

सर्वासु ।।। पृथिवीषु ।।। आद्यानि ।।।। चत्वारि ।।।। = सब नरकोंमें पहले चार [मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अव्रत]

गुणस्थानानि ।।।। सन्ति । तिर्यग्गतौ ।।। तानि।।।। एव = गुणस्थान हैं । तिर्यंचगतिमें वे ही [अर्थात् आदिके चार गुणस्थान]

संयतासंयत-स्थान-अधिकानि ।।।। सन्ति संयतासंयत गुणस्थान अधिक सहित [अर्थात् आदिके पांच गुणस्थान] हैं

मनुष्यगतौ ।।। चतुर्दश ।।।। सन्ति = मनुष्यगतिमें चौदह ही [अपि] गुणस्थान हैं

देवगतौ ।।। नारकवत्* = देवगतिमें नारकियोंके सदृश (आदिके चार गुणस्थान) है

इन्द्रिय-अनुवादेन ।। एकेन्द्रिय-आदिषु ।। चतुर् = इन्द्रियकी अपेक्षासे एकेन्द्रियसे चार

इन्द्रिय-पर्यन्तेषु ।। एकम् ।।।। एव मिथ्यादृष्टि- = इन्द्रियतकमें एक ही मिथ्यादृष्टि

स्थानम् ।।।। पञ्चेन्द्रियेषु ।।।। चतुर्दश ।।।। अपि सन्ति = गुणस्थान है पंचेन्द्रियमें चौदह (गुणस्थान) भी हैं

कायअनुवादेन ।। पृथिवीकाय आदिषु ।। वनस्पति- = कायकी अपेक्षाकरि पृथिवी कायसे लगाय वनस्पति

काय- = काय (अर्थात् पृथिवीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय)

अन्तेषु ।। एकम् ।।।। एव मिथ्यादृष्टि-स्थानम् ।।।। = पर्यन्तमें एकही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है

त्रसकायेषु ।। चतुर्दश ।।।। अपि सन्ति = त्रसकायमें चौदह भी गुणस्थान हैं ॥

योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदशगुणस्थानानि भवन्ति । ततः परः अयोगकेवली ॥ वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानि सन्ति । अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादराद्ययोगकेवल्यन्तानि ॥ कषायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि संति । लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि । अकषायः

योग-अनुवादेन ‖ त्रिषु ‖ योगेषु ‖ त्रयोदश-गुणस्थानानि ‖॥ भवन्ति ⊤ ततः * परः ‖ अयोग-केवली ‖

=योगकी अपेक्षासे [मन वचन काय] तीनों योगनमें तेरह =गुणस्थान (प्रथमसे तेरह तक) होते हैं। तहां [तेरह गुणस्थान] से आगे =अयोग केवली है अर्थात् चौदहवें गुणस्थानमें कोई भी योग नहीं है

वेद-अनुवादेन ‖ त्रिषु ‖ वेदेषु ‖ मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्तिबादर-अंतानि ‖॥ सन्ति ⊤

=वेदके कथनानुसारकरि तीनों (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) वेदोंमें मिथ्यादृष्टिके =प्रारंभसे [आदि] अनिवृत्ति बादर [नववें) गुणस्थान पर्यंत हैं। अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानसे नववें गुणस्थानके दो (तीन वेद और तीन अवेद) भागोंमेंसे वेदभाग तक है।

अपगतवेदेषु ‖ अनिवृत्तिबादर-आदि-अयोग-केवलि-अन्तानि ‖॥

=वेदरहितमें अनिवृत्ति बादर (नवमे गुणस्थान के अंतके तीन भाग) से =अयोगकेवली (चौदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं यहां भावार्थ ऐसा है, कि अनिवृत्ति बादर साम्पराय नववें गुणस्थानके छह भाग किये हैं उनमें से पहिले तीन भागोंमें वेद है और अंतके तीन भाग वेदरहित हैं इस कारण यह गुणस्थान वेदरहित और वेदसहित दोनों गुणस्थानोंमें लिया गया है

कषाय-अनुवादेन ‖ क्रोध-मान-मायासु ‖ मिथ्यादृष्टि आदीनि ‖॥ अनिवृत्तिबादर-स्थान+अंतानि ‖॥ संति लोभकषाये ‖ तानि ‖॥ एव सूक्ष्मसांपराय-स्थान अधिकानि ‖॥ अकषायः ‖

=कषायके कथनानुसार करि क्रोध मान माया में मिथ्यादृष्टि प्रथमगुणस्थान =से अनिवृत्ति बादर साम्पराय (नववें गुणस्थान) तक (नौ गुण स्थान) हैं =लोभ कषायमें वेही [प्रथमसे नोतक गुणस्थान] और सूक्ष्मसांपराय =गुणस्थान अधिक [ऐसे दश] गुणस्थान हैं। कषायरहित

उपशान्तकषायः क्षीणकषायः सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानश्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति । (१) आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयत-सम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति ।

उपशान्तकषायः ।। क्षीणकषायः ।।	= उपशान्तकषाय (ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती) क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
सयोगकेवली ।। च अयोगकेवली ।।	= सयोगकेवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) और अयोगकेवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) हैं
ज्ञान अनुवादेन ।। मति-अज्ञान-श्रुत-अज्ञान-	= ज्ञानकी विवक्षासे मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान
विभङ्गज्ञानेषु ।। मिथ्यादृष्टिः ।	= कुअवधिज्ञान [= विभङ्गज्ञान] में मिथ्यादृष्टि [प्रथम गुणस्थानवर्ती]
च सासादनसम्यग्दृष्टिः ।। अस्ति ।	= और [= च] सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] हैं
आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानेषु ।।। असंयत	= मति श्रुत अवधि ज्ञानोंमें अविरत
सम्यग्दृष्टि आदीनि ।।। क्षीणकषाय-अन्तानि ।।। सन्ति	= सम्यग्दृष्टि प्रभृति क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] पर्यंत (नोगुणस्थान) हैं

(१) मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका प्रारंभ असंयत चौथे गुणस्थानसे इसहेतुसे होता है कि—

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ज्ञानमज्ञानं च केवलं न सम्भवति । तस्याज्ञानत्रयाधारत्वात् । उक्तं च'मिस्से णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं अण्णाणत्तये (त्तिये)णेति तेन ज्ञानानुवादे मिश्रस्यानभिधानम् । तस्याज्ञानप्ररूपणायामेवाभिधानं ज्ञातव्यम् । ज्ञानस्य यथार्थविषयत्वाभावात् । इति श्रुतसागरः ॥

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।। ज्ञानम् ।।। अज्ञानं ।।। च	= सम्यङ्मिथ्यादृष्टि (तीसरे गुणस्थानवर्ती) के ज्ञान और अज्ञान
केवलं ।।। न सम्भवति T तस्य ।। अज्ञानत्रय-	= अकेला (= निरा) सम्भव नहीं है । क्योंकि (तिस मिश्रस्थान)के तीन अज्ञानका
आधारत्वात् ।।। उक्तं ।।। च मिस्से ।।। (मिश्रे)	= आश्रय वा सामीप्य है । कहा भी (= च) है । मिश्र (तीसरे) गुणस्थानमें
णाणत्तय (त्तिय) मिस्सं ।।। = ज्ञानत्रय-(त्रिक मिश्र ।।।	= तीन (मति-श्रुत-अवधि) ज्ञान मिश्रित हैं अथवा मिले हुये हैं
अण्णाणत्तये(त्तिये)ण ।।। इति	= तीन (मति-श्रुत-अवधि) अज्ञानकरि । (ज्ञान कुज्ञान नीर क्षीरके समान मिले हुये
अज्ञान त्रयेण ।।। (त्रिकेण ।।।) इति	हैं इसने न तो ज्ञानका ही मिश्रगुणस्थानमें अस्तित्व कह सकते हैं न कुज्ञानका)
तेन ।।। ज्ञान-अनुवादे ।।	= तिस (मिश्रमें ज्ञान कुज्ञानको दूध पानीके सदृश मिले रहने) से ज्ञानके प्रकरणमें

मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः सन्ति । केवलज्ञाने संयोगोऽयोगश्च ॥ संयमानुवादेन संयताः प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ताः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताप्रमत्ताश्च । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ।

मनःपर्ययज्ञाने ७।१ प्रमत्तसंयत-आदयः १।३	= मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयमी [छठेगुणस्थान] से
क्षीण-कषाय-अन्ताः १।३ सन्ति । केवलज्ञाने ७।१	= क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) तक हैं केवलज्ञानमें
सयोगः १।१ च अयोगः १।१	= सयोगकेवली और (चौदहवें गुणस्थानमें) योगरहित (अयोगकेवली) हैं
संयम-अनुवादेन ३।१ संयताः १।३ प्रमत्त आदयः १।३	= संयमके कथनानुसारसे संयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवालों] से
अयोग-केवलि-अन्ताः १।३ सामायिकच्छेदोपस्थापना-	= अयोगकेवली (चौदह गुणस्थानवर्ती) तक हैं । सामायिकच्छेदोपस्थापना
शुद्धि-संयताः १।३ प्रमत्त-आदयः १।३ अनिवृत्तिस्थान	= शुद्धिसंयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थान) के आरम्भसे अनिवृत्तिगुणस्थान
अन्ताः १।३ परिहारविशुद्धि-संयताः १।३ प्रमत्त-	= पर्यंत हैं । परिहारविशुद्धि संयमी प्रमत्त (छठे गुणस्थानवर्ती)
अप्रमत्ताः १।३ च सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः १।३	= और अप्रमत्त [सातवें गुणस्थान वर्ती] हैं । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी
एकस्मिन् ७।१ एव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने ७।१	= एक [= एकस्मिन्] ही सूक्ष्मसाम्पराय [दशवें] गुणस्थानमें हैं

मिश्रस्य ६।१ अत्र-अभिधानम् १।१ । तस्य ६।१ अज्ञान-प्ररूपणायाम् ७।१ एव अभिधानं १।१ ज्ञातव्यम् १।१ ज्ञानस्य १।१ यथार्थ - विषयत्व—अभावात् ५।१

= मिश्र (तीसरे गुणस्थान) का कथन नहीं है । तिस (मिश्रगुणस्थान) का
= अज्ञानप्ररूपणामें ही (= एव) कथन जानना योग्य है
= क्योंकि ज्ञानका ठीक ठीक विषय है उसका (अज्ञानमें) अभाव है अर्थात् ज्ञान अपने विषयोंसे पदार्थके स्वरूपको ज्योंका त्यों ग्रहण करता है उस प्रकारका विषय का सामर्थ्य जो पदार्थके स्वरूपको यथार्थ ग्रहण करे वह अज्ञानमें नहीं पाई जाती है

इति श्रुतसागरः १।१

= ऐसा श्रुतसागर सूरिकी तत्त्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीकामें है ॥

(१) जब ह्—ष्—न् शब्द अथवा पदके अन्तमें हो और उसके प्रथम कोई ह्रस्व स्वर हो और उक्त ह्—ष्—न् के पीछे कोई स्वर हो तो ह्—ण् अथवा न् दुहरा हो जाता है इसलिये एकस्मिन् पदमें न् दुहरा होकर एकस्मिन्नेव बन गया ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयता उपशांतकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः । संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने । असंयता आद्येषु चतुर्षु गुणस्थानेषु ॥ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि । केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानि सन्ति । तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि । शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः ‖ उपशांतकषाय- = यथाख्यातविहार शुद्धि संयमी उपशांतकषाय [ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती]
आदयः ‖ अयोगकेवलि-अन्ताः ‖ संयतासंयताः ‖ = से अयोगकेवली [चौदहवां गुणस्थानवर्ती] तक हैं । संयमासंयमी
एकस्मिन् ‖ एव संयतासंयतस्थाने ‖ = एक ही संयतासंयत [पांचवें] गुणस्थानमें हैं
असंयताः ‖ आद्येषु ‖ चतुर्षु ‖ गुणस्थानेषु ‖ = असंयमी पहिले चार [मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत] गुणस्थानोंमें हैं
दर्शनानुवादेन ‖ चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शनयोः ‖ = दर्शनके कथनानुसारसे चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनमें
मिथ्यादृष्टि आदीनि ‖ क्षीणकषाय-अन्तानि ‖ = मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे क्षीणकषाय [बारहवें गुणस्थान] पर्यंत
सन्ति । अवधि-दर्शने ‖ असंयत-सम्यग्दृष्टि- = हैं । अवधिदर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थान]
आदीनि ‖ क्षीणकषाय-अन्तानि ‖ केवल- = से लेकर क्षीणकषाय [बारहवें गुणस्थान] पर्यंत हैं । केवल
दर्शने ‖ सयोगकेवली ‖ च अयोगकेवली ‖ = दर्शनमें सयोगकेवली [तेरहवें गुणस्थानवर्ती] और अयोगकेवली हैं
लेश्या-अनुवादेन ‖ कृष्ण-नील-कपोत- = लेश्याके कथनानुसारसे कृष्ण-नील-कपोत
लेश्यासु ‖ मिथ्यादृष्टि-आदीनि ‖ असंयत- = लेश्याओंमें मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान) से लेकर अविरत
सम्यग्दृष्टि अन्तानि ‖ सन्ति ‖ = सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थान) पर्यंत (ऐसे चार गुणस्थान) हैं
तेजःपद्मलेश्ययोः ‖ मिथ्यादृष्टि-आदीनि ‖ = पीत पद्म दो लेश्याओंमें, मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान) से लेकर
अप्रमत्तस्थान-अन्तानि ‖ शुक्ललेश्यायां ‖ = अप्रमत्त (सातवां गुणस्थान) तक है । शुक्ललेश्यामें [उपचारमात्र है]
मिथ्यादृष्टि-आदीनि ‖ सयोगकेवलि-अन्तानि ‖ = मिथ्यादृष्टि (से लेकर सयोगकेवली) तक हैं । तेरहवें गुणस्थानमें लेश्या

अलेश्या अयोगकेवलिनः ॥ भव्यानुवादेन भव्येषु चतुर्दशापि सन्ति । अभव्या आद्य एव स्थाने ॥ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि । सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यङ्मिथ्यादृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने ॥ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु द्वादशगुणस्थानानि क्षीणकषायान्तानि । असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । तदुभयव्यपदेशरहितः सयोगकेवली अयोगकेवली च ॥

अलेश्याः ॥ अयोगकेवलिनः ॥ । भव्य-अनुवादेन ॥ = लेश्यारहित अयोगकेवली हैं ॥ भव्यजीवोंकी अपेक्षासे
भव्येषु ॥ चतुर्दश ॥ अपि* सन्ति । अभव्याः ॥ = भव्य जीवोंमें चौदह (सर्वगुणस्थान) ही हैं । अभव्य जीव
आद्ये ॥ एव स्थाने ॥ सम्यक्त्व-अनुवादेन ॥ = प्रथम (मिथ्यात्व) ही गुणस्थानमें हैं । सम्यग्दर्शनकी विवक्षासे
क्षायिकसम्यक्त्वे ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि— = क्षायिक सम्यग्दर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती)
आदीनि ॥ अयोगकेवलि अन्तानि ॥ सन्ति = से लेकर अयोगकेवली तक (ग्यारह गुणस्थान वाले) हैं
क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि = क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें अविरत सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थानवर्ती)
आदीनि ॥ । अप्रमत्त-अन्तानि ॥ = से लेकर अप्रमत्त [सातवां गुणस्थान ऐसे चार गुणस्थान] तक है
औपशमिक-सम्यक्त्वे ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि- = उपशम सम्यग्दर्शनमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थान]
आदीनि ॥ उपशांतकषाय-अन्तानि ॥ = से लेकर उपशांत कषाय ग्यारहवां गुणस्थान पर्यंत हैं
सासादन सम्यग्दृष्टिः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टि [द्वितीयगुणस्थानवर्ती] मिश्र (तीसरे गुणस्थानवर्ती)
च मिथ्यादृष्टिः ॥ स्वे ॥ स्वे ॥ स्थाने ॥ = और मिथ्यादृष्टि [प्रथम गुणस्थानवाले] अपने अपने गुणस्थानमें हैं
संज्ञा-अनुवादेन ॥ संज्ञिषु ॥ द्वादश-गुणस्थानानि ॥ = संज्ञाके कथनानुसारसे सैनीमें बारह गुणस्थान
क्षीणकषाय-अन्तानि ॥ क्षीणकषाय पर्यंत हैं अर्थात् सैनी प्रथम गुणस्थानसे बारहवें तक हैं
असंज्ञिषु ॥ एकम् ॥ एव मिथ्यादृष्टिस्थानम् ॥ = असैनीयोंमें एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है
तद्-उभय-व्यपदेशरहितः ॥ सयोगकेवली ॥ = उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित सयोगकेवली
च [illegible]योगकेवली ॥ = और अयोगकेवली है

यथाक्रम

आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि। अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च। समुद्घातगतः सयोगकेवली अयोगकेवली च। सिद्धाः परमेष्ठिनः अतीतगुणस्थानाः ॥ उक्ता सत्प्ररूपणा ॥

आहार अनुवादेन ‖ आहारकेषु ‖ मिथ्यादृष्टि	= आहारकी अपेक्षाकर आहारकमें मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थान)
आदीनि ‖॥ सयोग-केवलि-अन्तानि ‖॥	= से लेकर सयोग केवली (तेरहवें गुणस्थान) तक (तेरह) हैं
अन् आहारकेषु ‖ विग्रह-गति-आपन्नेषु ‖ त्रीणि ‖॥	= अनाहारकोंमें विग्रहगतिको प्राप्तोंमें तीन
गुणस्थानानि ‖॥ मिथ्यादृष्टिः ‖ सासादनसम्यग्दृष्टिः ‖	= गुणस्थान मिथ्यादृष्टि (प्रथम) सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरा)
च असंयतसम्यग्दृष्टिः ‖ समुद्घातगतः ‖	= और असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथा) एवं समुद्घातको प्राप्त
सयोगकेवली ‖ च अयोगकेवली ‖	= सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती हैं और अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थान वर्ती अनाहारक) हैं ॥ भावार्थ—यह जीव तीन अवस्थामें अनाहारक हो सक्ता है एक तो विग्रहगति करते समय दूसरे सयोगकेवलीका आत्मा समुद्घात करते समय, तीसरे अयोगकेवली हो जानेके समय ॥ उसमें साधारण जीवके विग्रहगति (अर्थात् नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन) में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानोंमेंसे कोई एक गुणस्थान होता है सयोगकेवलीके समुद्घात [अर्थात् मूलदेह न छोडकर जीवके प्रदेश बाहर जाकर पुनः उसी शरीरमें लौट आने] की अवस्थामें तेरहवां गुणस्थान रहता है और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानवर्ती अनाहारक होते हैं और उनके समुद्घात नहीं होता है]
सिद्धाः ‖ परमेष्ठिनः ‖ अतीत-गुणस्थानाः ‖	= सिद्ध परमेष्ठी अर्थात् मुक्तजीव गुणस्थानरहित हैं।
उक्ता ‖॥ सत्प्ररूपणा ‖॥	= इस प्रकार सत् [प्रथम प्ररूपणा] कही गई ॥

(१) औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर और छह (आहार शरीर-इन्द्रिय-स्वासोच्छ्वास-भाषा और मन) पर्याप्तिके योग्य पुद्गल वर्गणाके ग्रहणको आहार कहते हैं। ऐसे आहारको ग्रहण नहीं करे तब तक उसको अनाहारक कहते हैं। जीव अधिकसे अधिक विग्रहगतिमें तीन समय तक अनाहारक रहता है। चौथे समयमें शरीर पर्याप्तिका ग्रहण करके आहारक हो जाता है।

सङ्ख्याप्ररूपणोच्यते—सा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च पल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमिताः ॥ प्रमत्तसंयताः कोटीपृथक्त्वसङ्ख्याः । पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा, तिसृणां कोटीनामुपरि

सङ्ख्याप्ररूपणा ।। उच्यते T सा ।। द्विविधा ।। = (अब) सङ्ख्या वा भेद गणना प्ररूपणा कही जाती है वह दो प्रकार है
सामान्येन ।। च विशेषेण ।। = संक्षेपकरि और विशेषकरि अर्थात् संक्षेपसे गुणस्थानमें और भेद प्रभेदकरि मार्गणामें संख्या प्ररूपणाका कथन है ।
सामान्येन ।। तावत् मिथ्यादृष्टिजीवाः ।। = सामान्यसे प्रथम (= तावत्) मिथ्यादृष्टि जीव
अनन्तानन्ताः ।। सासादनसम्यग्दृष्टयः ।। = अनन्तानन्त हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि दूसरे गुणस्थानवर्ती
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ।। असंयतसम्यग्दृष्टयः ।। = मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती
च संयतासंयताः ।। पल्योपम- = और देशविरत संयमी पांचवां गुणस्थानवर्ती पल्योपमके
असंख्येयभागप्रमिताः ।। = असंख्यात भाग प्रमाण हैं
प्रमत्तसंयताः ।। कोटीपृथक्त्वसंख्याः ।। = प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थानवर्ती) हैं जिनकी गणना पृथक्त्व करोड है
पृथक्त्वम् ।।।। इति आगमसंज्ञा ।। तिसृणां ।। = पृथक्त्व ऐसी आगममें गणना तीन
कोटीनाम् ।। उपरि नवानाम् ।। अधस् * = करोडके ऊपर नौ (करोड) के नीचे है (अर्थात् ५९३९८२०६ जीव छठेगुणस्थानमें हैं

(१) तेरह कोड़ी देसे वावण्णा सासणे मुणेयव्वा ॥ मिस्सम्मि य तद्दुगुणा असंजदा सत्त सण्ण कोडीओ ।
तेरह कोड़ी ।। देसे ।। (त्रयोदश ।। कोट्यः ।। देशे ।।) = देशविरत (पांचवें गुणस्थान) में तेरह करोड़ (जीव)
वावण्णा ।। सासणे ।। (द्वापञ्चाशत् ।। सासादने ।।) = बावन करोड़ (जीव) सासादन (दूसरे गुणस्थान) में
मुणेयव्वा ।। मिस्सम्मि ।। य(ज्ञातव्या : ।। मिश्रे ।।च) = जानना, और (= य) मिश्र (गुणस्थान) में
तद्दुगुणा ।। असंजदा ।। (तद्-द्विगुणाः ।। असंयताः ।।) = उस (बावन करोड़के) दूने (एकसौ चार करोड़) हैं असंयत (चौथेगुणस्थानवर्ती)
सत्तसण्ण कोड़ीओ ।। (सप्तशतकोट्यः ।।) = सातसौ करोड़ हैं अर्थात् सात अरब हैं ।

नवानामधः ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । चत्वार उपशमकाः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेण चतुःपञ्चाशत् स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा

अप्रमत्तसंयताः ।। संख्येयाः ।। = अप्रमत्त संयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती) संख्यात अर्थात् २९९९९१०२ हैं
चत्वारः ।। उपशमकाः ।। एकः ।। वा द्वौ ।। वा = चारों उपशम [श्रेणी] वाले एक अथवा दो अथवा
त्रयः ।। वा उत्कर्षेण ।। चतुःपञ्चाशत् ।। प्रवेशेन ।। = तीन [आदि उत्कृष्टकरि चौवन । संख्या तक] प्रवेश होनेसे
स्वकालेन ।। समुदिताः ।। संख्येयाः ।। = अपने अपने कालकरि इकट्ठे हों (तब) संख्यात होते हैं भावार्थ—अपूर्व करण आठवां, अनिवृत्ति करण नवमां, सूक्ष्म सांपराय दशवां, उपशांतकषाय ग्यारहवां, गुणस्थान उपशम श्रेणीमें एक जीवसे लेकर उत्कृष्ट चौवन तक एक समयमें एक २ गुणस्थानमें प्रवेश कर सकते हैं, और चारों गुणस्थानकी समस्त उत्कर्ष संख्या ११९६ जीवोंकी होगी, एक एक गुणस्थानमें २९९,२९९ जीव उत्कृष्ट रह सक्ते हैं और इन गुणस्थानोंमेंसे अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय क्षपक श्रेणीमें भी होते हैं उन प्रत्येकमें उत्कर्ष जीव संख्या २९८ है ॥

चत्वारः ।। = चारों (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय)
क्षपकाः ।। च अयोगकेवलिनः ।। एकः ।। वा * = क्षपक (श्रेणी गुणस्थान) वाले और अयोग केवली एक

च-वा । इन अव्ययोंका प्रयोग संस्कृतमें वाक्यके प्रत्येक भागके साथ करते हैं अथवा केवल वाक्यके अंत भागके साथ करते हैं वाक्यके प्रत्येक भागके साथ च-वा का प्रयोग संस्कृतकी बोल चालके अनुकूल शुद्ध है परन्तु भाषामें वाक्यके प्रथम भागको छोड़कर शेष भागोंमें सर्व में लगा दो अथवा केवल अंत भागमें लगादो इसलिये भाषाके अनुवाद करनेमें संस्कृतके प्रथम च अथवा वा का अनुवाद छोड़ दिया जाता है । नहीं तो बोल चालके प्रतिकूल पड़ता है जैसे 'अथवा एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' बोलनेमें ठीक नहीं है 'एक अथवा दो अथवा तीन उपशमक प्रवेश कर सक्ते हैं' ठीक है । एको द्वौ त्रयो वा = एक दो अथवा तीन इसमें दोनों संस्कृत और हिंदीका प्रयोग ठीक होजाता है ॥ वैसे ही च का है जैसे रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम और लक्ष्मण और भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं ॥ प्रथम चकारका अनुवाद छोड़ दिया गया अथवा रामो लक्ष्मणो भरतः शत्रुघ्नश्च जल्पन्ति = राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तुतलाते हैं यहां दोनों भाषाओंकी बोलचाल मेलकर गई इसलिये ऊपरके प्रथम वाक्को अनुवाद करनेमें छोड़ दिया है ॥

द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः । स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ सयोगकेवलिनः प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः । स्वकालेन समुदिताः शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः ॥ विशेषेण गत्यानुवादेन (१) नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारका मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः

द्वौ ॥ वा * त्रयः ॥ वा उत्कर्षेण ॥ अष्टोत्तरशत संख्याः ॥ प्रवेशेन ॥ स्वकालेन ॥ समुदिताः ॥ संख्येयाः ॥

=अथवा दो अथवा तीन [आदिक] उत्कृष्टकरि एकसौ आठकी संख्या तक प्रवेश होनेसे अपने २ कालकरि इकट्ठे हों (तब) [संख्यात होते हैं अर्थात् पांचों गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक प्रत्येकमें उत्कृष्ट जीव

सयोगकेवलिनः ॥ प्रवेशेन ॥ एकः ॥ वा द्वौ ॥ वा त्रयः ॥ वा उत्कर्षेण ॥ अष्टोत्तरशतसंख्याः ॥ स्वकालेन ॥ समुदिताः ॥ शतसहस्रपृथक्त्वसंख्याः ॥

=सयोग केवली (तेरहवे गुणस्थानवर्ती) प्रवेशकरि एक अथवा दो =अथवा तीन [आदि] उत्कृष्ट करि एकसौ आठकी गणना तक हैं अपने २ =समयकरि समुदाय होय [तब] तीन शतहजारसे ऊपर नौशत हजारसे नीचे हैं (तीन लाखसे ऊपर और नोलाखसे न्यून) अर्थात् उत्कृष्ट ८९८५०२ जीव हो सक्ते हैं ऐसे प्रमत्त संयमीसे अयोग केवलीपर्यंत तीन न्यून नौकरोड संयमी हैं ।

विशेषेण ॥ गत्यनुवादेन ॥

=विशेष रीतिसे गतिके अनुवादकरि

नरकगतौ ॥ प्रथमायां ॥ पृथिव्यां ॥ नारकाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयाः ॥ श्रेणयः ॥

=नरक गतिमें पहली पृथिवी [के अब्बहुल भाग] में नारकी =मिथ्यादृष्टि (जीव) असंख्यात [जगत] श्रेणी हैं ।

---

(१) पृथक्त्व केवल तीनसे ऊपर और नौसे नीचले अर्थमें आता है और जिस संख्याके साथ आता है उसका विशेषण होता है जैसे कोटी पृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीन करोड और नौ करोडके बीचमें हो । शतपृथक्त्वसंख्या अर्थात् वह संख्या जो तीनसौ और नौसेके बीचमें हो । (२) यह श्रेणि क्या है ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि "सप्त रज्जुकमयी मुक्ताफलमालावदाकाशप्रदेशपंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते ॥" मानविशेष इत्यर्थः ॥

सप्तरज्जुकमयी ॥ मुक्ताफलमालावत् * आकाश—प्रदेशपंक्तिः ॥ श्रेणिः ॥ इति उच्यते । मानविशेषः ॥ इति * अर्थः ॥

=सातराजूरूपवाली (=मयी) मोतियोंकी मालाके सदृश आकाशके =प्रदेशोंकी पांती सो श्रेणी कही जाती है । (श्रेणि) परिमाण वा मापका भेद है =ऐसा अर्थ है ।

प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः । स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः । सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः ॥

प्रतर-असंख्येय-भाग-प्रमिताः ॥ = (वे असंख्यात जगतश्रेणी जगत) प्रतरके असंख्यातवें भाग हैं
द्वितीय-आदिषु त्रिषु आ-सप्तम्याः ॥ = दूसरी (पृथिवी वा नरक (से सातवीं (पृथिवी वा नरक) तक [=आ]
मिथ्यादृष्टयः श्रेणी-असंख्येयभागप्रमिताः ॥ सः ॥ च = मिथ्यादृष्टि श्रेणीके असंख्येय भाग परिमाण हैं और वह
असंख्येयभागः ॥ असंख्येयाः ॥ योजनकोट्यः ॥ = असंख्यातवां भाग असंख्यात करोड योजनके प्रदेशोंके समान है ।
सर्वासु ॥ पृथिवीषु ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ = सब (महिलेसे सातवें) नरकमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ च असंयतसम्यग्दृष्टयः ॥ = सम्यग्मिथ्यादृष्टी [तीसरे गुणस्थानवर्ती] और अविरत सम्यग्दृष्टि
पल्योपमा-असंख्येयभागप्रमिताः ॥ तिर्यग्गतौ ॥ = पल्योपमके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं तिर्यंचगतिमें [अनन्तानन्त हैं ॥
तिरश्चां ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तानन्ताः ॥ = मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंकी [संख्या] अनन्तानन्त हैं (तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि
सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः ॥ संयतासंयत-अन्ताः ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से संयतासंयमी तक
पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः ॥ = पल्योपमके असंख्यातवेंभाग परिमाण [तिर्यंच] हैं

(१) प्रतर-असंख्येय-भागप्रमिता ॥ इति यद् ॥ उक्तं ॥ = प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण ऐसे जो (वाक्य) कहागया है
सः ॥ प्रतरः ॥ कियान् ॥ भवति । श्रेणि-गुणिता ॥ = वह प्रतर कितना (परिमाणमें) है । श्रेणीसे गुणी गई (प्रतर है)
श्रेणीः ॥ प्रतरः ॥ उच्यते । = श्रेणी प्रतर कही जाती हैं (श्रेणीको श्रेणीसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हों सो
प्रतर-असंख्यातभागप्रमितानां ॥ असंख्यातानां ॥ = प्रतरके असंख्यातवें भाग परिमाण जो असंख्यात
श्रेणीनां ॥ यावन्तः ॥ प्रदेशाः ॥ तावन्तः ॥ तत्रनारकाः ॥ = श्रेणीयोंके जितने पदेश हों तितने तहां नारकी हैं
इति अर्थः ॥ = ऐसा आशय है अर्थात् असंख्यात जगत श्रेणियोंके (जो श्रेणियां जगत् प्रतरके
असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं) जितने प्रदेश हैं उतने प्रथम नरकमें नारकी हैं

(२) देखो टिप्पणी पृष्ठ ७३-७४ । यहां षष्ठीके आगे संख्या शब्द लगानेसे अनुवाद बनता है वा सप्तमीके अर्थमें षष्ठी अष्टाध्यायी २-३-५ सूत्रसे है

मनुष्यगतौ मनुष्या मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिताः। स चासंख्येयभागः असंख्येया योजनकोट्यः। सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः संख्येयाः। प्रमत्तादीनां सामान्योक्ता संख्या॥ देवगतौ देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः॥

मनुष्यगतौ ३।१ मिथ्यादृष्टयः ३।१ मनुष्याः ३।१ श्रेणि असंख्येयभागप्रमिताः ३।१ च सः १।१ असंख्येयभागः १।१ असंख्येयाः ३।१ योजनकोट्यः ३।१ सासादनसम्यग्दृष्टि आदयः ३।१ संयतासंयत-अन्ताः ३।१ संख्येयाः ३।१ = मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रेणीके असंख्यातवें भाग परिमाण हैं॥ और वह [श्रेणीका] असंख्यातवां भाग = असंख्यात करोड योजन हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि से संयतासंयमी (वा देशव्रती पांचवां गुणस्थानवर्ती) तक संख्यात हैं अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि ५२ करोड हैं, मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती एक अरब चार करोड़ हैं, असंयमी सात अरब हैं संयतासंयमी तेरह करोड हैं यह सबकी उत्कृष्ट संख्या है॥

प्रमत्त-आदीनाम् ६।३ सामान्या १।१ संख्या १।१ उक्ता १।१ = प्रमत्त आदि (शेष गुणस्थानवर्तियों) की (उत्कृष्ट) गणना संक्षेपसे कह दी है अर्थात् चार उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें २९९, चार क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें, और चौदहवें गुणस्थानमें ५९८, और तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव हैं। यह सर्वकी उत्कृष्ट संख्या है॥

देवगतौ ७।१ मिथ्यादृष्टयः १।३ देवाः १।३ असंख्येयाः १।३ श्रेणयः १।३ प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः १।३ = देवगतिमें मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात = श्रेणी है (सो यह देवोंकी संख्या) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण है

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्टयः १।३ पल्योपम-असंख्येयभागप्रमिताः १।३ = सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] मिश्र गुणस्थानवर्ती, असंयमी = सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं॥

(१) श्रेणि—श्रेणी (स्त्री०) = छिद्ररहित पंक्ति। श्रेण्यसंख्येय = श्रेणि—असंख्येय अथवा श्रेणी असंख्येय (इसी वर्णनि सूत्रसे टिप्पणी पृष्ठ १७) श्रेणि का बहुवचन = श्रेणयः है परन्तु श्रेणीका = श्रेण्यः है वृत्तिकारने श्रेणि शब्द लिया है क्योंकि आगे चलकर श्रेणयः बहुवचन लिया है। अतः हमने श्रेणि—असंख्येय ऐसा ही पदच्छेद किया है॥

[२] इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रिया मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः ॥ द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया असंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः ॥

इन्द्रिय-अनुवादेन = एकेन्द्रियाः = मिथ्यादृष्टयः = =इन्द्रियके कथनानुसारसे एकेंद्रिय मिथ्यादृष्टि (जीव)
अनन्तानन्ताः = द्वीन्द्रियाः = त्रीन्द्रियाः = चतुरिन्द्रियाः =अनंतानंत हैं। दो इंद्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले [जीव]
असंख्येयाः = श्रेणयः = प्रतर-असंख्येयभाग- =असंख्यात श्रेणि [परिमाण] हैं वे प्रतरके असंख्यातवें भाग
प्रमिताः = पंचेन्द्रियेषु = मिथ्यादृष्टयः = असंख्येयाः = =परिमाण हैं। पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टि [जीव] असंख्यात
श्रेणयः = प्रतर-असंख्येयभाग-प्रमिताः = =श्रेणी (परिमाण) हैं। (वे असंख्यात जगत् श्रेणी) प्रतरके असंख्यातवां भाग परिमाण हैं।
सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः = अयोगकेवलि अन्ताः = =सासादन सम्यग्दृष्टिसे अयोग केवली पर्यंत (इन १३ स्थानोंमें)
सामान्य-उक्त-संख्याः = =संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें बावन करोड ५२००००००० तीसरेमें एकसौ चार करोड, चौथेमें सातसौ करोड (=सात अरब), पांचवेंमें १३ करोड, छठेमें पांचकरोड तिरानवे-लाख, अठानवें सहस्र दोसौछह (५९३९८२०६) सातवेंमें दो करोड, छियानवैलाख, निन्यानवे सहस्र एकसौ तीन (२९६९९१०३) आठवें-नववें-दशवें और ग्यारहवें उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें दोसौ निन्यानव (२९९) और आठवें, नववें, दशवें क्षपक श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें और क्षीण कषाय बारहवें गुणस्थानमें और अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थानमें प्रत्येकमें ५९८ और सयोग तेरहवां गुणस्थानमें आठलाख अठानवें हजार पांचसौ दो (८९८५०२) दूसरेसे चौदह गुणस्थान तक सर्व जीवोंकी संख्या ८७७९९९९२१७ हुई ॥

(२) सामान्योक्तसंख्याः = संक्षेपसे वर्णित संख्यावाले, अतः यह वाक्य (प्रथमा विभक्ति बहुवचन) पुल्लिंग है।

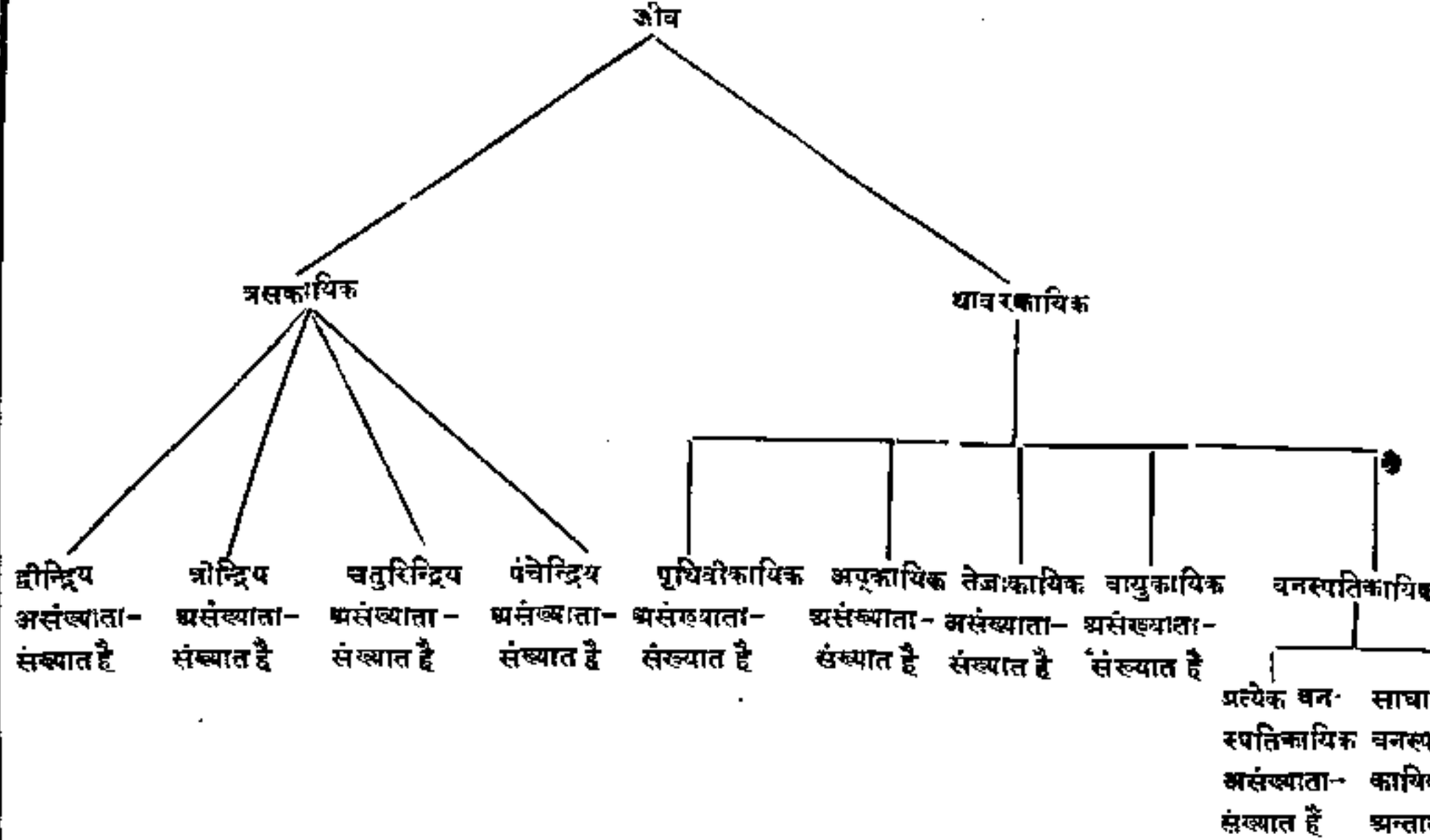
(३) कायानुवादेन—पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजःकायिका वायुकायिका असंख्येयलोकाः। वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ताः। त्रसकायिकसंख्या पंचेन्द्रियवत्॥

काय-अनुवादेन ॥ पृथिवीकायिकाः ॥ अप्कायिकाः ॥ =कायकी विवक्षासे पृथिवीकायिक, जलकायिक,
तेजःकायिकाः ॥ वायुकायिकाः ॥ असंख्येयलोकाः ॥ =अग्निकायिक, पवनकायिक, असंख्यात लोक (परिमाण) हैं
वनस्पतिकायिका अनंतानन्ताः ॥ =वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त [प्रमाण] हैं [अवश्य पढो]
त्रसकायिकसंख्या ॥ पंचेन्द्रियवत्* =त्रसकायिककी गणना पांचइंद्रियवालोंके समान है (इसके नीचेकी टिप्पणी

(१) पांच इंद्रियवालोंके समान है अर्थात् पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या पृष्ठ ६८ में असंख्यात जगत् श्रेणी प्रमाण कह चुके हैं और ये असंख्यात जगत श्रेणी जगत प्रतरके असंख्यातवां भाग बराबर है और यह भी पृष्ठ ६८ में लिख चुके हैं कि सासादन दूसरे गुणस्थानसे चौदह गुणस्थान तक ८७७१६६६६६७ जीव हैं यह छोटी सी संख्या भी प्रथम संख्यामें अन्तर्गत होनेसे सामान्य रीतिसे कह सकते है कि पांच इन्द्रिय वाले जीवोंकी संख्या असंख्यात जगत श्रेणी है=जगत प्रतरके असंख्यातवें भागके=असंख्याता संख्यात=असंख्येयलोक है क्योंकि लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं अतः असंख्येय लोक असंख्यात×असंख्यात=असंख्याता संख्यात (देखो पं० खूबचंद्रजी अनुवादित गोमट्टसारजी जीवकांडगाथा १७४) और सं-सर्वार्थवृत्ति पृष्ठ २६ (३) ॥ सं-सः वृत्ति पृष्ठ २८ में यह भी कथन है कि दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रियकी संख्या असंख्यात श्रेणी है जो जगत प्रतरके असंख्यातवां भाग है और यह भी बात है कि वास्तवमें विशेषतासे पंचेंद्रिय जीवोंसे चौइन्द्रिय जीव अधिक हैं और चौइन्द्रिय जीवोंसे तीन इन्द्रिय जीव अधिक हैं और त्रिइंद्रिय जीवोंसे दोइन्द्रिय जीव अधिक हैं जब केवल पंचेन्द्रिय जीव असंख्यात जगत श्रेणी हैं तब प्रत्येक वर्गके जीव (दोइन्द्रिय-त्रिइन्द्रिय-चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय) असंख्यात श्रेणी प्रमाण होना चाहिये और इस प्रकार चार असंख्यात श्रेणियां हुई ॥ फिर वृत्तिकारने पंचेन्द्रियवत् कैसे कहा और यह बात भी प्रत्यक्ष है कि सर्व त्रस जीवोंकी संख्या सूक्ष्मदृष्टिसे पंचेन्द्रियके बराबर नहीं हो सकती है क्योंकि त्रस जीवोंमें दोइन्द्रियसे लेकर पांच इन्द्रिय तक सम्मिलित हैं। त्रस शब्द ऐसा विस्तृत है कि पांच इन्द्रियवाले जीवोंके अतिरिक्त तीन वर्गके जीव और भी उसीमें अन्तर्गत हैं ॥ अब इसके दो उत्तर हो सकते हैं।

असंख्येयाः श्रेणयः=[असंख्यात श्रेणीयें) इसके छोटे बड़े रूपसे असंख्यात ही भेद हो सकते हैं इसलिये दोइन्द्रियसे चारइन्द्रिय तक असंख्यात श्रेणी संख्या कही और फिर उसके अनन्तर पंचेन्द्रियकी संख्या असंख्यात श्रेणी कही, पश्चात् त्रसजीव जिसमें दो इन्द्रियसे चौइंद्रिय तकके जीव और पंचेंद्रिय जीव भी गर्भित हैं इनकी भी संख्या असंख्यात श्रेणी प्रमाण कही ॥ यह पिछली असंख्यात श्रेणीकी गणना न्यारी न्यारी दो बार कही हुई असंख्यात श्रेणियोंकी संख्यासे बहुत बड़ी संख्या होगी क्योंकि असंख्यातके भी असंख्यात भेद हो सकते हैं ॥

(२। उत्तर देनेके प्रथम भांति भांतिके जीवोंका एक मानचित्र लिखते हैं जिससे उत्तर सरलतासे समझमें आ जावे और स्मरण रहे कि असंख्यात जगत श्रेणी, जगत प्रतरका असंख्यातवां भाग, असंख्येयलोक, असंख्यातासंख्यात एकार्थवाची शब्द हैं॥



अपर्युक्त मान चित्रसे स्पष्ट है कि त्रसके अनुवादकरि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवमें प्रत्येक वर्गकी संख्या असं-

४ योगानुवादेन-मनोयोगिनो वग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । काययोगिषु मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । त्रयाणामपि योगिनां सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्तसंयतादयः सयोगकेवल्यन्ताः संख्येयाः । अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसङ्ख्याः ॥

योगानुवादेन ।। मनोयोगिनः ।। च वाग्योगिनः ।।	= योगकी अपेक्षाकरि मन योगवाले और वचनयोगवाले
मिथ्यादृष्टयः ।। असंख्येयाः ।।। श्रेणयः ।।।	= मिथ्यादृष्टि असंख्यात जगतश्रेणी (परिमाण संख्यामें) हैं। (वे असंख्यात
प्रतर-असंख्येयभागप्रमिताः ।।। काययोगिषु ।।	= जगत श्रेणी) प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । काययोगवालोंमें
मिथ्यादृष्टयः ।। अनन्तानन्ताः ।। त्रयाणाम् ।। अपि	= मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त प्रमाण हैं । (मन वचन-काय) तीनोंही
योगिनां ।। सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः ।।	= योगवालोंमें सासादन सम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती] से
संयतासंयत-अन्ताः ।। पल्योपम-असंख्येयभाग-	= संयमासंयमी पर्यंत पल्योपमके असंख्यातवें भाग
प्रमिताः ।।	= प्रमाण हैं अर्थात् दूसरेमें ५२ करोड तीसरेमें एक अरब चार करोड, चौथेमें सात अरब, पांचवेंमें तेरह करोड़ (जीव) हैं
प्रमत्त संयत-आदयः ।। सयोग केवलि अन्ताः ।।	= प्रमत्तसंयमी [छठे गुणस्थानवर्ती] से लेकर सयोगकेवली पर्यंत
संख्येयाः ।।	= संख्यात हैं अर्थात् ८९९९९३९९ हैं जिनका विशेष कथन कर चुके हैं
अयोगकेवलिनः ।। सामान्य उक्तसंख्याः ।।	= अयोग केवलज्ञानवाले संक्षेपसे [प्रथम] कही हुई संख्यावाले हैं ५९८ हैं

ख्यात जगतश्रेणी प्रमाण है । और यही पं० टोडरमलजीने ' थावर संख पिपीलिय ' इत्यादि गाथाका अर्थ किया है वह शब्दशः इसप्रकार है कि " थावर जो पृथ्वी अप्, तेज वायु प्रत्येक वनस्पती ए पंच प्रकार तौ एकेंद्री बहुरि संख कौड़ी लट इत्यादि बेंद्री बहुरि कीडी मकोड़ा इत्यादि तेन्द्री बहुरि भ्रमर माखी पतंग इत्यादि चौइन्द्रिय बहुरि मनुष्य देव नारकी अर जलचरादि तिर्यंच ते पंचेन्द्री ए जुदे जुदे एक एक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं। बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पति रूप एकेंद्री ते अनंतानंत हैं ॥ "

(५) वेदानुवादेन स्त्रीवेदाः पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसङ्ख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । नपुंसकवेदा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । स्त्रीवेदा नपुंसकवेदाश्च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः ।

ऐसे प्रमत्तसंयमीसे सयोगी तक ८९९९३९९+४९८ अयोगी तीन न्यून नौ करोड़ हुये

वेद-अनुवादेन ; स्त्रीवेदाः ; पुंवेदाः ; च = वेदकी अपेक्षासे स्त्री वेदवाले और पुरुष वेदवाले

मिथ्यादृष्टयः ; असंख्येयाः ; श्रेणयः ; = मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत] श्रेणी [प्रमाण] हैं। वे [असंख्यात श्रेणी]

प्रतर-असंख्येय भाग = प्रतरके असंख्यातवें भाग

प्रमिताः ; । नपुंसकवेदाः ; मिथ्यादृष्टयः अनन्तानन्ताः ; = प्रमाण हैं । नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं

स्त्रीवेदाः ; च नपुंसकवेदाः ; सासादनसम्यग्दृष्टि- = स्त्रीवेद और नपुंसक वेदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि [दूसरे गुणस्थानवर्ती]

आदयः ; संयतासंयत-अन्ताः ; सामान्य-उक्त-संख्याः = से लेकर संयमासंयमी [पांचवे गुणस्थान वाले] तक संक्षेपसे [पहिले] कही संख्यावाले हैं अर्थात् "गुणस्थानवत् संख्या है" स० सिद्धि० वचनिका मुद्रित पृष्ठ ७४ ॥ भावार्थ-सासादनमें५२ करोड़ हैं मिश्रमें १०४ करोड हैं असंयमी सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं संभव है कि स्त्रीवेद और नपुंसक वेदियोंकी इतनी संख्या हो जाती हो ऐसी अवस्थामें पुरुष वेदी एक भी दूसरेसे पांचवे गुणस्थानमें न रहैगा क्योंकि तीनों वेदियोंकी संख्या कदापि अभी कही हुई संख्यासे अधिक किसी गुणस्थानमें नहीं हो सक्ती ॥

प्रमत्त संयत-आदयः ; अनिवृत्ति बादर अंताः ; = [स्त्रीवेद-नपुंसक वेदी] प्रमत्तसंयत आदि अनिवृत्ति बादर सांपराय ताईं

संख्येयाः ; = संख्यात हैं ॥ सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ७४ । जयचन्द रायजीके

पुंवेदाः सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अपगतवेदा अनिवृत्तिबादरादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसङ्ख्याः ॥

अनुवादसे यहां पर यह बात झलकती है कि इन गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या तो नहीं बढ़ेगी परन्तु पुरुष वेदी भी रहेंगे, पर कह नहीं सकते कि कितने स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी रहेंगे और कितने पुरुषवेदी रहेंगे तीनों वेदवाले यदि उत्कृष्ट होंगे तो पृष्ठ ९८ में उक्त संख्यासे अधिक न होंगे ॥

पुंवेदाः ‖ सासादनसम्यग्दृष्टि-आदयः ‖ संयतासंयत = पुरुष वेदवाले सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयमी (पांचवे गुणस्थानवालों) के

अन्ताः ‖ सामान्य–उक्त–संख्याः ‖ = अंत तक संक्षेपसे (प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) गिन्तीवाले हैं अर्थात् यहां पर यही अर्थ झलकता है कि सासादनसे संयतासंयत तक उक्त संख्यासे जीवोंकी वृद्धि नहीं होगी केवल पुरुषवेदियोंकी गुणस्थानवत् जभी संख्या हो सक्ती है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी एक भी किसी विशेष कालमें न रहै ॥

प्रमत्तसंयत-आदयः ‖ अनिवृत्तिबादर-अन्ताः ‖ = (पुरुषवेदी)प्रमत्तसंयमीसे अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (के आदिके तीन वेद सहित भागमें) तक

सामान्य-उक्त–संख्याः ‖ = संक्षेपसे [प्रथम] कही [गुणस्थानके सदृश] संख्यावाले हैं अर्थात् जब पुरुषवेदी संख्यामें उक्त गुणस्थानोंकी संख्याके बराबर उत्कृष्टपनेसे किसी समयमें वा कालमें हो जावेंगे तब स्त्रीवेदी-नपुंसकवेदी कोई भी न रहेंगे क्योंकि जीवोंकी संख्या उत्कृष्ट नियत संख्यासे बढ नहीं सक्ती और पुरुषवेदी उक्त संख्याके बराबर जबतक स्त्री वेदी नपुंसकवेदी रहेंगे हो नहीं सके ॥

[६] कषायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः संख्येयाः । लोभकषायाणाम्

अपगतवेदाः ।। अनिवृत्ति–बादर–आदयः ।। = " वेदरहित अनिवृत्तिबादरसांपराय आदि
अयोग–केवलि–अन्ताः ।। सामान्य–उक्त–संख्याः ।। = अयोग केवली ताईं सामान्योक्त कहिये गुणस्थानवत् संख्या है" अध्य० ७४
अर्थात् इस नववे गुणस्थानके छह भागोंमेंसे अन्तके तीन भाग वेदरहित हैं उपशम श्रेणीवालोंकी संख्या २९५ जीवोंकी है और क्षपक श्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ है इन तीनों भागोंमें गुणस्थानवत् संख्या २९९ होनेसे और ५९८ होनेसे आदिके तीन वेद भागोंमें कोई भी जीव न रहेंगा ॥ दशवेंसे चौदहवें गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या वही है जो पृष्ठ ९८ में कह चुके हैं ॥ इस वेद अनुवादकी संख्यामें हमारी समझमें जो आया है वह लिख दिया है । इसको और जगह विशेष नहीं मिला, पाठकगण अन्य ग्रंथोंसे निश्चय करलें ॥

(६) कषाय–अनुवादेन ।। क्रोध-मान-मायासु ।। = कषायके कथनानुसारकरि क्रोध-मान-मायावालोंमें
मिथ्यादृष्टिआदयः ।। संयतासंयत–अन्ताः ।। सामान्य– = मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयमासंयमी तक सामान्यकरि
उक्त-संख्याः ।। = कथित [गुणस्थानसदृश] गणनावाले हैं अर्थात् क्रमसे अनंतानंत, बावन करोड, एक अरब चार करोड, सात अरब और [संयमासंयमी] तेरह करोड हैं ।
प्रमत्तसंयत-आदयः ।। अनिवृत्तिबादर–अन्ताः ।। = प्रमत्त संयमीसे लेकर (= आदयः) अनिवृत्ति बादर साम्पराय तकके
संख्येयाः ।। = संख्यात हैं (परिमित संख्याके लिये देखो पृ० ९८)
लोभकषायाणाम् ।। = लोभ कषायवालोंका [पहिले मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्ति बादर नववें गुणस्थान तक]

उक्त एव क्रमः । अयं तु विशेषः सूक्ष्मसाम्परायसंयताः सामान्योक्तसंख्याः । अकषाया उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः ।

उक्तः ¦ एव* क्रमः ¦

[सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ३० की ३१ पंक्तिसे ५१ पंक्ति तक] वर्णित ही अनुक्रम है अर्थात् मिथ्यादृष्टि = अनन्तानन्त, सासादन = बावन करोड, मिश्रवाले = एक अरब चार करोड, असंयमी = सात अरब, संयमासंयमी = तेरह करोड, प्रमत्त संयमी = ५९३९८२०६, अप्रमत्तसंयमी = २९९९९-१०२ अपूर्वकरण उपशमक = २९९, अपूर्वकरण क्षपक = ५९८, अनिवृत्तिकरण उपशमक = २९९ अनिवृत्तिकरणक्षपक ५९८ हैं

तु* अयम् ¦ विशेषः ¦ सूक्ष्मसाम्परायसंयताः ¦ सामान्य-उक्तसंख्याः ¦

= परंतु यह विशेष है कि सूक्ष्मसाम्पराय [दशवे गुणस्थानवर्ती] संक्षेपकरि = पहले कही हुई [गुणस्थानवत्]संख्यावाले हैं अर्थात् उपशमक = २९९ क्षपक ५९८ हैं ।

अकषायाः ¦ उपशान्तकषाय-आदयः ¦ अयोगकेवलिअन्ताः ¦ सामान्य-उक्त-संख्याः ¦

= कषायवर्जित उपशांतकषायवर्तीसे लेकर अयोगकेवलीपर्यंत = संक्षेपसे वर्णित (गुणस्थानवत्) संख्या वाले है, अर्थात् उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ २९९ हैं क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ ५९८ हैं, सयोग केवली वीतराग सर्वज्ञ ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली सर्वज्ञ ५९८ हैं ।

[७] ज्ञान-अनुवादेन ¦ मतिअज्ञानिनः ¦ च श्रुत-अज्ञानिनः ¦ मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः ¦ सामान्य-उक्त-संख्याः ¦

= (७) ज्ञानकी विवक्षाकरि मति अज्ञानवाले और श्रुत = अज्ञानवाले मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती) = संक्षेपसे (पहले) कथित (गुणस्थानवत्) गिनतीवाले हैं । मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त, और सासादन = बावन करोड हैं ।

विभङ्गज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । सासादनसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । मतिश्रुतज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अवधिज्ञानिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः । मनःपर्ययज्ञानिनः प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ताः संख्येयाः । केवलज्ञानिनः सयोगा अयोगाश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥

विभङ्गज्ञानिनः पु॰ मिथ्यादृष्टयः पु॰ असंख्येयाः पु॰ = विभंगज्ञानी (कुअवधिज्ञानवाले) मिथ्यादृष्टि असंख्यात [जगत]
श्रेणयः पु॰ प्रतर-असंख्यातभाग-प्रमिताः पु॰ सासादन = श्रेणी हैं [ये असंख्यात श्रेणी] प्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं सासादन
सम्यग्दृष्टयः पु॰ पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः पु॰ = सम्यग्दृष्टि [विभंगज्ञानी] पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं [बावन करोड़ हैं]
मतिश्रुतज्ञानिनः पु॰ असंयतसम्यग्दृष्टि-आदयः पु॰ = मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी असंयमी सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानवर्ती से)
क्षीणकषाय-अन्ताः पु॰ सामान्य-उक्त-संख्याः पु॰ = क्षीणकषाय वालोंतक संक्षेपसे (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) गणना वाले हैं अर्थात् असंयमी सात अरब, संयतासंयमी तेरह करोड, प्रमत्त संयमी ५९३९८२०६ इनसे आधे अप्रमत्तसंयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।

अवधिज्ञानिनः पु॰ असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयत-अन्ताः पु॰ सामान्य-उक्त-संख्याः पु॰ = अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिसे संयमासंयमी वा देश विरत सम्यग्दृष्टि =पर्यन्त संक्षेपकरि (पूर्व) कथित (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं = अर्थात् असंयमी सम्यग्दृष्टि सात अरब हैं संयमासंयमी तेरह करोड हैं

प्रमत्त-संयत-आदयः पु॰ क्षीणकषाय-अन्ताः पु॰ संख्येयाः पु॰ = (अवधिज्ञानी) प्रमत्तसंयमीसे क्षीणकषाय (गुणस्थान) पर्यन्त = संख्यात हैं प्रमत्तसंयमी ५९३९८२०६ इससे आधे अप्रमत्त संयमी चार उपशमक प्रत्येक २९९ चार क्षपक प्रत्येक ५९८ हैं।

मनःपर्ययज्ञानिनः पु॰ प्रमत्तसंयत-आदयः पु॰ = मनः पर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थान) से लेकर
क्षीणकषाय अन्ताः पु॰ संख्येयाः पु॰ केवलज्ञानिनः पु॰ = क्षीणकषाय तक संख्यात हैं [यह संख्या ऊपर कह दी है] केवलज्ञानवाले
सयोगाः पु॰ च अयोगाः पु॰ सामान्य-उक्त-संख्याः पु॰ = सयोग और अयोगकेवली संक्षेपसे वर्णित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं।

[८] संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिबादरान्ताः सामान्योक्तसंख्याः । परिहारविशुद्धिसंयताः प्रमत्ताश्चाप्रमत्ताश्च संख्येयाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयता यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः संयतासंयताः (असंयताश्च) सामान्योक्तसंख्याः ॥

संयम-अनुवादेन ;। सामायिक-च्छेदोपस्थापनशुद्धि-संयताः ;। प्रमत्त आदयः ;। अनिवृत्तिबादर-अंताः ;। सामान्य-उक्त–संख्याः ;।

= संयमका विवक्षाकरि सामायिकच्छेदोपस्थापन शुद्धि
= संयमी प्रमत्त गुणस्थानसे अनिवृत्ति बादर सांपराय (नववे) गुणस्थान तक
= सामान्य (प्रकरणमें पृष्ठ २६ सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) कथित संख्यावाले [गुणस्थानवत्] हैं अर्थात् प्रमत्तमें ५९३९८२०६, इनसे आधे अप्रमत्तमें, दो उपशमक प्रत्येकमें २९९ दो क्षपक प्रत्येकमें ५९८ ।

परिहारविशुद्धिसंयताः ;। च प्रमत्ताः ;। च अप्रमत्ताः ;। संख्येयाः ;।

= परिहार विशुद्धिसंयमी और [=च] प्रमत्त गुणस्थानवाले और [च] अप्रमत्त गुणस्थानवाले
= संख्यात हैं [स्मरण रहे कि सामायिक च्छेदोपस्थापन–परिहार विशुद्धि-संयमी तीनोंकी संख्याका सर्वयोग ८९०९७२०९ से अधिक नहीं हो सक्ता है जो कि पूर्वोक्त प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंके जीवोंकी उत्कृष्ट संख्या है

सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयताः ;। यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयताः ;।

= सूक्ष्म साम्पराय शुद्धि संयमी (दशवे गुणस्थानवर्ती) यथाख्यात विहार
= शुद्धि संयमी (उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ–क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ सयोगकेवली और अयोग केवली क्रमसे ११,१२,१३,१४ गुणस्थानवर्ती)

संयतासंयताः ;। च सामान्य-उक्त-संख्याः ;।

= और संयमासंयमी संक्षेप (प्रकरण सर्वार्थ सिद्धि पृष्ठ २६) से वर्णित (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात्

(१) 'संयतासंयता असंयताश्च' इस वाक्यमें "असंयताः" हमारी समझमें अधिक छप गया है क्योंकि यहां पर जीवोंकी संख्या संयमके कथनानुसार है नकि असंयमके फिर असंयमीयोंकी संख्या क्यों गिनाई वृत्तिकार क्यों विषयान्तर हुये । इसी अध्यायके सातवें सूत्रके दूसरे

[९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः । अचक्षुर्दर्शिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । उभये च सासादनसम्यग्दृष्ट्यादयः

सूक्ष्म साम्पराय उपशमक २९९ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक ५९८, उपशान्त-कषाय २९९ क्षीणकषाय ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ और अयोग केवली ५९८ हैं और संयमासंयमी तेरह करोड हैं ॥

दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शिनः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ =दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती)

असंख्येयाः ॥ श्रेणयः ॥ प्रतर-असंख्येय-भाग-प्रमिताः ॥ =असंख्यात श्रेणी [प्रमाण] हैं [ये श्रेणी जगत] प्रतरके असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं

अचक्षुर्दर्शिनः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनंतानंताः ॥ =अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं [स्थानवालोंसे

च उभये ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदयः ॥ =और दोनों [चक्षुर्दर्शनवाले-अचक्षुर्दर्शनवाले] सासादन सम्यग्दृष्टि गुण

अनुयोगमें कि सम्यक्त्वका स्वामी कौन है- संयमके अनुवादकरि इस प्रकरणमें वृत्तिकार असंयतानां शब्द नहीं लाये उसके सम्बन्धमें हमने पृष्ठ ७१ में यह टिप्पणी दी है कि "कथन संयमकी अपेक्षासे है नकि असंयमीकी इत्यादि" वही अवस्था यहां पर है हमने "असंयताः" वाक्य पाठमें नहीं रक्खा है ॥ पाठकोंके लिए विस्तारसे अर्थ 'असंयताश्च' वाक्यका लिखते हैं=और असंयमी (मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यङ् मिथ्या दृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टि) संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं अर्थात् यथासंख्य, अनन्तानन्त, बावनकरोड, एकसौ चार करोड, सात सौ करोड हैं ॥ यदि यह पक्ष लिया जाय कि आचार्यको फिर असंयतोंके कथन करनेका कहां अवसर था और कथन करना अवश्य ही चाहिये तो पृष्ठ ७१ के वृत्ति पाठमें असंयतानां शब्द रह गया है वहां पर लिखना चाहिये ॥ जयचंदजीने दोनों स्थानोंमें असंयतानां और असंयताः शब्द लिये हैं ॥ (२) उभ= दो । यह शब्द सदैव दो वचनमें आता है इसका एक वचन और बहुवचन नहीं होते हैं । उभय=दो वाला-यह शब्द तीनों वचनमें आता है । सर्वादिगणमें आनेसे अर्थात् सर्वनाम संज्ञक होनेके हेतुसे इसके रूप भी सर्व शब्दके समान होते हैं यहां पर उभये' प्रथमा विभक्ति बहुवचन पुल्लिंग है जैसे कि सर्वे (शब्द) सर्व शब्दका प्रथमा विभक्ति बहुवचन पुंलिंग है। अर्थ यहां पर यह है कि चक्षुर्द-र्शनवाले और अचक्षुर्दर्शनवाले ॥

क्षीणकषायान्ताः सामान्योक्तसंख्याः। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत्॥

(१०) लेश्यानुवादेन—कृष्णनीलकपोतलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयोऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः। तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः स्त्रीवेदवत्।

क्षीणकषाय-अन्ताः ‖ सामान्य-उक्त-संख्याः ‖ अवधिदर्शनिनः ‖ अवधिज्ञानिवत् * । केवल-दर्शनिनः ‖ केवलज्ञानिवत् * ॥

= क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तक संक्षेप (प्रकरण)में कही हुई संख्यावाले हैं = अवधिदर्शनवाले, अवधिज्ञानियोंके बराबर हैं। केवल [अयोगी ५९८ हैं। = दर्शनवाले केवलज्ञानियोंके समान हैं अर्थात् सयोगकेवली ८९८५०२,

१० लेश्या अनुवादेन ‖ कृष्णनीलकपोतलेश्याः ‖ मिथ्यादृष्टि-आदयः ‖ असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्ताः ‖ सामान्य-उक्त-संख्याः ‖

= लेश्याकी अपेक्षासे कृष्ण-नील-कपोत लेश्यावाले = मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त = संक्षेप (प्रकरणमें) कही हुई (गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त सासादनवर्ती बावनकरोड, मिश्रवाले एकसौ चार करोड, असंयमी सात अरब हैं।

तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि-आदयः ‖ संयतासंयत-अन्ताः ‖ स्त्रीवेदवत् *

= पीत-पद्म लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे संयतासंयमी = पुरुषवेदी स्त्रीवेदवत् हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि असंख्यात जगत श्रेणी परिमाण हैं॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २९ "स्त्रीवेदाः पुंवेदाश्च मिथ्यादृष्टयो ऽसङ्ख्येय : श्रेण्यः" इस वाक्यमें पुरुषवेदी भी संमिलित हैं और ऊपर संख्या केवल स्त्रीवेद सदृश कही है पुरुषवेद वालोंको असंख्यात श्रेणियों मेंसे घटा दें अब भी कह सक्ते हैं कि स्त्रीवेदी असंख्यात श्रेणी रह गये क्योंकि असंख्यातके असंख्यात भेद हैं अतः हमने मिथ्यादृष्टियोंको स्त्रीवेदवत् असंख्यात श्रेणी प्रमाण लिख दिया है॥ अब सासादनसे संयमासंयमी तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेदी दोनोंकी संख्या सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ

प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्ट्यादयः संयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्ताप्रमत्तसंयताः संख्येयाः । अपूर्वकरणादयः संयोगकेवल्यन्ता अलेश्याश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥

२९में गुणस्थानवत् कही है इसने पृष्ठ १०२ में जो भाव दिया है उसमें लिख दिया है कि स्त्रीवेदी नपुंसकवेदियोंकी संख्या एक रीतिसे उक्त गुण स्थानोंकी संख्यावत् हो सकती है । परंतु यहांपर हम नहीं कह सकते कि पीत–पद्म–लेश्यावालोंकी संख्या कितनी होगी क्योंकि हमको नपुंसकवेदियोंकी संख्या नहीं ज्ञात है ताकि हम उसको घटाकर स्त्रीवेदियोंकी संख्या निकाल लें परंतु स्मरण रहे कि दूसरे गुणस्थानसे पांच तककी उत्कृष्ट संख्या पल्यासंख्य बावन करोड, एकसौ चार करोड, सातसौ करोड़ और तेरह करोड है उससे अधिक कदापि नहीं हो सकती है न्यून संख्या ही होगी ॥

प्रमत्त–अप्रमत्तसंयताः ।। संख्येयाः ।।
= (पीत पद्म लेश्यावाले) प्रमत्त–अप्रमत्त संयमी संख्यात हैं अर्थात् ५९३९८२०६ जीव प्रमत्तमें इनसे आधे २९६९६१०३ अप्रमत्तमें हो सक्ते हैं

शुक्ललेश्याः ।। मिथ्यादृष्टि–आदयः ।। संयतासंयत–
= शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे संयमासंयमी

अन्ताः ।। पल्योपम–असंख्येयभागप्रमिताः ।।
= तक पल्यके असंख्यातवां भागके बराबर परिमाण हैं

प्रमत्त–अप्रमत्तसंयताः ।। संख्येयाः ।।
= (शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्तसंयमी अप्रमत्तसंयमी संख्यात हैं [तक

अपूर्वकरण–आदयः ।। सयोगकेवलि अन्ताः ।।
= (शुक्ललेश्यावाले) अपूर्वकरण गुणस्थानसे सयोगकेवली (८से १३वें गुणस्थान)

अलेश्याः ।। च सामान्य–उक्त
= और लेश्यरहित चौदहवां गुणस्थानवर्ती संक्षेपसे कही हुई [गुणस्थानवत्]

संख्याः ।।
= संख्यावाले हैं अर्थात् चार उपशमक प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ चार क्षपक प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ सयोगकेवली ८९८५०२ अयोगकेवली ५९८ हैं

सर्वार्थ-
सिद्धि
१११

(११) भव्यानुवादेन—भव्येषु मिथ्यादृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अभव्या अनन्ताः ॥
(१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टयः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । संयतासंयतादय उपशान्तकषायान्ताः संख्येयाः । चत्वारः क्षपकाः

भव्य–अनुवादेन ‡। भव्येषु ‡। मिथ्यादृष्टि आदय ‡। = [११] भव्यमार्गणाकी, अपेक्षासे भव्योंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अयोगकेवली-अन्ताः ‡। सामान्य-उक्त-संख्याः ‡। = अयोगकेवली तक संक्षेपप्रकरणमें [पहले] कथित [गुणस्थानवत्] संख्या वाले हैं

अभव्याः ‡। अनन्ताः ‡। = अभव्यजीव अनन्त हैं भावार्थ ऐसा है कि सामान्यसे कही हुई संख्या मिथ्यादृष्टि जीवोंकी अनन्तानन्त है (देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २६) और अभव्य जीव अनन्त हैं इस अनन्तानन्तमेंसे अनन्त घटानेसे भव्य जीवों की संख्या निकलती है अतः भव्योंकी संख्या भी अनन्तानन्त हुई क्यों कि भव्य जीव बहुत अधिक हैं और अभव्य जीव बहुत थोडे हैं ॥ गोम्मटसार गाथा ५५९–५६० अवरो जुत्ताणंतो इत्यादिमें कहा है । जघन्ययुक्तानन्त प्रमाण अभव्य राशि है । और सम्पूर्ण संसारी जीवराशिमेंसे अभव्य राशिका प्रमाण घटाने पर जो शेष रहें उतना ही भव्य राशिका प्रमाण है । भव्यराशि बहुत अधिक है और अभव्य राशि बहुत थोडी है ॥

सम्यक्त्व-अनुवादेन ‡। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ‡। = सम्यग्दर्शनकी विवक्षाकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालोंमें
असंयतसम्यग्दृष्टयः ‡। पल्योपम-असंख्येयभाग-प्रमिताः ‡। = असंयत सम्यग्दृष्टि पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।
संयतासंयत-आदयः ‡। उपशान्तकषाय-अंताः ‡। = संयमासंयमी गुणस्थानसे उपशांतकषाय गुणस्थानवालों तक
संख्येयाः ‡। चत्वारः ‡। क्षपकाः ‡। च = संख्यात हैं । चार [अपूर्वकरण-गुणस्थान-अनिवृत्तिकरण-गुणस्थान-सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान, क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती] क्षपक श्रेणीवाले और

सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च सामान्योक्तसंख्याः । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्ट्यादयोऽप्रमत्तान्ताः सामान्योक्त संख्याः । औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयताः पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः । प्रमत्ता प्रमत्तसंयताः संख्येयाः ।

सयोगकेवलिनः ॥	= सयोग केवली
अयोगकेवलिनः ॥ सामान्य-उक्त-	= अयोग केवली संक्षेप [प्रकरण] करि (पहले) कही हुई [गुणस्थानवत्]
संख्याः ॥	= संख्यावाले हैं अर्थात् सयोग केवली ८९८५०२ और अवशेष प्रत्येकमें ५९८ जीव हैं ।
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि—	= क्षायिक सम्यक्त्ववालोंमें असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवर्ती]
आदयः ॥ अप्रमत्त-अन्ताः ॥ सामान्य—उक्त—	= से अप्रमत्तसंयमी [सातवां गुणस्थान] तक संक्षेपसे कथित गुणस्थानवत्
संख्याः ॥	= संख्यावाले हैं अर्थात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वालोंकी गुणस्थानवत् उसी समय संख्या हो सक्ती है जब क्षायिक सम्यक्त्ववाले और उपशम सम्यक्त्ववाले इन गुणस्थानोंमें कोई समय ऐसा आ जाय कि एक भी न रहै क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे अयोग गुणस्थान तक है और उपशम सम्यक्त्व असंयत गुणस्थानसे उपशान्त कषाय गुणस्थान तक है और असंयत गुणस्थानमें सात अरब, संयतासंयतमें तेरह करोड, प्रमत्त में ५९३९८२०६, अप्रमत्तमें २९६०९१०३ उत्कृष्ट जीव हो सकते हैं
औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि—	= उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असंयमी सम्यग्दृष्टि [चतुर्थ गुणस्थानवर्ती]
संयतासंयताः ॥ पल्योपम—असंख्येय-भाग-प्रमिताः ॥	= संयतासंयमी पल्यके असंख्यातवें भागके समान [उपम] परिमाण हैं
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयाः ॥	= (उपशम सम्यक्त्ववालोंमें) प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी संख्याते हैं

चत्वारः औपशमिकाः सामान्योक्तसंख्याः । सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सामान्योक्तसंख्याः ॥ (१२) संज्ञानुवादेन—संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायान्ताश्चक्षुर्दर्शनिवत् । असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः । तदुभयव्यपदेशरहिताः सामान्योक्तसंख्याः ॥

चत्वारः ॥ = चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)

औपशमिकाः ॥ सामान्य-उक्त-संख्याः ॥ = उपशम श्रेणीवाले संक्षेप [प्रकरण] कथित गुणस्थानवत् संख्यावाले हैं अर्थात् इन प्रत्येक आठवे—नववें—दशवें—ग्यारहवें गुणस्थानमें २९९ जीव हैं ।

सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टि, मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्ती

च मिथ्यादृष्टयः ॥ सामान्य—उक्त—संख्याः ॥ = और मिथ्यादृष्टि संक्षेप [प्रकरणमें] कथित [गुणस्थानवत्] संख्यावाले हैं अर्थात् बावन करोड, एकसौ चार करोड और अनन्तानन्त क्रमसे हैं

संज्ञा-अनुवादेन ॥ संज्ञिषु ॥ मिथ्यादृष्टि आदयः ॥ = [१३] संज्ञाकी अपेक्षासे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर

च क्षीणकषाय-अंताः ॥ चक्षुःदर्शनिवत् * = और क्षीणकषाय [बारहवें] गुणस्थानपर्यंत चक्षुर्दर्शनवालोंके समान संख्या है अर्थात् असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं

असंज्ञिनः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तानन्ताः ॥ = असंज्ञी [मनरहित] मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं ।

तद्-उभय-व्यपदेश-रहिताः ॥ = उन (संज्ञी—असंज्ञी) दोनों नामोंसे वर्जित [सयोग और अयोग केवली]

सामान्य—उक्त—संख्याः ॥ = संक्षेप [प्रकरणमें पहिले] कही हुई संख्यावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली ८९८५०२ हैं और अयोगकेवली ५९८ हैं

(१४) आहारानुवादेन–आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादयः सयोगकेवल्यन्ताः सामान्योक्तसंख्याः । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः सामान्योक्तसंख्याः । सयोगकेवलिनः संख्येयाः । अयोगकेवलिनः सामान्योक्तसंख्याः । संख्या निर्णीता ॥

आहार–अनुवादेन ‖ आहारकेषु ‖ मिथ्यादृष्टि– = [१४] आहारककी विवक्षासे आहारकनिर्विषै मिथ्यादृष्टि
आदयः ‖ सयोगकेवलि–अन्ताः ‖ सामान्य–उक्त = से सयोगकेवली तक सामान्य (प्रसंगमें) कथित [गुणस्थानवत्]
संख्याः ‖ अनाहारकेषु ‖ मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि = संख्यावाले हैं । आहारकरहितोंमें मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि
असंयतसम्यग्दृष्टयः ‖ सामान्य–उक्त-संख्याः ‖ = असंयमी सम्यग्दृष्टि संक्षेप (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्] गिनती वाले हैं । भावार्थ–मिथ्यादृष्टि आहारक और अनाहारक अनन्तानन्त हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि अनाहारक और आहारक बावन करोड हैं अविरत सम्यग्दृष्टि आहारक और अनाहारक सातसौ करोड़ हैं। सयोगकेवली अनाहारक (जो केवल समुद्घात अवस्थामें ही अनाहारक होते हैं) और आहारक ८९८५०२ तक हो सकते हैं ।

सयोगकेवलिनः ‖ संख्येयाः ‖ अयोगकेवलिनः ‖ = [अनाहारक] सयोगकेवली संख्यात हैं । अयोगकेवली (जो सदैव अनाहारक होते हैं)

सामान्य–उक्त–संख्याः ‖ = सामान्य (प्रकरणमें) कथित [गुणस्थानवत्) संख्यावाले हैं अर्थात् ५९८ हैं । (स्मरण रहे कि जीवकी आहारक अवस्था प्रथमसे तेरह गुणस्थानों तक है । अनाहारक प्रथम, दूसरे, चौथे, पांचवे, छठे, समुद्घात अवस्थाका प्राप्त तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें है)

संख्या ‖ गणना ‖ निर्णीता ‖ = (इसप्रकार) गणना (अनुयोग वा प्ररूपणा) निश्चित हुई [कह दी गई]

क्षेत्रमुच्यते ॥ तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः ॥

क्षेत्रम् ।।। उच्यते ^{T} तत् ।।। द्वि-विधम् ।।।	= (अब) क्षेत्र (अनुयोग) कहा जाता है । वह (प्ररूपणा) दो प्रकार है
सामान्येन ।।। च विशेषेण ।।	= संक्षेपसे और भेदसे (संक्षेपसे गुणस्थानोंका क्षेत्र विशेषसे मार्गणाओंका)
सामान्येन ।।। तावत्* मिथ्यादृष्टीनां ।। सर्वलोकः ।।	= संक्षेपसे प्रथम (=तावत्) मिथ्यादृष्टियोंका समस्त लोक (क्षेत्र) है

(१) स्वस्थानस्वस्थाने वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घातेषु उपपादे च एवं पञ्चसु पदेषु सर्वलोको मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रम् ॥

स्वस्थानके दो भेदोंमेंसे (१) स्वस्थानस्वस्थान अर्थात् "जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रविषै उपजै" (२) विहारवत्-स्वस्थान अर्थात् जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो]

स्वस्थानस्वस्थाने ।।। वेदना- = स्वस्थानस्वस्थान (पद) में, वेदना समुद्घातमें (=मूल देहका न छूटना और

कषाय- = आत्माके प्रदेशोंका बहुत पीड़ाके अनुभवसे बाहर निकलने) में

मारणान्तिकसमुद्घातेषु ।। = कषायसमुद्घात (=मूल देहका न छूटना और जीवके प्रदेशोंका किसी तीव्र

च उपपादे ।।। = कषायके उदयसे परके घातके लिये बाहर निकलने) में

एवं = मारणान्तिक समुद्घात (=मूल शरीरका न छूटना और मरते समय आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने)में

पञ्चसु ।।। पदेषु ।।। मिथ्यादृष्टीनां ।। = और (=च) उपपाद (="पहलें जो पर्याय धरता था ताको छोड़ि पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ अंतरालविषैं जो प्रवर्तना") में

क्षेत्रम् ।।। सर्वलोकः ।। = इसप्रकार ("दश स्थानकनि" उपर्युक्त पांच और वैक्रियिक समुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात, केवलिसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थानमेंसे)

= पांच "स्थानकनिविषैं" मिथ्यादृष्टि (प्रथम गुणस्थानवर्ती) का

= वर्तमानकालमें निवास वा वर्तमानस्थान वा आधार (=क्षेत्र) समस्त लोक है ॥

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः

सासादनसम्यग्दृष्टि-आदीनाम् ।। अयोगकेवलि-अन्तानाम् ।। लोकस्य ।। असंख्येय-भागः ।।	= सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थान तक) = पर्यन्तोंका लोकके असंख्यातवां भाग (वर्तमान कालमें निवास वा क्षेत्र) है

मूलदेह छूटै नाहिं बाहिर प्रदेश जाहिं कह्यो है समुद्घात सोई भेद सात है । क्रोधसेती सतुनिपैं वेदनासौं औषधिपै, शुभाशुभ तैजसको पुतला विख्यात है ॥ मरणांत गतिमाहिं चक्री बहु जीव करे, आहारक साधूनिके सदेह विलात है ॥ केवल समुद्घात समैमाहिं चेतन ही काय सेती बाहिर निकल आप जात है ॥ ११ ॥ (धानतरायकृत द्रव्यसंग्रह भाषा)

सासादनस्य असंयतसम्यग्दृष्टेश्च स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकोपपादेषु लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ मिश्रस्य तेष्वेव मारणान्तिकोपपादरहितेषु । तद्रहितत्वं कुत इति चेत्तस्य मारणान्तिकमरणयोरभावात् । तदपि कुतः ? मरणांतसम्मुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ' इत्यनेन ' मिस्सा आहारस्स य खवगा ' इत्यादिना च तयोः प्रतिषेधान्निश्चीयते ॥ एवं देशसंयतादिषु आगमानुसारेणावबोद्धव्यम् ॥

(१) सासादनस्य ।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ।। च	= सासादन सम्यग्दृष्टिका और (= च) असंयमी सम्यग्दृष्टिका
स्वस्थानस्वस्थान—	= स्वस्थानस्वस्थान (= जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रमें उपजे उस) में
विहारवत्स्वस्थान—	= विहारवत्स्वस्थान (= जीवोंके विहार करने योग्य जो क्षेत्र हो उस) में
वेदना-कषाय-वैक्रियिक	= वेदनासमुद्घातमें, कषायसमुद्घातमें, वैक्रियिकसमुद्घातमें (= विक्रिया अर्थात् छोटे बड़े एक अनेक आदि नाना क्रियायोंके निमित्तसे मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलने)में
मारणांतिक —	= मारणांतिक समुद्घात (मरण होनेसे प्रथम नवीन पर्यायके धरनेका क्षेत्र पर्यंत प्रदेशोंका मूल देहको न छोड़कर निकसने) में
उपपादेषु ।।।	= उपपाद (प्रथम धारणकी हुई पर्यायको त्यागकर पहले समय अन्य पर्यायरूप हो अंतरालमें प्रवर्तनकी अवस्था) में
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। क्षेत्रम् ।।।	= लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है अर्थात् वर्तमानकालमें निवास (= क्षेत्र) है
मिश्रस्य ।। मारणांतिक—उपपाद—रहितेषु ।।।	= सम्यग्मिथ्यादृष्टिका मारणांतिकसमुद्घात और उपपादरहित

तेषु ३।३ = तिन (स्वस्थान स्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान—वेदनासमुद्घात-
कषायसमुद्घात-वैक्रियिकसमुद्घात-) में

इव = (पूर्वोक्त सासादन सम्यग्दृष्टिके और असंयतसम्यग्दृष्टिके) सदृश

(लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम्) = (लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है)

तद्रहितत्वं १।१।१ कुतः * = इन (मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद) का रहितपना क्योंकर है

इति चेत् * तस्य ६।१ = ऐसा प्रश्न-संदेह या तर्क होनेपर (= चेत्)—उत्तर है कि—तिस (मिश्र) के

मारणान्तिकमरणयोः ६।२।१ अभावात् ५।१ = मारणांतिक समुद्घात और मृत्यु दोनोंके न होने (के हेतु) से
(मारणान्तिक समुद्घात और उपपादका वर्जितपना) है अर्थात् मिश्रगुणस्थानमें
किसी जीवका मरण नहीं होता है इसलिये मारणान्तिक समुद्घात नहीं है मार-
णान्तिक समुद्घात तब ही होता है जब मृत्यु होती है

तद् * अपि कुतः * = वह (मारणांतिक समुद्घात और मरणका अभाव मिश्रगुणस्थानमें) भी क्योंकर

य मरणंतसमुग्घादो १।१ (= च मारणांतिकसमुद्घातः १।१) = (उत्तर) और (= य = च) मारणांतिक समुद्घात

वि * ण * मिस्सम्मि ७।१ (अपि * न * मिश्रे ७।१) = भी (= वि = अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है

इति—अनेन ३।१ च = ऐसे इस (आगम वाक्य) से और

मिस्सा १।१ (= मिश्राः १।१) = मिश्रगुणस्थानवर्तिन (= मिस्सा १।१ = मिश्राः १।१) वा मिश्रगुणस्थानवर्ती

आहारस्स ६।१ (आहारस्य ६।१ = आहारशरीरकः १।१) आहारमिश्रकाययोगि वा निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी अर्थात् जो शरीर
पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीरपर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिकमिश्र-वैक्रियिक
मिश्र आहारक मिश्र

य (= च) खवगा १।१ (क्षपकाः १।१) इति आदिना ३।१।१ = और (= य = च) क्षपकश्रेणीवाले इत्यादिसे

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः

सयोगकेवलिनां ३।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ ।	=योगसहित केवलियोंका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है
तयोः ६।२ प्रतिषेधात् ५।१	=इन दोनों (मारणांतिक और मरण) के निषेध होनेसे [संयमी
निश्चीयते ३।१ । एवं * देश—संयत—	=(मारणांतिक तथा मरणका अभाव मिश्रमें) निर्णय किया जाता है ऐसे संयमा-
आदिषु ७।३ आगम—अनुसरेण ३।१ अवगन्तव्यम् १।१ ।	=दिमें शास्त्रके अनुसारसे जानना चाहिये ॥

(१) एकस्मिन्काले सम्भवतां पूर्वोक्तशतसहस्रपृथक्त्वसंख्यानां सयोगकेवलिनां स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानापेक्षया च लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रम् ॥ असंख्येयभागा इति वचनेन प्रतरसमुद्घाते लोकस्यासंख्यातबहुभागमात्रं क्षेत्रमित्युक्तं ज्ञेयम् ॥ त्रिलोकसारे 'सत्तासीदी चदुस्सदेत्यादिना' कथितेन सर्ववातवलयावरुद्धक्षेत्रेण पतावता १०२४।१८७१४८७ सर्वलोकासंख्यातैकभागमात्रेण हीनस्य सर्वलोकस्य तत्क्षेत्रत्वात् । लोकपूरणापेक्षया सर्वलोकः क्षेत्रम् ॥

एकस्मिन् ७।१ काले ७।१ सम्भवतां ६।३ पूर्व—उक्त—	=एक समयमें होनेवाले पहले कहे हुये
शतसहस्रपृथक्त्व—	=तीनसौहजार (तीनलाख) से अधिक नौसौहजार (नो लाख) से नीचे
संख्यानां ६।३ सयोगकेवलिनां ६।३	=(अर्थात् ८९८४०२) गिनती किये हुये सयोगकेवलियोंका
स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान—अपेक्षया ५।१	=स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत् स्वस्थान की अपेक्षासे
लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१ क्षेत्रम् १।१ "असंख्येय	=लोकका असंख्यातवां भाग निवासस्थान (=क्षेत्र) है "असंख्येय
भागाः" इति वचनेन ३।१ प्रतर-समुद्घाते ७।१	=भागाः" ऐसे वाक्यसे (सयोगकेवलीके) प्रतर समुद्घातमें
लोकस्य ६।१ असंख्यातबहुभागमात्रं १।१ क्षेत्रं १।१	=लोकके असंख्यातभागोंमेंसे बहुत भागके परिमाण (=मात्र) क्षेत्र है
इति—उक्तं १।१ ज्ञेयम् १।१ त्रिलोकसारे ७।१	=ऐसा कथन का अर्थ जानना चाहिये । त्रिलोकसार (ग्रन्थ गाथा १३९) में
सत्तासीदि चदुस्सद (सप्ताशीति चतुःशत—)	=सत्तासीदि चदुस्सद (= चारसौ सतासी) इत्यादि (निम्नलिखित) कथनसे

सर्व-वातवलय— =सब वात वलयोंसे (अर्थात् प्रथम घनोदधि वात वलय जो जल और पवन मिश्रित है दूसरा घनवातवलय जो स्थूल वायुका है तीसरा तनुवात वलय जो सूक्ष्म वायुका है ये तीनों लोकको उसी प्रकारसे वेढे हुये हैं जैसे छाल वृक्षको और चाम शरीरको सब ओरोंसे घेरे हुये है)

अवरुद्ध-क्षेत्रेय $\frac{3}{7}$।। =घिरा हुआ वा आच्छादित क्षेत्र

(एतावता $\frac{3}{7}$।। १०२४१६८३४८७) =(इतना (=एतावता) $\frac{१०२४१६८३४८७ \times \text{जगत्प्रतर}}{१०९७६०\ (=\text{भागहार})}$ होता है और लोकके असंख्यातवां भाग प्रमाण है (देखो त्रिलोकसारकी गाथा १३८, १३६, १४०,) (तीनों वात वलयोंकी फलावट उक्त ग्यारह अंक प्रमाण है)

हीनस्य $\frac{1}{7}$। सर्वलोक-असंख्यात-एकभागमात्रेण $\frac{1}{7}$।। =इससे हीन जो (क्षेत्र) सब लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागमात्र है

सर्वलोकस्य $\frac{1}{7}$। तत्—क्षेत्रत्वात् $\frac{1}{7}$।। =सब लोकके प्रमाण इस (प्रतर समुद्घात) का क्षेत्र होता है भावार्थ " प्रतर समुद्घात विषै तीन वात वलय विना सर्वलोक विषै प्रदेश व्याप्त होहैं तातैं तीन वात वलयका क्षेत्रफल लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है सो यह प्रमाण लोकका प्रमाण विषै घटाएं अवशेष रहे तितना एक जीव सम्बन्धी प्रतर समुद्घात विषै क्षेत्र जानना " गोमट्टसार जीव काण्ड मुद्रित पृष्ठ ६६०

लोक-पूरण-अपेक्षया $\frac{3}{7}$।। सर्वलोकः $\frac{1}{7}$। क्षेत्रम् $\frac{1}{7}$।। =(समुद्घातमें) लोक पूरणकी अपेक्षासे समस्त लोक क्षेत्र है अर्थात् " लोक पूरण विषै सर्वलोकाकाशविषै प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं लोक प्रमाण एक जीव सम्बन्धी लोक पूरणविषै क्षेत्र जानना । सो प्रतर और लोक पूरणके

समुद्घातेऽसंख्येया वा भागाः सर्वलोको वा

समुद्घाते ष्प्रा असंख्येयाः ष्प्रा वा भागाः सर्वलोकः ष्प्रा वा = समुद्घातमें असंख्याते भाग हैं वा असंख्यातवां भाग है वा सर्वलोक है

= (क) समुद्घाते ष्प्रा लोकस्य ष्प्रा असंख्येयाः ष्प्रा भागाः ष्प्रा = (क) समुद्घातमें लोकके असंख्याते = भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् दंड समुद्घातमें तीनों वातवलयों के रुक्ष क्षेत्रको छोडकर सर्वलोक है सो लोकके असंख्याते भागोंके बराबर है

(ख) वा समुद्घाते ष्प्रा लोकस्य ष्प्रा असंख्येय-भागः ष्प्रा = [ख] समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग [सयोगकेवलीका क्षेत्र] है अर्थात् दण्ड और कवाट समुद्घातमें लोकका असंख्यातवां भाग है

(ग) वा समुद्घाते ष्प्रा सर्व–लोकः ष्प्रा = [ग] समुद्घात की चौथी समयों) में [सयोगकेवलीका क्षेत्र] सर्वलोक है = अर्थात् समुद्घात करनेकी चौथी समयमें सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वलोकाकाशमें व्याप्त हो जाते हैं ।

बीस जीव तौ करनेवाले, और बीस जीव समेटनेवाले ऐसैं एक समयविषैं चालीस पाइए परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए तातैं क्षेत्र तितना ही जानना । बहुरि दंड और कपाटविषैं भी बीस जीव करनेवाले बीस समेटनेवालेनिकी अपेक्षा चालीस जीव हैं सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्रको भी रोकै तातैं दण्ड और कपाट विषैं चालीसका गुणाकर कहा, यह जीवनिका प्रमाण उत्कृष्टताकी अपेक्षा है । गोमट्टसार जीव काण्ड मुद्रित पृष्ठ ९६०

(४) असंख्येया वा भागा इति वा शब्देन समुद्घाते असंख्येयभागोऽपि परामृष्टः । तेन दण्डकवाटसमुद्घातयोर्लोकस्यासंख्येयभागः क्षेत्रमित्यवसेयम् ॥ तत्र आरोहणावरोहणापेक्षया उत्कर्षेण चत्वारिंशत्केवलिनः सम्भवन्ति । तथापि क्षेत्रं लोकस्यासङ्ख्येयभाग एव । उत्तरत्र सर्वत्र स्वस्थानादिपदानि यथासम्भवं योज्यानि ॥

विशेषेण—(१) गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येय-भागः । तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ।

विशेषेण ॥ [१] गति-अनुवादेन ॥ नरकगतौ ॥ = भेदकरि गतिकी विवक्षासे नरकगतिमें
सर्वासु ॥ पृथिवीषु ॥ नारकाणां ॥ चतुर्षु ॥ = सब नरकोंमें नारकियोंका [क्षेत्र प्रथमसे] चारो
गुणस्थानेषु ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है (नारकियोंके चारगुणस्थानोंसे अधिक नहीं होसकते हैं ,
तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चां ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयता- = तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंका मिथ्यादृष्टिसे संयमा—
संयत-अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तं ॥ क्षेत्रम् ॥ = संयमी पर्यन्त सामान्य [सर्वार्थ० ३३, ३४] में कथित गुणस्थानवत् क्षेत्र है

असंख्येयाः ॥ वा भागाः ॥ इति वाशब्देन ॥ समुद्घाते ॥ = "असंख्येयाः वा भागाः" ऐसे (वाक्य) में वा शब्दसे समुद्घातमें
असंख्येयभागः ॥ अपि परामृष्टः ॥ तेन ॥ दण्ड- = (लोकका) असंख्यातवां भाग भी उपदेश्या है तिस (वा शब्द) करि दण्ड
कवाट-समुद्घातयोः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येय-भागः ॥ = और कवाट दोनों समुद्घातोंमें लोकका असंख्यातवां भाग
क्षेत्रम् ॥ इति—अवसेयम् ॥ तत्र* आरोहण = क्षेत्र है ऐसा निश्चय करना चाहिये । तहां (आत्माके प्रदेशोंके) फैलाव और
अवरोहण—अपेक्षया ॥ उत्कर्षेण ॥ = संकोचकी विवक्षासे उत्कृष्टकरि
चत्वारिंशत् ॥ केवलिनः ॥ सम्भवन्ति ॥ = चालीस केवली सम्भवै हैं । (उत्कृष्ट चालीस केवली एक साथ समुद्घात करते हैं)
तथापि* क्षेत्रं ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ एव = तौ भी क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही है
उत्तरत्र * सर्वत्र * स्वस्थान आदि— = यहांसे आगे सब स्थानोंमें स्वस्थानस्वस्थान—विहारवत्स्वस्थान आदि
पदानि ॥ यथासम्भवं ॥ योज्यानि ॥ = पद जैसा योग्य अथवा यथा उचित हो लगा लेना चाहिये

(६) एकोनविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवै) तक अर्थात् अस्सी संस्कृतकी संख्याओंको संज्ञा मानते हैं वे सब अस्सी ङ स्त्री लिंगी हैं । संज्ञा जिनके साथ वे लाई जाती हैं किसी भी लिंगकी क्यों न हों बहुवचन संज्ञाके साथ वे एक वचनमें लाई जा सकती हैं जैसे चत्वारिंशत् ॥ केवलिनः ॥ द्विचत्वारिंशत् ॥ अहानि = बयालीस दिवस । चतुर्विंशतिः ॥ स्मृतयः ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । सयोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः ॥ (२) इंन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः । विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः ।

अर्थात् तिर्यंचोंके प्रथमसे पांच तक गुणस्थान होसक्ते हैं । प्रथम गुणस्थानवर्तियोंका सब लोक क्षेत्र है शेषका लोकका असंख्यातवां भाग है [सर्वार्थसिद्धि ३३, ३४]

मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणां ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोग-केवलि-अन्तानां ॥ लोकस्य ॥ असंख्येय-भागः ॥ सयोगकेवलिनां ॥ सामान्य-उक्तं ॥॥ क्षेत्रम् ॥॥

= मनुष्यगतिमें मनुष्योंका [क्षेत्र] मिथ्यादृष्टिसे अयोग = केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती) तक लोकका असंख्यातवां भाग है = सयोगकेवलियोंका संक्षेप [प्रकरण] में कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात् एक कालमें ८९८५०२ इकट्ठे हों अथवा दण्ड और प्रतर समुद्घात करें तो लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है, प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्याते भाग है [=तीन वात वलयोंका क्षेत्र छोडकर सर्व लोक है] और लोक पूर्ण समुद्घातमें सर्व ही लोक है (देखो पृष्ठ ११६ से १२०तक)

देवगतौ ॥ देवानां ॥ सर्वेषां ॥ चतुर्षु ॥॥ गुणस्थानेषु ॥॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥

= देवगतिमें सब देवोंका क्षेत्र चार (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत) = गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग है । [देवोंके चार गुणस्थान हो सक्ते हैं]

इन्द्रिय-अनुवादेन ॥ एकेन्द्रियाणां ॥ क्षेत्रं ॥॥ सर्वलोकः ॥ विकल-इन्द्रियाणां ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥

= [२] इन्द्रियोंकी विवक्षासे एकेन्द्रियवालोंका = क्षेत्र सर्वलोक है । विकल अर्थात् दो तीन चार इन्द्रियवालोंका (क्षेत्र) = लोकका असंख्यातवां अंश वा भाग है ॥

(१) केवल एक स्पर्शन (त्वक्) इन्द्रिय सहित जीवोंको एकेन्द्रिय कहते हैं । (२) स्पर्शन—रसना दो इन्द्रियवाले जीवोंको द्वीन्द्रिय, स्पर्शन-रसना-नासिका तीन इन्द्रिय वाले जीवोंको त्रीन्द्रिय, स्पर्शन-रसना-नासिका-चक्षुः चार इन्द्रियवाले जीवोंको चतुरिन्द्रिय कहते हैं ॥

पञ्चेन्द्रियाणां मनुष्यवत् ॥ [२] कायानुवादेन—पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः । त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

पञ्च-इन्द्रियाणां ३।१ मनुष्यवत् *

= पांच इन्द्रियवाले जीवोंका [क्षेत्र] मनुष्य (के क्षेत्रके) समान है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है [सं० सर्वा० पृष्ठ ३५ पंक्ति ३-४]

(२) काय-अनुवादेन ३।१-पृथिवीकायिक-आदि वनस्पति-कायिक-अन्तानां ३।३ सर्वलोकः ३।१

= [२] कायके कथनानुसारकरि-पृथिवीकायिकसे [लेकर] = वनस्पति कायिक पर्यंतोंका [क्षेत्र] समस्त लोक है ।

त्रसकायिकानां ३।३ पञ्च-इन्द्रियवत् *

= त्रसकायिकोंका [क्षेत्र] पांच इंद्रियवाले जीवोंके सदृश है अर्थात् लोकके असंख्यातवां भाग है । भावार्थ यह स्पष्ट है कि लोकका यह असंख्यातवां भाग पंचेंद्रिय जीवोंके लोकके असंख्यातवां भागसे बड़ा होगा क्योंकि त्रस में पंचेंद्रिय जीव भी सम्मिलित हैं और द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिंद्रिय जीव भी अन्तर्गत हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ९९-१००]

---

(१) स्पर्शन, रसना (=जीभ) नासिका (=नाक) चक्षु (=नेत्र आंख, नयन) और कान (कर्ण श्रवण) सहित जीवोंको पंचेंद्रिय कहते हैं ।

(२) भागहारभूतासंख्यातस्यानेकविधित्वेन क्षेत्रस्य तारतम्यसद्भावेऽपि लोकस्यासंख्येयभागत्वाविशेषान्मनुष्यवदिति वचनम् ।

भागहारभूतासङ्ख्यातस्य ६।१ अनेकविधित्वेन ३।१

= क्योंकि असंख्यात (भाज्य) का बहुत प्रकारसे भागहार होते हैं वा विभाग किया जा सक्ता है

क्षेत्रस्य ६।१

= (इसलिये पंचेन्द्रियोंके) क्षेत्रका (मनुष्योंके क्षेत्रसे)

तारतम्यसद्भावे ७।१ अपि

= भेद वा न्यूनाधिक (=तारतम्य) होनेपर भी

लोकस्य ६।१ असङ्ख्येयभागत्व + अविशेषात् ५।१

=संक्षेपसे लोकका असंख्यातवां भाग होता है (=भागत्व)

मनुष्यवत् * इति वचनम् १।१

= (इसकारण) मनुष्य सदृश ऐसा वाक्य है । भावार्थ यह है कि लोकके असंख्यात

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥

(४) योग-अनुवादेन ‖ वाङ् मानस-योगिनां ‖	=(४) योगकी अपेक्षकरि वचनयोग मनो (=मानस) योगवाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-सयोगकेवलि-अन्तानां ‖	= मिथ्यादृष्टि आदि सयोगकेवली (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) तकका
लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ । काययोगिनां ‖	= [क्षेत्र] लोकके असंख्यातवां भाग है । काय योगवालोंका
मिथ्यादृष्टि—आदि—सयोगकेवलि—अन्तानाम् ‖ च	= मिथ्यादृष्टिसे सयोगकेवली तक और [= च] [अर्थात्
अयोगकेवलिनां सामान्य—उक्तं ‖॥ क्षेत्रम् ‖॥	= अयोग केवलियोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है

क्षेत्रको भाज्य, अंगीकार करके पंचेन्द्रियोंके क्षेत्रका भाग दीजिये वा मनुष्योंके क्षेत्रका भाग दीजिये तो भजनफल वा लब्धि असंख्यात ही आवेगा इसकारण पंचेन्द्रियोंका क्षेत्र सामान्य अपेक्षा लोकका असंख्यातवा भाग मनुष्यक्षेत्रवत् कहा है।

जिस संख्यामें भाग देना है वह भाज्य जिसका भाग देना है वह भाजक और जो फल आवेगा वह लब्धि कहलाती है जैसे ५६ और ८ ये दो संख्या हैं और ५६ में ८ का भाग देना है (अर्थात् ५६ के आठ समान विभाग करने है तो ५६ भाज्य कहलावेगा तथा ८ भाजक कहलावेगा और ७ भजनफल वा लब्धि कहलावेगी और इस भजनफल वा लब्धिके जानने के प्रकारको भागहार वा भजन कहते हैं।

(!) वाङ्मानसयोगविशिष्टे सयोगकेवलिनि समुद्घातासम्भवोऽवगन्तव्यः । ओरालं दसहदुगे कवाडजुगले व तस्स मिस्सं तु (मिस्सो दु) पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होदि आयव्वो (होइ कम्म इयम्) ॥ इत्यनेन तत्र काययोगस्यैव कथनात् । काययोगे तु स्वस्थानसमुद्घातसम्भवो भवति ।

वाङ्—मानसयोग-विशिष्टे ‖ सयोगकेवलिनि ‖	= वचन मनोयोग संयुक्त (=विशिष्ट) सयोग केवलियोंमें
समुद्घात-असम्भवः ‖ अवगन्तव्यः ‖	= समुद्घात (का प्रारम्भ) असम्भव जानना चाहिये अर्थात्

केवली काल भर्ते पीछे सयोगकेवली उत्कृष्ट करि आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तहीन एक करोड पूर्व विहार कर सके है । जब अन्तर्मुहूर्त आयु अवशेष रहती है और वेदनीय, नाम, गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक रहती है तब सयोगकेवली वचन और मनोयोगको निरोधकरि समुद्घात करते हैं इसलिये वचन और मनोयोग संयुक्त सयोगकेवलीके समुद्घात असम्भव है ॥

ओरालं ।ाा दंडदुगे ृाा (=औरालं ।ाा दण्डद्विके ृाा) =औदारिक (काययोग) दण्ड (समुद्घात) युगल (दुगे) में होता है
कवाडजुगले ृाा य * (=कपाट-युगले ृाा च) =और (य=च) कपाट (समुद्घात) युगल (जुगले=युगले) में
तस्स ृाा मिस्सं ृाा तु,* (=तस्य ृाा मिश्रं ृाा तु *) =तिस (औदारिक—काययोग) का मिश्र है (=औदारिक काय मिश्रयोग है)
पदरे ृा य लोगपूरे ृा (=प्रतरे ृा च लोकपूरे ृा) =और (=य) प्रतर (समुद्घात) में और (=य) लोकपूर्ण (समुद्घात) में
कम्म ।ाा एव * य * (कार्म्मणम् ।ाा एव * च) =कार्माण (योग) ही
होदि Tणायव्वो ।ा (भवति Tज्ञातव्यः ।ा) =होता है (ऐसा) जानना चाहिये ॥ तु पाद पूरणको है अतः अनुवाद नहीं हो सका अर्थात् दण्ड समुद्घातके करने वा समेटने रूप युगलमें औदारिक शरीर पर्याप्ति काल है और कवाट समुद्घातके करने और संकोचनेरूप युगलमें औदारिक मिश्र शरीर काल है । प्रतर समुद्घातमें और लोक पूरण समुद्घातमें कार्माण काल है इस प्रकार आत्माके प्रदेशोंको विस्तार करने पर तो तीन ही काल हैं और संकोचनेमें मूल शरीरमें प्रवेश करनेके पहिले समयसे जगाय संज्ञी पंचेन्द्रियवत् अनुक्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करते है इसलिये पांचो काल संम्भवे हैं ॥ ऐसा भी मत है कि प्रतररूप समुद्घातमें जब सयोगकेवली आत्माके प्रदेशोंको संकोचते हैं उस समय औदारिक मिश्रयोग होता है जैसा कि ज्ञानतरायजीके कवित्तसे प्रगट है "पहले समयमें करे दण्ड आठमें संवरे, परदेश आतमा औदारिक प्रवानिये ॥ दूजेमें कपाट होय सातवें संवरे सोय सम्वरे प्रतर छटे मिश्र जोग जानिये । तीसरे प्रतर, चौथे पूरण सर्व लोक, संवरे पांचवे पूरण कारमान मानिये ॥ आठ समै माहि जात केवल समुद्घात निर्जरा असंखगुनी नेव सो वखानिये ।" अब इसका भाव सुगमतासे समझमें आजानेके लिये सरल और स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं ।

[५] वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानाम्

[५] वेदानुवादेन ‖ स्त्रीपुंवेदानां ‖ मिथ्यादृष्टि आदि-	= वेदकी विवक्षाकरि स्त्री तथा पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टिसे
अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ‖	= अनिवृत्तिबादर साम्पराय [गुणस्थानके पहले तीन वेदभागवालों] तकका
लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖	= (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है
नपुंसकवेदानां ‖ मिथ्यादृष्टि-आदि	= नपुंसकवेदवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अनिवृत्तिबादर-अन्तानाम् ‖	= अनिवृत्तिबादरसाम्पराय (गुणस्थानके प्रथम तीन वेदभागवर्तीयों) तक

वे मुनि जिनकी आयु छह माह अवशेष रही हो और इसके पश्चात् केवलज्ञान हो तो वह अवश्य ही समुद्घात करते हैं जिनकी आयु केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे छहमाससे अधिक शेष रही हो तो वे समुद्घात करें और नहीं भी करें । आयुकर्मके समान शेष तीन गोत्र, वेदनीय नामकर्मकी स्थिति होनेके अर्थ केवली भगवान वचन और मनोयोगोंका निरोधकर समुद्घात (अर्थात् मूल शरीरको न छोड़ते हुये आत्माके प्रदेश बाहर निकलनेकी क्रिया) का प्रारंभ इसप्रकार करते हैं कि

(क) प्रथम समयमें शरीरसे प्रदेश दंडाकार निकलते हैं और ये प्रदेश आठवें समयमें संकोचे जाते हैं-संवरैं हैं वा समटे हैं यहांपर औदारिक काय योग है ।

(ख) दूसरे समयमें प्रदेश कपाट रूप फैलते हैं और इनका संकोच वा समेटना सातवें समयमें होता है यहां औदारिक मिश्रयोग है

(ग) और यही औदारिक मिश्र योग छठवें समयमें होता है जब प्रतर समुद्घातमें आत्माके प्रदेश संकोचे जाते हैं । इस प्रतर समुद्घात का प्रारंभ तीसरे समयमें होता है इसमें प्रदेश बिलोनी रईके फूल सम तीनों वात वलयके क्षेत्रको छोड़कर सब लोकमें फैल जाते हैं इस तीसरे समयमें कार्माण योग होता है ।

(घ) चौथे समयमें लोक पूरण समुद्घातका प्रारम्भ होता है आत्माके प्रदेश सर्वत्र सर्वलोकाकाशमें सर्वतः व्याप्त हो जाते हैं और इन का सिमटना पांचवें समयमें होता है इस चौथे और पांचवें समयमें कार्माण योग है ॥ इस प्रकार सयोगकेवली भगवान आठ समयमें समुद्घात करके उक्त तीनों कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मके बराबर करते हैं ॥

अपगतवेदानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (६) कषायानुवादेन-क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषायाणां च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सूक्ष्मसाम्परायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (७) ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः।

अपगतवेदानां ।।। च	= तथा वेदरहित [नवें गुणस्थानवालोंके अंतके तीन भागसे अयोगी तक] का
सामान्य-उक्तं ।।।। क्षेत्रम् ।।।।	= संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कथित गुणस्थानवत्) क्षेत्र है लोकका असंख्यातवां भाग है असंख्याते भाग है सर्वलोक भी है [देखो पृष्ठ ११५से१२०]
(६) कषाय-अनुवादेन ।। क्रोधमानमाया कषायाणां ।। च लोभकषायाणां ।।	= कषायके कथनानुसारसे क्रोध मान माया कषाय वालेनिका = तथा लोभकषायवालेनिका
मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ।।	= मिथ्यादृष्टिसे अनिवृत्तिबादरसाम्परायवालों तकका
सूक्ष्मसाम्परायाणाम् ।।	= सूक्ष्मसाम्परायवालोंका [जहां केवल सूक्ष्म वा संज्वलन लोभ है)
अकषायाणां ।। च	= और कषायरहित [ग्यारहवेंसे चौदहवें गुणस्थान] वालोंका
सामान्य-उक्तं ।।।। क्षेत्रम् ।।।।	= संक्षेप (सम्बन्ध) में पूर्व कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११४ से १२० तक)
[७] ज्ञान-अनुवादेन ।। मति-अज्ञानि श्रुत-अज्ञानिनां ।।	= ज्ञानकी विवक्षासे कुमति अज्ञान, कुश्रुत अज्ञानवाले
मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनाम ।।	= मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती)वोंका
सामान्य-उक्तं ।।।। क्षेत्रम् ।।।।	= संक्षेप (प्रसंग) में [पहिले] कहे हुये [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है अर्थात् = मिथ्यादृष्टियोंका सब लोक है। सासादनका लोकका असंख्यातवां भाग है
विभंगज्ञानिनां ।। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां ।।	= विभंग ज्ञानवाले मिथ्यादृष्टी तथा सासादनसम्यग्दृष्टीनका (क्षेत्र)
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	= लोकका असंख्यातवां भाग है

आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां, मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां केवलज्ञानिनां सयोगानामयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् (८) संयमानुवादेन—सामायिकच्छेदोपस्थानाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां संयतासंयतानामसंयतानां च ।

आभिनिबोधिक-श्रुत+अवधिज्ञानिनां ।।	= मति (= आभिनिबोधिक) श्रुत अवधि ज्ञानवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदीनां ।। क्षीणकषाय अंतानां ।।	= असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती) तक
च मनःपर्ययज्ञानिनां ।। प्रमत्त+आदीनां ।।	= तथा मनःपर्ययज्ञानवाले प्रमत्तसंयमी (छठे गुणस्थानवर्ती) से
क्षीणकषाय+अंतानां ।। च केवलज्ञानिनां ।।	= क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती] तक और (च) केवलज्ञानवाले
सयोगानाम् ।। अयोगानाम् ।।	= योगसहित (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) अयोगी (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) का
सामान्य+उक्तं ।।।	= संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्]
क्षेत्रम् ।।।	= क्षेत्र है (देखो पृष्ठ ११५-१२० तक)
संयम+अनुवादेन ।। सामायिकच्छेदोपस्थान—	= संयमके कथनानुसार करि सामायिक और छेदोपस्थापन
शुद्धिसंयतानां ।। चतुर्णां ।।	= शुद्धि संयमी चार [छठवें, सातवें, आठवें, नववें गुणस्थानवर्ती] नका
परिहारविशुद्धिसंयतानां ।। प्रमत्त—	= परिहारविशुद्धि संयमी प्रमत्त [छठवां गुणस्थानवर्ती]
अप्रमत्तानां ।। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां ।।	= अप्रमत्त (सातवां गुणस्थानवर्तीनका) सूक्ष्म साम्परायशुद्धिसंयमी
यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां ।।	= यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमी
चतुर्णां ।।	= चार (ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्ती) नका
संयतासंयतानाम् ।। च असंयतानां ।।	= संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थानवर्ती)नका और असंयमी

चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ [१०] लेश्यानुवादेन—कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः ।

चतुर्णां ‖ सामान्य+उक्तं ‖ क्षेत्रम् ‖ = चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती) का संक्षेप (प्रसंगमें) कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है अर्थात् मिथ्यादृष्टि का सर्वलोक सासादनसे अयोगी तक लोकका असंख्यातवां भाग वा असंख्याते भाग वा सर्वलोकतक क्षेत्र हो सकता है ।

(१) दर्शन+अनुवादेन ‖ = दर्शनकी विवक्षाकरि
चक्षुर्दर्शनिनां ‖ मिथ्यादृष्टि-आदि क्षीणकषाय— = चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवर्ती]
अन्तानां ‖ लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ = तकका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है
अचक्षुर्दर्शनिनां ‖ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय- = अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय
अंतानां ‖ सामान्य+उक्तं ‖ क्षेत्रम् ‖ = पर्यंतनका संक्षेप [प्रसंग] में [पहिले] कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है
अवधिदर्शनिनां ‖ अवधिज्ञानिन्+वत्* = अवधिदर्शनवालोंका (क्षेत्र) अवधि ज्ञानवालोंके क्षेत्रके तुल्य है
केवलदर्शनिनां ‖ केवलज्ञानिन्+वत्* = केवल दर्शनवालोंका [क्षेत्र] केवल ज्ञानियोंके समान है
१०लेश्या+अनुवादेन ‖ कृष्णनीलकापोतलेश्यानां ‖ = लेश्याके कथनानुसारसे कृष्ण नील कपोत [तीन] लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि+अंतानां ‖ = मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत [चौथे गुणस्थानवर्ती] तकनका
सामान्य+उक्तं ‖ क्षेत्रम् ‖ = संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कहा हुआ क्षेत्र है ।
तेजस्+पद्मलेश्यानां ‖ मिथ्यादृष्टि+आदि— = पीत पद्म [दो] लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अप्रमत्त-अंतानां ‖ लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ = अप्रमत्त [सातवें गुणस्थानवाले] तकका लोकका असंख्यातवां भाग है ।

शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ (११) भव्यानुवादेन–भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । अभव्यानां सर्वलोकः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन–क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानामौपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् ।

शुक्ललेश्यानां ।१। मिथ्यादृष्टि+आदि क्षीणकषाय– = शुक्ल लेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
अन्तानां ।१। लोकस्य ।१। असंख्येयभागः ।१। = तकका (क्षेत्र) लोकका असंख्यातवां भाग है ।
सयोगकेवलिनां ।१। अलेश्यानां ।१। च = सयोग केवलियोंका तथा लेश्यावर्जित (अयोग केवली)नका
सामान्य+उक्तं ।१।१। क्षेत्रम् ।१।१। = संक्षेप [प्रसंग] में [पूर्व] कथित (गुणस्थान तुल्य) क्षेत्र है
भव्य-अनुवादेन ।१। भव्यानां ।१। चतुर्दशानां ।१। सामान्य = [११] भव्यकी अपेक्षाकरि चौदह (गुणस्थानवर्ती) भव्यनका संक्षेप
उक्तं ।१।१। क्षेत्रम् ।१।१। अभव्यानां ।१। सर्वलोकः ।१। = [प्रकरण] में कथित [गुणस्थानसम] क्षेत्र है । अभव्यनका समस्त लोक है
[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ।१। क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां ।१। = [१२] सम्यग्दर्शनकी विवक्षासे क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि–अयोगकेवलि-अन्तानाम् ।१। = असंयतसम्यग्दृष्टीनसे अयोग केवली पर्यंतनका [क्षेत्र और]
क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां ।१। असंयतसम्यग्दृष्टि— = वेदक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टियों
आदि-अप्रमत्त अन्तानाम् ।१। = से अप्रमत्त [सातवां गुणस्थानवालों]तकका [क्षेत्र तथा]
औपशमिकसम्यग्दृष्टीनाम् ।१। = उपशम सम्यग्दर्शनवाले
असंयतसम्यग्दृष्टि+आदि+उपशान्तकषाय–अन्तानां ।१। = असंयत सम्यग्दृष्टीसे उपशांत कषाय तकनका (क्षेत्र और)
सासादनसम्यग्दृष्टीनां ।१। च = सासादनसम्यग्दृष्टी (दूसरे गुणस्थानवर्ती) नका (क्षेत्र) और
सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां ।१। सामान्य-उक्तं-।१।१। क्षेत्रम् ।१।१। = मिश्र गुणस्थानवालोंका संक्षेपसे (पूर्व) कथित [गुणस्थानवत्] क्षेत्र है

(१३) संज्ञानुवादेन–संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् । असंज्ञिनां सर्वलोकः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् ॥ [१४] आहारानुवादेन–आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा ॥ क्षेत्रनिर्णयः कृतः ॥

(१३) संज्ञा-अनुवादेन ‡। संज्ञिनां ‡। चक्षुः-	=सैनीके कथनानुसारकरि सैनियोंका (क्षेत्र) चक्षुः
दर्शनिवत् * असंज्ञिनां ‡। सर्वलोकः ‡। तद्-उभय	=दर्शनवालोंके समान है असैनियोंका (क्षेत्र) समस्त लोक है उन दोनों
व्यपदेशरहितानां ‡। सामान्य-उक्तं ‡॥। क्षेत्रम् ‡॥।	=नामोंसे वर्जितों अयोगियोंका संक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है
(१४) आहार-अनुवादेन ‡।–आहारकाणां ‡।	=[१४] आहारकी विवक्षाकरि आहारक
मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां ‡। सामान्य	=मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषाय तकका संक्षेपसे
उक्तं ‡॥। क्षेत्रम् ‡॥। सयोगकेवलिनां ‡।	=(पहिले) कहा हुआ (क्षेत्र है) योगसहित केवलीनका (क्षेत्र)
लोकस्य ‡। असंख्येयभागः ‡। अनाहारकाणां ‡।	=लोकका असंख्यातवां भाग है । आहारवर्जित
मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टि	=मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयत सम्यग्दृष्टी (तथा)
अयोगकेवलिनां ‡। सामान्य–उक्तं ‡॥। क्षेत्रम् ‡॥।	=अयोकेवलिनका संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) क्षेत्र है
सयोगकेवलिनां ‡। लोकस्य ‡।	=सयोगकेवलियोंका [क्षेत्र] [प्रतर समुद्घातकी अपेक्षासे] लोकके
असंख्येयभागाः ‡। सर्वलोकः ‡। वा	=असंख्यात भागोंमेंसे बहुत भाग हैं अथवा (लोक पूरण समुद्घातकी विवक्षासे) समस्त लोक है ॥ (देखो पृष्ठ ११५–१२० तक इस अनुवादका)
क्षेत्रनिर्णयः ‡। कृतः ‡।	=(इसप्रकार) क्षेत्रका निर्धारण किया गया है

(१) ये न संज्ञिनो नाप्यसंज्ञिनस्तेषाम् (२) समुद्घातरहितत्वादित्यर्थः ।

स्पर्शनमुच्यते-तद् द्विविधम्। सामान्येन विशेषेण च॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः* स्पृष्टः॥

स्पर्शनम् ।।। उच्यते T तद् ।।। =(अब स्पर्शन कहाजाता है) वह
द्विविधम् ।।। सामान्येन ।।। विशेषेण ।। च । सामान्येन ।।। =दो प्रकारका है संक्षेपकरि तथा भेदकरि । संक्षेपसे
तावत् * मिथ्यादृष्टिभिः ।। सर्वलोकः ।। स्पृष्टः ।। =प्रथम मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्शन किया जाता है

(१) ये ।। न संज्ञिनः ।। न अपि+असंज्ञिनः ।। तेषाम् ।। =जो न सैनी हैं न असैनी हैं तिन अयोगकेवलीनका (सामान्य उक्त क्षेत्र है)
(२) समुद्घातरहितत्वात् ।।। इति+अर्थः ।। =समुद्घात वर्जितपनाकरि ऐसा अभिप्राय है अर्थात् समुद्घातरहित सयोगकेवलीनका लोकका असंख्यातवांभाग क्षेत्र है

* असंख्यातयोजनकोटयाकाशप्रदेशः परिमाणरज्जुस्तावदुच्यते । तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जुत्रिचत्वारिंशदधिकशतत्रयपरिमाणो लोक उच्यते । स लोको मिथ्यादृष्टिभिः सर्वः स्पृष्टः । इत्युक्तलक्षणे लोके स्वस्थानविहारः परस्थानविहारो मारणांतिकसमुद्घातश्च प्राणिभिर्विधीयते ॥

असंख्यातयोजनकोटि-आकाशप्रदेशः ।। =असंख्यात करोड योजन (ऊंचेमें जितने) आकाशके प्रदेश हैं तितने (तावत्)
परिमाणरज्जुः ।।। तावत्* उच्यते T प्रमाणका राजू कहा जाता है अर्थात् असंख्यात करोड योजन ऊंची एक रेखा आकाशकी मान लो जितने इस रेखामें प्रदेश हैं उन आकाशके प्रदेशोंको रेखा रूपमें राजू समझना चाहिये । जगत् श्रेणीके सातवां भागको राजू कहते हैं । अतः सात राजूकी एक जगत् श्रेणी होती है । जगत्श्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगत् श्रेणीके घनको लोक कहते हैं । यही तीन लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है ॥

तत् लक्षण— =उस चिन्हवाला (लक्षण अर्थात् एक राजू ऊंचा)
समचतुरस्ररज्जु— =(और) समान चौकोर (राजूयुक्त अर्थात् एक राजू लम्बा एक राजू चौडा)
भावार्थ—घनाकार राजूवाला (तल्लक्षणसमचतुरस्ररज्जू)

त्रिचत्वारिंशत् ।। अधिकशतत्रयपरिमाणः ।। =तेतालीस अधिक तीनसौके प्रमाण
लोकः ।। उच्यते T =लोक कहा गया है अर्थात् सब लोक तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू है
सः ।। लोकः ।। मिथ्यादृष्टिभिः ।। सर्वः ।। स्पृष्टः ।। =वह लोक मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त स्पर्श किया जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः(स्पृष्टाः)।

सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।।	=सासादनसम्यग्दृष्टियोंकरि [स्वस्थानविहार अपेक्षा]
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	=लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शन किया जाता] है [तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें]
चतुर्दश ।। भागाः ।।	=चौदह राजू [=भागा, त्रसनालि] है [सो सासादन सम्यग्दृष्टी करि]
अष्टौ ।। वा द्वादश ।। देशोनाः ।। स्पृष्टाः ।।	=कुछ हीन आठ राजू (=भाग) अथवा कुछ हीन १२ राजू स्पर्शा जाय है। अर्थात् घनरूप तीनसौ तेतालीस

इति + उक्त लक्षणे ।। लोके ।। स्वस्थानविहारः ।।	=इसप्रकार कथित चिन्हवाले लोकविषै स्वस्थान विहार
परस्थान विहारः ।। मारणांतिक समुद्घातः ।। च	=परस्थान विहार और मारणांतिक समुद्घात
प्राणिभिः ।। विधीयते	=जीवोंकरि किया जाता है अर्थात् ३४३ राजू घनाकार लोकका जीव स्वस्थान विहार अपेक्षा परस्थान विहार अपेक्षा तथा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा स्पर्शन करते हैं।

१ तत्र स्वस्थानविहारापेक्षया सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । पञ्चमेऽपि स्वस्थानविहारापेक्षया लोकस्यासंख्येयभागो ज्ञातव्यः । परस्थानविहारापेक्षया तु सासादनदेवानां प्रथमपृथिवीत्रये त्रिरज्जुकम् । अच्युतान्तोपरिविहारात् षड्रज्जुवत् इत्यष्टौ द्वादश चतुर्दश वा भागा देशोनाः स्पृष्टाः ॥ द्वादशभागाः कथं स्पृष्टा इति चेदुच्यते–सप्तमपृथिव्या परित्यक्तः सासादनादिगुणस्थान एव मारणान्तिकं विदधातीति नियमात् ॥ षष्ठीतो मध्यलोके पञ्चरज्जवः सासादनो मारणान्तिकं करोति । मध्यलोकाच्च लोकाग्रे बादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवनस्पतिकायिकेषु उत्पद्यते इति सप्तरज्जव एव द्वादशरज्जवो भवन्ति । सासादनसम्यग्दृष्टिर्हि वायुकायिकेषु तेजःकायिकेषु नरकेषु सर्वसूक्ष्मकायिकेषु चतुर्थस्थानकेषु नोत्पद्यत इति नियमः ॥ तथा चोक्तम् ॥ गाथा—(जो पृष्ठ १३६ में मुद्रित है ।

तत्र* स्वस्थानविहार–अपेक्षया ।।। सासादन—	=तहां स्वस्थान विहारकी विवक्षाकरि सासादन—
सम्यग्दृष्टिभिः ।। लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। स्पृष्टः ।।	=सम्यग्दर्शनवालोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
एवम्* अग्रे ।।। अपि स्वस्थान—	=इसीप्रकार अगले (गुणस्थानों विषै) भी स्वस्थान—
विहार–अपेक्षया ।।। लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	=विहारकी विवक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्श किया हुआ)
ज्ञातव्यः ।।	=जानना चाहिये वा जानना योग्य है
परस्थानविहार—अपेक्षया ।।। तु प्रथमपृथिवीत्रये ।।।	=परन्तु परस्थान विहारकी विवक्षासे तौ पहले नरकसे (पृथिवी) तीनों (तक)में
सासादनदेवानां ।। विहारात् ।।	=सासादन (दूसरे गुणस्थानवाले) देवोंके विहार करनेसे
त्रिरज्जुकम् ।।। (स्पृष्टः ।।) अच्युत + अन्त उपरि *	=तीन राजू (स्पर्शन किये जाय) हैं। अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) पर्यन्त ऊपर
विहारात् ।। षड् रज्जुवत् (स्पृष्टः ।।)	=विहार करनेसे छः राजूके बराबरी (=वत्) स्पर्शन होय है

राजू सब लोक है उसमें चौदह राजू ऊंची एकराजू चौडी एक राजू लंबी नाल है उसमें ही त्रस जीव रहते हैं इसलिये इसको त्रसनाल कहते हैं इसके एकराजू ऊंचे एकराजू लंबे एकराजू चौडे भाग किये जावें तो ऐसे चौदह भाग होंगे इस प्रत्येकको घनाकार रज्जूभाग कहते हैं संक्षेपसे इस प्रत्येक घनाकार राजूभागको श्रीपूज्यपाद स्वामीने भाग माना है। इस त्रसनालके सबसे नीचले एक घनाकारराजूमें नित्यनिगोद पंचगोलक स्कंध अंडर इत्यादि हैं। इसके अनन्तर एक घनराजूमें माघवी सातवा नरक है, इसके लगता लगता ही एक एक घनाकार राजूमें मघवी छट्ठा, अरिष्टा पांचवां, अंजना चौथा, मेघा तीसरा नरक है इनके समीप ही एक घनाकार राजूमें वंशा दूसरा, धम्मा प्रथम नरक है फिर मध्यलोक है। मध्यलोकसे ऊपर तीनराजूमें प्रथम चार स्वर्ग हैं इनके अनन्तर एक घनाकार राजूमें ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लांतव-कापिष्ठ-चार स्वर्ग हैं, एकमें शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार हैं, एकमें आनत-प्राणत-आरण-अच्युत स्वर्ग हैं, एकमें नव ग्रीवक नव अनुदिश पंच अनुत्तर हैं॥ परस्थान विहारकी अपेक्षा सासादनगुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करै हैं सो मध्यलोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और ऊपर सोलह स्वर्गतक विहार करैं तब छह राजू ये हुये इसप्रकार आठराजू परस्थानविहार अपेक्षा स्पर्शनके हुये॥ मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकका पर सत्ता है यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करै और बादर पृथिवीकायकादिमें लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे मध्यलोक तक पांचराजू हुये और मध्यलोकसे लोकके अंततक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये इसप्रकार मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानवर्ती त्रस नालके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्शे हैं॥

चतुर्दश $\frac{1}{4}$ भागाः $\frac{1}{4}$
इति + अष्टौ $\frac{1}{4}$ द्वादश $\frac{1}{4}$ देशोनाः $\frac{1}{4}$ स्पृष्टाः $\frac{1}{4}$
द्वादशभागाः $\frac{1}{4}$ कथं स्पृष्टाः $\frac{1}{4}$ इति चेत् उच्यते
सप्तमपृथिव्या $\frac{1}{4}$ परित्यक्ताः $\frac{1}{4}$ सासादनादिगुणस्थान
एव मारणांतिकं $\frac{1}{4}$ विदधाति $\frac{T}{4}$ इति नियमात् $\frac{1}{4}$

=चौदहराजू (=भागाः) (त्रसनाल) है
=(उसमेंसे) इसप्रकार कुछ हीन आठराजू अथवा कुछ हीन १२ राजू स्पर्शन किये [जाय है
=बारहराजू कैसे स्पर्शन किये जाय है ऐसे संदेह (=चेत्) होनेपर कहा जाता है
$\frac{T}{4}$ ग=सातवां नरक करि वर्जित सासादन आदि गुणस्थानमें
=ही मारणांतिक समुद्घातको जीव करता है ऐसे नियमसे।

सर्वार्थ-
१३५

सम्यङ्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागाः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः ।

सिद्धि

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।।	=सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टियों कर (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	=लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शा जाता है
वा चतुर्दश ।। भागाः ।।	=अथवा [परस्थान विहार अपेक्षा] चौदहराजू [= चतुर्दशभागाः] है उनमेंसे
अष्टौ ।। देशोनाः ।।	=कुछहीन आठराजू (= भागाः) स्पर्शा जाय है अर्थात् मिश्र गुणस्थानवर्ती देव और असंयतगुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करें तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं ।
षष्ठीतः* मध्यलोके ।। पञ्चरज्जवः ।।	=छट्ठी (नरक) से मध्यलोक विषै पांच राजू
सासादनः ।। मारणांतिक ।। करोति	=सासादन (दूसरे गुणस्थान) वर्ती मरणांतिक समुद्घात करता है
च मध्यलोकात् ।। लोक-अग्रे ।।।। (सासादनः ।।)	=बहुरि मध्यलोकसे लोकके ऊपरभागमें (अग्रे) (सासादनवाले)
बादरपृथिवीकायिक + बादरअप्कायिक बादर—	=बादरभू कायिक, बादरजलकायिक, व बादर-
वनस्पतिकायिकेषु ।। उत्पद्यते इति सप्तरज्जवः ।।।	=वनस्पतिकायिक विषै उपजता है ऐसे सातराजू (और उपर्युक्त पांचराजू मिलकर)
एवं* द्वादशरज्जवः ।। भवन्ति	=इसप्रकार बारह राजू होते हैं (सो सासादनवाला मारणांतिक अपेक्षा स्पर्शे है)
सासादनसम्यग्दृष्टिः ।। हि* वायुकायिकेषु ।।	=क्योंकि (=हि) सासादन सम्यग्दर्शनवाला पवनकायिकमें
तेजःकायिकेषु ।। नरकेषु ।। सर्वसूक्ष्मकायिकेषु ।।	=अग्निकायिकमें (सर्व) नरकोंमें और समस्त (पृथिवी, जल, अनल, पवन व वनस्पति) सूक्ष्मकायिकोंमें
चतुर्षु स्थानकेषु ।।।। न उत्पद्यते इति नियमः ।।	=(इन) चार स्थानकमें नहीं उपजता है ऐसा नियम है

अर्थात् थावरकायिकके (१) सूक्ष्मपृथिवीकायिक (२) बादरपृथिवीकायिक (३) सूक्ष्म अप्कायिक [४] बादर अप्कायिक (५) सूक्ष्म-तेजःकायिक (६) बादरतेजःकायिक (७) सूक्ष्मवायुकायिक (८)बादरवायुकायिक (९) सूक्ष्मवनस्पतिकायिक (१०) बादरवनस्पतिकायिक ये दश भेद हैं इनमेंसे सासादन गुणस्थानवर्ती केवल बादर पृथिवीकायिकमें बादरअप्कायिकमें और बादर वनस्पतिकायिकमें उपज सक्ता है अवशेष सातमें नहीं और सातो नरकमें नहीं उपजता है ॥

एतन्निवासी जगद्रूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ८। सिद्धि

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् ॥

संयत-असंयतैः ।।	= संयतासंयत (पांचवां गुणस्थान) वालोंकरि (स्वस्थान विहार अपेक्षासे)
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	= लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शन किया जाता) है
वा चतुर्दश ।। भागाः ।।	= अथवा (= वा) [त्रसनाल] चौदहराजू है (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्तकी उत्पत्तिके कारणसे)
षट् ।। देशोनाः ।। [स्पृष्टा ।।]	= कुछ हीन छह [राजू = भागाः] स्पर्शे जाय हैं
प्रमत्तसंयत-आदीनाम् ।। अयोगकेवलि-अन्तानां ।। क्षेत्रवत् * स्पर्शनम् ।।।	= प्रमत्तसंयत [छठवां गुणस्थान] वालोंसे लेकर अयोगकेवलियों तकका क्षेत्रतुल्य स्पर्शन है (देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक)

तथा च* उक्तम् ।।। गाथा ।।।	= जैसा कि (= तथा च) आर्या छंद (निम्नलिखितमें कहा गया) है

वज्जिअ ठाणचउक्कं तेऊ वाऊ य णरयसुहुमं च। अण्णत्थ सव्वठाणे उवज्जदे सासणो जीवो ॥१॥

ठाणचउक्कं ।।। तेऊ ।।। य (स्थान-चतुष्कं ।।। तेजः ।।। च)=चारस्थान (बादर) तेजकायिक और (= य)
वाऊ ।। च णरयसुहुमं ।। (वायुम् ।। च नरक-सूक्ष्मं ।।) = (बादर) पवनकायिक और (= च) नरक, सूक्ष्म (पृथिवीकायिक जलकायिक अनलकायिक-पवनकायिक वनस्पतिकायिक)

वज्जिअ÷अण्णत्थ (= वर्जयित्वा÷अन्यत्र*)	= छोड़कर और ठौर अथवा अन्य ठांव
सासणो ।। जीवो ।। (सासादनः ।। जीवः ।।)	= सासादन (दूसरे) गुणस्थानवर्ती जीव
सव्वठाणे ।।। उवज्जदे (सर्वस्थाने ।।। उत्पद्यते ।।)	= सब स्थानोंमें उपजता है वा जन्म लेता है
देशोनाः ।। इति कथम् * केचित्-प्रदेशाः ।। सासादन-सम्यग्दर्शनयोग्याः ।। न भवन्ति-इति देशोनाः ।।	= कुछ हीन यह कैसे ? कितनेक प्रदेश सासादन = सम्यग्दर्शनवालोंके (स्पर्श) योग्य नहीं है इसलिये कितेक हीन है

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । द्वितीयादिषु प्राक्तनसम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः एकः द्वौ त्रयः चत्वारः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः ।

विशेषेण ।। (१) गति-अनुवादेन ।।—
नरकगतौ ।। प्रथमायां ।। पृथिव्यां ।।
नारकैः ।। चतुर्गुणस्थानैः ।।
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। स्पृष्टः ।।

द्वितीयादिषु ।। प्राक्तनसम्याः ।।

मिथ्यादृष्टिभिः ।। सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।।
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। (स्पृष्टः ।।)
वा चतुर्दश ।। भागाः ।।
एकः ।। द्वौ ।। त्रयः ।।
चत्वारः ।। पञ्च ।। देशोनाः ।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि+असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।।
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।

= भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
= नरकगतिविषै पहले नरकमें
= चार (पहले दूसरे तीसरे चौथे) गुणस्थानवर्ती नारकियों करि
= लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है (नारकियोंके प्रथमसे चौथे तक चारही गुणस्थान हो सकते हैं)
= दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवींसे पहिली (पृथिवी) तकमें अर्थात् (दूसरे नरकसे छठे नरकपर्यंत विषै)
= मिथ्यादृष्टी [तथा] सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियोंकरि
= लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता] है [अपेक्षा
= अथवा चौदह राजू [लोककी त्रसनालके] हैं (सो मारणान्तिक समुद्घात
= [कुछहीन] एकराजू (कुछ घाटि) दो राजू (कुछ न्यून) तीनराजू
= (कुछघाटि) चारराजू कुछ न्यून पांचराजू स्पर्शनहोय है क्योंकि दूसरे नरकसे मध्यलोक एक राजू है तीसरेसे दो राजू, चौथेसे तीन राजू पांचवेंसे चार राजू और छठे नरकसे मध्यलोक पांच राजू हैं [सम्यग्दृष्टियोंसे
= [दूसरे नरकसे छठे नरक तकके नारकी] मिश्रगुणस्थानवर्ती और असंयत
= (स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग (स्पर्शा जाता) है

सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। शेषैस्त्रिभि-र्लोकस्यासंख्येयभागः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृ-ष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-

---

सप्त-यां ॥ पृथिव्यां ॥ मिथ्यादृष्टिभिः ॥ = सातवीं पृथिवीविषै (स्वस्थान विहार अपेक्षा) मिथ्यादृष्टी [नारकी]यों करि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ वा = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शन किया जाता है] वा [मारणान्तिक समुद्घातसे]
चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = चौदहराजू [लोकत्रसनालके] हैं सो [राजू हैं
षट् ॥ देशोनाः ॥ = कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं क्योंकि सातवें नरकसे मध्यलोक छह
शेषैः ॥ त्रिभिः ॥ = [सातवें नरक विषै] बाकी तीन [सासादन, मिश्र, असंयत गुणस्थान वाले नारकियों] करि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = (स्वस्थान विहार अपेक्षा) लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शा जाता है
तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चां ॥ तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ॥ = तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों करि
सर्वलोकः ॥ स्पृष्टः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ॥ = समस्त लोक स्पर्शा जाता है ॥ सासादनसम्यग्दृष्टी [तिर्यंच] निकरि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ [स्पृष्टः ॥] = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है।
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अथवा (लोककी त्रसनालके) चौदह राजू हैं
(सो मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंकरि)
सप्त ॥ देशोनाः ॥ स्पृष्टाः ॥) सम्यङ्मिथ्यादृष्टिभिः ॥ = कुछ हीन सात राजू स्पर्शे (जाते) हैं मिश्रगुणस्थानवर्ती (तिर्यंचोंसे)

---

(१) यहां पर षष्ठी निर्णय वा निर्धारण (= जाति, गुण, क्रिया और नामरूप समुदायसे एक देशको पृथक करना) अर्थमें है ॥ इसी अर्थमें सप्तमी बहुवचन तिर्यक्षु (= तिर्यङ्क्षु = तिर्यङ्ग्सु) भी ला सके हैं "कस्मिन्निर्धारणम्" = जिससे (=यतः) निर्णय वा निर्धारण है इससे भी (=च = षष्ठी और सप्तमी विभक्ति) हों। अष्टाध्यायी २-३-४१ जैसे मनुष्याणां क्षत्रियः शूरतमः अथवा मनुष्येषु क्षत्रियः शूरतमः = मनुष्योंमें क्षत्रिय जाति सबसे शूर है ॥ ऐसे ही तिर्यंचोंमेंसे मिथ्यादृष्टि (गुणस्थानवाले) तिर्यंचोंकरि इत्यादि अर्थ किया है। तिरश्चाम् अथवा तिर्यंचाम् दोनों षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगके रूप हैं ॥

भिर्लोकस्यासंख्येयभागः । असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागाः वा देशोनाः । मनुष्यगतौ मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिर्भिर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा स्पृष्टः । सासादनसम्यग्दृष्टि भिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागाः वा देशोनाः । सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् ॥ देवगतौ देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ

लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। (स्पृष्टः ।।) = लोकका असंख्यातवां खंड (स्पर्शा जाता) है
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।। संयतासंयतैः ।। = असंयतसम्यग्दृष्टी (तथा) संयमासंयमी तिर्यंचोंकरि
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। (स्पृष्टः ।।) = लोकका असंख्यातवां खंड (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश ।। भागाः ।। = अथवा (लोकनसनालके) चौदह राजू हैं
षट् ।। देशोनाः ।। (स्पृष्टाः ।।) = (सो मारणांतिकसमुद्घात अपेक्षा) कुछ घाटि छह राजू स्पर्शे जाते हैं
मनुष्यगतौ ।। मनुष्यैः ।। मिथ्यादृष्टिभिः ।। = नरगतिमें मिथ्यादृष्टी मनुष्योंकरि
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। = लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
वा सर्वलोकः ।। स्पृष्टः ।। = अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] सब लोक स्पर्शा जाता है ।
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।। लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। = सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) नकरि लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है
वा चतुर्दश ।। भागाः = अथवा [लोक त्रसनालके] चौदहराजू हैं सो (मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा)
सप्त ।। देशोनाः ।। (स्पृष्टाः ।।) सम्यङ्मिथ्यादृष्टि- = कुछ हीन सातराजू (स्पर्शे जाते) हैं । मिश्रगुणस्थानवर्तीन
आदीनाम् ।। अयोगकेवलि-अन्तानां ।। क्षेत्रवत् स्पर्शनम् = से लेका अयोगकेवली पर्यंतनका स्पर्शन क्षेत्रसदृश या तुल्य है
देवगतौ ।। देवैः ।। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः ।। = देवगतिविषै मिथ्यादृष्टि (और) सासादनसम्यग्दृष्टी देवोंकरि
लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। = लोकका असंख्यातवां अंश (स्पर्शा जाता) है
वा चतुर्दश ।। भागाः ।। अष्टौ ।। = अथवा (लोकनसनालके) चौदहराजू हैं सो परस्थान विहार अपेक्षा कुछ

नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सम्यङ्मिथ्यादृष्त्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः । विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा

हीन [आठराजू] अर्थात् दो राजू तीसरे नरक तक व छः राजू अच्युत सोलहवें स्वर्गतक स्पर्श जाते हैं

नव ॥ देशोनाः ॥ = मरणांतिक समुद्घात अपेक्षा कुछ घाटि नौ [राजू तीसरे नरकसे लोकके ऊपर तकके मध्यका क्षेत्र नौराजू हुआ सो नौराज कुछ घाटि स्पर्श जाते] हैं

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ॥ = मिश्रगुणस्थानवाले [तथा] असंयतसम्यग्दृष्टी (देव) नकरि

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ [स्पृष्टः ॥] = लोकका असंख्यातवांखंड [छुआजाता] है

वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ [स्पृष्टाः ॥] = कुछ हीन आठभाग [स्पर्शन किये जाते] हैं अर्थात् नीचे जावे तो तीसरे नरक तक दो राजू ऊपर जावे तो अच्युत सोलहवें स्वर्गतक छः राजू ऐसे आठ राजू हुये

[२] इन्द्रिय—अनुवादेन ॥ एकेन्द्रियैः ॥ सर्वलोकः ॥ = इन्द्रियनके कथनानुसारसे एकेन्द्रियनकरि समस्त लोक

स्पृष्टः ॥ विकल-इन्द्रियै ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = स्पर्शा जाता है दो तीन चार (= विकल) इन्द्रियवाले जीवोंकरि लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शा जाता] है

वा सर्वलोकः ॥ (स्पृष्टः ॥) = अथवा [मारणान्तिक समुद्घात अपेक्षा] समस्त लोक [स्पर्शा जाता] है

पंचेन्द्रियेषु ॥ मिथ्यादृष्टिभिः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येय = पांच इन्द्रियवालोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां

भागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अंश (स्पर्शा जाता) है [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं [सो परस्थान विहार अपेक्षा]

देशोनाः सर्वलोको वा । शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (३) कायानुवादेन—स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् स्पर्शनम् ॥ (४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिनांमिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥

अष्टौ ;।। देशोनाः ;।। (स्पृष्टाः ;।।) वा सर्वलोकः ;।। = कुछ आदि भाव रखू हैं अथवा (मारणांतिक अपेक्षा) सारा लोक स्पर्शे
शेषाणां ;।। सामान्य+ = शेष (सासादन आदि समस्त गुणस्थानवर्तीन) के संक्षेप (प्रकरण) में
उक्तं ;।।। स्पर्शनम् ;।।। = [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] स्पर्शन है [देखो पृष्ठ १३३,१३६]
३ काय—अनुवादेन ;।। स्थावरकायिकैः ;।। सर्वलोकः ;।। = कायके कथनानुसारकरि स्थावर कायिकनकरि समस्तलोक
स्पृष्टः ;।। त्रसकायिकानां ;।। पञ्चेन्द्रियवत् = स्पर्शा जाता है ॥ त्रसकायिकनका पंचइन्द्रिय जीवनके समान
स्पर्शनम् ;।।। = स्पर्शन है अर्थात् लोकका असंख्यातवां भाग है असंख्याते भाग है और सर्व लोक भी है ॥

[४] योग—अनुवादेन ;।। वाङ्मानसयोगिनां ;।। = (४) योगकी विवक्षासे वचन मन योगवाले
मिथ्यादृष्टिभिः ;।। लोकस्य ;।। असंख्येयभागः ;।। = मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है
वा चतुर्दश ;।। भागाः ;।। = अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं [सो]
अष्टौ ;।। देशोनाः ;।। (स्पृष्टाः ;।।) = कुछ हीन आठ राजू (स्पर्शे जाते) हैं
वा सर्वलोकः ;।। (स्पृष्टः ;।।) सासादन सम्यग्दृष्टि = अथवा सारालोक (स्पर्शा जाता) है । सासादन सम्यग्दर्शन वालोंसे
आदीनां ;।। क्षीणकषाय-अंतानाम् ;।। स्पर्शनम् ;।।। = लेकर क्षीणकषाय वर्तियों तकका स्पर्शन
सामान्य उक्तं ;।।। = संक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) स्पर्शन
लोकस्य ;।। असंख्येयभागः ;।। सयोगकेवलिनाम् ;।। = लोकका असंख्यातवां खंड है ॥ योगसहित केवलीनका

काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ [५] वेदानुवादेन—स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दश भागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥

काययोगिनां ‖ मिथ्यादृष्टि–आदीनां ‖ सयोगकेवलि–अन्तानाम् ‖ च अयोगकेवलिनां ‖ सामान्य–उक्तं ‖ स्पर्शनम् ‖ । वेद–अनुवादेन–‖ स्त्रीपुंवेदैः ‖ मिथ्यादृष्टिभिः ‖ लोकस्य ‖ असंख्येय भागः ‖ स्पृष्टः ‖ वा चतुर्दश ‖ भागाः ‖ अष्टौ ‖ नव ‖ देशोनाः ‖ [स्पृष्टाः ‖] वा सर्वलोकः ‖ (स्पृष्टः ‖) सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ‖ लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ (स्पृष्टाः) वा चतुर्दश ‖ भागाः ‖ अष्टौ ‖ नव ‖ देशोनाः ‖ (स्पृष्टाः ‖) सम्यङ्मिथ्यादृष्टि+आदि–अनिवृत्तिबादर+अन्तानां ‖ सामान्य+उक्तं ‖ स्पर्शनम् ‖ ।

नपुंसकवेदेषु ‖ मिथ्यादृष्टीनां ‖ च, सासादन–सम्यग्दृष्टीनां ‖ सामान्य+उक्तं ‖ स्पर्शनम् ‖ ।

= काययोगवाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली
= पर्यंतका तथा [= च] अयोगकेवलीयोंका
= स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ (गुणस्थानवत्) स्पर्शन है। वेदकी अपेक्षाकरि
= स्त्री (और) पुरुष वेदी मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां
= भाग स्पर्शा जाता है अथवा [लोकत्रस नालके] चौदह राजू हैं
= (सो) कुछ घाटि आठ कुछहीन नौ राजू (स्पर्शे जाते) हैं, वा समस्तलोक
= (स्पर्शा जाता) है । सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि लोकका
= असंख्यातवां अंश स्पर्शा जाता है वा (लोकत्रस नाड़ीके) चौदह राजू हैं
= (सो) कुछ घाटि आठ राजू कुछ हीन नौ राजू (छुए जाते) हैं
= (स्त्री पुरुषवेदी) मिश्रगुणस्थानवर्तीनसे
= अनिवृत्तिबादर (नववां गुणस्थानके प्रथम तीन वेद भाग वालों) तकका
= संक्षेप [प्रकरण] में [पहिले] कथित [गुणस्थान सदृश] स्पर्शन है
देखो पृष्ठ १३६, ११५ से १२० तक ।
= नपुंसक वेदवाले मिथ्यादृष्टि तथा [= च] सासादन
= सम्यग्दर्शनवालोंका संक्षेप (संबन्ध) में [पहिले] कहा हुआ (गुण–स्थानवत्) स्पर्शन है । देखो इसी प्रतिका पृष्ठ १३२,१३३,१३४।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः । प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानामपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (६) कषायानुवादेन—चतुष्कषायाणामकषायाणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (७) ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां

सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः ३।१ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= मिश्र गुणस्थानवालोंकरि लोकका असंख्यातवां, अंश
स्पृष्टः १।१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३।३	= छुआ जाता है असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि [तथा]
संयतासंयतैः ३।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	= संयमासंयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश [छुआ जाता] है
वा चतुर्दश १।३ भागाः १।३ षट् १।३ देशोनाः १।३	= वा (लोकनस नालके) चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ हीन छः राजू स्पर्शे जाते हैं ।
प्रमत्त+आदि अनिवृत्तिबादर+अन्तानाम् ६।३	= प्रमत्त संयमीनसे अनिवृत्तिबादर [नवमां गुणस्थान वालोंनके प्रथम तीन वेद मार्गों] तक
अपगतवेदानां ६।३ च	= तथा वेदरहित [नवमां गुणस्थानके अंतके तीन वेदरहित मार्गोंसे अयोग-
सामान्य+उक्तं १।१ स्पर्शनम् १।१	= स्पर्शन संक्षेप (प्रकरण) में [पहिले] कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है ॥ (देखो पृष्ठ १३६, ११५, से १२० तक इस अनुवादका)
कषाय-अनुवादेन ३।१ चतुष्कषायाणाम् ६।३	= कषायके कथनानुसारकरि चार [क्रोध मान माया लोभ] कषाय वालेनके
अकषायाणाम् ६।३ च	= और कषायवर्जित [ग्यारहवां गुणस्थानवर्तीनसे चौदहवां गुणस्थानवाले
स्पर्शनम् १।१	= तक] नका स्पर्शन [११५–१२०
सामान्य+उक्तम् १।१	= संक्षेपसे (प्रथम) कथित [गुणस्थान सदृश] है [देखो पृष्ठ १३६–
ज्ञान-अनुवादेन ३।१ मति-अज्ञानि श्रुत-अज्ञानिनाम् ६।३	= ज्ञानकी विवक्षासे मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान,
मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनाम् ६।३	= मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टीयोंका

सामान्योक्तं स्पर्शनम् । विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । (८) संयमानुवादेन-संयतानां सर्वेषां संयतासंयतानाम्

सामान्य उक्तं ॥ स्पर्शनम् ॥

विभंगज्ञानिनाम् ॥ मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ वा सर्वलोकः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टीनां ॥ सामान्य-उक्तम् ॥॥

स्पर्शनम् ॥॥ आभिनिबोधिक श्रुत-अवधिमनःपर्यय केवलज्ञानिनां ॥ सामान्य उक्तम् ॥॥ स्पर्शनम् ॥॥

८ । संयम-अनुवादेन ॥ संयतानां ॥ सर्वेषां ॥

संयत असंयतानाम् ॥ ।

= स्पर्शन संक्षेप प्रकरणमें [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] है [देखो पृष्ठ १३२-१३३-१३४]

= [विभंगज्ञानी] कुअवधिवाले मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवांखंड है अथवा [लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं

= सो कुछ हीन आठ [राजू] हैं अथवा सम्पूर्ण लोक है

= सासादनसम्यग्दर्शनवालों [विभंगज्ञानी] का संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ गुणस्थानवत् स्पर्शनहै [देखो पृष्ठ १३३-१३४

= मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी

= [तथा] केवलज्ञानीका स्पर्शन संक्षेपसे कहा हुआ [गुणस्थानवत] है

= [देखो टिप्पणी पृष्ठ ८८, ८९ और ११५ से १२० १३३-१३६ तक

= संयमकी विवक्षासे समस्त संयमी अर्थात छठवां गुणस्थानवर्तीसे चौदहवांगुणस्थानवर्तीतक का और

= संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थानवाले) का

१ मनुष्यतिर्यग्विभङ्गज्ञानिभिः ॥ क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया सर्वलोक इति वचनम् ॥ देवानां नव चतुर्दशभागा इति पूर्वमुक्तत्वात् ॥

मनुष्यतिर्यग्विभिङ्गज्ञानिभिः ॥ क्रियमाण-मारणान्तिक + अपेक्षया ॥ सर्वलोकः ॥ इतिश्च वचनं ॥॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ देवानां ॥ नव ॥ इति पूर्वम् ॥॥ उक्तत्वात् ॥॥

= नर (और) तिर्यंचकुअवधिज्ञानवालोंकरि किये जानेवाले (= क्रियमाण) मारणांतिकसमुद्घात विवक्षासे समस्त लोक (स्पर्शाजाता) है एसा वाक्य है

= (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं सो देवोंका (स्पर्शन) नौ (राजू) है

= क्योंकि इसप्रकार पहिले कथन हुआ है देखो इस अनुवादका पृष्ठ १४०

असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ [९] दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीण-कषायान्तानां पञ्चेन्द्रियवत् । अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानामवधिकेवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन-कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः ।

असंयतानाम् ‖ च	= तथा [= च] असंयमी [पहिले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवाले] नका
सामान्य-उक्तम् ‖ सा स्पर्शनम् ‖ सा	= सामान्य [संक्षेपसे] कथित [गुणस्थानवत्] है देखो पृष्ठ १३२-१३५, ११५ से १२० [इसी अनुवादका]
[९] दर्शन-अनुवादेन ‖ चक्षुःदर्शनिनाम् ‖	= [९] दर्शनके कथनानुसारकरि चक्षुः दर्शनवाले
मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानाम् ‖	= मिथ्यादृष्टीसे लेकर क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थान] पर्यंतनका
पञ्च-इन्द्रियवत् *	= [स्पर्शन] पंचइन्द्रियजीवोंके सदृश है देखो पृष्ठ १३२ से १३६ तक और १४१
अचक्षुःदर्शनिनाम् ‖ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय	= अचक्षुः दर्शनवाले मिथ्यादृष्टीसे क्षीणकषाय [बारहवां गुणस्थानवाले]
अन्तानाम् ‖ अवधिकेवलदर्शिनाम् ‖ च	= पर्यंतोंका अवधिदर्शनी और [= च] केवल दर्शनवालोंका
सामान्य-उक्तम् ‖ सा स्पर्शनम् ‖ सा	= स्पर्शन संक्षेपसे [पहिले] कहा हुआ [गुणस्थानवत्] है [पृष्ठ १३२ से १३६-११५ से १२० देखो]
१० लेश्या-अनुवादेन ‖ कृष्णनील-कापोत-लेश्यैः ‖	= १० लेश्याकी अपेक्षासे कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले
मिथ्यादृष्टिभिः ‖ सर्वलोकः ‖ स्पृष्टः ‖	= मिथ्यादृष्टी जीवोंकरि सारा लोक स्पर्शा जाता है
सासादनसम्यग्दृष्टिभिः ‖	= [कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले] सासादन सम्यग्दर्शनवालोंकरि
लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖	= लोकका असंख्यातवां भाग [छुआ जाता] है

(१) मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानाम्

मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-	= मिथ्यादृष्टिसे असंयत सम्यग्दृष्टी (पहले दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानवर्ती)
अन्तानाम् ‖	= पर्यंतनके (स्पर्शनसे अभिप्राय है)

पञ्च चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः।

वा चतुर्दशभागाः ।१। पञ्च ।१।
= वा [लोकत्रसनालके] चौदह राजू हैं।
(सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ घाटि पांच

चत्वारः ।१। देशोनाः ।१। द्वौ ।१।
= कुछ हीन चार कुछ न्यून दो राजू हुये जाते हैं अर्थात्

सासादन गुणस्थानवर्तीका सातवें नरकमें मरण नहीं होता है अतः मारणान्तिक समुद्घात भी उसके सातवें नरकमें नहीं हो सक्ता है मध्यम कृष्णलेश्यासे युक्त छठवां नरकमें मरण करे और मध्यलोकमें जन्म लेवे तब मारणान्तिक समुद्घात करै उस मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन पांच राजू स्पर्शे है क्योंकि छठवां नरकसे मध्यलोक तक पांच राजूकी ऊंचाईमें है, इसीप्रकार पांचवां नरकसे उत्कृष्ट नील लेश्यावाला सासादन गुणस्थानवर्ती मरकर मारणांतिक समुद्घात करै और मध्यलोकमें जन्म लेवे तो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ न्यून चारराजू क्षेत्र छूता है क्योंकि पांचवा नरकसे मध्यलोक चार राजू ऊंचा है, वैसे ही तीसरे नरकसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा उत्कृष्ट कापोतलेश्यावाले सासादन गुणस्थानवर्ती कुछ घाटि दो राजू छूते हैं क्योंकि तीसरे नरकसे मध्यलोक दो राजू ऊंचा है।

---

(१) एक द्वि त्रि चतुर् पञ्चन् षष् सप्तन् अष्टन् नवन् दशन् एकादशन् द्वादशन् त्रयोदशन् चतुर्दशन् पञ्चदशन् षोडशन् सप्तदशन् अष्टादशन् नवदशन् तक विशेषण समझे जाते हैं उनके वचन और विभक्ति वही होती हैं जो संज्ञाकी होती हैं जिनके साथ ये आती हैं और एक द्वि त्रि चतुरका लिंग भी संज्ञाके समान होता है शेष संख्या तीनों लिंगोंमें मानी जा सकती हैं अतः पञ्च त्रिलिंगी भी हो सक्ता है।

(१) काऊ, काऊ, काऊ, णीला, णीला य, णील किण्हा य। किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ गोम्मट्टसारे कर्मकाण्डलेश्यामार्गणायामियं गाथा ५२६ दृश्यते ॥ अस्या गाथाया अर्थः कथ्यते—प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां जघन्या कपोतलेश्या भवति, द्वितीयायां मध्यमा। तृतीयायामेकेन्द्रकेषु उत्कृष्टा। सैव चरमेन्द्रके उत्कृष्टा तस्यैव केषांचिन्नारकाणां जघन्या नीललेश्या भवति। चतुर्थ्यां तस्यां मध्यमा नीला। पंचम्यां पृथिव्यां उपरिमेषु चतुर्ष्विन्द्रकेषु उत्कृष्टा सैव। चरमेन्द्रकेषु उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या च भवति ॥ षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णलेश्या। सप्तम्यां पृथिव्यां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या; ततः षष्ठपृथिवीतः मारणान्तिकं कुर्वाणान् कृष्णलेश्या सासादनान्यति पंचचतुर्दशभागाः कथिताः ॥

काऊ॰ग काऊ ॰ग (=कापोता ॰ग कापोता ॰ग) = (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) कापोतलेश्या, कापोतलेश्या,
काऊ ॰ग णीला ॰ग, णीला ॰ग य (=कापोता ॰ग नीला ॰ग नीला ॰ग च) = कापोत नीललेश्या और (=य=च) = नीललेश्या
णीलकिण्हा ॰ग य, किण्हा ॰ग य (=नीलकृष्णा ॰ग च, कृष्णा ॰ग च) = और (=य) नीलकृष्णलेश्या और (=य) कृष्णलेश्या
परम-किण्हा ॰ग लेस्सा ॰ग (=परमकृष्णा ॰ग लेश्या ॰ग = (तथा) उत्कृष्ट कृष्णलेश्या
पढमादि-पुढवीणं ॰ग (=प्रथमादि—पृथिवीनाम ॰ग) = पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवें नरककी (पृथिवीना) हैं अर्थात् यहाँपर नारकियोंके भाव लेश्याकी अपेक्षासे कथन है अस्तु प्रथम नरकमें कापोतलेश्या का जघन्य अंश है वैसा दूसरे नरकमें कापोतलेश्याका मध्यम अंश है। तैसा तीसरी पृथिवीमें कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश है, अंजना चौथे नरकमें नीलका मध्यम भाग है, पांचवी पृथिवी अरिष्टामें नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश है। छठा नरक मघवीमें कृष्णलेश्याका मध्यम अंश है माघवी सातवें नरकमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है। प्राकृत भाषामें इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंकी तृतीया विभक्तिसे लेकर सप्तमी विभक्ति तकके सर्वरूप रुचि शब्दके रूपोंके सदृश हैं और रुचि शब्दकी षष्ठी विभक्ति बहुवचन "रुईणं" है अतः पृथिवीणं षष्ठी बहुवचनमें लिखा गया है प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १७७-१७८

गोमट्टसारे ॰ग कर्मकाण्डे ॰ग लेश्यामार्गणायाम् ॰ग = गोमट्टसार कर्मकांडमें लेश्यामार्गणा (प्रकरण) में
इयम् ॰ग गाथा ॰ग ५२६ दृश्यते = यह गाथा ५२६ वीं देखी जाती है॥
अस्याः ॰ग गाथायाः ॰ग अर्थः ॰ग T कथ्यते प्रथमायां ॰ग = इस आर्या छंदका अर्थ कहा जाता है-पहिले
पृथिव्यां ॰ग नारकाणां ॰ग जघन्या ॰ग कापोतलेश्या ॰ग = नरक (= पृथिवी)में नारकियोंके जघन्य कापोत लेश्या होती है॥

द्वितीयायां ।॥ मध्यमा ।॥ तृतीयायाम् ।॥	=दूसरे (नरक) में मध्यम कापोत लेश्या होती है तीसरे (नरक) में
अष्टसु ।॥ इन्द्रकेषु ।॥ उत्कृष्टा ।॥	=आठ इन्द्रक बिल (=पटलके मध्यके बिलन) में उत्कृष्ट कापोत होती है
सा ।॥ एव * चरम-इन्द्रके ।॥ उत्कृष्टा ।॥	=वह (कापोत लेश्या) ही अंतके इन्द्रक बिलमें उत्कृष्ट है
च तत्र एव केषांचित् * नारकाणां ।॥	=और वहां (तीसरे नरकमें) ही कितने नारकियोंके
जघन्या ।॥ नीललेश्या ।॥ भवति T	=जघन्य नील लेश्या होती है ॥
चतुर्थ्याम् ।॥ तस्याम् ।॥ मध्यमा ।॥ नीला ।॥	=बिल (=तस्याम्) चौथी (पृथिवी अथवा नरक) में मध्यम नील लेश्या है
पंचम्याम् ।॥ पृथिव्याम् ।॥ उपरिमेषु ।॥ चतुर्षु ।॥	=पांचवें नरकविवें ऊपरमें चार
इन्द्रकेषु ।॥ उत्कृष्टा ।॥ सा ।॥ एव । चरम-इन्द्रकेषु ।॥	=इन्द्रक बिलनमें उत्कृष्ट (वही नील) है अंतके इन्द्रक बिलमें
उत्कृष्टा ।॥ नीललेश्या ।॥ जघन्या ।॥ कृष्णलेश्या ।॥	=उत्कृष्ट नील लेश्या है तथा जघन्य कृष्णलेश्या
च भवति षष्ठ्यां ।॥ मध्यमा ।॥ कृष्णलेश्या ।॥	=होती है । छठवीं (पृथिवी) विषै मध्यम कृष्णलेश्या है
सप्तम्यां ।॥ पृथिव्याम् ।॥ उत्कृष्टा ।॥ कृष्णलेश्या ।॥	=सातवी पृथिवीमें उत्कर्ष कृष्ण लेश्या है
चतुर्दश ।॥ भागाः ।॥ ततः षष्ठपृथिवीतः*	=(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) तहां छठवां नरकसे
मारणान्तिकं ।॥ कुर्वाणान् ।॥	=मारणान्तिक समुद्घात करते हुये
कृष्णलेश्यासासादनान् ।॥ प्रति *	=कृष्णलेश्यावाले दूसरे गुणस्थानवर्तीनके (स्पर्शनके)
पंच ।॥ कथिताः ।॥	=पांच (राजू) कहे गये हैं ॥ "मारणान्तिकोऽस्ति" वाक्यमें मारणांतिक शब्द पुल्लिंगमें है अतः हमने भी पुल्लिंग माना है

सप्तमपृथिवीपरित्यागः कुत इति चेत् "तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंतीति" वचनेन तत्रत्यसासादनानां मरणाभावात् । मरणाभावेऽपि मारणान्तिकाभावप्रतीतिः कथमिति चेत्—कृष्णलेश्यापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागा इति वचनान्यथानुपपत्तेः । पञ्चमपृथिवीचरमेन्द्रकात् नीललेश्यो-

उत्कृष्टस्थानात् मरणान्तिकं कुर्वद्भिः सासादनैश्चत्वारश्चतुर्दशभागा स्पृष्टाः । $_{१४}\frac{४}{१४}$ । तृतीयपृथ्वीचरमेन्द्रकादुत्कृष्टस्थानान्मारणान्तिकं कुर्वाणैर्द्वौ चतुर्दशभागौ स्पृष्टौ $_{१४}\frac{२}{१४}$ । देशोनत्वं भोगभूमिषु प्रणिधानस्पर्शनात् ॥

सप्तमपृथिवीपरित्यागः $\frac{१}{१}$ कुतः *
इति चेत् *
य * तमतमगुण (=च तमस्तमोगुण)
पडिवण्णा (=प्रतिपन्नाः $\frac{३}{१}$)
ण * मरंति T (=न म्रियन्ते T)
इति वचनेन $\frac{१}{१}$ ज्ञात्वा*
सासादनानाम् $\frac{३}{१}$ मरण-अभावात् $\frac{३}{१}$
मरण-अभावे $\frac{३}{१}$ अपि मारणान्तिक-अभावप्रतीतिः
कथम् * इति* चेत् *
चतुर्दश $\frac{३}{१}$ भागाः $\frac{३}{१}$ कृष्णलेश्या—अपेक्षया $\frac{१}{१}$
पञ्च $\frac{३}{१}$ इति-
वचन-अन्यथा-
अनुपपत्तेः $\frac{३}{१}$
पञ्चमपृथिवीचरम + इन्द्रकात् $\frac{१}{१}$
नीललेश्या + उत्कृष्टस्थानात् $\frac{१}{१}$ सासादनैः $\frac{१}{१}$
मारणांतिकं $\frac{१}{१}$ कुर्वद्भिः $\frac{३}{१}$
चत्वारः $\frac{४}{१}$ चतुर्दश $\frac{१४}{१}$ भागाः $\frac{३}{१}$ स्पृष्टाः $\frac{३}{१}$

=सातवीं नरकका छोड़ना (सासादनोंकरि) क्योंकर हो
=ऐसे संदेह पर (कहते हैं)
=और (=य) महातम प्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
=वाले "सासादन-मिश्र-असंयत नारकी" (दूसरे-तीसरे-चौथे-गुणस्थानोंके)
=नहीं मरते हैं सारांश कि सातवें नरकमें सम्यक्त्वसहित जीव मरता नहीं है
=ऐसे (गोम्मटसार कर्मकाण्डके ५६० वे गाथाके अंत) वाक्यकरि जहांवाले
=दूसरे गुणस्थानवर्तीनका मृत्युके न होनेसे (सातवां नरकका परित्याग किया है)
=मौतके न होने पर भी मारणांतिक समुद्घातके न होनेका विश्वास वा समाधान
=कैसे ? इसप्रकार संदेह होनेपर (कहा जाता है)
= क्योंकि (लोक त्रसनालके) चौदह भाग हैं सो कृष्णलेश्याकी विवक्षाकरि
=पांच (राजू मारणान्तिक अपेक्षासे छूये जाते) हैं इस
=वाक्यकी दूसरे प्रकार (अर्थात् मरणके अभाव होनेपर मारणांतिकका अभाव न
=होता तो) यथार्थता न बनती
=पांचवां नरकके अन्तके इन्द्रकबिलेसे
=नीललेश्याके उत्कर्षस्थानसे दूसरे गुणस्थानवर्तीनसे
=मारणांतिक समुद्घातकरनेकरि
= (लोक त्रसनालके) चौदहराजू हैं सो चार राजू स्पर्शे जाते हैं

"द्वादशभागाः कुतो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थितलेश्यापेक्षया पञ्चैव। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः।"

द्वादशभागाः ‖ कुतः* न* लभ्यन्ते T इति चेत्* तत्र* अवस्थित-लेश्या-अपेक्षया ‖ पञ्च ‖ एव*

=बारह राजू क्योंकर नहीं लिये गये हैं ऐसी तर्क [=चेत्] पर कहते हैं कि
=तहां [नरकमें] नियमित (=अवस्थित) लेश्या (होने) की विवक्षासे
=(चौदहराजू त्रसनालमेंसे) पांच ही राजू [छटे नरकवाले सासादन गुणस्थानवर्ती जीव कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके धारकोंसे] छुपे जाते हैं॥

अथवा* येषाम् ‖ मते ‖ सासादनः ‖ एकेन्द्रियेषु ‖ न* उत्पद्यते T तद्-मत-अपेक्षया ‖ द्वादशभागाः ‖ न दत्ताः ‖

=वा जिनके मतमें सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय (जीवों) में
=नहीं उपजता है उनकी सम्मतिकी विवक्षासे
=बारहराजू (=भागाः) नहीं दिये गये हैं अर्थात् जो आचार्य मानते हैं कि सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रियोंमें जन्म लेता है उनकी अपेक्षासे कुछ हीन बारहराजू भी स्पर्श हो सकता है और जिनका मत है कि एकेन्द्रियमें जन्म नहीं लेता है उनके मतानुसार केवल कुछ न्यून पांचराजू स्पर्श है

$\frac{343}{3}$

=समस्त लोकके एकराजू लंबे, एकराजू चौडे एकराजू ऊंचे खंड किये जांय तो तीनसौ तेतालीस घनाकार भाग होंगे ऐसे चौदह घनाकार राजूओंकी त्रसनाल है इसके चार घनाकार राजू लिये हैं अतः चार घटे हुये तीनसौ तैंतालिस हैं।

तृतीयपृथ्वीचरम+इन्द्रकात् ‖ कपोतलेश्या-उत्कृष्टस्थानात् ‖ मरणान्तिकम् ‖ कुर्वद्भिः ‖ द्वौ ‖ चतुर्दश ‖ भागौ ‖ स्पृष्टौ ‖

=तीसरे नरकके अन्तके इन्द्रकबिलेसे कपोत लेश्याके
=उत्कृष्ट स्थानसे (दूसरे गुणस्थानवर्तीनसे) मारणांतिक समुद्घातकरनेवालोंकरि
=(लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) दो राजू स्पर्शे जाते हैं

$\frac{343}{3}$

=तीनसौ तेतालिस घनाकार राजूओंमेंसे (त्रसनालके) दो घनाकार राजू लिये हैं।

भोगभूमिषु ‖ प्रणिधौ ‖ अस्पर्शनात् ‖ देश-ऊनत्वम् ‖

=भोगभूमियोंके प्रणिधि (कोने) में स्पर्शन न होनेसे
=कुछ न्यूनपना (पांच, चार तथा दो घनाकार राजू क्षेत्रमेंसे) है

एटानिवासी जगरूपसहायकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८ ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः ।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-	= (कृष्ण-नील-कपोतलेश्यावाले) मिश्रगुणस्थानवर्ती और
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः । लोकस्य । असंख्येयभागः ।	= (कृष्ण-नील-कपोतलेश्याके धारक) असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवा अंश [स्पर्श जाता है]

(१)षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानामशुभलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । अतो लोकस्यासंख्येयभागः कथमिति चेत्-तेषां मनुष्यक्षेत्रे पवोत्पत्ति-सद्भावेन एकरज्जुविष्कंभे सर्वत्र स्पर्शाभावादिति ब्रूमः । श्रेणिबद्धप्रकीर्णकवर्तिनामपि स्वकीयस्वकीयपृथिव्यामेव इन्द्रकपर्यन्तं तिर्यगागत्य पुनरूर्ध्वागमनात्तावानेव अन्यथा लोकासंख्येयकथनानुपपत्तेः ॥

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानाम् । अशुभ-	= छट्टवां नरकतकके रहनेवाले कृष्ण-नील कपोत (= अशुभ)
लेश्याअसंयतसम्यग्दृष्टीनाम् । मरणम् । अस्ति	= लेश्यामें चतुर्थगुणस्थानवर्तीनकी मृत्यु है ।
अतः * लोकस्य । असंख्येयभागः । कथम् *	= इसलिये लोकका असंख्यातवां खंड कैसे (स्पर्श जाता है)
इति* चेत्*	= ऐसे संदेहपर (कहते हैं कि)
तेषाम् । मनुष्यक्षेत्रे । एव + उत्पत्तिसद्भावेन ।	= तिन (असंयतसम्यग्दृष्टियों) का ढाईद्वीपविषै (= मनुष्यक्षेत्र) ही जन्म होनेसे
एकरज्जुविष्कम्भे । सर्वत्र स्पर्श-अभावात् ।	= एकराजू विस्तारमें सबजगह स्पर्शनके न होनेसे (असंख्यातवा भाग है)
इति ब्रूमः T	= इसप्रकार हम कहते हैं (वर्तमानकाल उत्तमपुरुष बहुवचन परस्मैपद अदादिगणमें ब्रू धातुका ब्रूमः होता है)
श्रेणीबद्धप्रकीर्णकवर्तिनाम् । अपि*	= श्रेणीबद्धबिलोंके रहनेवाले (तथा) प्रकीर्णक बिलोंके रहनेवालोंकेभी
स्वकीयस्वकीयपृथिव्याम् । एव इन्द्रकपर्यन्तं ।	= अपनी अपनी (स्वकीय) पृथिवीविषै ही इन्द्रकबिल (= मध्यका बिल) तक
तिर्यक् * आगत्य पुनः ऊर्ध्वागमनात् । तावान् । एव*	= तिरछे आकर फिर ऊपरको गमन करनेसे उतना ही (असंख्यातवां भाग है)
अन्यथा * लोक + असंख्येयकथन + अनुपपत्तेः ।	= दूसरे प्रकार असंख्यातका कहना सम्बन्ध (प्रसंग) रहित है अर्थात् दूसरे प्रकारसे असंख्यातवां भागका स्पर्श नहीं बन सक्ता है

तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

तेजोलेश्यैः ‖ मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः ‖ लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ वा चतुर्दश ‖ भागाः ‖ अष्टौ ‖ नव ‖ देशोनाः ‖	पीत लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि (पीतलेश्यावाले) सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे = लोकका असंख्यातवां अंश है वा [लोक त्रसनालके] चौदह राजू हैं (सो) = कुछ घाटि आठ [वा] कुछ हीन नौ (राजू) हुए जाते हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ‖ लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ वा चतुर्दश ‖ भागाः ‖ अष्टौ ‖ देशोनाः ‖ (स्पृष्टाः ‖)	= (पीत लेश्यावाले) मिश्र गुणस्थानवर्ती और असंयत गुणस्थानवर्तीनकरि = लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है = अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) = कुछ घाटि आठ राजू छुए जाते हैं

(१) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया अष्टौ चतुर्दशभागाः । $\frac{८}{१४}$ ॥ विहारवत्तस्तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवास्तृतीयपृथिवीतोऽष्टमपृथिवीबादरपृथिवीकायिकत्वेनोत्पत्त्यर्थं मारणान्तिकं कुर्वन्ति तदपेक्षया नव चतुर्दशभागाः $\frac{९}{१४}$ ॥

विहारवत् * स्वस्थान + अपेक्षया ‖ चतुर्दश ‖ भागाः ‖ अष्टौ ‖ $\frac{८}{१४}$	= (तेज लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्तीयों करि) विहारवत् = स्वस्थान अपेक्षासे (त्रसनालीके) चौदह राजू हैं उनमेंसे आठ राजू स्पर्शे जाते हैं = तीनसौ तेतालीस राजू घनाकार सब लोक है तिसमें आठ राजू लिये हैं ॥
विहारवन्तः ‖ तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवाः ‖ तृतीयपृथ्वीतः * अष्टमपृथिवी— बादरपृथिवीकायिकत्वेन ‖ उत्पत्त्यर्थम् ‖ मारणान्तिकम् ‖ कुर्वन्ति तद् अपेक्षया ‖ चतुर्दश ‖ भागाः ‖ नव ‖ $\frac{९}{१४}$	= विहार करनेवाले तेज लेश्याके (धारक) मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती देव = तीसरे नरकसे मोक्षस्थान वा लोक पर्यंत (=अष्टम पृथिवी) में = बादर पृथिवी कायिकमें जन्मके लिये = मारणांतिक समुद्घात करते हैं तिस (मारणांतिक समुद्घातको) विवक्षासे = (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो) नौ (राजू स्पर्शे जाते) हैं = तीनसौ तेतालीस घनाकार समस्त लोक है तिसमें नौ राजू ग्रहण किये हैं
(२) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया $\frac{८}{१४}$	=परस्थान विहार अपेक्षासे तीनसौ तेतालिस घनाकार राजू लोकमेंसे आठराजू त्रसनालके लिये हैं

संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥

संयतासंयतैः ३।३ लोकस्य ६।१ असंख्येयभागः १।१	=(पीत लेश्यावाले) देश संयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां खंड है
वा अधि-अर्ध चतुर्दशभागाः १।३ देशोनाः १।३	= वा [त्रय नालके] चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा प्रथम स्वर्ग) कुछ घाटि डेढ राजू [छुआ जाता] है. [अध्यर्ध=अधि+अर्ध=अधिकं अर्धं यस्य बहुव्रीहि समास है अर्थात् कोई वस्तु जो अपने आधेके साथ हो डेढसे अभिप्राय है)

विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ३।२, ॥ यह वही टिप्पणी है जो पृष्ठ १५२ में दोकी संख्या पर लिखी है ।

(तेजो लेश्यावाले मिश्र गुणस्थानवर्ती और तेजो लेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टिके)

विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया ३।१ ८।३	=विहार करने योग्य क्षेत्र लोकके तीनसौ तेतालीस घनाकार राजूमेंसे आठ राजू (प्रमाण) है ।

(१) तेजोलेश्या—देशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घातापेक्षयाऽध्यर्धचतुर्दशभागः चतुर्दशभागैस्त्रिभिर्भवितव्यम् ३।३ ॥ सनत्कुमार-माहेन्द्रपर्यन्तं तेजोलेश्यासद्भावादिति चोदनायां परिहारो गोम्मटसारे जीवकांडे लेश्यामार्गणायां स्वशोधिकारे "एवं तु सणुद्धारे णव चोद्दस भागयं च किंचूणम् । उववादे पढमपदं दिवड्ढ चोद्दस य किंचूणं ॥ २ ८ " इति गाथायास्तुरीयपादव्याख्यानं दृष्ट्वा ज्ञात्वा कर्तव्यः ॥

तेजोलेश्यादेशसंयतैः ३।१	=पीतलेश्या (वाले) संयमासंयमियों करि
क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घात+अपेक्षया ३।३	=किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षासे
अध्यर्धचतुर्दशभागः १।१	=(लोक त्रसनालके) चौदह (राजू) हैं (सो) डेढ राजू (भागः) स्पर्शी जाता है
सनत्कुमारमाहेन्द्रपर्यन्तं २।३।१	=(परन्तु वह) सनत्कुमार (तीसरे स्वर्ग) माहेन्द्र (चौथे स्वर्ग) तक
तेजस्+लेश्या सद्भावात् १।१	=पीत लेश्याके विद्यमान होनेसे
३४३	=तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू सब लोकके क्षेत्र फलमेंसे तीन घनाकार राजू
चतुर्दशभागैः ६।१ त्रिभिः ३।१ भवितव्यम् १।३।१	=(का लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे तीन (राजू) होना चाहिये

प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः ॥

प्रमत्त-अप्रमत्तैः ॥	=(पीतलेश्याकाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्ती और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तीनसे
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	=(स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवांभाग छुआ जाता है
इति* चोदनायां ॥ गोम्मटसारे ॥ जीवकाण्डे ॥	=ऐसी तर्कणापर (=चोदनायां) गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवके कथनके अध्यायमें
लेश्यामार्गणायां ॥ स्पर्श-अधिकारे ॥	=लेश्यामार्गणा (के वर्णन) में स्पर्शनके प्रकरण विषे (नीचेके गाथामें)
परिहारः ॥—॥ "एवं* (=एवम*)	=समाधान है कि-"इस प्रकार ही है (=एवं) अर्थात् तेज्योलेश्याके विहारवत् स्वस्थानकी भांति "वेदना समुद्घात अर कषायसमुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषें स्पर्श किछू घाटि चौदह भागोंमें आठ भाग प्रमाण है"
तु समुग्घादे ॥ चोद्दस-(तु समुद्घाते ॥ चतुर्दश-)	=और (=तु) मारणांतिक समुद्घातमें (=समुद्घाते) चौदह
भागयं ॥ खव ॥ किंचूणं ॥ (भाग॥ नव ॥ किंचिदूनं)	भाग (लोकत्रसनालके) हैं (सो) नौ राजू (=भागः) कुछ हीन है
य उववादे ॥ (=च उपपादे ॥)	=और (=य-तेजो वा पद्मलेश्यावाले जीवके) उपपाद (अवस्था)में
पढम-पदं ॥ (=प्रथम-पदं ॥)	=(स्पर्शन योग्य) उत्कृष्ट (=पढम=प्रथम) स्थान (=पदं=पद)
दिवड्ढचोद्दस ॥ च* (=द्वयर्धचतुर्दश ॥ च*	=(त्रसनालके राजू) चौदहमेंसे डेढ (राजू) भी (=च)
किंचूणं ॥ * (=किंचित् * उनम् ॥) ॥ १ ॥	=कुछ घाटि होता है ॥ १ ॥ यहां च इस बातके समुच्चयके लिये है कि कितेक आचार्योंके मतानुसार तेजोलेश्याका अस्तित्व सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोतक (जो मध्य लोकसे तीन राजू है) होनेके हेतुसे तेजोलेश्यावालोंका स्पर्शन कुछ न्यून तीन राजू उपपादकी अपेक्षासे है । गाथाकार अपने मतानुसार कहते हैं कि स्पर्शनयोग्य उत्कृष्ट स्पर्श स्थान (=पढमपदं) डेढ़राजूसे कुछ घाटि है उपर्युक्त अर्थके प्रमाणमें टोडरमलजीके अर्थका कुछ भाग शब्दशः इसप्रकार है—

"तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषें स्पर्श किछू घाटि चौदह भागमें आठ भाग प्रमाण है। काहेतैं ? सो कहिये है—

लोक चौदह राजू ऊंचा है । त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा सो तहां चौदह राजूविषें सनत्कुमार माहेंद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपरि अच्युत सोलह्वां स्वर्ग पर्यंत गमन करैं हैं अर नीचैं तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करैं हैं सो अच्युत स्वर्गतैं तीसरा नरक आठ राजू है तातैं चौदह भागमें आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरककी पृथिवीकी मोटाईविषें जहां पटल न पाइए ऐसा हजार योजन घटावने तातैं किंचित् ऊन कहे हैं । इहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तौ आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होंइ ? ऐसे त्रैराशिक कीयें आठ चौदह्वां भाग आवै है । अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचे स्वयमेव तौ सौधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरक पर्यंत गमन करै हैं अर अन्य देवके लेगए सोलह्वां स्वर्गपर्यंत विहार करैं हैं तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है बहुरि तेजोलेश्याका मारणांतिकसमुद्घातविषें स्पर्श चौदह भागमें नव भाग किछू घाटि संभवै है । काहेतैं ? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिकेवासी देव तीसरे नरक गए अर तहां ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं मुकि पृथ्वीविषें बादरपृथ्वीकायके जीव उपजते हैं तातैं तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया । तिस आठवीं पृथ्वीतैं तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथिवीकी मोटाई घटावनी तातैं किंचित् ऊन नव चौदह्वां भाग संभवै है । बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविषें संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना जातैं ए मनुष्य लोकविषें ही हो हैं बहुरि केवलिसमुद्घात इस लेश्यावालेके होता नाहीं । बहुरि उपपादविषें स्पर्श चौदह भागनिविषें किछू घाटि डेढ़भागमात्र जानना सो मध्यलोकतैं तेजोलेश्यातैं मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषें उपजैं तीहि अपेक्षा संभवै । इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविषें सनत्कुमार माहेंद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊंचा तातैं चौदह भागनिविषें किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिए ? ताका समाधान–सौधर्म ईशानतैं ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार माहेन्द्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है अर डेढ़ राजू जाइ अंतिम पटल है सो प्रथम पटलविषें तेजोलेश्या नाहीं है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातैं अथवा चित्रभूमिविषें तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनिका उपपाद ईशान पर्यंत ही संभवै है तातैं किंचित् ऊन डेढ़ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है । बहुरि गाथाविषें चकार कह्या है तातैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं तिनके सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका चक्र नाम इन्द्रकसंबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविषें उत्पत्ति केई आचार्य कहे हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथासंभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवै है किछू नियम नहीं । इस ही वास्ते सूत्रविषें चकार कह्या । गोमट्टसार बडी टीका जीवकांड मुद्रित पृष्ठ ६७८—६७७

पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः

पद्मलेश्यैः ।तृ। मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि-	=पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे असंयत चौथे गुणस्थानवर्तीयों
अन्तैः ।तृ। लोकस्य ।ष। असंख्येयभागः ।१।	=तककरि लोकका असंख्यातवां अंश (स्वस्थान अपेक्षासे) छुआ जाता है
वा चतुर्दश ।ष। भागाः ।१। अष्टौ ।प्र। देशोनाः ।१	=वा लोकत्रसनालके चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन आठ (राजू छुए जाते) हैं
संयतासंयतैः ।तृ। लोकस्य ।ष। असंख्येयभागः ।१।	=(पद्मलेश्यावाले) संयतासंयतीयोंसे लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश ।ष। भागाः ।१। पञ्च ।प्र। देशोनाः ।१।	=अथवा (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ हीन पांच (राजू मारणांतिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षासे छुये जाते हैं) [जाता है)
प्रमत्त+अप्रमत्तैः ।तृ। लोकस्य ।ष। असंख्येयभागः ।१।	=प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवालों करि लोकका असंख्यातवांभाग अंश (छुआ

(१) विहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः । ६५ ॥

विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय—	=परस्थान विहार (=विहारवत्स्वस्थान) वेदनासमुद्घात कषाय समुद्घात,
वैक्रियिक-समुद्घात-अपेक्षया ।ष। अष्टचतुर्दश	=वैक्रियिक समुद्घात अपेक्षासे (लोकत्रसनालके) चौदह मेंसे आठ
भागाः ।१। । ६५	= राजू, (कुछ हीन, पद्मलेश्यावाले देवोंका स्पर्शन हो सक्ता है) अर्थात् प्रथम स्वर्गसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और पहिले स्वर्गसे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक छहराजू ये हुये इसप्रकार आठ राजू भये ॥ " मारणांतिक समुद्घात विषैं भी तैसे ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भाग मात्र स्पर्श जानना जातैं पद्मलेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पति विषैं उपजे हैं । गोम्मटसार पृष्ठ ६७७

(२) पद्मलेश्यादेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागाः सहस्रारकल्पादुपरि पद्मलेश्याभावात् ।

पद्मलेश्यादेशसंयतैः ।तृ। क्रियमाणमारणान्तिक+	=(पद्मलेश्यावाले) संयतासंयतियोंके किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ।तृ। चतुर्दश ।ष। भागाः ।१। पञ्च ।प्र।	=विवक्षाकरि (लोकत्रसनाडीके) चौदहराजू हैं (सो) पांच (राजू कुछघाटि)

शुक्ललेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥

शुक्ललेश्यैः = मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयत-अन्तैः = शुक्ललेश्याके धारक मिथ्यादृष्टियोंसे संयमासंयमी पर्यंतोंकरि
लोकस्य = असंख्येय-भागः = लोकका असंख्यातवां अंश [स्पर्शा जाता] है अर्थात् "शुक्ललेश्यावाले
जीवनिके स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है
वा * चतुर्दशभागाः = षट् = देश ऊनाः = वा [लोकत्रसनाडीके] चौदह [घन] राजू हैं सो कुछ घाटि छः राजू स्पर्शे जाते हैं

सहस्रारकल्पात् = उपरि * एकलेश्या-अभावात् = सहस्रारकल्प (बारहवांस्वर्ग) से ऊपर पद्मलेश्याके न होनेके कारणसे स्पर्शे जाते हैं ।

"उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागविषैं पंचभाग किछू घाटि जानना जातैं पद्मलेश्या शतार सहस्रार पर्यंत लंभवै है सो शतार सहस्रार मध्यलोकतैं पांचराजू ऊंची है ।" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ९७८

(४) शुक्ललेश्यादेशसंयतस्य मारणान्तिकापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनं सुगमम् । अच्युतकल्पादुपरि तस्यासत्त्वमावात् । इतरेषामपि मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तानां षट्चतुर्दशभागा इति वचनात्, शुक्ललेश्यादेवानां मध्यलोकादधो विहारो नास्तीति युक्त्याऽवगम्यते । अन्यथा अष्टौ चतुर्दशभागा इति कथयेत् खलु सूत्रकारः । ननु तेषां मध्यलोकपर्यन्तमपि विहारो नास्ति । केवलं मारणान्तिकोपपादापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनमिति च न मन्तव्यम् । सम्यङ्मिथ्यादृष्टेस्तदभावात् ॥ 'मिस्साहारस्सयया खवगा चढमाणपढमपुव्वा य । पढमुवसमगा (पढमुवसमया) तमतमगुरुपडिवण्णा य ण मरंति ।" इति वचनेन, 'मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सह्मि' इति वचनेन च तदवगमः । लेखकदोषोऽयं षट्चतुर्दशभागा इति न च शास्त्रकारवचनमिति च नाशङ्कनीयम् । नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिरपि लेश्याधिकारे तथैवोक्तत्वात् । "सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छ च्चोद्दसा हीणा ॥ मारणि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा ॥ १ ॥ सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो इति । ननु पञ्चानुत्तरपर्यन्तं शुक्ललेश्यासद्भावेन ततोऽधः शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिभिरुपपादपरिणतैः स्पृष्टत्वात् देशोनसप्तचतुर्दशभागा इति वचनं युक्तं । न युक्तं, मनुष्यक्षेत्रवर्तिमनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तेः । ततः प्रच्युतानामपि मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्तेर्लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावात् । एकरज्जुविष्कम्भे सर्वत्र स्पर्शाभावात् । कल्पातीतानां विहाराभावाच्च । ननु "....सदर सहस्सारगो त्ति तिरियदुगं । तिरियाऊ उज्जोव अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ " इति गोमट्टसारकर्मकाण्डबन्धोदयसत्त्वाधिकारगाथया सहस्रारकल्पादुपरितनदेवानां तिर्यगायुष्यादिबन्धाभावकथनात्तेषां तिर्यक्षूत्पत्त्यभावोऽवगम्यते ? तथा च, मनुष्येष्वेवोत्पत्तावपि स्वयम्प्रभाचलबहिर्वर्तितिरश्चामच्युतपर्यन्तमुत्पत्तिसद्भावात् । अन्यथा सामान्यस्पर्शकथनावसरे देशसंयतापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनानुपपत्तेर्लोकासंख्येयभागकथनप्रसङ्गात्, क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतवत्, आनताद्यच्युतपर्यन्तदेवानां विहारवत्त्वाच्च कल्पातीतानामेव क्रमो नास्तीति लोकासंख्येयभाग एवेत्यवगन्तव्यम् ॥

अर्थात् उपपाद (=पहले जो पर्याय धरता था ताको छांडि पहिले समय अन्य पर्यायरूप होइ अंतरालविषैं जो प्रवर्तना " उस अवस्था। में " बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनिविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातैं अच्युत स्वर्गके ऊपरि देवनिके स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन नाहीं है तातैं अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया " गोमट्टसार जीवकांडकी पृष्ठ मुद्रित ९७८, ९७९

शुक्ललेश्या —देशसंयतस्य ‖ मारणान्तिक—
अपेक्षया ‖ षट्—चतुर्दश-भाग—कथनं ‖ सुगमं ‖
अच्युत—कल्पात् ‖ उपरि * तस्य ‖ उत्पत्ति-
अभावात् ‖

=शुक्ल लेश्यावाले संयमासंयमियोंका (स्पर्शन) मारणांतिक समुद्घातकी
=अपेक्षासे चौदह राजू (त्रसनाड़ी) मेंसे छह (राजू) का कथन स्पष्ट है
=क्योंकि अच्युत सोलहवां स्वर्गसे ऊपर इस (देश संयमी) की उत्पत्ति
=नहीं है अर्थात् मध्यलोकसे अच्युत सोलहवां स्वर्ग छह राजू है तहां तक ही पांचवां गुणस्थानवर्ती मरकर जन्म ले सकता है नव ग्रैवेयक और उससे ऊपर नहीं ॥

इतरेषां ‖ अपि मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयत-अन्तानां ‖
षट्-चतुर्दशभागाः ‖ इति वचनात् ‖
शुक्ललेश्यादेवानां ‖ मध्यलोकात् ‖ अधः * विहारः ‖
न * अस्ति इति* युक्त्या ‖ अवगम्यते T अन्यथा *

=अन्य वा बचे हुये (शुक्ललेश्यावाले) मिथ्यादृष्टियोंसे असंयमी पर्यंतोंका भी (स्पर्शन)
=चौदह भागोंमेंसे छः भाग हैं इसी वाक्यसे
=शुक्ललेश्याके धारक देवोंका मध्यलोकसे नीचे विहार वा गमन
=नहीं होता है ऐसा युक्ति वा युक्तिसे जाना जाता है। नहीं तो (अर्थात् मध्यलोकसे नीचे शुक्ललेश्यावाले देवोंका गमन होता तो) स्पर्शनके

अष्टौ ‖ चतुर्दशभागाः ‖ इति
कथयेरन् T खलु * आचार्याः ‖ ननु * तेषां ‖
मध्यलोक—पर्यन्तं ‖ अपि विहारः ‖ न * अस्ति T

=आठ (राजू लोक त्रसनालके) चौदह राजुओंमेंसे होते हैं ऐसा
=निश्चय वा अवश्य आचार्य कहते। प्रश्न (= ननु) उन (शुक्ललेश्यावाले
=देवोंका मध्यलोक तक भी तो गमन नहीं है

केवलं ‡।ा मारणांतिक-उपपाद-अपेक्षया ‡।।
= (अतः) केवल मारणान्तिक समुद्घातकी और उपपाद (अवस्था) की अपेक्षासे

षट्-चतुर्दशभाग-कथनम् ‡।।।
= चौदहभागोंमेंसे छहभागका कथन है

इति च न मन्तव्यम् ‡।।। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ‡।
= यह मानने योग्य नहीं है क्योंकि मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीके

तद्-अभावात् ‡।
= उन (मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद समुद्घात) का अभाव है (जैसा कि निम्नलिखित आर्षछन्दोंसे प्रमाणित है)

मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य । पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
मिश्राहाराक्षपकाः क्षपकाः चटमानप्रथमपूर्वाश्च । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः (प्रथमोपशमकाः) तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियन्ते ॥

मिस्सा ‡। (= मिश्राः ‡।)
= "मिश्रगुणस्थानवर्तिनः" (= मिस्सा ‡। = मिश्राः ‡।) या मिश्रगुणस्थानवाले

आहारस्सयया ‡। (= आहार-आश्रयकाः ‡।)
= आहारक मिश्रकाययोगी या निवृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी (अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीर पर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिक-मिश्र—वैक्रियिकमिश्र—आहारकमिश्र)

खवगा ‡। (= क्षपकाः ‡।)
= क्षपकश्रेणिवाले (अर्थात् अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले)

य* चडमाण—(= च चटमान-)
= और (= य = च) (उपशमश्रेणी) चढ़े जानेमें (= चडमाण = आरूढ़माण)

पढमपुव्वा ‡। (प्रथमपूर्वाः ‡।)
= अपूर्वकरणका प्रथमभागवाले (= पढमपुव्वा ‡। = प्रथमभाग-अपूर्वकरणाः)
अर्थात् उपशमश्रेणी चढ़नेमें अपूर्वकरण नामा आठवें गुणस्थानके पहिले भागवाले

{पढमुवसम्मा ‡। (= प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः ‡।)
{पढमुवसमया ‡। (= प्रथमोपशमकाः ‡।)
= प्रथम उपशम सम्यक्त्व संयुक्त या प्रथम उपशमसम्यक्त्वके धारक.
= अथवा पहिली बारके उपशम सम्यक्त्ववाले

य * तमतमगुण (= च तमोस्तमोगुण-)
= और (= य) महातमप्रभा पृथिवी (= सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण

पडिवण्णा (= प्रतिपन्नाः ‡।)
= वाले "सासादन-मिश्र-असंयतनारकी (दूसरे-तीसरे चौथे गुणस्थानोंके)

ण * मरंति T (= न म्रियन्ते)
= नहीं मरते हैं (सातवां नरकमें सम्यक्त्व सहित जीव मरता नहीं है)

इति * वचनेन ‡ा च	=इस वाक्य (गाथा) से और (=च)
य मरणांतसमुग्घादो ‡ा (=च मारणान्तिकसमुद्घातः ‡ा	=पुनः (=य) मारणांतिक समुद्घात
पि * अ * मिस्सगम्मि ‡ा (अपि * न * मिश्रे ‡ा	=भी (=पि अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति * वचनेन ‡ा तद्—अवगमः ‡ा	=ऐसे वाक्यसे उनका ज्ञान (कि मिश्र तीसरे गुणस्थानमें मारणांतिक समुद्घात और उपपादका अभाव है) होता है (अपने उपर्युक्त प्रश्नको पुष्टि करते हुये कहता है कि तो)
लेखक—दोषः ‡ा अयम् ‡ा	=लिपिकार वा लिखने वालेकी यह चूक वा भूल है कि (संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके लोकस्यासंख्येयभागः इस वाक्यके पश्चात्)
षट्चतुर्दशभागाः ‡ा इति न च शास्त्रकार-वचनं ‡ा	="षट् चतुर्दश भागाः ऐसा (वाक्य लिख दिया) है न कि शास्त्राकारका वचन
इति * च* न* आशङ्कनीयम् ‡ा	=ऐसा है (उत्तर) निश्चयसे (=च) यह बात आशंका योग्य नहीं है अर्थात् लेखककी भूल नहीं है
नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिः ‡ा अपि *	=क्योंकि नेमिचन्द्रसैद्धांतिक चक्रवर्ती द्वारा भी (गोम्मटसारके)
लेश्या—अधिकारे ‡ा तथा* एव* उक्तत्वात् ‡ा	=लेश्या अधिकारमें वैसा (=तथा) ही (निम्नआर्या छंदोंमें) कहा गया है

सुक्कस्स य तिट्ठाणे छच्चोद्दसभागा हीणा ॥ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा । सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ५५०

शुक्लस्य च त्रिस्थाने षट्चतुर्दशहीनः ॥ नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवन्ति भागा वा । सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः

सुक्कस्स ‡ा य* (शुक्लस्य ‡ा च*)	=शुक्ल लेश्यावाले (जीव)न का भी (=च) है अर्थात् ' शुक्ल लेश्यावाले जीव- निके स्वस्थान स्वस्थानविषै तेजो लेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है" (और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका) तीन
ति-(=त्रि)	=(१ विहारवत्स्थान २ वेदना-कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घात ३ उपपाद)
ट्ठाणे ‡ा पढमो ‡ा (स्थाने ‡ा प्रथमः ‡ा)	=स्थानमें उत्कृष्ट (=पढमो प्रथमः, स्पर्श)
छच्चोद्दसा ‡ा हीणा ‡ा (षट् चतुर्दशहीनाः ‡ा)	=(लोक त्रसनालके) चौदह भागों (राजुओं) मेंसे कुछ घाटि छह भाग है।

य * णवरि * समुग्घादम्मि ‡ा (च * केवलसमुद्घाते ‡ा) =और केवल समुद्घातमें अर्थात् सयोग केवलीके प्रतर समुद्घातमें
संखातीदा ‡ा भागा ‡ा वा * (= संख—अतीताः ‡ा भागाः ‡ा वा *) =(लोकके) संख्यारहित भाग अर्थात् असंख्यातें भाग (स्पर्शमें)
हवंति T वा सव्वो ‡ा खलु* (=भवन्ति वा सर्वः ‡ा खलु) =होते हैं अथवा (= वा) नियमसे (=खलु) सब
लोगो ‡ा फासो ‡ा होदि T (लोकः ‡ा स्पर्शः ‡ा भवति T) =लोक (लोकपूरण समुद्घातमें) होता है
इति (इदि) * णिद्दिट्ठो ‡ा (इति* निर्दिष्टः ‡ा) =इसप्रकार कथन किया गया है ॥ (णवरि प्राकृतका अव्यय है अर्थ केवल है)
प्रथम 'वा' पाद पूरणके लिये है। हमने आवश्यकता अनुसार शब्दशः स्पष्ट अर्थ
किया है ॥ विशेष जानने लिये इसी अनुवादका पृष्ठ ११६ से १२१ तक देखो ।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानसे संयतासंयत पांचवा गुणस्थान तकके शुक्ललेश्यावाले जीवोंके (१) स्वस्थानस्वस्थानमें स्पर्श (=स्वस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श) (२) विहारवत्स्वस्थानमें स्पर्श (=परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श (३) आहारक समुद्घातमें स्पर्श (४) तैजस समुद्घात में स्पर्श (५) केवल समुद्घातमें स्पर्श (६) उपपाद अवस्थामें स्पर्श (७) मारणांतिक समुद्घातमें स्पर्श (८) कषाय समुद्घातमें स्पर्श (९) वेदना समुद्घातमें स्पर्श (१०) वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्शमेंसे कौन कौन किस किस पांचों गुणस्थानवर्तियोंमेंसे होते हैं उसका मान-चित्र नीचे देते हैं—

शुक्ललेश्यावालके गुणस्थान	आहारक स० तैजस स० केवल समुद्घात	स्वस्थान-स्वस्थान	विहारवत्स्वस्थान; वेदना कषाय-वैक्रियिक समुद्घात	उपपाद मारणांतिक समुद्घात
मिथ्या० शुक्ल	कोई भी नहीं	लोकका असंख्यातवांभाग	उत्कृष्ट छह राजूसे कुछहीन	उत्कृष्ट छहराजूसे कुछ अधिक
सासा० शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
मिश्र० शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
असंयत शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,,
देशसंयत शुक्ल०	,, ,,	,, ,,	?	,,

हमने यह मानचित्र "सुक्कस्स य तिट्ठाणे इत्यादि गोमट्टसारकी ५४६ गाथाके अनुसार बनाया है। पाठकगण उक्त गाथाके अर्थसे मिलान करलें" (देखो टोडरमलजीकृत गोमट्टसार मुद्रित पृष्ठ ६७८–६७९ और सूरचंद्रजी कृत गोम्मट्टसार गाथा ५४८ पृष्ठ १६७ ।

ननु * पञ्च-अनुत्तर-	= तर्क—पांच (विजय-वैजयन्त-जयंत-अपराजित-सर्वार्थसिद्धि) अनुत्तर
पर्यन्तं ।।। शुक्ललेश्या-सद्भावेन ।। ततः * अधः *	= (विमान) तक शुक्ललेश्याके अस्तित्वसे तिन (पंचानुत्तर) से नीचे
शुक्ललेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।।	= शुक्ललेश्याके धारक असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथेगुणस्थानवर्ती) करि
उपपादपरिणतैः ।। स्पृष्टत्वात् ।।। देशोन-	= उपपाद (अवस्था) के परिणमन द्वारा स्पर्शन करनेसे कुछ घाटि
सप्तचतुर्दशभागाः ।। इति * वचनं ।।।	= चौदहमेंसे सात राजू होते हैं ऐसा वाक्य (उनके स्पर्शके संबंधमें)
युक्तं ।।। न युक्तं ।।। मनुष्यक्षेत्र-	= होना चाहिये (= युक्त) । (उत्तर) न होना चाहिये । क्योंकि मनुष्यक्षेत्र (ढाईद्वीप) के
वर्तिमनुष्याणाम् ।। एव * तत्र * उत्पत्तेः ।।। ततः *	= रहनेवाले मनुष्यकी ही वहां (पांच विमानोंमें) उत्पत्ति है । वहां (पंचानुत्तर)से
च्युतानाम् ।। अपि * मनुष्य-क्षेत्रे ।।। एव उत्पत्तेः ।।।	= चयत होनेवाले देवोंका भी ढाई द्वीपमें ही । मनुष्यका । जन्म होनेसे
लोक-असंख्येय-भागे ।। अन्तर्भावात् ।।	= लोकके असंख्यात भागमें । उनका स्पर्शन । गर्भित हो जाता है ।
एकरज्जु-विष्कम्भे ।। सर्वत्र * स्पर्श-अभावात् ।।	= इससे एकराजूके विस्तारमें सर्वस्थानमें स्पर्श नहीं होता है
कल्प- अतीतानां ।।	= कल्पसे ऊपर नवग्रैवेयक-नवअनुदिश-पंचानुत्तरके (रहनेवालोंके)
विहार-अभावात् ।। च	= गमनका अभाव भी है (= च) । अतएव सर्वार्थसिद्धितकका देव मनुष्य ही होता है । (नव अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देव सब असंयतसम्यग्दृष्टि होते है

ननु-"कप्पत्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं । तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ ११२ ॥
प्रश्न—कल्पस्त्रीषु न तीर्थं शतारसहस्रारम इति तिर्यग्द्विकम् । तिर्यगायुः उद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कम् ॥ ११२ ॥

कप्पत्थीसु ।।। ण* तित्थं ।।। (= कल्पस्त्रीषु ।।। न तीर्थं ।।।)	= (प्रश्न) कल्प (वासिनी) स्त्रियोंमें तीर्थंकर (प्रकृतिका बंध) नहीं होता है
सदरसहस्सारगो ।। (= शतारसहस्रारगः ।।)	= शतार-सहस्रार (ग्यारहवां बारहवां स्वर्ग) के रहने वालों
इति * तिरिय-दुगं ।।। (इति * तिर्यग्द्विकम् ।।।)	= तक (= इति) तिर्यच-युग्म वा तिर्यचयुगल अर्थात् निर्यचगति तिर्यगत्यानुपूर्वी (= तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी–तिर्यचकी आयु पूर्ण होनेपर आत्मा शरीरसे पृथक होकर किसी भव प्रति जानेको सम्मुख हो उस

तिरयाऊ ‡ग्रा उज्जोवो ‡। (=तिर्यगायुः ‡ग्रा उद्योतः ‡।
अत्थि T तदो * सदर- (अस्ति ततः शतार-)
चऊ ‡ग्रा (=चतुष्कम् ‡ग्रा)

ण * अत्थि T (न * अस्ति T)
सहस्रारकल्पात् ‡। उपरितन—देवानां ‡। तिर्यग्-
आयुष्क—आदि—बन्ध—अभाव-
कथनात् ‡ग्रा तेषां ‡। तिर्यक्षु ‡।
उत्पत्ति—अभावः ‡। अवगम्यते T

समय मार्गमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेशोंका पहिले तिर्यंच शरीरके आकार रहना । इस कर्मका उदय विग्रह गतिमें ही होता है और जघन्य काल एक समय मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समयमात्र होता है) 'इति' तक-समाप्ति अर्थमें है
= तिर्यंच आयु (और) उद्योत (प्रकृतियोंका बन्ध)
= होता है । तिन (शतार-सहस्रार स्वर्गों)से (ऊपर) शतार
= चोकडो (अर्थात् शतार युगल तक बंधनेवाली चार तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानु-
पूर्वी तिर्यंच आयु और उद्योत नाम कर्मकी प्रकृतियें
= नहीं होती है इस (गोमटसारके कर्मकांडकी ११२ वीं गाथा) से
= सहस्रार (बारहवां) स्वर्गसे ऊपर रहनेवाले देवोंके तिर्यंच
= आयु तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत (प्रकृतियोंके) बन्ध न होनेके
= उपदेशसे तिन (सहस्रार बारहवां स्वर्गसे ऊपरवालों) का तिर्यंचोंमें
= उपजनेका अभाव जाना जाता है ॥ अर्थात् बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव ढाई द्वीपमें मनुष्य ही होता है । शिष्यके प्रश्न करने पर कि उपपादकरि पांच अनुत्तर तक कुछ घाटि सात राजू स्पर्शने योग्य कहना था उत्तर था कि-नहीं; क्योंकि अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र)के मनुष्य ही सोलह स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न होते हैं और सोलह स्वर्गसे ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्र हीमें जन्म लेते हैं और भ्रमण भी वेकरते नहीं इससे उनका स्पर्शन असंख्यात भागमें गर्भित हो गया ॥ शिष्यने यह सुनकर कि सोलह स्वर्ग से ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्रमें उत्पन्न होते हैं प्रश्न कर दिया कि बारह स्वर्गसे ऊपरके सर्व देव ही मनुष्य क्षेत्रमें जन्म लेते हैं तो १३ स्वर्गसे सोलहवें स्वर्ग तकके उपपाद विवक्षासे चौदह भागोंमेंसे कुछ भाग न ठहरे ॥ अब उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि—

तथा च *	=उसपर भी (= तथा च) अर्थात् (सहस्रारसे ऊपरके देवोंका मनुष्यक्षेत्रमें)
मनुष्येषु ॥ एव * उत्पत्तौ ॥ अपि स्वयंप्रभाचल-	= मनुष्योंमें ही (= एव) जन्म होनेपर भी स्वयंप्रभाचलसे
बहिस् *	=बाहिर
वर्ति-तिरश्चाम् ॥ अच्युत-पर्यन्तम् ॥ उत्पत्तिसद्भावात्	= रहनेवाले तिर्यंचोंका अच्युत (सोलहवें स्वर्ग) तक जन्म होता है अर्थात् बारहवें स्वर्गसे ऊपर आनत स्वर्गके देवका मनुष्यमें ही जन्म लेनेसे यह न समझना चाहिये कि मध्यलोकका तिर्यंच भी बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव नहीं हो सका है यहां मध्यलोकका तिर्यंच सोलहवां स्वर्ग तकका देव हो सक्ता है इस अपेक्षासे उपपाद अवस्थामें चौदहराजूमेंसे छहराजू स्पर्शन बनता है ॥
अन्यथा *	=उलटा माननेमें (यदि बाह्यके तिर्यंचोंका जन्म १३ से १६ तक न हो तो)
सामान्य-स्पर्श-कथन-अवसरे ॥	=संक्षेपसे (गुणस्थान अपेक्षासे कथित) स्पर्शनके कथनके प्रसंगमें
देशसंयत-अपेक्षया ॥	=(देखो इस प्रतिका पृष्ठ १३६ पंक्ति २ से ८ तक) संयतासंयतकी अपेक्षासे
षट्चतुर्दशभाग-कथन-अनुपपत्तेः ॥	=चौदहराजूमेंसे छह (राजूके स्पर्श) का उपदेश न बननेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि-देशसंयतवत् *	=क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयमियोंके सदृश (जो ढाईद्वीप मनुष्य क्षेत्रमें हैं)
लोक-असंख्येयभाग-कथन-प्रसङ्गात् ॥	=(केवल) लोकके असंख्यातवें भाग के स्पर्शनके कथनका प्रसंग आता है (उपपाद और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे छहराजूका स्पर्शन जो गुण स्थानके कथनमें संयतासंयत गुणस्थानवर्तीका पृष्ठ १३६ में कहा है वह नहीं ठहरता है जो संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच स्वयम्भूरमण समुद्र तक न होते जिस स्वयंभूरमणका व्यास लाखमेंसे होता हुआ एकराजूसे कुछ न्यून लम्बाईमें है
च-आनत-आदि-	= और (= च) आनत तेरहवां प्राणत चौदहवां आरण पन्द्रहवां स्वर्ग और
अच्युत-पर्यंत-देवानां ॥	=अच्युत सोलहवां स्वर्ग तकके शुक्ललेश्या धारक देवोंके विहारवत् (स्पर्शन) ठहरता है (मध्यलोकसे १३वां १४वां १५वां १६वां स्वर्ग छठवें राजूमें है, शुक्ल-लेश्यावाले असंयत देव जो मध्यलोकसे नीचे नहीं आते हैं परस्थान विहार अपेक्षा कुछ हीन छहराजू स्पर्शते हैं । देवोंके प्रथमसे चार तक गुणस्थान हो सके हैं)

प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् ॥ (११) भव्यानुवादेन–भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः ॥ [१२] सम्यक्त्वानुवादेन–क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् ।

प्रमत्त–आदि–सयोगकेवलि–अन्तानाम् ‖ अलेश्यानाम् ‖ च स्पर्शनम् ‖ सामान्य–उक्तम् ‖	= (शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्तीसे सयोगकेवली तकोंका = और लेश्यारहित [= अयोगकेवलियों] का स्पर्शन सामान्य (प्रकरण)में = कथित (गुणस्थनवत्) है [पृष्ठ १२६,११५ से १२० तक इसी पुस्तक का देखो)
भव्य–अनुवादेन ‖ भव्यानाम् ‖ मिथ्यादृष्टि–आदि–अयोगकेवलि–अन्तानां ‖ सामान्य उक्तं ‖ स्पर्शनम् ‖	= (११) भव्योंके कथनके अनुसारकरि भव्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर = अयोगकेवली पर्यन्तोंका संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) = स्पर्शन है। पृष्ठ ११५से १२० तक, पृष्ठ १३२ से १३६ तक इसी प्रतिका देखो।
अभव्यैः ‖ सर्वलोकः ‖ स्पृष्टः ‖ सम्यक्त्व–अनुवादेन ‖ क्षायिकसम्यग्दृष्टीनाम् ‖ असंयतसम्यग्दृष्टि–आदि–अयोगकेवलि–अन्तानाम् ‖ सामान्य–उक्तम् ‖	= अभव्य करि समस्तलोक छुआजाता है । [१२] सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे = क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवाले) निसे = अयोगकेवली तकोंका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है । पृष्ठ ११५ से १२० तक, पृष्ठ १३५, १३६ इसी पुस्तक का देखो ।

कल्प–अतीतानाम् ‖ एषः ‖ क्रमः ‖ न *अस्ति	= (सोलह) स्वर्ग (= कल्पाः) से ऊपरके रहनेवालोंके यह नियम (= क्रमः) नहीं है अर्थात् नवग्रैवेयकोंमें-नव अनुदिशोंमें-पांचअनुत्तरोंमें मनुष्यक्षेत्र (ढाई-द्वीप)मे मनुष्य ही जन्म लेते हैं और वहांसे च्युत होकर अढाईद्वीपमें मनुष्य ही होते हैं ॥ उक्त स्थानोंसे विहारका अभाव है
इति लोक–असंख्येय–भागः ‖ एव इति अवगन्तव्यं ‖	= ऐसे लोकके असंख्यातवेंभाग (का स्पर्श) ही (इनके) जानना चाहिये

किंतु संयतासंयतानां लोकस्यासंख्येयभागः ।

किंतु * संयतासंयतानां ‖ लोकस्य ‖	=परंतु (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) देश संयमियोंका (स्पर्श) लोकका
असंख्येयभागः ‖	= असंख्यातवां भाग है ।

(१) प्राक्सामान्यकथनावसरे देशसंयतस्य षट् चतुर्दशभागा इत्युक्तम । इदानीं क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षया लोकासंख्येयभाग इति कथ्यते । तत्कुत इति चेत्—मानुषोत्तरपर्वतबहिर्वर्तितिर्यक्षु सर्वत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभावात् । तत्र तदभावश्च "दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ॥ तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले ॥" इत्यागमादवगम्यते । प्राग्बद्धतिर्यगायुषां पश्चाद्गृहीतक्षायिकसम्यक्त्वानामपि उत्तमभोगभूमितिर्यग्देवोत्पत्तेस्तत्र क्षायिकसम्यक्त्वमात्र एव " चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ इति वचनात्तिर्यगायुर्बन्ध्येऽपि सम्यक्त्वप्रहणमस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥

प्राक्सामान्यकथन–अवसरे ‖ देशसंयतस्य ‖	=पहिले संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगविषे संयमासंयमीयोंका (स्पर्शन)
षट् ‖ चतुर्दश ‖ भागाः ‖ इति उक्तम् ‖॥	=(लोकत्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू) ऐसा कहा गया है
इदानीम् * क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयत + अपेक्षया ‖॥	=अब क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीयोंकी विवक्षासे
लोक-असंख्येयभागः ‖ इति कथ्यते T	=लोकका असंख्यातवां अंश (का स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत् + कुतः* इति* चेत्*	=सो (लोकका असंख्यातवांभाग) क्योंकर है ? ऐसे संदेह (=चेत्, होनेपर कहते हैं)
मानुषोत्तरपर्वत—	=मानुषोत्तर पहाड़के (जो पुष्कर द्वीपके मध्य गोलाकार पड़कर उसके
बहिर्वर्तितिर्यक्षु ‖ सर्वत्र *	=दो भाग करता है) बाहिर रहनेवाले तिर्यंचनिविषे सब स्थानोंमें
क्षायिकसम्यक्त्व + अभावात् ‖ तत्र*	=क्षायिक सम्यग्दर्शनके न होनेसे वहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य)
तद्-अ-भावः ‖ च*	=इस (क्षायिक सम्यग्दृष्टी देशसंयमी) का भी (=च) अभाव है ।

जैसा कि—नीचेकी गाथासे प्रगट है ॥

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो । तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले ॥ इसकी संस्कृत छाया नीचे लिखते हैं—

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्म्मभूमिजः मनुष्यः तीर्थंकरपादमूले केवलि-श्रुतकेवलिमूले ॥ इसका निम्न लिखित शब्दशः अनुवाद—

दंसणमोह- (=दर्शनमोह-)	=दर्शन मोह (की मिथ्यात्व प्रकृति- सम्यक्त्वप्रकृति-सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति) के

खवणा-पट्ठवगो हि (क्षपणा–प्रस्थापकः हि) = क्षपणका वा नाशका प्रारम्भ करनेवाला

कम्मभूमिजो हि मणुसो हि (=कर्मभूमिजः हि मनुष्यः हि) = कर्मभूमिका उत्पन्न हुवा मनुष्य वा पुरुष

तित्थयर पादमूले हिंदा (तीर्थकर—पादमूले हिंदा) = तीर्थंकरके चरणोंके समीपमें (= मूले हिंदा) और

केवलि सुदकेवली मूले हिंदा (केवलि-श्रुतकेवलिमूले हिंदा) = केवली (सयोग केवली) श्रुतकेवलीके निकटमें (= मूले हिंदा) होता है अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके क्षय होनेका जो क्रम है उसका प्रारम्भ तीर्थंकर, केवली अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही होता है और उस दर्शन मोहका प्रारम्भक केवल कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य ही होता है ॥ यदि पूर्ण क्षय होनेसे पहिले ही प्रारम्भक मृत्युको प्राप्त हो जाए तो उस क्षपणाकी समाप्ति चारों गतिमेंसे किसी भी गतिमें हो सकी है ॥ गोम्मटसारजीमें यह गाथा ऐसे हैं कि–

(गाथा) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु । मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४८ ॥

(छाया) दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६४८ ॥

(अर्थ) दर्शन मोहनीय कर्मके नाशका प्रारंभ करनेहारा कर्मभूमिका जन्मा पुरुष ही केवली वा श्रुतकेवलीके निकटमें होता है । (यदि क्षयकी समाप्तिके प्रथम वह मनुष्य मर जावै तो क्षयकी समाप्ति सर्व गतिमें हो सकी है) दर्शन मोहके क्षयका "विधान होतैं होतैं मरण हो जाय तौ जहां संपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निबरै तहां ताकौं निष्ठापक कहिये" सो निष्ठापक "च्यारो गतिविषै हो है" गोम्मटसारजी मुद्रित पृष्ठ १०६८—१०६९ अधिकांड ॥

इति * आगमात् हि अवगम्यते T प्राक्-बद्ध—तिर्यग्-आयुषां हि पश्चात् * गृहीत—क्षायिक—सम्यक्त्वानाम् हि अपि उत्कृष्टभोगभूमि-तिर्यक्षु हि एव * उत्पत्तेः हि तत्र * क्षायिक—सम्यक्त्व–अभावः हि एव *

= ऐसा शास्त्रसे जाना जाता है (क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ होनेके) पहिले बांधी हुई
= तिर्यंच आयुके पीछे प्राप्त हुये क्षायिक
= सम्यक्त्ववालोंके भी उत्कृष्ट भोगभूमिके तिर्यंचोंमें
= ही जन्म होने (के हेतु) से तहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर) क्षायिक
= सम्यग्दर्शनका अभाव ही है । किसी जीवने तिर्यंच आयु बांधी हो पश्चात् क्षायिक-सम्यक्त्व हो तो वह सम्यक्त्वके कारण उत्तम भोगभूमिमें (ढाई द्वीपमें ही) जन्म लेगा ।

आयुबंधने पीछे सम्यक्त्वका होना सिद्ध गोमटसारकी गाथासे ज्ञात होता है—

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ गोम्मटसारजी कर्मकांड ३३४, जीवकांड ६५६ ।

चत्वारि अपि क्षेत्राणि आयुष्कबन्धेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

चत्तारि ¦ ा खेत्ताइं ¦ ा (=चत्वारि ¦ ा क्षेत्राणि ¦ ा = चारो गतियोंको (=क्षेत्राणि ¦ ा)

आयुगबंधेण ¦ ा वि* (=आयुष्क-बन्धेन ¦ ा अपि *) = आयुका बंध हो करि भी (=अपि)

होइ T सम्मत्तं ¦ ा ा अणुवद-(=भवति सम्यक्त्वं अणुव्रत) = सम्यक्त्व (जिसके पहले किसी आयुका बंध हो चुका है) हो सक्ता है । अणुव्रत

महव्वदाइं ¦ ा ा लहइ T (=महाव्रतानि ¦ ा ा लभते T) = और महाव्रतोंको प्राप्त वा धारण

देव-आउगं ¦ ा ा मोत्तुं÷(=देव-आयुष्कं ¦ ा ा मुक्त्वा÷) = देव आयुके बंधको छोडकर वा वर्जकर नहीं कर सक्ता है अर्थात् चारो गतिमेंसे किसी भी गतिमें रहनेवाले जीवके चार प्रकारकी आयुमेंसे किसी भी आयुका बंध होनेपर भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति हो सक्ती है किन्तु सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर यदि तिर्यंच हो तो अणुव्रत और मनुष्य हो तो अणुव्रत वा महाव्रत उसी जीवके हो सकते हैं जिसके चार आयुकर्मोंमेंसे केवल देवायुका बंध हुआ हो । नरकायु तिर्यगायु मनुष्य आयुका बंध करनेवाले सम्यग्दृष्टिके अणुव्रत वा महाव्रत नहीं होते क्योंकि वहां व्रतके कारण भूत विशुद्ध परिणाम नहीं होसक्ते हैं ।

इति * वचनात् ¦ ा ा तिर्यक्-आयुस्-बन्धे ¦ ा अपि * = (आगमके) ऐसे (उपर्युक्त) वाक्यसे तिर्यंचकी आयुके बंध जाने पर भी

सम्यक्त्व-ग्रहणम् ¦ ा ा अस्ति-इति-अवगन्तव्यम् ¦ ा ा = सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है इसप्रकार जानना चाहिये ।

(१) चत्तारि—खत्ताइं । चतुर् शब्दकी द्वितीया बहुवचन चउरो, चत्तारो, चत्तारि है (प्रा० सु० को १८०) क्षेत्रशब्दकी द्वितीया बहुवचन नपुंसक लिंग खेत्ताइं है (प्रा० सु० पृ० १७८) गोम्मटसारकी तीन प्रतियोंमें इनकी संस्कृत छाया भी चत्वारि-क्षेत्राणि है । वेही हमने लिखी हैं अनुवाद भी शब्दशः द्वितीयामें किया है । किसी किसी प्रतिमें चतुर्णाम्, क्षेत्रणाम्, षष्ठीविभक्ति-बहुवचन नपुंसक लिंगमें चत्तारि खेत्ताइंकी संस्कृत छाया लिखी है वह समझमें नहीं आई । अनुवाद षष्ठीविभक्तिमें भी बन जाता है क्योंकि हिंदी अनुवाद प्रायः षष्ठी-द्वितीया दोनोंमें लगभग एकसा होता है ॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । शेषाणां

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ५।१ = वेदकसम्यग्दर्शनवालोंका (जो असंयतसे अप्रमत्त गुणस्थानतक हैं)

सामान्य-उक्तम् ।।।। = संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ [गुणस्थानवत् स्पर्शन] है अर्थात् (१) असंयत क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिका (स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवां भाग है अथवा लोक त्रसनालके चौदहभागोंमेंसे आठ भाग कुछ हीन है जबकि असंयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यक्त्वका धारक देव अच्युत सोलहवें स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करता है ॥ अच्युतस्वर्ग-से मध्यलोक छहराजू है मध्यलोकसे तीसरा नरक दो राजू है ऐसे आठ राजू हुये ॥ १३५ पृष्ठानुसार [२] संयतासंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंसे स्वस्थान विहारकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा चौदहराजू लोकत्रसनालीमेंसे कुछ हीन छहराजू मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे स्वयंप्रभाचल पर्वतके बाहिरके तिर्यंचोंकी उत्पत्ति सोलहवें अच्युत स्वर्गतक होनेके कारणसे छुए जाते हैं (३) प्रमत्तसंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंका और अप्रमत्त वेदक सम्यग्दर्शनवालोंका स्पर्शन पृष्ठ १३६ के अनुकूल क्षेत्रसदृश है जो पृष्ठ ११६ के अनुसार लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शन] होता है ॥

औपशमिकसम्यक्त्वानां ५।३ = उपशम सम्यग्दर्शनवाले

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ५।१ = असंयत सम्यग्दृष्टियोंका

सामान्य-उक्तम् ।।।। = संक्षेप प्रकरणमें कथित (गुणस्थानवत् स्पर्शन) है अर्थात् १३५ पृष्ठके अनुसार लोकके असंख्यातवां भाग स्वस्थान विहार अपेक्षासे है और परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ हीन आठराजू (जबकि अच्युत सोलहवां स्वर्गका देव तीसरे नरक तक गमन करता है पृष्ठ १३५) स्पर्शन होता है ॥

शेषाणाम् ५।३ = (उपशम सम्यग्दर्शनके) शेष पांचवां से ग्यारहवां गुणस्थान तकका

---

(१) शेषेषां लोकासंख्येयभाग इत्यनेन उपशमसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षयाऽपि लोकासंख्येयभागकथनान्मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्युपशमसम्यग्दृष्टीनां

लोकस्यासंख्येयभागः ।

लोकस्य ¦ असंख्येयभागः ¦ = (स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकभावोऽप्यवगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यद्यस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभावात् ॥

शेषाणाम् ¦ = (उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालेनि)का (स्पर्शन)
लोक-असंख्येयभागः ¦ इति* अनेन ¦ = लोकका असंख्यातवां खंड है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-देशसंयत + अपेक्षया ¦¦ अपि* = उपशम सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीनकी विवक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ¦ = लोकके असंख्यातवां भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिर् * वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ¦ = मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाहर रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ¦ मारणान्तिक-अभावः ¦ अपि * = मृत्यु चिंतनके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अवगम्यते T अन्यथा * = जाना जाता है । दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ¦ = उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् ¦ चतुर्दश ¦ भागा ¦ इति* कथयन्ति T = (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू छुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ १३६ इसी पुस्तकका देखो ।

मनुष्यक्षेत्रवर्तिन्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ¦ = अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् ¦¦¦ अस्ति । मारणान्तिकः ¦ अस्ति न अस्ति इति = मृत्यु है । मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र* न अस्माकम् ¦ निश्चयः ¦ उपदेश-अभावात् ¦ = इसमें (=अत्र) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निर्णय नहीं है ।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ¦ = जो (मारणांतिक समुद्घात) है तो भी लोकके असंख्यात खंड (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ¦¦¦ बहिर् * = अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु-
अभावात् ¦ अन्तर्भावः ¦ = द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है । (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक हैं और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सक्ता है और द्वितीय उपशम आठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सक्ता है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दर्शनवालेनिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि- = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीनां च = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य-उक्तम् ॥८॥ = संक्षेपमें[पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें चौदह राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सक्ता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सक्ता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे-मध्य लोक तक पांच राज हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अतः कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १३३, १३४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १३२ ॥

१२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

सञ्ज्ञा-अनुवादेन ग्रा = सैनीके कथनानुसार करि अर्थात् मनसहित जीवोंकी अपेक्षासे

सञ्ज्ञिनां ग्रा चक्षुर्दर्शनिवत् * = सैनी वा मनसहित जीवोंका [स्पर्शन] चक्षुर्दर्शनवालोंके समान है अर्थात् चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषायवालोंका स्पर्शन पंच इन्द्रिय जीवोंके सदृश है [पृष्ठ १४४] और पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है । लोकत्रसनालके चौदहराजूओं मेंसे परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ घाटि आठ राजू हैं और मारणांतिक अपेक्षासे स्पर्शनका सर्व लोक है [पृष्ठ १४०-१४१] सासादन गुणस्थानमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्श स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग है । परस्थान विहार अपेक्षासे त्रसनालके चौदह राजूओंमेंसे आठ राजू कुछ हीन है और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे चौदह राजूओंमेंसे कुछ न्यून बारह राजू है (विशेषके लिये पृष्ठ १३३-१३४) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंकरि स्वस्थानविहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छुआ जाता है परस्थान विहार अपेक्षासे चौदह राजुओंमेंसे कुछ घाटि आठ राजू स्पर्शा जाता है [मिश्रगुणस्थानवर्ती देव और असंयत गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करें तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १३५] संयतासंयत गुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा लोकत्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक उत्पत्ति होनेके कारणसे कुछ हीन छह राजू स्पर्शा जाता है (पृष्ठ १३६) जैसे स्वयम्भूरमणद्वीपके बाहिरका देवसंयमी तिर्यंच अच्युत सोलहवें स्वर्ग पर्यंत जन्म लेनेसे मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे कुछहीन छः राजू स्पर्श करता है [पृष्ठ १३७] प्रमत्त संयतसे क्षीणकषाय तक सर्व गुणस्थानोंमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रवत् है (पृष्ठ १३६) क्षेत्रवत् स्पर्शन प्रमत्तसंयत छठे गुणस्थानसे बारह तक लोकका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ ११६) ॥

असञ्ज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम् । [१४] आहारानुवादेन-आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् ॥

असञ्ज्ञिभिः ‡। सर्वलोकः ‡। स्पृष्टः ‡। = असैनी (मनरहित) निकरि समस्तलोक स्पर्शा जाता है ॥

तद्-उभयव्यपदेश-रहितानां ‡। = उन दोनो [मनसहित मनरहित] नाम्से वर्जित अर्थात् सयोगकेवली अयोगकेवलीनिका स्पर्शन

सामान्य-उक्तम् ‡॥ = संक्षेप [प्रकरण] में कथित गुणस्थानवत् है अर्थात् एक समयमें होनेवाले उत्कृष्ट ८९८५०२ सयोगकेवलियोंका स्वस्थान स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है। दंडसमुद्घात और कपाट समुद्घातोंकी अपेक्षासे भी लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्याते भागोंमेंसे एक भाग हीन [वातवलयोंके क्षेत्रके प्रमाण आदि] सर्वलोक है और लोक पूरण समुद्घातकी अपेक्षासे सर्व ही लोकमें सयोगकेवलीके प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं। और अयोगकेवलीनिका स्पर्शन लोकका असंख्यातवांभाग स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे है पृष्ठ १३६ पंक्ति २,३ पृष्ठ ११८ से १२०

आहार-अनुवादेन ‡। आहारकाणां = [१४] आहारके कथनानुसारकरि आहारक

मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां ‡। = मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थानवर्ती

सामान्य-उक्तम् ‡॥ = तकनिका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) है ॥ अर्थात् आहारक अवस्था जीवकी प्रथमसे तेरह गुणस्थान तक हो सक्ती है सो [१] मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानवर्ती आहारकोंकरि सब लोक छुआ जाता है (पृष्ठ १३२) (२) सासादन सम्यग्दृष्टि आहारक वाले स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन करते हैं, परस्थानविहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे आठ राजू कुछ घाटि स्पर्शन करते हैं और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे बारह राजू कुछ न्यून छूते हैं (विशेष पृष्ट १३३-१३४) ॥ [३-४] मिश्र गुणस्थानवर्ती आहारक और असंयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती आहारक स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः।

और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ घाटि आठ भाग छूते हैं (विशेष पृष्ठ १२५) ॥ [५] संयमासंयमी आहारक स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे कुछ न्यून छह राजु छूते हैं॥ [६-१२] प्रमत्त संयमी छठे गुणस्थानवाले आहारकोंसे लेकर क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती आहारकों तकका स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र सदृश स्पर्शन पृष्ठ ११६ के अनुकूल लोकका असंख्यातवां अंश होता है॥

सयोग-केवलिनाम् ॥ = योगसहित केवलीका (जो स्वस्थानविहार और परस्थानविहार दण्ड कपाट समुद्घातोंमें आहारक और प्रतर लोक पूर्ण समुद्घातोंमें अनाहारक होते हैं)

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है अर्थात् सयोगकेवली आहारक और अनाहारक दोनों अवस्थाओंमें होते हैं इनका भी स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ १३६] यह क्षेत्र समान स्पर्शन आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे और परस्थान विहार अपेक्षासे दंड-कपाट समुद्घातोंमें असंख्यातवां भाग है (विशेष पृष्ठ ११५ से १२०) और अनाहारक सयोग केवली हैं प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भाग न्यून (तीनोंवात वलयोंके क्षेत्रके बराबर न्यून) स्पर्शन करते हैं (एक भाग घाटि सर्वही लोक स्पर्शते हैं) और लोक पूर्ण समुद्घातमें अनाहारक सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वत्र लोकमें व्याप्त हो जाते हैं अतः सर्वलोक स्पर्शन है॥

अनु+आहारकेषु ॥ = अनाहारक (मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-सयोगकेवली-अयोग-केवलीनिमें)

मिथ्यादृष्टिभिः ॥ सर्वलोकः ॥ स्पृष्टः = मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्श्या जाता है

एटानिवासी जगरूपसहायवकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८ ।

सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

सासादन-सम्यग्दृष्टिभिः ‖ = [अनाहारक वाले] सासादन सम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती)निकरि
लोकस्य ‖ असंख्येयभागः ‖ = लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है
एकादश ‖ चतुर्दश ‖ भागाः ‖ वा देशोनाः ‖ = (लोकत्रसनालके) चौदहराजू हैं (सो) कुछ घाटि ११ स्पर्शे जाते हैं

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानां मध्यलोके उत्पत्तिरस्ति । मध्यलोकवर्तिनामच्युतकल्पपर्यन्तमुत्पत्तिरस्ति । तत उपपादपरिणतैस्तावत्क्षेत्रं स्पृष्टम् । तत एकादश चतुर्दशभागा अनाहारकसासादनापेक्षयेति सुगमम् । यदि ग्रैवेयकपर्यन्तं तेषामुत्पत्तिरस्ति तथापि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यापर्याप्तेषु ग्रैवेयकोत्पत्तिः ॥ नन्वनाहारकथनावसरे सासादनापेक्षया द्वादशचतुर्दशभागा इत्युक्तं तत्सम्भवः कथमिति चेत्– सासादनो अष्टमपृथिवीपर्यन्तं मारणान्तिकं कृत्वा मिथ्यात्वपरिणामेन म्रियन्ते । तत आहारकैः सासादनैरच्युतादुपरि अष्टमपृथ्वीपर्यन्तं क्षेत्रं स्पृष्टम् । अच्युतादधः षष्ठपृथ्वीपर्यन्तमाहारकैरनाहारकैरपि तैः स्पृष्टम् । एतदपेक्षया तत्सम्भवो भवति ॥ अष्टमपृथिव्यामुत्पद्यमानसासादनः मिथ्यापरिणामेनैव म्रियत (इति) कुतो नियम इति चेत्—एतैराचार्यैरेकविकलेन्द्रियेषु सासादनानुत्पत्तिपक्षांगीकरणात् ॥ कथमेषा प्रतीतिरिति चेत्—वृत्तेमेकविकलेन्द्रिये एकमेव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमित्युक्तत्वात्पूर्वं तिर्यङ्मनुष्यसासादनापेक्षया सप्त चतुर्दशभागा इत्युक्तं तदप्यत्रोक्तमारणान्तिकापेक्षयेत्यवगन्तव्यम् ॥

षष्ठपृथ्वीपर्यन्तवर्तिसासादनानाम् ‖ = छठवांनरक तकके रहनेवाले सासादन गुणस्थानवर्ती (नारकिनिका)—
मध्यलोके ‖ उत्पत्तिः ‖ अस्ति T = मध्यलोकविषै जन्म है ।सो छठवें नरकसे मध्यलोकतक कुछहीन पांच राजू हुये)
मध्यलोकवर्तिनाम् ‖ अच्युतकल्पपर्यन्तम् ‖ = मध्यलोकके रहनेवाले दूसरे (गुणस्थानवर्ति)निके अच्युत (सोलहवां) स्वर्ग तक
उत्पत्तिः ‖ अस्ति ततः * उपपादपरिणतैः ‖ = (कुछहीन छः राजू जन्म है वहां (छठे नरक) से (उपपाद) में परिणत हुये
तैः ‖ तावत् * = तिन (दूसरे गुणस्थानवर्तिनि) करि उतना (कुछहीन ग्यारहराजू=तावत्)
क्षेत्रम् ‖ स्पृष्टम् ‖ । ततः* एकादश ‖ चतुर्दश ‖ भागाः = क्षेत्र स्पर्शा जाता है । तिसत (लोकत्रसनालके) चौदहराजूमेंसे ग्यारहका स्पर्शन
अनाहारक–सासादन अपेक्षया ‖ इति सुगमम् ‖ = अनाहारक दूसरे गुणस्थानवर्तिनिकी अपेक्षासे है इसप्रकार स्पष्ट वा व्यक्त है
यदि * ग्रैवेयकपर्यन्तम् ‖ तेषाम् ‖ = जो (सोलह स्वर्गसे ऊपर) नवग्रैवेयक लग तिन अनाहारक सासादनवालोंका

उत्पत्तिः ।। अस्ति तथापि * लोकासंख्येयभागे ।।
अन्तर्भावः ।। मनुष्याणाम् ।। एव ग्रैवेयकेषु ।। उत्पत्तिः ।।
ननु * सामान्यकथन-अवसरे ।। सासादन अपेक्षया ।।
द्वादश ।। चतुर्दश ।। भागाः ।। इति * उक्तम् ।।।
कथम् सम्भवः ।। कथम् * इति * चेत् *
सासादनाः ।। अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् ।।
मारणान्तिकम् ।। कृत्वा÷मिथ्यत्वपरिणामेन ।। म्रियन्ते
ततः * आहारकैः ।। सासादनैः ।। अच्युतात् ।।
उपरि * अष्टमपृथिवीपर्यन्तम् ।।।। क्षेत्रम् ।।।। स्पृष्टम् ।।।।
अच्युतात् ।। अधस्* षष्ठपृथिवीपर्यन्तम् ।।
तैः ।। आहारकैः ।। अनाहारकैः ।। अपि
स्पृष्टम् ।।।।
एतद् अपेक्षया ।।। तद्सम्भवः ।। भवति ।।
अष्टमपृथिव्याम् ।।। उत्पद्यमानसासादनः ।।
मिथ्यापरिणामेन ।। एव* (म्रियते इति)
कुतस् * नियमः ।। इति* चेत्*—
एतैः ।। आचार्यैः ।। एकविकल-इन्द्रियेषु ।।।।
सासादन-अन्-उत्पत्तिपक्ष-अङ्गीकरणात् ।।।।

कथम्* एषा ।। प्रतीतिः ।।

=जन्म है तब भी लोकके असंख्यात अंश (के कथन) विषै
=गर्भित है (क्योंकि) नरोंका ही जन्म (नव) ग्रैवेयक विषै है
=प्रश्न-संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगमें दूसरे गुणस्थानवर्तीनिकी विवक्षासे
(लोकत्रसनालके) चौदह राजू है (सो) बारह (राजूका स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
=तिस (चौदह राजूमें बारह राजूके स्पर्शन) का होना कैसे है ऐसे संशय (पर कहते है कि)
=सासादनसम्यग्दृष्टी मोक्ष क्षेत्र लग =अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्)
=मारणान्तिक समुद्घात करके मिथ्यात्व स्वभावसे मरते हैं
=इसकारणसे (=ततः) आहारक सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि सोलहवां स्वर्गसे
=ऊपर मोक्षतक (=अष्टमपृथिवीपर्यन्तम्) क्षेत्र स्पर्शा जाता है अतः बारह हुये
=अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) से नीचे छठवां नरक (=पृथिवी) लग
=तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ती) आहारकनिकरि (तथा) अनाहारकनसे भी
=(कुछहीन ग्यारह राजू अर्थात् अच्युतसे छठवां नरक तक) छुआ जाता है
=इस (उत्पाद) अपेक्षासे वह (कुछ हीन ग्यारह राजूका स्पर्शन) संभव है।
=आठवी भूमिविषै उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी
=केवल (=एव) मिथ्यास्वभावकरि मरण करते हैं (ऐसा)
=कहांसे नियम है इसप्रकार संदेह (=चेत्) होनेपर कहते हैं)
=इन (=एतैः) आचार्योंकरि एक इंद्रिय दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चारइन्द्रियमें
=सासादन वालोंका जन्म न होनेकी पक्ष ग्रहण करनेसे (व्यक्त है कि आठवी पृथिवीमें पैदा होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यापरिणामसे ही मरते हैं)
=यह विश्वास (कि सासादन सम्यग्दृष्टी विकल इन्द्रियनविषै जन्म नहीं लेते) कैसे (हुआ)

असंयतसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। षट् चतुर्दशभागावा देशोनाः ॥

अर्थात् अनाहारक सासादन सम्यग्दृष्टि " छठा पृथिवीतैं मध्यलोकमें उपजै ताकै उत्पाद अपेक्षा तो पांच राजू अर अच्युततैं मध्यलोकमें आय उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा छह ऐसैं ग्यारह राजू कहे । मारणांतिक अपेक्षा बारह राजू होय हैं । परन्तु मारणांतिकमें अनाहारक नाहीं । तातैं उत्पाद अपेक्षा ग्यारह हैं ॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ।। लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।। = (अनाहारक) अवस्त गुणस्थानवर्तीनिका (स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है ।

षट् ।। चतुर्दशभागा ।। वा देशोनाः ।। = वा (लोक त्रसनाडीके) चौदह राजू हैं (सो) कुछ हीन छह छुए जाते हैं

इति चेत् = इसप्रकार संशय (=चेत्) (होनेपर कहते हैं)

पूर्वम् ।।। एकविकलेन्द्रिये ।।। एकम् ।।। एव = पहिले (देखो पृष्ठ १४० पंक्ति ३) एक इन्द्रिय विकल इन्द्रीमें एक ही

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ।।। इति उक्तत्वात् ।।। पूर्वम् ।।। = मिथ्यात्व गुणस्थान है ऐसे कथन होनेसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पंक्ति ४)

तिर्यङ्-मनुष्यसासादन-अपेक्षया ।।। = (दूसरे गुणस्थानवर्ती) तिर्यंच तथा मनुष्यनकी अपेक्षासे

सप्त ।। चतुर्दश ।। भागाः ।। इति उक्तम् ।।। = (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) सात (राजू स्पर्शे जाते) हैं ऐसे कहा गया है

तद् + अपि = पहिले कहा हुआ (=तद्) भी (चौदह राजूमेंसे बारह राजूका स्पर्शन तथा)

अत्र उक्तम् ।।। = यहां (=अत्र) कहा हुआ (चौदह राजूमेंसे सासादन तिर्यंच और नरकका सात राजू स्पर्शन)

मारणान्तिक-अपेक्षया ।।। इति = मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षाकरि है ऐसें—

अवगन्तव्यम् ।।। = जानने योग्य है (चौदह राजूमें ग्यारह राजू उत्पाद अपेक्षासे हैं बारह राजू मारणांतिक अपेक्षासे है परन्तु मारणान्तिकमें अनाहारक नहीं है, आहारक ही है)

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ स्पर्शनं व्याख्यातम्। कालः प्रस्तूयते।

सयोगकेवलिनां ¦। लोकस्य ¦। असंख्येयभागः ¦।	= सयोग केवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग (आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे परस्थान विहार अपेक्षासे दण्ड समुद्घात अपेक्षासे और कपाट समुद्घात अपेक्षासे) होता है
वा	= अथवा [अनाहारक अवस्थामें प्रतर समुद्घातमें एक भाग न्यून और]
सर्वलोकः ¦।	= (लोक पूर्ण समुद्घातमें) समस्तलोक है [देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक]
अयोग-केवलिनां ¦। लोकस्य-असंख्येयभागः ¦।	= अयोगकेवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग है।
स्पर्शनं ¦।।। व्याख्यातम् ¦।।। । कालः ¦। प्रस्तूयतेT।	= स्पर्शन [प्ररूपणाका] वर्णन किया गया। कालका वर्णन किया जाता है

(१) विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६६५

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाताः अयोगिनः च। सिद्धाः च अनाहाराः शेषाः आहारकाः जीवाः ॥ गाथाकी यह संस्कृत छाया है।

विग्गहगदिमावण्णा ¦। (=विग्रहगतिमापन्नाः ¦।) = विग्रहगति (=नवीन जन्म धारण करनेके लिये गमन) को प्राप्त हुये जीव

केवलिणो ¦। समुग्घदा ¦। (=केवलिनः ¦। समुद्घाताः ¦।) = (प्रतर, और लोक पूरण) समुद्घात प्राप्त सयोगकेवली

अजोगी ¦। य* सिद्धा ¦।य*(अयोगिनः ¦। च सिद्धाः¦। च) = और (=य - च) अयोगी जिन और (=य=च) सिद्ध भगवान

अणाहारा ¦। सेसा ¦। (=अनाहाराः ¦। शेषाः ¦।) = अनाहारक (जीव) हैं अवशेष या बचे हुये

आहारया ¦। जीवा ¦। (=आहारकाः ¦। जीवाः ¦।) = आहारक जीव हैं (देखो पृष्ठ ९२ आहार और आहारकके लिये)

(२) प्रस्तूयते-स्तु अदादि द्वितीयगणका परस्मैपद और आत्मनेपदी धातु प्रशंसा अर्थमें आता है ॥ कर्मणि प्रयोग बनानेमें यदि धातुके अंतमें इ अथवा उ होवे तो उसको दीर्घ करके य प्रत्यय लगा देते हैं पश्चात् आत्मनेपद प्रत्यय लगा देते हैं ॥ स्तु धातुमें उपसर्ग लगाकर स्तुके उ को दीर्घ करके य कर्मणि प्रत्यय जोड़कर प्रस्तूय बना लिया पश्चात् ते अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़ा तो प्रस्तूयते बन गया ॥

स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्–मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-जीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः । अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति ॥

सः ‡ द्विविधः ‡ सामान्येन ‡॥ विशेषेण ‡ च	= वह [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और भेदसे
सामान्येन ‡॥ तावत् मिथ्यादृष्टेः ‡	= संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
नानाजीव+अपेक्षया ‡॥ सर्वः ‡ कालः ‡	= अनेक जीवोंकी अपेक्षासे सम्पूर्ण काल है
एक-जीव+ अपेक्षया ‡॥ त्रयः ‡ भङ्गाः ‡	= एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भंग हैं
अनादिः ‡ अपरि-अवसानः ‡	= (अभव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि] = अर्थात् अनादि अनन्त (काल) है
अनादिः ‡ सपरि+अवसानः ‡	= (भव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) सहित (= सपरि) अर्थात् अनादिसान्त (काल) है
स+आदिः ‡ सपरि+अवसानः ‡ च इति	= बहुरि [भव्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान]सहित[= सपरि] सादिसान्त [काल] है ऐसे तीन भेद हैं,

(१) अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालः अभव्येषु । अनादिमिथ्यादृष्टिर्यः कश्चन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्व-कालः अनादिः सपर्यवसानः कश्चित्तु गृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम् ।

अनादिः ‡ अपरिअवसानः ‡ मिथ्यात्वकालः ‡	= अनादि अन्तरहित मिथ्यात्वकाल अभव्य विषें हैं अर्थात् अभव्य मिथ्यादृष्टियों का काल अनादि अनन्त है
अनादिमिथ्यादृष्टिः ‡ यः ‡ कश्चन ‡	= अनादि मिथ्यादृष्टी जो (= यः) कोई (= कश्चन)
प्रथम + उपशमसम्यक्त्वम् ‡॥ गृहीष्यति T	= प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनको आरम्भ करेगा
तस्य ‡ प्राक्तन-	= तिस (प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनवाले) का पहिलेका (= प्राक्तन)
मिथ्यात्वकालः ‡ अनादिः ‡ सपरि + अवसानः ‡	= मिथ्यात्वका समय अनादि अन्त सहित (= सान्त) है

तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥

तत्र स+आदिः ।। सपर+अवसानः ।।	=तहां आदिसहित अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त
जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=जघन्य [अपेक्षा] करि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। अर्धपुद्गलपरिवर्तः ।। देशोनः ।।	=अतिशयकरि कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्तन है
कश्चित्+तु गृहीतसम्यक्त्वः ।।	=परंतु (=तु) कोई (जीव) सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि
मिथ्यात्वम् ।।। प्राप्नोति T तस्य ।। तद्+मिथ्यात्वम् ।।।	=मिथ्यात्वको ग्रहण करता है (प्राप्नोति) =तिस (जीवकै) वह मिथ्यात्व
सादिः ।। सपरि+अवसानम् ।।।	=आदिसहित (तथा) अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त है

(२) यः कश्चित् गृहीतवेदकोपशमसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्य संसारे परिभ्रमति स नियमेनार्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ संसारे न तिष्ठति किंतु मुक्तो भवति तदुक्तम्–पुद्गलपरिवर्तार्धे परितो व्यालीढवेदकोपशमौ । वसतः संसाराब्धौ क्षायिकदृष्टिर्भवचतुष्कः ॥ इति सम्यक्त्व-ग्रहणम् । पुनः अर्धपुद्गलपरिवर्तनपरिसमाप्तेः प्राक्षेव भवति [illegible] तदा मुक्त्यनुपपत्तिस्ततः सादिपर्यवसानमिथ्यात्वकालस्योत्कृष्टस्य देशोना-र्धपुद्गलपरिवर्तत्वं युक्तमेव ।

यः ।। कश्चित्*गृहीतवेदक+उपशमसम्यक्त्वः ।।	=जो कोई जीव क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन(=वेदक,तथा)उपशमसम्यग्दर्शन ग्रहणकरि
मिथ्यात्वम् ।।। प्राप्य ÷	=(पश्चात्) मिथ्यात्वको प्राप्त होकर
संसारे ।। परिभ्रमति सः ।। नियमेन ।।	=जगतविषै परिभ्रमण करता है वह निश्चयसे
अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ ।।। संसारे ।।	=अर्धापुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होनेपर संसारमें
न तिष्ठति किंतु * मुक्तः ।। भवति ।।	=नहीं रहता है परन्तु मुक्त हो जाता है
तद्+उक्तम् ।।।	=सो (ही निम्न लिखित आर्याछंदमें) कहा गया है
व्यालीढवेदक+उपशमौ ।।	=क्षायोपशमिक (और) उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करके
पुद्गलपरिवर्त+अर्धे ।।। परितः*वसतः Tसंसार+अब्धौ ।।	=अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल सर्वत्र संसाररूप समुद्रमें बसते है (और)
क्षायिकदृष्टिः ।। भवचतुष्कः ।।	=क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंकरि चार जन्म (=भव) (धारण किये जाते) हैं

अर्थात् वेदक और उपशम सम्यक्त्व होनेके पश्चात् मिथ्यात्व ग्रहण होनेपर जीव उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसारमें भ्रमण करके पीछे मोक्ष प्राप्ति करता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी उत्कृष्ट चार भवको धारण करके मोक्ष प्राप्त करता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एक-

सासादनसम्यग्दृष्टेः ‡ा नानाजीव+अपेक्षया ‡ा	=सासादन [दूसरे गुणस्थान]वालेका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ‡ा एकः ‡ा समयः ‡ा	=जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ‡ा पल्य+उपम+असंख्येयभागः ‡ा	=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश बराबर [=उपम] है
एकजीवम् ‡ा प्रति*	=[सासादन सम्यग्दृष्टि] एक जीवकी अपेक्षासे [=प्रति]

इति सम्यक्त्वग्रहणम् ‡ा ततः पुनः अर्धपुद्गल-	=इस प्रकार सम्यग्दर्शनका ग्रहण है फिर आधा पुद्गल
परिवर्तनपरिसमाप्तेः ‡ा प्राक् * एव भवति	=परावर्तन परिपूर्ण होनेसे पहिले ही (जीवके सम्यक्त्व) हो जाता है
अन्यथा	=दूसरे प्रकार यदि अर्ध पुद्गलपरावर्तनके पूरे होनेसे पहिले सम्यक्त्व न हो
तदा मुक्ति + अन् + उपपत्तिः ‡ा ततः *	=तो (=तदा) मोक्षका (प्राप्तिका) प्रसंग नहीं बनता है जिससे
स+आदिपरि-अवसानमिथ्यात्वकालस्य ‡ा उत्कृष्टस्य ‡ा	=आदि सहित अन्त (=अवसान) सहित (=परि) अर्थात् सादिसान्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वका काल
देशोन+अर्धपुद्गल-परिवर्तत्वम् ‡ा युक्तम् ‡ा एव	=कुछ हीन आधा पुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होना ठीक ही है

आवलिका चासंख्यातसमयलक्षणा भवति । गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां तथा चोक्तम् । आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूह-उस्सासो । सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥ आवलिरसंख्यसमयाः संख्येयावलिसमूहः उच्छ्वासः । सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्त स्तोकाः लवो भणितः ।

च+असंख्यातसमयलक्षणा ‡ा आवलिका ‡ा भवति तथा च*	=बहुरि (=च) असंख्यात समय लक्षणवाली एकआवली होती है जैसा कि
गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां ‡ा उक्तम्	=गोमट्टसार जीवकांड सम्यक्त्व मार्गणामें कहा गया है
आवलि ‡ा असंखसमया ‡ा (=आवलिः ‡ा असंख्यसमया ‡ा)	=असंख्यात समयवाली (एक) आवली है
संखेज्जावलिसमूह ‡ा (=संख्येय-आवलि-समूहः ‡ा)	=संख्यातआवलीके समूह रूप वा संख्यात आवलियोंका समुदय
उस्सासो ‡ा सत्तुस्सासा ‡ा (उच्छ्वासः ‡ा सप्तोच्छ्वासो ‡ा)	=(एक) उच्छ्वास होता है ॥ सात उच्छ्वासवाला
थोवो ‡ा सत्तत्थोवा ‡ा (=स्तोकः ‡ा सप्तस्तोकाः ‡ा)	=(एक) स्तोक होता है ॥ सात है स्तोक जिसके ऐसा
लवो ‡ा भणियो ‡ा (लवः ‡ा भणितः)	=(एक) लव होता है

जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः ॥ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः "तिण्णि सहस्सा सत्त य सदाणि तेहत्तरि च उस्सासा ॥ एसो हवइ मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं ॥ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि

जघन्येन ‡। एकः ‡। समयः ‡। उत्कर्षेण ‡। षट्+आवलिकाः ‡॥ = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छह आवली है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ‡। नानाजीव+अपेक्षया ‡। जघन्येन ‡॥। = मिश्रगुणस्थानवालेका अनेक जीवोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ‡। उत्कर्षेण ‡। पल्य+उपम+असंख्येयभागः ‡। = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंशके बराबर है
एक-जीवम ‡। प्रति * = (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) एक एक (= प्रति) जीवका
जघन्यः ‡। च उत्कृष्टः ‡। अन्तर्मुहूर्तः ‡ = जघन्य तथा उत्कर्ष (काल) अन्तर्मुहूर्त है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ‡। = असंयत सम्यग्दर्शन [चौथे गुणस्थान]वालेका
नानाजीव-अपेक्षयाः ‡। सर्वः ‡। = अनेक आत्माओंकी विवक्षाकरि सपत्न
कालः ‡। एकजीवम् ‡। प्रति* जघन्येन‡॥। अन्तर्मुहूर्तः‡। = काल है प्रत्येक जीवके जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है

[जिस मुहूर्तका प्रमाण निम्नलिखित आर्या छंदमें कहते हैं]

सव्वेसिं ‡। चेव * मणुयाणं ‡। (सर्वेषां ‡। च एव मानवानां ‡।) = समस्त मनुष्योंके ही
तिण्णि‡। सहस्सा ‡। सत्त ‡। य [त्रीणि ‡॥। सहस्राणि ‡॥। सप्त‡। च] = तीन सहस्र और (= च) सात
सदाणि ‡॥। तेहत्तरि ‡॥। च उस्सासा [‡। शतानि ‡॥। त्रिसप्ततिः ‡। च उच्छ्वासाः ‡।] = सौ तथा तेहत्तरि उच्छ्वास होते
एसा ‡। हवइ मुहुत्तो [= एषः मुहूर्तः भवति] ‡। = यह मुहूर्त होता है
उत्कर्षेण ‡। त्रयस्त्रिंशत्‡॥। सागरोपमाणि ‡॥। = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके बराबर [= उपम]
स+अतिरेकाणि ‡॥। = [कुछ] अधिक सहित है अर्थात् तेतीस सागरसे अधिक है

१ अथ सहस्राणि सप्तशतानि अधिक सप्ततिरुच्छ्वासा मुहूर्तः कथ्यते ३७७३ ॥ सैंतीससौ तेहत्तरि उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है

(२) त्रीणि ३ सहस्राणि ३ सप्त ७ शतानि १०० = तीन हजार सात सौ
त्रि + अधिकसप्ततिः ७३ उच्छ्वासाः ३ मुहूर्तः १ कथ्यते = तेहत्तरि उच्छ्वासें है (सो) मुहूर्त कही गई है ॥ ३७३७ ॥

(१) यः कश्चित्संयमी सम्प्राप्तमृतिः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नस्तत्र स्वस्थितिं जीवित्वा मृतो मनुष्यगतावुत्पन्नो यावद्देशसंयमं सकलसंयमं वा गृह्णाति तावत्साधिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालोऽयमसंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालो वेदितव्यः ॥ ननु ॥ "वेदगसम्मत्तद्धिदिजहण्णमंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरुवमा णिद्दिट्ठा मणुवदेवहवे" ॥ इति गाथोदितप्रकारेण वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमपर्यंतं स्थितिसंभवेऽपि असंयतसम्यग्दृष्टेन सह तावत्कालं तस्यावस्थानासम्भवात् । मध्ये देशसंयमसकलसंयमयोः प्राप्तिसम्भवादिह तस्योत्कृष्टत्वेनाग्रहणम् । इह खल्वसंयतसम्यग्दृष्टिकालः परीक्षितुमुपक्रान्तो न तु सम्यक्त्वकालः ॥

यः १ कः + चित्* संयमी १ सम्प्राप्तमृतिः १ = जो कोई संयम धारण करनेवाला मरण पाकर
सर्वार्थसिद्धौ १ उत्पन्नः १ = सर्वार्थसिद्धिविमानविषै जन्म धारण करता है (सो)
तत्र स्वस्थितिम् १ = वहांसे अपने कालकी मर्य्यादा भर
(जो तेतीस सागर है क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती है)
जीवित्वा मृतः १ मनुष्यगतौ १ उत्पन्नः १ = जीवित रहकर मरता है, मनुष्यगतिमें जन्म लेता है (और)
यावत् * देशसंयमं १ वा सकलसंयमं १ गृह्णाति T = जब तक अणुव्रत वा महाव्रत धारण करता है
तावत् * स १ अधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागर + उपम कालः १ = तबतक कुछ अधिक तेतीस सागरके बराबर समय होता है
अयम् १ असंयतसम्यग्दृष्टेः १ कालः १ = यह (= अयम् कालः) असंयत सम्यग्दर्शनवालेका
उत्कृष्टकालः १ वेदितव्यः १ ॥ ननु* = उत्कर्ष समय जानना चाहिये (प्रश्न)

वेदगसम्मत्तद्धिदिजहण्णं अंतोमुहुत्तमुक्कस्स । छासट्ठिसायरुवमा णिद्दिट्ठा मणुवदेव हवे ।
वेदकसम्यक्त्वस्थितिजघन्यं अन्तर्मुहूर्तः उत्कृष्टा । षट्षष्टिसागरोपमा निर्दिष्टा मानवदेवः भवेत् ।

वेदगसम्मत्तद्धिदि-(वेदकसम्यक्त्वस्थिति) = वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका ठहराव या टिकाव
जहण्णं १ अंतोमुहुत्तं १ (जघन्यं १ अन्तर्मुहूर्तः १) = जघन्य अन्तर्मुहूर्त है (१ घंटेके भीतर भीतर (= अंतर) होता है
उक्कस्स—छासट्ठि-(उत्कृष्ट—षट्षष्टि—) = अधिकसे अधिक (= उत्कृष्ट) छासठ

सागर-उपमा ॥ा निर्दिष्टा ॥ा (सागर-उपमा॥ानिर्दिष्टा॥ा) =सागर प्रमाण (=उपमा) कहा गया है
मनुष्य-देवःभवेत् T (=मानवः देवः-भवेत् T)
इति

=(वेदक सम्यक्त्वकी अवस्थामें जीव) मनुष्य वा देव होता है
=ऐसा (प्रश्न होनेपर) कि असंयत सम्यग्दृष्टीके (जिसका काल तेतीस सागरसे कुछ अधिक कहा है) वेदक सम्यक्त्व भी होता है उस वेदकका समय उत्कर्ष अपेक्षा छ्यासठि सागर है सो असंयत काकाल छ्यासठि सागर क्यों न कहा, उत्तर

गाथा+उदितप्रकारेण ॥ा वेदकसम्यक्त्वस्य ॥ा
उत्कर्षेण ॥ा षट्षष्टिसागर+उपमपर्यन्तम् ॥ा
स्थितिसम्भवे ॥ा अपि* असंयमेन ॥ा सह*तावत्*
कालम् ॥ा तस्य ॥ा अवस्थान-असम्भवात् ॥ा
मध्ये ॥ा देशसंयमसकलसंयमयोः ॥ा

प्राप्तिसम्भवात् ॥ा इह * तस्य ॥ा
उत्कृष्टत्वेन ॥ा अग्रहणम् ॥ा इह*
असंयतसम्यग्दृष्टिकालः ॥ा खलु*
न* तु* सम्यक्त्वकालः ॥ा
परीक्षितुम्
उपक्रान्तः ॥ा

=आर्या छंदसे कहे हुये प्रकारसे क्षायोपशम सम्यग्दर्शनका
=उत्कृष्टकरि छ्यासठि सागर तक
=ठिकाव होनेपर भी असंयम सहित इतने (छ्यासठि सागर)
=समय तक तिस (असंयतसम्यग्दृष्टी) की स्थिति अवस्थान असम्भव है क्योंकि
=(अन्तर्मुहूर्त और चौंतीस सागर के) बीचमें (असंयतसम्यग्दृष्टीके) अणुव्रतवा महाव्रतकी
=प्राप्ति हो जाती है । यहां (इस प्रकरणमें) तिस (असंयत सम्यग्दृष्टिके)
=उत्कर्षपने (छ्यासठि सागर कालका) ग्रहण नहीं है किंतु यहां नियमसे (=खलु)
=असंयमीसम्यग्दर्शनवालेका समय कहा जा रहा है
=(=तु) न (कि) सम्यग्दर्शनका काल
=परीक्षा या निरूपण करनेके लिये (परीक्षुम, हेत्वर्थे कृदंत है)
=आरम्भ किया गया है । उत्तरका भावार्थ यह है कि वेदक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठि सागर है और असंयत सम्यग्दृष्टिके वेदक सम्यक्त्व भी होता है परंतु असंयम अवस्थामें जीव केवल तेतीस सागरसे कुछ अधिक ही उत्कृष्टकरि रह सकता है पश्चात् वही जीव संयमी या सकल संयमी हो जाता है इस कारण प्रकरणके अनुसार असंयत सम्यग्दृष्टिका समय कुछ अधिक तेतीस सागर कहा है सम्यक्त्वका समय नहीं कहा, न ऐसा समझना चाहिये ॥

संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः ॥ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया

संयतासंयतस्य ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖ सर्वः ‖ कालः ‖ एकजीवं ‖ प्रति * जघन्येन ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖ उत्कर्षेण ‖ पूर्वकोटी ‖ देशोना ‖

= देशसंयमी (पांचवां गुणस्थानवर्तीनि) का अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य काके अन्तर्मुहूर्त है [पांचवांगुणस्थानवर्तीका) उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड पूर्व है [एकपूर्व चौरासी लाख पूर्वोंका है और एक पूर्वांग चौरासी लाख वरसका होता है)

प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖ सर्वः ‖ कालः ‖ एकजीवं ‖ प्रति जघन्येन ‖ एकः ‖ समयः ‖ उत्कर्षेण ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖

= प्रमत्तसंयमी (छठां गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती]का = अनेक जीवकी अपेक्षाकरि समस्त काल है = एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकरि एक समय है = (प्रमत्त तथा अप्रमत्तका समय) उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ॥

चतुर्णाम् ‖ उपशमकानाम् ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖

= चार अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय उपशांत मोह = उपशम (गुणस्थान वर्तीनिका अनेक जीवोंकी विवक्षाकरि

---

(१) वर्षाष्टकं शैशवमतीत्य गृहीतदेशसंयमः पूर्वकोट्यायुर्यो जीवः आमरणाद्देशसंयमं पालयति तदपेक्षया देशोनपूर्वकोटी देशसंयतकालः ।

वर्ष-अष्टकम् ‖ शैशवम् ‖ अतीत्य = आठ वरस बाल अवस्थाको प्राप्त करके वा पहुंच करके (अति इत्य)

गृहीतदेशसंयमः ‖ = अणुव्रत धारण करने वाला (इत्य = प्राप्य, अति = लांघना)

पूर्व + कोटी—आयुः ‖ यः ‖ जीवः ‖ आमरणात् ‖ = एक करोड़ पूर्व आयुका धारक जो आत्मा मृत्यु होने तक (आ = तक)

देशसंयमम् ‖ पालयति T तद् अपेक्षया ‖ = अणुव्रतको पालन करता है उस (जीव) की विवक्षासे

देशोनपूर्वकोटी ‖ देशसंयतकालः ‖ = कुछ हीन करोड़ पूर्व संयमासंयमी का काल (होता) है

एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

एकजीव-अपेक्षया ‖ च जघन्येन ‖ एकः ‖ समयः ‖ = तथा (= च) एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖ = उत्कृष्ट करके अंतर्मुहूर्त है

(१) नन्वेवं मिथ्यादृष्टेरप्येकसमयः कस्मान्न सम्भवतीत्यनुपपन्नम्। कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टेरेकसमयः कालो न घटते इत्यर्थः। कस्मान्न? प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मरणासम्भवात्। तदुक्तम्—"मिथ्यात्वं वेदयमानो जीवो नासादयत्यनन्तानुबन्धिनाम्। यावत्कालिका पाकान्तर्मुहूर्तं मृतिर्न च ॥१॥" सम्यक्त्वमिथ्यादृष्टेः परिणामकाले तद्गुणस्थानत्यागानैकसमयः सम्भवतीति प्रतिपन्नासंयतसंयतासंयतगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमध्ये न म्रियते। अतोऽसंयतसंयतासंयतयोरप्येकसमयो न भवति ॥

एवम्* मिथ्यादृष्टेः ‖ अपि एकसमयः ‖ = ऐसे ही मिथ्यादृष्टीका एक समय
कस्मात् ‖ न* सम्भवति इति ननु = किस कारणसे नहीं सम्भवे है ऐसे प्रश्न (= ननु होनेपर कहते हैं कि)
अद्+उपपन्नम् ‖॥ = मिथ्यादृष्टीके जघन्य एक समयका काल) पाया नहीं जाता है (= अनुपपन्न—पद्मकोष पृष्ठ ७७)
कः ‖ अर्थः ‖ = (अनुपपन्न अथवा पाया नहीं जाता है इस वाक्यका) क्या अभिप्राय है?
मिथ्यादृष्टेः ‖ एकसमयः ‖ कालः ‖ न घटते ‖ = (उत्तर) मिथ्यादृष्टीका एक समय काल नहीं होता है (= घटते)
इति* अर्थः ‖ कस्मात् ‖ न = ऐसा अभिप्राय है किस हेतुसे (एक समय) नहीं (होता है)? (क्योंकि सम्यक्त्वके पीछे)
प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्य ‖॥ अन्तर्मुहूर्तमध्ये ‖॥ = प्राप्त वा लब्ध मिथ्यात्ववाले वा मिथ्यादृष्टीका अन्तर्मुहूर्तके भीतर
मरण—असम्भवात् ‖ = मृत्यु नहीं हो सक्ती है॥
तद् उक्तम् ‖॥ दर्शनात् ‖॥ = सो (निम्नलिखित श्लोकमें) कहा गया है। सम्यक्त्वसे (सम्यग्दर्शनके पीछे)
मिथ्यात्वं ‖॥ प्राप्ते ‖॥ अनन्तानुबन्धिनाम् ‖। = मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अनंतानुबंधी (क्रोध-मान-माया—लोभ) का
यावत्* अकालिका ‖॥ न अस्ति = जब तक असमय वा उदयका अभाव (अकालिका) नहीं होता है
तावत् पाक-अन्तर्मुहूर्ते ‖॥ मृतिः ‖॥ न* च* = (तब तक मिथ्यादृष्टिका उस) पाक वा उदयके अन्तर्मुहूर्तमें मरण भी (= च) नहीं

चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्त-

चतुर्णाम् ।।	= चार (आठवां, नववां, दशवां तथा बारहवां) गुणस्थानवर्तीनिके
क्षपकाणाम् ।। अयोगकेवलिनाम् ।। च	= क्षपक श्रेणीवालोंका तथा [= च] अयोगकेवलियोंका [काल]
नानाजीव–अपेक्षया ।। एकजीवअपेक्षया ।। च–	= अनेक जीवकी विवक्षाकरि तथा एक जीवकी विवक्षासे
जघन्यः च उत्कृष्टः ।। च अन्तर्मुहूर्तः ।।	= जघन्य और [= च] उत्कर्ष भी (= च) अंतर्मुहूर्त है

है। भावार्थ–यह है कि यदि जीवके सम्यग्दर्शन छूट जाय और मिथ्यात्व हो जाय तो उस जीवके अनन्तानुबंधी (क्रोध मान माया लोभ)का पाक वा उदय अन्तर-मुहूर्त तक रहता है और उस अन्तरमुहूर्त तक मिथ्यात्वमें मरण नहीं होता है इसलिये मिथ्यादृष्टिका एक समय काल नहीं है

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।। परिणामकाले ।।	= मिश्र गुणस्थानवर्तीनका नियमित या परिमित कालविषैं
तद्गुणस्थानत्यागात् ।। एकसमयः ।। सम्भवति	= उस गुणस्थानके छोडनेसे एक समय सम्भवै है
प्रतिपन्नअसंयत–संयतासंयत–गुणः	= असंयत तथा देशसंयत प्राप्त (= प्रतिपन्न) गुणस्थानवाले
अपि अन्तर्मुहूर्तमध्ये ।। न म्रियते तद् अतः ॐ असंयत·	= भी अन्तमुहूर्तके भीतर नहीं मरते हैं इसलिये (= अतः) असंयमी
संयतासंयतयोः ।। अपि एकसमयः ।। न भवति	= (तथा) संयमासंयमियोंका भी एक समय (काल) नहीं है

(१) तत्कथम् चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायक्षीणकषायाणामयोगकेवलिनां च मोक्षगामित्वेन चान्तरे मरणासंभवात् ।

तद् कथम् ?	= यह (= जघन्य उत्कृष्ट करके अन्तरमुहूर्त) कैसे है ?
चतुर्णाम् ।। क्षपकाणाम् ।। अपूर्वकरण–	= चार क्षपकश्रेणी अपूर्वकरण
अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसाम्पराय–क्षीणकषायाणाम् ।।	= अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषाय (वाले) निका
अयोगकेवलिनाम् ।। च मोक्षगामित्वेन ।।।।	= तथा (= च) अयोगकेवलीनिका (काल) (उसीभवसे) मुक्तगामी होनेसे

एटानिवासी जगरूपसहायवर्णीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद अध्याय १ सूत्र ८।

मुहूर्तः ॥ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥

सयोगकेवलिनाम् ‡ नानाजीव–अपेक्षया ‡ सर्वः	= योगसहित केवलीनिका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ‡ एकजीवम् ‡ प्रति	= काल है एक जीव [अर्थात् एक सयोगकेवली] की अपेक्षासे
जघन्येन ‡ अन्तर्मुहूर्तः ‡	= जघन्यकरि अन्तर मुहूर्त है
उत्कर्षेण ‡ पूर्वकोटी ‡ देशोना ‡	= उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड पूर्व है [निम्नलिखित टिप्पणी अवश्य देखो]
च अन्तरे ‡ मरण असम्भवात् ‡	= निश्चय (= च) आयुके बीचमें या भीतर मृत्युके सम्भव न होनेसे (जघन्य और उत्कर्षकरि अंतर्मुहूर्त है)

(१) सयोगकेवलिगुणस्थानानन्तरमन्तर्मुहूर्तमध्ये अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ।

सयोगकेवलिगुणस्थान—अनन्तरम् ‡	= सयोगकेवलि (तेरहवां) गुणस्थानके अत्यन्त समीप वा लगतेही (अनन्तरम्)
अंतर्मुहूर्तमध्ये ‡ अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ‡	= अंतर्मुहूर्तमें (= मध्ये) अयोग केवली गुणस्थानकी प्राप्ति होनेसे (एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अंतर मुहूर्तकाल सयोगकेवलिका है) भावार्थ-क्षीणकषाय गुणस्थानसे जीव तेरहवां गुणस्थानमें आकर एक अंतर्मुहूर्त रहकर उस मुहूर्तके भीतर ही भीतर चौदहवां गुणस्थानमें आनेकी अपेक्षासे तेरहवांका समय जघन्यपने एक अंतर्मुहूर्त है ॥

(२) अष्टवर्षानन्तरं तपो गृहीत्वा केवलमुत्पादयतीति कियद्वर्षहीनत्वात्पूर्वकोटी वेदितव्या

अष्टवर्ष–अनन्तरं ‡ तपः ‡ गृहीत्वा÷	= (जन्मसे चौदसे घादि) आठ बरस पीछे (= अनन्तरं) तप धारण करके (जीव)
केवलं ‡ उत्पादयति T इति	= केवलज्ञानको प्राप्त करता है इसलिये
कियत् * वर्षहीनत्वात् ‡ पूर्वकोटी ‡ वेदितव्या ‡	= कुछ वर्ष हीनपनाकरि करोड़ पूर्व जानना चाहिये ।

"बारै मास वर्ष लाख चउरासी पूरवांग गुणा करो सो पूरव आगें भेदरास है ।" ज्ञानतं द्रव्य पचीसी २२ । बारह महीनेका एक वर्ष, चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग, चौरासी लाख वर्षको चौरासी लाख वर्षसे गुणा करो सो पूरव है ॥ अतः ८४००२००×८४००००० वर्ष अर्थात् सात नील छप्पन खर्ब वर्षका ७०५६ ०२०१० ००००० का अथवा चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है ॥

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण यथासंख्यं एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः।

विशेषेण ॥ (१) गति+अनुवादेन ॥ = भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ॥ नारकेषु ॥ = नरकगतिविषै नारकिनमें
सप्तसु ॥॥ पृथिवीषु ॥॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीवापेक्षया ॥॥ = सातो भूमिमें (= नरकमें) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ = समस्त काल है
एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ यथासंख्यम् ॥॥ एक-त्रि-सप्त-दश = उत्कृष्टकरि यथाक्रम—एक-तीन-सात-दश
सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागर-उपमाणि = सत्रह बाईस तेतीस सागरकी बराबर (उपमाणि) काल है
सासाद सम्यग्दृष्टेः ॥ च * सम्यक्मिथ्यादृष्टेः ॥ = सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकिन) का
सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती नारकियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है। एक नारकीकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कर्ष अपेक्षासे छः आवली है॥ मिश्रगुण-

---

(१) पश्चान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात्॥
पश्चात्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानत्यागसंभवात् ॥ = (अन्तर्मुहूर्त) पीछे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका छोड़ना सम्भव होनेसे जघन्यकाल एक जीव अपेक्षासे अन्तर्मुहूर्त कहा है।

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण उक्त एवोत्कृष्टो देशोनः ॥

स्थानवाले नारकियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है । एक नारकीकी अपेक्षासे उत्कृष्ट और जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टेः । नानाजीव-अपेक्षया । सर्वः । = असंयतसम्यग्दर्शनवाले [नारकिन] का अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः । एकजीवम् । प्रति जघन्येन । अन्तर्मुहूर्तः । = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण । उक्तः । एव उत्कृष्टः । देशोनः । = उत्कृष्टकरि कुछ हीन [पहिले] कही हुई ही उत्कर्ष (आयु प्रमाण) है ॥

"उत्कृष्ट आयुः प्रमाण किछु घाटि" जयचन्द्रकृत वचनिका पृष्ठ मुद्रित १०० ।
(एक वा तीन वा सात वा दश वा सत्रह वा बाईस वा तेतीस सागरसे कुछ हीन क्रमसे पहले नरकसे सातवें लग है)

(१) प्रथमपृथिव्यामपि देशोनत्वकथनात्तत्र गृहीतवेदकक्षायिकसम्यक्त्वानामुत्कृष्टायुष्येणोत्पत्त्यभावोऽवगम्यते ॥

प्रथमपृथिव्याम् । अपि देशोनत्व—कथनात् । = पहिले नरकविषै भी कुछ हीनपनाके व्याख्यान करनेसे (यह अभिप्राय है कि—
गृहीतवेदकक्षायिक—सम्यक्त्वानाम् । = क्षयोपशम (तथा) क्षायिकसम्यग्दर्शनप्राप्त (गृहीत वेदक-क्षायिक) सम्यग्दृष्टियोंका
उत्कृष्ट- आयुष्येण । तत्र उत्पत्ति + अभावः । अवगम्यते । = उत्कृष्ट आयु सहित (= आयुष्येण) तहां (पहिले नरकविषै भी) जन्म लेनेका अभाव जाना गया है । भावार्थ—दूसरे तीसरे नरकोंका तो कहना ही क्या है जिस जीवने वेदक वा क्षायिक सम्यग्दर्शनसहित मरण किया है और पहिले नरकमें गया है वह वहां भी आयु उत्कृष्ट नहीं पाता अर्थात् एक सागरसे कम आयुवाला नारकी होता है इसलिये देशोन है।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः॥

तिर्यग्गतौ ‡ तिरश्चाम् ‡ मिथ्यादृष्टीनाम् ‡ = तिर्यंच गतिविषैं तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका
नानाजीव-अपेक्षया ‡ सर्वः ‡ कालः एकजीवं ‡ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है। एक जीव
प्रति* जघन्येन ‡ अन्तर्मुहूर्तः ‡ उत्कर्षेण ‡ = कीसिये जघन्यकरि अंतर मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
अनन्तकालः ‡ असंख्येयाः ‡ पुद्गलपरिवर्ताः ‡ = अनन्त काल है सो (अनंतकाल) असंख्याते पुद्गलपरावर्तन है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-संयता- = सासादन सम्यग्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्ती (तथा) संयमा-
संयतानां ‡ सामान्येन ‡॥ उक्तः ‡ कालः ‡ = संयमी [तिर्यंच] निका संक्षेप [थकरण] करि कथित [गुणस्थानवत्]
काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना तिर्यंचोंकी अ-
पेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है॥
एक तिर्यंच जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है॥
मिश्र गुणस्थानवर्ती नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कृष्टतासे पल्योपमके असंख्यातवां भाग है॥ एक तिर्यंच मिश्रगुणस्थान-
वर्तीकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ संयतासंयतगुण-
स्थानवर्ती भांति भांतिके तिर्यंचोंकी अपेक्षासे सर्व काल है एक तिर्यंच-
संयमासंयमीके लिये जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एक संयमासंयमी
तिर्यंचके लिये उत्कृष्टकाल कुछ हीन एक करोड पूर्व है॥

(१) यः कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो गत्यन्तरे स्थितः तिर्यग्गतिं प्रविष्टः स तिर्यग्गतावुत्कर्षेणानन्तकालमसंख्येयान्पुद्गलपरिवर्तांश्च तिष्ठति तत ऊर्ध्वं गत्यन्तरं प्राप्नोति ततस्तदपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः अनन्तः कालः असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः इत्युक्तम्॥

१ यः ‡ कश्चित्* अनादिमिथ्यादृष्टिः ‡ = जो कोई अनादि मिथ्यात्वसहित
जीवः ‡ गति-अंतरे ‡ स्थितः ‡ तिर्यग्गतिम् ‡ प्रविष्टः ‡ = जीव अन्यगतिमें स्थित होकर तिर्यंचगतिमें प्रवेश करता है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ॥ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ।

असंयतसम्यग्दृष्टेः ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖ सर्वः ‖ = असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः ‖ एकजीवं ‖ प्रति जघन्येन ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖ = काल है एक जीव तिर्यंच असंयमीके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ‖ त्रीणि ‖ पल्योपमानि ‖ मनुष्यगतौ ‖ = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर है । मनुष्यगतिमें
मनुष्येषु ‖ मिथ्यादृष्टेः ‖ नानाजीवापेक्षया ‖ सर्वः ‖ = मनुष्यनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ‖ एकजीवम् ‖ प्रति जघन्येन ‖ अंतर्मुहूर्तः ‖ = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ‖ त्रीणि ‖ पल्योपमानि ‖ = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर (और)
पूर्वकोटिपृथक्त्वैः ‖ अभ्यधिकानि ‖ = पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड पूर्वकरि अधिक हैं
सासादनसम्यग्दृष्टेः ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖ = सासादन सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ‖ एकः ‖ समयः ‖ = जघन्यकरि एक समय (काल) है
उत्कर्षेण ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖ = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

सः ‖ तिर्यग्गतौ ‖ उत्कर्षेण ‖ = वह (जीव) तिर्यंच गतिविषै उत्कृष्टकरि
अनंतकालम् ‖ असंख्येयान् ‖ पुद्गलपरिवर्तान् ‖ = अनंतकाल वा असंख्याते पुद्गल परावर्तन
तिष्ठति T ततः* ऊर्ध्वं* गतिं अंतरम् ‖ प्राप्नोति T = ठहरता है वा रहता है (और) वहांसे आगे अन्यगतिको प्राप्त होता है
ततः* तद् अपेक्षया ‖ तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः ‖ = इसलिये (ततस्) उस (= तद्) अपेक्षासे तिर्यंच मिथ्यादृष्टी जीवका काल
अनंतः ‖ कालः ‖ असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ‖ इति— = अनंतकाल (वा) असंख्याते पुद्गल परिवर्तन है ऐसा
उक्तम् ‖ = कहा गया है

एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षडावलिकाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्योत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि ॥

एकजीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;।। एकः ;। समयः ;। = (सासादन सम्यग्दृष्टिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। षट् आवलिकाः ;। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ;। = उत्कृष्टकरि छह आवली हैं । मिश्रगुणस्थानवर्तीका
नानाजीव-अपेक्षया ;।। एकजीव-अपेक्षया ;।। च = अनेकजीवकी विवक्षासे तथा एकजीवकी अपेक्षासे
जघन्यः ;। च उत्कृष्टः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। = जघन्य और उत्कर्ष भी अन्तर्मुहूर्त (काल) है
असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। नानाजीव-अपेक्षया ;।। सर्वः = असंयतसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ;। एकजीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है
उत्कर्षेण ;। त्रीणि ;।। पल्योपमानि स अतिरेकाणि ;।। = उत्कृष्टकरि तीन पल्योपम कुछ अधिक है

---

(१) यः कश्चिन्मनुष्यो बद्धमनुष्यायुष्कः पश्चात् गृहीतसम्यक्त्व उत्तमभोगभूमावुत्पद्यते तदपेक्षया सातिरेकाणि त्रिपल्योपमानि प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना सम्यक्त्वग्रहणोत्तरकालवर्तिनायुषा अधिकानि यतो विग्रहगतावपि मनुष्यगतिनामकर्मोदयापेक्षत्वेन मनुष्यत्वापरित्यागात् ॥

यः ;। कश्चित्* मनुष्यः ;। बद्धमनुष्य-आयुष्कः ;। = जो कोई मनुष्य नरआयु बांधकरि
पश्चात् * गृहीतसम्यक्त्वः ;। उत्तमभोगभूमौ ;। = पीछे सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि उत्कृष्ट भोगभूमिविषै
उत्पद्यते ; तद् अपेक्षया ;। स- अतिरेकाणि ;।। = जन्म लेता है उस विवक्षासे कुछ अधिक
त्रिपल्योपमानि ;।। प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना ;।। = तीनपल्यके बराबर (= उपम) (काल) है पहिले नर भवसम्बन्धी
सम्यक्त्वग्रहण-उत्तरकालवर्ति-आयुषा ;।। = सम्यग्दर्शनके ग्रहण करनेके पश्चात् समयवर्ती आयु
अधिकानि ;।। = अधिक है अर्थात् तीनपल्य है और सम्यग्दर्शनके पश्चात्का काल और विग्रहगतिका काल अधिक है

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः ॥

शेषाणाम् ‖ = (मनुष्यगतिविषै मनुष्यनमें) अवशिष्ट [पांचवासे चौदहवां गुणस्थानतकनिका]
सामान्य-उक्तः ‖ कालः ‖ = संक्षेपसे [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात्
संयमासंयमिनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड पूर्व है । प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार (अपूर्वकरण, अनुवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत कषाय) उपशम श्रेणीवालेका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-काल है ॥ चार [आठवां-नववां-दशवां-बारहवां] क्षपकश्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलीनिका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोग केवलीनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टकाल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥
देवगतौ ‖ देवेषु ‖ मिथ्यादृष्टेः ‖ = सुरगतिविषै सुरनमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव-अपेक्षया ‖ सर्वः ‖ कालः ‖ = नानाजीवकी विवक्षासे सर्वकाल है
एकजीवम् ‖ प्रति जघन्येन ‖ अन्तर्मुहूर्तः ‖ उत्कर्षेण ‖ = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
एकत्रिंशत्सागरोपमाणि ‖ सासादनसम्यग्दृष्टेः ‖ = इकतीस सागरके बराबर है सासादन सम्यग्दर्शनवाले देवका
सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ‖ च सामान्य+उक्तः ‖ कालः ‖ = तथा मिश्रगुणस्थानवर्ती [देवका] संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टी देवका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक

यतः * विग्रहगतौ ‖ अपि *
मनुष्यगतिनामकर्म-उदय-उपेतत्वेन ‖
मनुष्यत्व-अपरित्यागत्वात् ‖
= क्योंकि (= यतः) विग्रहगति (वा नयाशरीर धारण करनेके लिये गमनमें) भी
= मनुष्यगति (नामा) नामकर्मके उदय होनेसे
= मनुष्यपनेका जीवके त्याग नहीं होता है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ।

समय है । उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टेः = असंयत [चौथेगुणस्थान] वर्ती [देव]का अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः = काल है एकजीवम् = प्रति*जघन्येन = अन्तर्मुहूर्तः = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काल] है
उत्कर्षेण = त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके तुल्य [उत्तम] है
[२] इन्द्रिय+अनुवादेन = एक+इन्द्रियाणाम् = नानाजीव- = [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनके अनेक जीवकी
अपेक्षया = सर्वः = कालः = एकजीवम् = प्रति*जघन्येन = अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवके लिये जघन्यकरि
क्षुद्रभवग्रहणम् = क्षुद्रभवका (काल) लिया गया है

---

२ तत्कीदृशमिति चेत्—उच्छ्वासनिःश्वासमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीवः षट्षष्टिसहस्रत्रयस्त्रिंशदधिकशतपरिमाणानि जन्ममरणान्यनुभवति ६६३३६ । तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति । सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवा एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६ । गोमट्टसारे जीवकाण्डे पर्याप्त्यधिकारे गाथायां १२३-१२४ उक्तं च—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि । अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥
संस्कृत छाया, त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत षट्षष्टिसहस्रकाणि मरणानि अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तश्चैव क्षुद्रभवाः।
सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे । छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२४ ॥
संस्कृत छाया-अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिर्भवन्ति पंचाक्षे । षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे ॥

यदा चैव मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते ॥ तत्रैकस्य क्षुद्रभवस्येति ॥

तद् = कीदृशम् = इति*चेत्* = (वह क्षुद्रभव) कैसा है ऐसा (=इति) संदेह (=चेत्) (करनेपर कहते हैं)

उक्तलक्षणमुहूर्तमध्ये॥	=कही हुई लक्षणवाली मुहूर्तके बीचमें वा भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
तावत्*एक+इन्द्रियः ।। भूत्वा कश्चित् * जीवः।।	=कोई चेतन प्रथम (=तावत्) एकेंद्रिय होकर
षट्षष्टिसहस्र-द्वात्रिंशत्+अधिकशतपरिणामानि ।।।। सः	=छयासठि हजार बत्तीस अधिक (और) एकसौके प्रमाण
६६१३२ जन्ममरणानि ।।।। अनुभवति T तथा* सः।।	=६६१३२ जन्म मरणोंको धारण करता है बहुरि (=तथा) वह (=स)
एव* जीवः ।। तस्य ।। एव*मुहूर्तस्य ।। मध्ये ।।	=ही (=एव) चेतन्य उस ही मुहूर्तके बीचमें अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
द्वि-त्रि-चतुस्-पञ्च+इन्द्रियः ।। भूत्वा÷	=द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय होकर
यथासंख्यम ।।।। अशीतिषष्टिचत्वारिंशत्—	=यथाक्रम वा क्रमानुसार अस्सी साठ चालीस
चतुर्विंशति-जन्ममरणानि ।।।। अनुभवति	=(और) चौवीस जन्म मरणोंको ग्रहण करता है

अर्थात् द्वीन्द्रिय अस्सीवार त्रींद्रिय साठवार चतुरिंद्रिय चालीस वार पंचेंद्रिय चौबीसवार होता है।

सर्वे ।। अपि* एते ।। समुदिताः ।। क्षुद्रभवाः ।।	=ये (=एते) सब ही (=अपि) सूक्ष्म भव मिले हुए (=समुदिताः)
एतावन्तः ।। एव भवंति T ६६३३६	=इतने (=एतावन्तः) ही अर्थात् ६६३३६ होते हैं ॥
गोम्मटसारे ।। जीवकाण्डे ।। पर्याप्ति-अधिकारे ।।	=गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवकांडविषैं पर्याप्तिके प्रकरणमें
गाथयोः ।।। ॥ १२३—१२४ उक्तं ।।।। च*	=आर्याछंद १२३—१२४ में कहा भी (=च· गया है कि
तिण्णि (तिण्णि)।।।। सया ।।।। छत्तीसा ।। (=त्रीणि ।।।। शतानि ।।।। षट्त्रिंशत् ।।।।)	=तीनसौ छत्तीस
छावट्ठिसहस्सगाणि ।।।। मरणाणि ।।।। (षट्षष्टिसहस्रकाणि ।।।। मरणानि ।।।।)	=छयासठ हजार (वार) मरण
अन्तोमुहुत्तकाले ।। तावदिया ।। च (अन्तर्मुहूर्तकाले ।। तावन्तः ।।)	=और (=च) अन्तर्मुहूर्तमें इतने
एव*खुद्दभवा (एव* क्षुद्रभवाः ।।)	=ही सूक्ष्म जन्म एक लब्ध्यपर्याप्तक जीवके होते हैं
सीदी ।।।। सट्ठी ।।।। तालं ।।।। विगले ।। (=अशीतिः ।।।। षष्टिः ।।।। चत्वारिंशत् ।।।। विकले ।।)	=अस्सी, साठ, चालीस, विकल इन्द्रियवालों अर्थात् द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों) में (भव) होते हैं और
चउवीस ।।।। होंति T पंचक्खे ।। (=चतुर्विंशतिः ।।।। भवंतिTपंच-अक्षे ।।)	=चौवीस (जन्म) पंचेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तको) में होते हैं

उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण १ अनन्तः १ कालः १ असंख्येयाः ३ = उत्कृष्टकरि (एकेन्द्रिय जीवका) अनंतकाल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरावर्ताः १ विकल-इन्द्रियाणाम् ३ नानाजीव- = पुद्गल परावर्तन है विकल (द्वि-त्रि-चतुः) इन्द्रिय जीवनका अनेक जीवकी
अपेक्षया १ सर्वः १ कालः १ एकजीवं २ प्रति * = विवक्षासे समस्त काल है एक जीवकेलिये
जघन्येन १ क्षुद्रभवग्रहणम् १ = जघन्यकरि क्षुद्र भव [का काल] लिया गया है ।
उत्कर्षेण १ संख्येयानि १ वर्षसहस्राणि १ = उत्कृष्टकरि संख्यात हजार बरस हैं ॥
पञ्चेन्द्रियेषु ७ मिथ्यादृष्टेः १ नानाजीव-अपेक्षया १ = पांच इन्द्रीवाले जीवनमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्वः १ कालः १ एकजीवम् २ प्रति* जघन्येन १ = सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अंतर्मुहूर्तः १ = अंतर्मुहूर्त है

च* द्वाषष्टिः १ सहस्राः १ शतं १ (च*षट्षष्टिः १ सहस्राणि १ शतं १) = और छयासठ सहस्र एकसौ और(=च)
च* चत्वारिंशत् १ एकाक्षे ७ —(=च*द्वात्रिंशत् १ एकाक्षे ७) = बत्तीस (सूक्ष्मभव)एकेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों)में होते हैं।
च एव* यदा* मुहूर्तस्य ७ मध्ये ७ एतावन्ति १ = बहुरि जब ही मुहूर्तके बीचमें ही इतने अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें ही
जन्ममरणानि १ भवन्ति तदा एकस्मिन् ७ उच्छ्वासे ७ = जन्म मरण होते हैं तब एकही उच्छ्वासमें
अष्टादश १ जन्म मरणानि १ लभ्यन्ते T = अठारह जन्म मरण प्राप्त किये जाते हैं (गणित करनेसे ६६३३६ जन्म मरण / ३६८५ स्वास
अर्थात् यह अन्तर मुहूर्त ३६८५ स्वासोंका है
तत्र एकस्य ६ क्षुद्रभवसंज्ञा १ = वहां एक (जन्म मरण) की क्षुद्रभव संज्ञा है

(१) उत्कर्षेण अनन्तकालोऽसंख्यातपुद्गलपरिवर्तनलक्षणो निरन्तरमेकेन्द्रियत्वेन सृत्वा पुनर्भवात्ततो विकलेन्द्रियः पञ्चेन्द्रियो वा भवति ॥

उत्कर्षेण १ अनन्तकालः १ असंख्यातपुद्गल— = उत्कृष्टकरि अनन्तकाल जो असंख्यात पुद्गल

उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण ।१। सागरोपम-सहस्रम् ।१।१। = उत्कृष्टकी हजार सागर प्रमाण और
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ।३।१। अभ्यधिकम् ।१।१। = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्व अधिक है
शेषाणाम् ।६।३। = अवशिष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलीतक)का
सामान्य-उक्तः ।१। कालः ।१। = संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली काल है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ उत्कृष्टकाल तेतीस सागरसे कुछ अधिक है । संयमासंयमीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकाल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमीनिका और अप्रमत्तसंयमीनिका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है । एक जीवका काल जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । आठवां गुणस्थानसे ग्यारहवें तकके उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार क्षपक श्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलिनका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । सयोगकेवलीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड पूर्व है ॥

परावर्तनलक्षणः ।१। निरन्तरं ।१।१। एकेन्द्रियत्वेन ।१।१। = परावर्तन लक्षणवाला है बराबर या लगातार एकेन्द्रिय होकरि (पश्चात्)
मृत्वा ÷ ततः* पुनर्* भवात् ।१। = मरकरि यहां (एकेन्द्रिय) से फिर (=पुनर्) जन्म लेकरि
विकलेन्द्रियः ।१। पंचेन्द्रियः ।१। वा भवति ।१। = विकल (द्वि-त्रि-चतुः) इन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय होता है

(३) कायानुवादेन—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येयः कालः॥ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत्॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत्॥

काय-अनुवादेन ‖ पृथिवी-अप्-तेज-वायु-कायिकानाम् ‖ नानाजीव अपेक्षया ‖ सर्वः ‖ कालः ‖ = कायके कथनानुसारकरि भूमि, जल, अग्नि पवन कायिकनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है।

एकजीवम् ‖ प्रति* जघन्येन ‖ क्षुद्रभवग्रहणम् ‖ = एक जीवके लिये जघन्यकरि सूक्ष्म भवका [काल] लिया गया है

उत्कर्षेण ‖ असंख्येयः ‖ कालः ‖ = उत्कृष्टकरि असंख्यात [लोक परिमाण] काल है

वनस्पतिकायिकानाम् ‖ एकेन्द्रियवत्* = वनस्पति कायिकनिका (काल) एकेन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि क्षुद्र भवमें जितना काल लगे उतना (=श्वास के अठारहवां भाग) उत्कृष्टकरि अनंत काल है जो असंख्यात पुद्गल-परावर्तोंके तुल्य है॥

त्रसकायिकेषु ‖ मिथ्यादृष्टेः ‖ नानाजीव-अपेक्षया ‖ = त्रसकायिकनिमें मिथ्यादृष्टियोंका अनेक जीवकी विवक्षासे

सर्वः ‖ कालः ‖ एकजीवम् ‖ प्रति जघन्येन ‖ = सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

अंतर्मुहूर्तः ‖ उत्कर्षेण ‖ द्वे ‖ सागरोपमसहस्रे ‖ = अंतर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]

पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ‖ अभि-अधिके ‖ = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्वकरि अधिक है

शेषाणाम् ‖ पञ्चेन्द्रियवत्* = बचे हुये [गुणस्थानोंके त्रसकायिकोंका] पंचेन्द्रियके सदृश (काल) है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीकी नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक इत्यादि से कुछ घाटि करोड़ पूर्व है॥ यहां तक पृष्ठ १९२ का लेख देखो॥

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च।

(४) योग-अनुवादेन ॥
वाङ्मानसयोगिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-
सयोगकेवलिनां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ सामान्य उक्तः-
कालः ॥

= योगकी विवक्षाकर
= वचन मन योगोंविषें मिथ्यादृष्टी असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका
= संयमासंयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवर्ती] अप्रमत्त [गुणस्थानवर्ती]
= (तथा) योगसहित केवलिनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
= काळ है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक
= समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती)
= का संक्षेपसे कहाहुआ (गुणस्थानवत्)
= काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है

सम्यक्मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम-असंख्येय-भागः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ चतुर्णाम् ॥
उपशमकानाम् ॥
क्षपकाणाम् ॥ च
नानाजीव-अपेक्षया ॥ एकजीव-अपेक्षया ॥ च*

= मिश्र गुणस्थानवालेका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
= एक समय है उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां
= अंश है। एक जीवके लिये (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) जघन्यकरि एक
= समय है उत्कृष्टकरि अन्तरमुहूर्त है। चार
= उपशम श्रेणी (आठवां नववां दसवां ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका
= तथा क्षपक श्रेणी (आठवां नववां दशवां और बारहवां गुणस्थान) वालेनका
= अनेक जीवकी विवक्षासे और [=च] एक जीवकी अपेक्षासे

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ शेषाणां मानसयोगिवत् ॥ अयोगानां सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमपृथक्त्वम् ॥

जघन्येन ‡ एकः ‡ समयः ‡ उत्कर्षेण ‡ अन्तर्मुहूर्तः ‡ = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
काययोगिषु ‡ मिथ्यादृष्टेः ‡ = काययोगीनिमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव+अपेक्षया ‡ सर्वः ‡ कालः ‡ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवम् ‡ प्रति*जघन्येन ‡ एकः ‡ समयः ‡ = एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है ।
उत्कर्षेण ‡ अनन्तः ‡ कालः ‡ असंख्येयाः ‡ = उत्कृष्टकरि अनन्त काल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ताः ‡ शेषाणाम् ‡ = पुद्गलपरिवर्तन हैं । अवशेष(दूसरेसे तेरहवां गुणस्थानवाले)निका काल
मानस+योगिवत्* = मन योगीनके [कालके] सदृश है [देखो पृष्ठ २००)
अयोगानाम् ‡ सामान्यवत्* = अयोगकेवलीनिका संक्षेप [प्रकरणमें कथित गुणस्थान]वत् (काल) है अर्थात् अयोग केवलिका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है (पृष्ठ १८७ देखो)

(५) वेद+अनुवादेन ‡ स्त्रीवेदेषु ‡ मिथ्यादृष्टेः ‡ = वेदके कथनानुसारकरि स्त्री वेदविषै मिथ्यादृष्टी (स्त्री) का
नानाजीव+अपेक्षया ‡ सर्वः ‡ कालः ‡ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् ‡ प्रति * जघन्येन ‡+अन्तर्मुहूर्तः ‡ = एक चैतन्यके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
उत्कर्षेण ‡ पल्य+उपमपृथक्त्वम् ‡ = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीनसे ऊपर नवसे नीचे) पल्यके बराबर है

सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः किं तु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया सर्वः कालः ।

सासादनसम्यग्दृष्टि–आदि	= सासादनसम्यक्त्ववाली [स्त्रीवेदी] से
अनिवृत्तिबादर–अन्तानां ।।१	= अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवर्ती तकनिका
सामान्य–उक्तः ।।१ कालः ।।१	= संक्षेप [प्रकरण] में (पहिले) कथित [गुणस्थानवत्] काल है

अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवका काल जघन्य एक समय है–उत्कृष्ट छः आवली है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती स्त्री-वेदियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयमी चौथे गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका इसके नीचे सर्वार्थसिद्धिमें व्याख्या कहा है ॥ संयमासंयमी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड पूर्व है । प्रमत्त छठे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व काल है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ अपूर्व करण उपशमश्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अपूर्व करण क्षपक श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका और अनिवृत्तिकरण क्षपक-श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका नाना जीवोंकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

किंतु असंयत सम्यग्दृष्टेः ।।१	= परंतु असंयत सम्यग्दृष्टी (स्त्री वेदियों) का
नानाजीव+अपेक्षया ।।१	= अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ।।१ कालः ।।१	= समस्त काल है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

एकजीवं प्रति* जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तः ।। = एक जीवकी जघन्यकरि अंतरमुहूर्त है।
उत्कर्षेण ।। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।।। देशोनानि ।।। = उत्कर्षकरि कुछ हीन पचपन पल्यके बराबर है।
पुंवेदेषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नानाजीव-अपेक्षया ।।। सर्वः कालः = पुरुष वेदविषै मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे सब काल है।

(१) देशोनानि कथमिति चेत् स्त्रीवेदासंयतैकजीवं प्रति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि गृहीतसम्यक्त्वस्य स्त्रीवेदोत्पादाभावात् पर्याप्तः सन्सम्यक्त्वं गृहीष्यतीति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वादेशोनानि तानि पञ्च पञ्चाशत्पल्योपमानि स्त्रीवेदे षोडशस्वर्गे सम्भवन्तीति वेदितव्यम्

देश-ऊनानि ।।। कथम्* इति* चेत्* = कुछ हीन कैसे ? इसप्रकार संदेह है।
स्त्रीवेद-असंयत-एकजीवम् ।। प्रति* = (उत्तर) स्त्रीवेदमें चौथे गुणस्थानवर्ती एक जीवके लिये
उत्कर्षेण ।। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।।। = उत्कृष्टकरि पचपन पल्यके तुल्य है
गृहीतसम्यक्त्वस्य ।। स्त्रीवेद-उत्पाद— = सम्यग्दर्शनसहित (जीव) के स्त्रीवेदविषै उत्पन्न होनेका वा जन्म लेनेका
अभावात् ।। = अभाव होनेसे
पर्याप्तः ।। सन् सम्यक्त्वम् ।।। गृहिष्यति T इति* = पर्याप्त होनेपर (=सन्) सम्यग्दर्शन धारण करता है इसप्रकार
पर्याप्तिसमापक-अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ।।। = पर्याप्ति अवस्थाको पूर्ण करनेवाले अंतरमुहूर्तके हीन होनेसे
देशोनानि ।।। तानि ।।। पञ्चपञ्चात् ।। पल्योपमानि ।।। = कुछ हीन ते पचपन पल्योपम
स्त्रीवेदे ।। षोडशस्वर्गे ।। सम्भवन्ति T इति वेदितव्यम् ।।। = स्त्रीवेदमें सोलहवां स्वर्गतिवै सम्भवे हैं इसप्रकार जानना योग्य है (सद् वर्तमान कृदन्त है) अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शनसहित मरता है वह स्त्री नहीं होता है इसलिये सोलह स्वर्गकी स्त्री भी कोई जीव हो जिसकी उत्कृष्ट आयु पचपन पल्यकी होतो वह स्त्री असंयत सम्यग्दृष्टी केवल अन्तर्मुहूर्त घाटि पचपन पल्य ही रहैगी क्योंकि अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्त होनेपर सम्यक्त्व धारण करेगी सो वही अन्तर्मुहूर्त न्यून हो जावैगी। इसके बाद मरकर तो वह पुरुषवेदी हो जायगी।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत्। किं त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः।

एकजीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है।

उत्कर्षेण ;। सागर-उपम-शत-पृथक्त्वम् ;॥ = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व सौ सागरके तुल्य है अर्थात् तीनसौ सागरसे अधिक नवसौ सागरसे नीचे है॥

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ;। = [पुरुषवेदविषै] सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे लेकर अनिवृत्तिबादर तकनिका

सामान्य उक्तः ;। कालः ;। = संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] काल है। यह काल वही है जो २०२ पृष्ठका है परंतु असंयतीका एक जीवकी अपेक्षासे उत्कृष्टकरि तेतीस सागर से कुछ अधिक है॥

नपुंसकवेदेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव-अपेक्षया ;। = नपुंसक वेदविषै मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे

सर्वः ;। कालः ;। एकजीवं ;। प्रति*जघन्येन ;। = समस्त काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। अनन्तः ;। कालः ;। = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि अनन्त काल है [सो]

असंख्येयाः ;। पुद्गलपरिवर्ताः ;। = असंख्यात पुद्गल परावर्तन हैं

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि— = [नपुंसक वेदविषै] सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे लेकर

अनिवृत्तिबादर-अन्तानां ;। सामान्यवत्* = नवमां गुणस्थानवर्ती तकनिका संक्षेपसे (कथित गुणस्थानवत् काल) है॥

किम्* तु* असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। = परंतु असंयत सम्यग्दर्शनवालेका

नानाजीव-अपेक्षया ;। सर्वः ;। कालः ;। = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है

एकजीवम् ;। प्रति जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ अपगतवेदानां सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च अकषायाणां च

उत्कर्षेण ड्ना त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ड्ना देशोनानि = उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीससागरके बराबर है

अपगतवेदानाम् ड्ना = वेदरहित [दशवां, ग्यारहवां, बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्तीनि) का

सामान्यवत् * = (काल) संक्षेप [प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थानवत्) है अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतकषाय दोय उपशम श्रेणीवालोंके नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है। सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक श्रेणीवालोंका और क्षीणकषाय अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक सयोगकेवलीकी अपेक्षासे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है।

(६) कषाय-अनुवादेन ड्ना = (६) कषायके कथनानुसार करि

चतुष्कषायाणां ड्ना मिथ्यादृष्टि-आदि- = चार [क्रोध मान माया लोभ) कषाय वाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर

अप्रमत्त-अन्तानां ड्ना मनस्-योगिवत् * = अप्रमत्त तकोंका (काल) मनोयोगीके सदृश है

[पृष्ठ २०० पंक्ति दूसरीमे १३ तक वही शब्दशः यहांका काल पढ़लो)

द्वयोः ड्ना उपशमकयोः ड्ना द्वयोः ड्ना = दो उपशमश्रेणी (आठवां नववां गुणस्थान वालेनिका) दो

क्षपकयोः ड्ना केवललोभस्य ड्ना च* = क्षपकश्रेणीनवालेनिका और केवल लोभवालेका दशवें गुणस्थानवर्तीनका (जहां एक संज्वलन लोभ है अन्य कषाय कोई नहीं है)

अकषायाणाम् ड्ना च* = तथा कषायरहित [ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्तिनि]का

सामान्योक्तः कालः ॥ (७) ज्ञानानुवादेन-मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् ॥

सामान्य-उक्तः ।। कालः ।। =संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत] काल है अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणीवाले कषाय सहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवाले कषायसहितोंका नानाजीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमश्रेणीवालोंका एक जीव और नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकका एकजीवकी और अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है उपशांत कषाय-वालोंका नानाजीव और एकजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ क्षीणकषाय वालोंका नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है॥ सयोगकेवलि-यों का नानाजीव अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है॥ अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे उत्कृष्ट काल और जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है॥

७ ज्ञान+अनुवादेन ।। =७ ज्ञानके कथनानुसारकरि

मति+अज्ञानि+श्रुत+अज्ञानिषु ।। =मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानियोंविषैं

मिथ्यादृष्टि+सासादनसम्यग्दृष्ट्योः =मिथ्यादृष्टि [तथा] सासादन सम्यग्दर्शनवालेका (काल)

सामान्यवत्* =संक्षेप [प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थानवत] है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका मतिज्ञानी और श्रुतअज्ञानीका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव अपेक्षासे तीन भेद हैं [१] अनादि अपर्यवसान [२] अनादि सपर्यवसान और सादिसपर्यवसान तहां सादिसपर्यवसान काल जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्त है॥ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी सासादन सम्यग्-दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट छह आवली है॥

विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्तः कालः ॥

विभङ्गज्ञानिषु ‡ मिथ्यादृष्टेः ‡ नानाजीव+अपेक्षया ‡ = कुअवधि ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका अनेक आत्माकी विवक्षासे
सर्वः ‡ कालः ‡ एकजीवं ‡ प्रति जघन्येन ‡ अन्तर्मुहूर्तः ‡ = सर्वकाल है एक आत्माके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ‡ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ‡ देशोनानि ‡ = उत्कर्षकरि कुछ हीन तेतीस सागरके बराबर है (त्रयस्त्रिंशत्को सागरोपमके साथ समासमें अथवा भिन्न भी ला सक्ते हैं)

सासादनसम्यग्दृष्टेः ‡ = (कुअवधि ज्ञानियोंमें) सासादन सम्यग्दर्शन वालेका
सामान्य+उक्तः ‡ कालः ‡ संक्षेप(प्रकरण)से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है॥

आभिनिबोधिकश्रुत+अवधिमनःपर्यय- = मतिज्ञानी (=आभिनिबोधिक) श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्यय
केवलज्ञानिनाम् ‡ च सामान्य+उक्तः ‡ कालः ‡ = और केवल ज्ञानीका संक्षेपकरि कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् मति–श्रुत–अवधि ये तीन ज्ञान चारसे बारह गुणस्थान तक होते हैं, मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारह तक होता है अतः कालका

(१) देशोनानीति कथम्—विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टेरेकजीवं प्रति उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । पर्याप्तश्च विभङ्गज्ञानं प्रतिपद्यत इति पर्याप्तसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वाद् देशोनानि ॥

देशोनानि ‡॥ इति*कथम्* = कुछ हीन (यह) कैसे
विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टि-एकजीवम् ‡। प्रति* = कुअवधिज्ञानी मिथ्यादृष्टी एक चेतनके लिये
उत्कर्षेण ‡। त्रयस्त्रिंशत् ‡॥ सागर+उपमाणि ‡॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागर (के) तुल्य (काल) है (टिप्पणी पृष्ठ १२१)
पर्याप्तः ‡। च विभङ्ग+ज्ञानम् ‡॥ प्रतिपद्यते T इति * = पर्याप्त जीव ही (=च) खोटी अवधिको प्रारम्भ करता है इस प्रकार
पर्याप्तिसमापक+अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ‡॥ देश+ऊनानि ‡॥ = पर्याप्तको पूरण करनेवाला अन्तर्मुहूर्त हीन होनेसे कुछ हीन (तेतीस सागर) है

८ संयमानुवादेन-सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातशुद्धिसंयतानां सँयतासंयतानामसंयतानां च

प्रमाण इस भांति है कि असंयत सम्यग्दृष्टी मतिज्ञानियों श्रुतज्ञानियों और अवधिज्ञानियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट तेतीस सागरसे कुछ अधिक है। संयमासंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका जघन्य अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूरव है । प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका और मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व-काल है। एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार उपशमश्रेणीवाले मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपकश्रेणीवाले मति-श्रुत-अवधि मनःपर्यय ज्ञानियोंका और अयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट [काल] कुछ न्यून एक करोड पूर्व है ॥

[८]संयम+अनुवादेन॥	=(८) संयमके कथनानुसारसे
सामायिकच्छेदोपस्थापन-	=सामायिक और छेदोपस्थान संयमी (छठा सातवां आठवां नववां गुणस्थानवर्ती)निका
परिहारविशुद्धि-	=परिहारविशुद्धि संयमी (छठे सातवें गुणस्थानवाले) निका
सूक्ष्मसाम्पराय-	=सूक्ष्मसाम्पराय संयमी (दशवें गुणस्थानवर्ती)निका
यथाख्यातशुद्धिसंयतानां	=यथाख्यात शुद्धिसंयमी [ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवाले] निका
संयतासंयतानाम् ॥	=संयमासंयमी (पांचवें गुणस्थानवर्ती)निका
असंयतानाम् ॥ च	=तथा [=च] असंयमी (पहलेसे चौथे गुणस्थानवाले] निका

सामान्योक्तः कालः ॥ (९) दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्यावदीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तःकालः ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेप (प्रकरण) द्वारा कथित (गुणस्थानवत्) काल है (देखो पृष्ठ १७९ से १८८)

(९) दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ =(९) दर्शनकी विवक्षा करे चक्षुर्दर्शनवालोंमें मिथ्यादृष्टीका

नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति =अनेक जीवकी विवक्षासे सर्व काल है । एक जीवके लिये

जघन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥॥ सागरोपम =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि सागरोपम दो

सहस्रे ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टि आदीनां ॥ क्षीणकषाय =सहस्र है । सासादन सम्यग्दृष्टि आदिकोंका क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)

अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यंतोंका संक्षेप (प्रकरण) से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

चक्षुर्दर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां अंश है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है । मिश्रगुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अविरत सम्यग्दृष्टि चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक काल है । संयतासंयतो चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षा से सर्वकाल है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक कोड़ पूर्व है । प्रमत्त छठे गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका और अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार उपशमक चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार क्षपक श्रेणीवाले चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

अचक्षुः दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय- =अचक्षुर्दर्शनवालेनि में मिथ्यादृष्टिसे लेकर (=आदि) क्षीणकषाय

अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यन्तनिका संक्षेपसे कहा हुआ गुणस्थानवत् काल है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका

अवधिकेवलदर्शिनोरवधिकेवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेनकृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

नाना जीव की अपेक्षा से सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे सादिसांत भंगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्त है सासादन से क्षीण कषाय तकके लिये वही काल है जो "चक्षुदर्शन से अन्त मुहूर्त तक" पूर्व पृष्ठ २०९ में लिखित है ॥ देखो पृष्ठ २०९ पंक्ति १० से २० तक

अवधिकेवलदर्शिनोः ¦। अवधि-केवल ज्ञानिवत् *

=अवधि दर्शन वाले और केवल दर्शन वालों का काल अवधिज्ञानी केवल-ज्ञानियों के सदृश [क्रम से] है। अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चार से बारह गुणस्थान तक है केवल ज्ञान केवल दर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में है)

(१०)लेश्या-अनुवादेन¦।कृष्ण-नील-कापोत लेश्यासु¦¦॥=लेश्यायों की अपेक्षा से कृष्ण-नील कापोत लेश्याओंमें

मिथ्या दृष्टेः ¦। नानाजीव-अपेक्षया¦॥ सर्वः ¦। कालः¦। =मिथ्या दृष्टि का नाना जीव की अपेक्षा से समस्त काल है ॥

एक जीवं ¦। प्रति* जघन्येन ¢ ¦॥। अन्तर्मुहूर्तः ¦। =एक जीव के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है ॥

* लेश्यासु का अर्थ जो "लेश्याओं में" ऐसा लियाजावे तो स्त्रीलिंग होगा (जैसा अनुवाद में है) "लेश्या वालों में" ऐसा अर्थ लें तो पुल्लिंग होगा ॥

¢ स तु कालः ¦। तिर्यङ्मनुष्यापेक्षया तेषामेव लेश्यापरावर्तसम्भवात् ¦। एवं सर्वत्र स लेश्यायुक्तस्यान्तर्मुहूर्तस्तिर्यङ्मनुष्यापेक्षयावेदितव्यः

सः ¦। तु*काल: ¦। तिर्यङ्मनुष्य अपेक्षया¦॥ तेषां¦।एव*=किंतु सो अन्तर्मुहूर्तका काल तिर्यंच और नरकी अपेक्षा से तिनके ही

लेश्या-परावर्त-सम्भावात् ¦। =लेश्याओंको फेरा फेरी के हो सकने से है अर्थात्

(मनुष्य-तिर्यंचों के ही लेश्यायें पलटती रहती हैं अतः जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है।

च*एवं*सर्वत्र*लेश्या-युक्तस्य ¦। अन्तर्मुहूर्त ¦। =और (=व) ऐसे सब स्थानों में लेश्या सहितका अन्तर्मुहूर्त (काल) है

तिर्यङ्-मनुष्य-अपेक्षया ¦॥ वेदितव्यः ¦। =सो तिर्यंच और मनुष्यों की अपेक्षा से मानना चाहिये

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योःसामान्योक्तः कालः ।

उत्कर्षेण ;। सप्त- अतिरेकाणि ;॥। (१) त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि ;॥। सासादन-सम्यग्दृष्टि सम्यङ् मिथ्या दृष्ट्योः ;। सामान्य-उक्तः ;। कालः ;। =उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस (सागरोपम काल सातवां नरक में)
=(कुछ अधिक) सत्रह (सागर प्रमाण कालपांचवां नरक में)
=सातसागर प्रमाण (कुछ अधिक तीजे नरकमें) है । (तीन अशुभलेश्या में) सासादन-सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तियों का सामान्य से कथित (गुणस्थानवत्) काल है

अर्थात् कृष्ण-नील-कापोत लेश्या के धारक सासादन सम्यग्दर्शन-वालेका नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय काल है उत्कृष्टपल्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली काल होता है । मिश्रगुणस्थानवर्ती कृष्ण-नील-कापोत लेश्या-वालों का नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥

(१) तत्कथम्—नारकापेक्षया यथा संख्यं सप्तम पञ्चम तृतीय पृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देवनारकाणामवस्थितलेश्यत्वात् ॥ व्रजत्रियमेन तल्लेश्यायुक्तो भवति । आगच्छतो नियमो नास्तीति सातिरेकाणि ॥

तत्-कथम् ?
देव-नारकाणाम् ;। अवस्थित-लेश्यत्वात् ;॥। नारक-अपेक्षया ;॥ यथासंख्यं ;॥। सप्तम-पञ्चम-तृतीय- पृथिव्यां ;॥ त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि ;॥। नियमेन ;। तत्-लेश्या-युक्तः ;। व्रजत् भवति (व्रजन् वर्तमान कृदन्त है) आगच्छतः ;। नियमः ;। न अस्ति इति से-अतिरेकाणि ;॥। =सो (कुछ अधिक तेतीस, सत्रह, सात सागर, अशुभ लेश्या के नारकिनका काल कैसे है
=देव और नारकियों के स्थिर वा निश्चल लेश्या होने से नारकी जीवों की
=अपेक्षासे यथा क्रम वा क्रमानुसार सातवां पांचवां और तीसरे नरक में
=तेतीस, सत्रह और सात सागर प्रमाण (काल) है निश्चय से
=उस (अशुभ) लेश्या सहित जीव (पूर्व जन्म से) चलकर नारकी होता है
=(नरकसे) आनेवाले को (लेश्या का) नियम नहीं ऐसे कुछ अधिक सागर है अर्थात् नारकियों की लेश्या पलटती नहीं है सो सातवां नरक में जहां उत्कृष्ट लेश्या है तेतीस सागर काल है और पांचवां नरक में जहां उत्कृष्ट नील लेश्या है सत्रह सागर काल है और तीसरे नरक में जहां उत्कृष्ट कापोत लेश्या है सात सागरकाल है ऐसे तेतीस सत्रह और सात सागर तो वे हुए और नरक में जाने वाले जीव के मरते समय कृष्ण-नील कापोत लेश्या होती है और उनही लेश्या सहित नरक में जन्म लेता है। ऐसे

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

असंयत-सम्यग्दृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले) असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ;। कालः ;। एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;॥॥	=सर्वकाल है । एक चेतनके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। देशोनानि ;॥॥ त्रयस्त्रिंशत्-*	=अन्तर्मुहूर्त (काल) है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस
सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि ;॥॥	=सत्रह सात सागर प्रमाण (काल) है ।
तेजः-पद्मलेश्ययोः ;॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ;।	=पीत-पद्म लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दर्शनवाले का
नाना-जीव अपेक्षया ;॥ सर्वः ;। कालः ;।	=अनेक चेतनकी विवक्षासे समस्त काल है

दोनों कालोंको जोड़ने से कुछ अधिक तेतीस, कुछ अधिक सत्रह, वा कुछ अधिक सात सागर काल उत्कृष्टकरि होता है यद्यपि यह नियम नहीं है कि नरक से जन्म लेने के पश्चात् उस जीवके कौनसी लेश्या होगी ।

* उक्त लेश्यायुक्ता संयत सम्यग्दृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण नारकापेक्षया उक्तान्येव सागरोपमाणि। पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तं सप्तम्यां] मारणान्तिके च सम्यक्त्वाभावाद्देशोनानि ॥

उक्त-लेश्या-युक्त-असंयत-सम्यग्दृष्टि एकजीवं ;।	=कथित (कृष्ण-नील-कापोत) लेश्याओं सहित असंयत सम्यग्दृष्टिका एकजीवके
प्रति* उत्कर्षेण ;। नारक-अपेक्षया ;॥ उक्तानि ;॥॥	=लिये उत्कृष्टकरि नरककी अपेक्षासे कहे हुये
एव* सागरोपमाणि ;॥॥	=ही सागर प्रमाण काल है अर्थात् सातवीं नरक में तेतीस और पांचवीं नरक में सत्रह और तीसरे नरक में सात सागर काल है (परन्तु)
पर्याप्तिसमापक-अन्तर्मुहूर्तं	=पर्याप्ति अवस्थाको पूरी करने वाली अन्तर्मुहूर्त (तीसरे पांचवें सातवें नरक में)
च सप्तम्याम् ;॥ मारणान्तिके ;।	=और (=च) सातवीं (नरक) में मृत्युके समीप में (भी) [illegible] अर्थात् सातवीं नरक में मरते समय अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है ।
सम्यक्त्व-अभावात् ;। देशोनानि ;॥॥	=सम्यग्दर्शन के अभाव होने से कुछ हीन (तेतीस सागर सत्रह सागर सातसागर काल क्रमसे सातवीं पांचवीं तीसरे नरक में) है । तीसरे पांचवें सातवें नरकों में पर्याप्ति पूरी करनेके पीछे सम्यक्त्व होता है ।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;॥। अन्तर्मुहूर्तः ;।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;।	=उत्कृष्टकरि (सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्यावाले देवोंका काल)
द्वे ;॥। सागरोपमे ;॥। स-अतिरेकाणि ;॥। च*	=कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है और
अष्टादश ;॥ सागर-उपमाणि ;॥ (स-अतिरेकाणि)	=कुछ अधिक अठारह सागर प्रमाण (सतार और सहस्रार स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्याके धारक देवोंका काल) है

(१) द्वे सागरोपमे =दो सागर प्रमाण (काल) है परंतु सम्यग्दृष्टि हो और घातायुष्क हो तो उस जीवकी आयु उत्कृष्ट आयुसे कुछ न्यून आधसागर अधिक होती है और जीव दो सागर आयु पावै तो घातायुष्क अन्तर्मुहूर्त न्यून अढ़ाई सागर आयु पावै घातायुष्क वालेका उत्पाद बारहवें स्वर्ग तक है उसके ऊपर नहीं है।

घातायुष्क =पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयुका बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामों के वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दशसागर प्रमाण बंधकिया फिर उसही मनुष्य भवमें संक्लेश परिणामोंके बंधने से आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ईशानमें आय उपजा सो घातायुष्क है सो अन्य देवोंकी दो सागर प्रमाण आयु ते अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है। आयुका घात दो प्रकार है। एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात। तहाँ वर्त्तमान आयुका घटावना सो अपवर्त्तन घात है अरभुज्यमान आयुका घटावना कदलीघात है। देवोंमें कदलीघात संभव नहीं है।

तद्-लेश्यायुक्तानां ;। मारणान्तिक- =उन (पीतलेश्या और पद्मलेश्या) संयुक्तोंके मारणान्तिक समुद्घात और
उपपाद-सम्भवात् ;। सातिरेकतः *च सागरोपम- =उपपाद अवस्थाके होनेसे कुछ आयु बढ़ जाने (के हेतु) से और (क्रमसे दो और अठारह) सागरोपम
युक्त्वात् ;॥। सातिरेकाणि ;॥। किंचित् अधिकानि इति अर्थः =सहित कुछ अधिक (सातिरेकाणि) हुई। कुछ अधिक है ऐसा अर्थ है। सो

जिस पर्यायको छोड़कर देव वा नारकी उत्पन्न हो उस पर्यायके अन्तके अन्तर्मुहूर्तमें तथा देव नारक पर्यायको छोड़कर जिस पर्यायमें उत्पन्न हो उस पर्यायके आदिके अन्तर्मुहूर्तमें वही लेश्या होती है। प्रथमको पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त और द्वितीयको उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त कहते हैं। (यहाँ लेश्याओंके उत्कृष्टकाल-प्रमाणमें दो दो अन्तर्मुहूर्त का काल अधिक अधिक समझना) इसलिये पीत-पद्मलेश्यावाले एकजीव घातायुष्कवाले का सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें उत्कृष्टकाल = दो सागर+अन्तर्मुहूर्त न्यून आध-सागर (घातआयुष्क)+पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त + उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त ॥ सतार सहस्रार स्वर्गोंके पीतपद्मलेश्यावाले घातायुष्क जीवका उत्कृष्टकाल = १८सागर + अन्तर्मुहूर्त घाटि आधसागर + मारणांतिकअन्तर्मुहूर्त + उपपाद अन्तर्मुहूर्त।

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;। सामान्य-उक्तः ;। कालः ;।

=(पीतपद्मलेश्याओं में) सासादनसम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थानवालों का =संक्षेपकरि (पहिले) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि पीत-पद्मलेश्या धारकों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह आवली है ॥ पीत-पद्मलेश्या वाले मिश्रगुणस्थान वालों का नाना जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है। एक जीव की अपेक्षा-से जघन्य औरउत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥

संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सर्वः ;। कालः ;। एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;॥ एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। अन्तर्मुहूर्तः =(पीत-पद्म-लेश्या वालों में) देशसंयतनिका प्रमत्त अप्रमत्त वालों का अनेक =जीवकी अपेक्षासे सब काल है। एक जीव के लिये =जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

शुक्ललेश्यानां ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सर्वः ;। कालः ;। एकजीवं ;। प्रति जघन्येन ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। स-†अतिरेकाणि ;॥ एकत्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि ;॥ =शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का अनेक जीवकी विवक्षा से =सर्व काल है। एक जीव के लिये जघन्यकरि =अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ अधिक =इकतीस सागर प्रमाण है अर्थात् मिथ्यादृष्टि शुक्ल .श्याका धारक

---

† ग्रैवेयकदेवापेक्षया तेषां नामादि सारणान्तिकोत्पादावस्थायामपि शुक्ललेश्यासम्भवात्सातिरेकाणि ॥

ग्रैवेयक-देव-अपेक्षया ;॥ तेषां ;। नामादि ;॥ मारणान्तिक उत्पादअवस्थायाम् ;॥ अपि* शुक्ललेश्या-सम्भवात् ;। स-अतिरेकाणि ;॥

=(नवम) ग्रैवेयक (मिथ्यादृष्टि) देवों की अपेक्षासे तिनके नाम =मारणांतिक समुद्घातमें अर्थात् पूर्वभवसम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त में) और =उपपाद अवस्था में भी (अर्थात् इतर भवसम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त में भी) शुक्ललेश्या के =संभव होने (के हेतु) से कुछ अधिक (इकतीस सागर उत्कृष्टकाल-) वे मिथ्यादृष्टि शुक्ल लेश्या वाले जीव का

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादि[illegible]गकेवल्यन्तानामलेश्यानां च सामान्योक्तः कालः । किं तु संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

मरकर नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न होसक्ता है जहां उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है मारणान्तिक समुद्घातके अन्तर्मुहूर्त में और उपपाद अवस्था के अन्तर्मुहूर्त में भी शुक्ल लेश्या रहती है अतः उत्कृष्टकाल इकतीस सागरसे पूर्वभवचरमान्तर्मुहूर्त और उत्तरभवप्रथमान्तर्मुहूर्त के बराबर अधिक है

सासदनसम्यग्दृष्टि-आदि-सयोग-केवलि अन्तानाम् च अलेश्यानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥

=(शुक्ल लेश्या वाले) सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोग केवली तकनिका =और (च) लेश्या रहित (अयोगकेवलि) निका संक्षेप (प्रकरण) करि =(प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

वही काल है जो पृष्ठ १८१ से १८८ तक में लिखा है। इसमेंसे पृष्ठ १८५ मेंसे "संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षयासर्वः कालः । एक जीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण पूर्वकोटीदेशोना" छोड़दो क्योंकि संयमासंयमियोंका काल नीचे लिखा जाता है

किन्तु* संयतासंयतस्य ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन ॥॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥

=परन्तु संयमासंयमियोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से =सब काल है । एक जीवके लिये जघन्य करि =एक समय है । उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

११ भव्यानुवादेन-भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ । अनादिः सपर्यवसानः सादिः सपर्यवसानश्च । तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

---

(११) भव्य-अनुवादेन ;। भव्येषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नाना जीव-अपेक्षया ;। सर्वः ;। कालः ;। एकजीव-अपेक्षया ;। द्वौ ;। भङ्गौ ;।

=भव्यके अनुवादकरि भव्यजीवों में मिथ्यादृष्टिका अनेक
=जीवकी अपेक्षासे समस्तकाल है । एक जीवकी
=विवक्षासे दो भेद हैं

अनादिः ;। सपरि-अवसानः ;।

=आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात अनादि सांत है

चक्ष्य-आदि ;। सपरि-अवसानः ;।

=(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात सादि सांत है

तत्र*सादिः ;। सपरि-अवसानः ;। जघन्येन ;।। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। देशोनः ;। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तः ;। सासादनसम्यग्दृष्टि-आदि अयोगकेवलि-अन्तानाम् ;। सामान्य-उक्तः ;। कालः ;।

=तहां सादिसांत (काल) जघन्यकरि
=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन
=अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन (काल) है । सासादनसम्यग्दृष्टीसेलेकर
=अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोंका
=संक्षेप (प्रकरण) करि कहाहुआ (गुणस्थानवत्) काल है

(देखो पृष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्यादियोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः ॥ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः ।

अभव्यानाम् ;। अनादि-अपरि* अवसानः ;। =अभव्योंका अनादि अन्त (=अवसान) रहित (=अपरि) अर्थात अनादि अंतकाल है
(१२) सम्यक्त्व-अनुवादेन ;। क्षायिक-सम्यग्दृष्टीनां ;। =(१२)सम्यग्दर्शन के कथनानुसारकरि क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंका
असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानां ;। =असंयत (चौथे गुणस्थान) वर्ती से अयोगकेवली पर्यन्तनिका
सामान्य-उक्तः ;। कालः ;। =संक्षेपकरि (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत) काल है (पृष्ठ १८२ से १८८ तक)
क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ;। चतुर्णां ;। =वेदक सम्यग्दर्शनवाले चारों (चारसे सातवां गुणस्थानवर्ती) निका
सामान्य-उक्तः ;। कालः ;। =संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत) काल है (पृष्ठ १८२ पंक्ति ३ से १८५ पंक्ति ३ तक)
औपशमिकसम्यक्त्वेषु ;।। असंयतसम्यग्दृष्टि- =उपशमसम्यग्दर्शनमें असंयमसम्यग्दर्शन वाले और
संयतासंयतयोः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। =देशसंयमीनिका अनेक चेतनकी अपेक्षासे
जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। पल्योपम- =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है उत्कृष्टकरि पल्योपमके
असंख्येयभागः ;। एकजीवं ;। प्रति* जघन्यः ;। च =असंख्यातवांभाग है और एक जीव के लिये जघन्य
उत्कृष्टः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। च प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ;। =और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (काल) है। और प्रमत्त (छठे) अप्रमत्त (सातवें) गुणस्थानोंका
च चतुर्णां ;। =और चार (अपूर्वकरण–अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसांपराय–उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती)
उपशमकानां ;। नाना–जीव–अपेक्षया ;।। च = उपशमश्रेणीवालों का नाना जीवकी अपेक्षासे और
एक-जीव-अपेक्षया ;।। जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। =एक जीवकी विवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। -सासादनसम्यग्दृष्टि- =उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है। सासादन सम्यग्दृष्टि
सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां ;। सामान्य-उक्तःकालः=मिश्र और मिथ्यादृष्टियों का संक्षेप में कथित (गुणस्थानवत्) काल* है अर्थात

(१३) सञ्ज्ञानुवादेन – संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्याद्य निवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। मिश्र गुणस्थानवालोंका नाना जीवों की पूर्ति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्या दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है। एक जीव प्रति तीन भेद हैं (१) अनादि अनंत काल (२) अनादि सान्त काल (३) सादि सान्त काल। तहां सादि सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष कुछ न्यून आध पुद्गल परावर्त है॥

(१३) सञ्ज्ञा-अनुवादेन ॥
संज्ञिषु ॥ मिथ्यादृष्टि–
आदि अनिवृत्तिबादर–
अन्तानां ॥ पुंवेदवत्

=संज्ञी के कथनानुसार करि
=(प्रथम गुणस्थानवर्ती संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टी–
=से लेकर (= आदि) अनिवृत्तिबादरसाम्पराय नवमां गुणस्थानवर्ती
=पर्यन्तनिका पुरुषवेद समान (काल) है॥ इसलिये पुरुष वेद के अनुकूल मिथ्या दृष्टि संज्ञियों का नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्ष तीन सौ सागर से ऊपर और नौ सौ सागर से नीचे काल है। सासादन सम्यग्दृष्टी संज्ञियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती संज्ञियोंका काल नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ असंयत सम्यग्दृष्टी संज्ञियों का काल नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक है॥ संयमासंयमी संज्ञियों का काल नाना जीव अपेक्षासे सर्व है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूर्व है॥ प्रमत्तसंयमी संज्ञियों का और अप्रमत्त संयमी संज्ञियों का नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है॥ अपूर्वकरण और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले संज्ञियों

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ असंज्ञिना मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठी सहस्सगाणि मरणाणि । अंतोमुहुत्तमेत्ते तावदिया चेव होंति खुद्दभवा ॥ ६६३३६ ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः

का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है. अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण उपशक श्रेणी वाले संज्ञियों का नाना जीवऔर एक जीव अपेक्षा से जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त काल है

शेषाणां ।। =बचेहुये (सैनी दशवां-ग्यारहवां-बारहवां गुण स्थानवर्ती) निका

सामान्य-उक्तः ।। कालः ।। =संक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् शेष उपशम श्रेणीवाले दशवां-ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती संज्ञियों का नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है और शेष क्षपक श्रेणीवाले दशवां बारहवां गुणस्थानवर्ती सैनियों का नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ संज्ञी प्रथमसे बारह गुणस्थान तक होते हैं ॥ असंज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥

असंज्ञिनां ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नानाजीवअपेक्षया ।।। =मन रहित (= असंज्ञिनां) मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

सर्वः ।। कालः ।। एकजीवं ।। प्रति जघन्येन ।। =समस्त काल है एक जीव केलिये जघन्यकरि

क्षुद्रभव-ग्रहणम् ।।।। =सूक्ष्मभव (का काल) लिया गया है [सो श्वांस के अठारहवां भाग होना है]

तिण्णि ।।।। सया ।।।। छत्तीसा ।।। (=त्रीणि शतानि षट् त्रिंशत्=तीन सौ छत्तीस

छावट्ठी ।।। सहस्सगाणि ।।।। (=षट्षष्टि ।।। सहस्रकाणि)=छासठ सहस्र

मरणाणि ।।।। अंतोमुहुत्त—(=मरणानि ।।।। अन्तर्मुहूर्त-)=मरण अन्तर्मुहूर्त

मेत्ते ।। तावदिया ।। च (मात्रे ।। तावन्तः ।। च) =मात्र में और (= च)इतने (अर्थात ६६३३६)

एव होंति T खुद्दभवा ।। (=एव भवन्ति क्षुद्रभवाः) =ही सूक्ष्म भव (एक लब्ध्य पर्याप्तक जीव के) होते हैं ॥

उत्कर्षेण ।, अनन्तः ।। कालः ।। असंख्येयाः ।। =(मन रहित मिथ्यादृष्टी का) उत्कृष्ट करि अनंत काल है। सो असंख्याते

पुद्गलपरिवर्ताः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तः कालः ॥ (१४) अहारानुवादेन - आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभाग असंख्येयाः सख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ।

पुद्गलपरिवर्ताः ॥ तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानां ॥ = पुद्गल परावर्तन हैं । उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित
सामान्य- उक्तः ॥ कालः ॥ = (सयोग-अयोग केवली) निका संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत) काल है अर्थात सयोग केवलियोंका नाना जीवकी प्रति सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है । अयोग केवलियों का काल नाना जीव की और एक जीवकी प्रति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ = आहार के कथनानुसार और आहारकोंमें मिथ्यादृष्टी का
नाना जीव अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ = अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के
प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ = लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
अंगुल-असंख्येय-भागः-॥ असंख्येया संख्येयाः ॥ = (सूची अंगुल के असंख्यातवां अंश है सो असंख्यातासंख्यरत
उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः ॥ = उत्सर्पिणी (काल) अवसर्पिणी काल (परिमाण) है अर्थात अंगुल के प्रदेश और इनके समय समान हैं ॥ भावार्थ सूच्यंगुलके असंख्यातवां भाग के प्रदेशोंकी संख्याके बराबर आहारक का समय है ।

---

(१) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह कालों से भरत और ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु काय भोगोपभोग सम्पदा वीर्य वृक्षादिक का बढ़ना और घटना होता है उत्सर्पिणी के छह कालों में वृद्धि और अवसर्पिणी के छह कालोंमें दिनों दिन ह्रास होता जाता है । अवसर्पिणी काल के (१) सुखमसुखमा (२) सुखमा (३) सुखमदुःखमा (४) दुःखमसुखमा (५) दुःखमा (६) अति दुःखमा ऐसे छह भाग हैं । इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी (१) अति दुःखमा (२) दुःखमा (३) दुःखमसुखमा (४) सुखमदुःखमा (५) सुखमा (६) सुखमसुखमा ये छह हैं ॥ अवसर्पिणी काल दश कोड़ा कोड़ी सागर का है अर्थात १०००००० × १०००००० = १०००००० ०००००० (दशनील सागर को) × १० (दशसे गुणा करो) तो १०००००० ०००००० ० सौ नीलसागर हुये । और उत्सर्पिणी काल भी दश कोड़ा कोड़ी सागर अर्थात सौ नीलसागर का है । इन दोनों कालों को मिलाकर बीस कोड़ा कोड़ी सागर को एक कल्प कहते हैं ॥ (२) देखो टिप्पणी मुद्रित पृष्ठ २६९ से २७६ तक

शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण त्रयः समयाः ॥

शेषाणां ;। =(आहारकनिमें) अवशिष्ट (दूसरेसे तेरहवें गुणस्थानवाले) निका
सामान्य-उक्तः ;। कालः ;। =संक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् १८१ से १८८ पृष्ठ तक देखो और पृष्ठ १८७ मेंसे अयोगकेवलियों का काल जो नाना जीव की और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है मन पढ़ो ॥
अनाहारकेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ =अनाहारकनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षा से
सर्वः ;। कालः ;। एकजीवं ;। प्रति * जघन्येन ;। =सब काल है। एक जीवके लिये जघन्यकरि
एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। त्रयः ;। समयाः ;। =एक समय (मात्र) है। उत्कृष्टकरि तीन समय (तक विग्रहगति में) हैं अनाहारक अवस्था जीव की पहले-दूसरे-चौथे-तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानों में है

(२) अंगुल असंख्येय भागः देखो पृष्ठ २२० यह वाक्य सर्वार्थ सिद्धि के दोनों अनुवादों में अशुद्ध (छप गया) है यह वाक्य इस प्रकार होना चाहिये कि अंगुल असंख्येय भागः इत्यादि और अंगुल असंख्येय भाग को सूच्यंगुल समझना चाहिये क्योंकि गोम्मटसार की गाथा ६७० इस प्रकार कि "अंगुल असंख्य भागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो (अंगुलासंख्यभागः काल आहारकस्योत्कृष्टः ;॥ जीव तत्त्व प्रदीपिका टीका में इस का अर्थ ऐसे किया है कि "आहार कालः उत्कृष्टः सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग" भाषा टोडरमल जी आहार का काल उत्कृष्ट सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥ सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग के जेते प्रदेश होहिं तितने समय प्रमाण आहारक का काल है ॥ जयचन्द रायजी ने भी असंख्यातवां भाग अनुवाद किया है न कि असंख्यातेभाग"उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवां भाग है सो असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण है। अंगुलि के प्रदेश और इन के समय समान हैं ॥"सर्वार्थ सिद्धि वचानिका पृष्ठ मुद्रित ९७ ॥ इस का सारांश यह है कि आहार की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी का एक जीव की विवक्षा से उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग है इस सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के प्रदेश संख्या व गणना में इतने हैं कि जितने पूर्वोक्त टिप्पणी में कथित उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समय गणना में होते हैं ॥ (सूच्यंगुल क्या है पृ० ८६९ से २७६)

(१) एक द्वौ वानाहारकः इति व क्यमाणत्वात् ॥
एकं ;। द्वौ ;। वीन ;। वा*
अन् आहारकः ;।
इति* वक्ष्यमाणत्वात् ;॥॥

(नया नया अथवा जन्म धारण करने के लिये गमन में जीव
=एक (समय तक) को दो (समय तक) को अथवा तीन (समय तक) को
=अनाहारक है अर्थात् नो कर्म वर्गणा का आहार का ग्रहण नहीं करता है
=क्योंकि ऐसा (अध्याय २ सूत्र ३० में) कहा जायगा।

सर्वार्थ-सिद्धि

२२२

सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण द्वौ समयौ॥ सयोगकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः। उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः॥ अयोगकेवलिनां सामान्योक्तः कालः॥ कालो वर्णितः॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो : ; नाना जीव अपेक्ष । ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण;। आवलिकायाः;॥ असंख्येय-भागः;।
एक जीवं ;। प्रति* जघन्येन;। एकः;। समयाः;।
उत्कर्षेण;। द्वौ ;। समयौ ;। सयोग-केवलिनः;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। त्रयः ;।
समयाः;। उत्कर्षेण;। संख्येयाः;। समयाः;।
च॰एक जीवं ;। प्रति* जघन्यः ;। उत्कृष्टः ;। च
त्रयः ;। समयाः ;।
अयोगकेवलिनां; सामान्य-उक्तः;। कालः;।

कालः;। वर्णितः;।

=(अनाहारकोंमें) सासादन सम्यग्दृष्टीका असंयत सम्यग्दृष्टीका नाना
= जीव की अपेक्षा से जघन्य करि एक समय (मात्र) है
=उत्कृष्टकरि आवलीका असंख्यातवां भाग है
=एक जीव के लिये जघन्यकरि एक समय है
=उत्कृष्ट करि दो समय हैं। सयोगकेवलीका
=अनेक आत्माओं की अपेक्षासे जघन्यकरि तीन
=समय हैं। उत्कृष्टकरि संख्याते समय हैं।
=और (सयोगकेवली का ही) एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
=तीन समय हैं अर्थात् एक सयोगकेवली भगवानकी अपेक्षा से जब तीसरे समय में प्रतर समुद्घात करते हैं और चौथे समय में लोकपूर्ण समुद्घात को करते हैं, फिर इस लोकपूर्ण समुद्घात को पांचवीं समय में संकोचते हैं तब इन तीसरे चौथे पांचवें समयों में कार्माण योग होता है और अनाहारक अवस्था होती है॥ "ओरालंदण्ड दुगे" इत्यादि गाथा पृष्ठ १२५ से प्रतर समुद्घात के संकोचने में छठी समय में भी कार्माण योग होता है अतः चार समय अनाहारक हो जाते हैं॥ कितेक आचार्य तीन समय ही मानते हैं (११६ से १२६ तक)
=अयोगकेवलीयोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत) काल है
अर्थात् नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है (पृष्ठ १८७ के अनुसार)
=काल (इस प्रकार) वर्णन किया गया है

सर्वार्थ-

२२३

अन्तरं निरूप्यते– विवक्षितस्य गुणस्य गुणान्तरसंक्रमेसति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राङ्मध्यमन्तरम् । तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्– मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया न अस्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे षट्षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम् सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया

अन्तरं॥॥ निरूप्यते। विवक्षितस्य॥ गुणस्य॥ गुणान्तर-संक्रमे॥ सति॥ पुनः* तत्-प्राप्तेः॥॥ प्राक्* मध्यम्॥॥ अन्तरम्॥॥

=अन्तर अर्थात् विरह वा विछोहकाल निरूपण किया जाता है अपेक्षितगुणका =अन्यगुणमें पलटन होनेपर (=सति) फिर उसी (गुणकी) प्राप्तिसे पहिले =मध्य वा बीच (का काल) सो अन्तर है अर्थात् एक गुणको छोड़करि फिर उसी गुणके ग्रहण करने में विलम्ब वा देरी हो सो अन्तर है ॥

तत्॥॥ द्वि-विधम्॥॥ सामान्येन॥॥ विशेषेण॥ च* =वह (अन्तर) दो प्रकार है संक्षेपकरि और (=च) भेदकरि

सामान्येन तावत्* मिथ्यादृष्टेः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥॥ न-अस्ति-अन्तरम्॥॥ एकजीवं॥ प्रति* जघन्येन॥॥ =संक्षेपसे प्रथम (=तावत) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से =अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः॥—उत्कर्षेण॥ देशोने॥ द्वे॥॥ =अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है । उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दुगुणे

षट्षष्ठी॥ सागरोपमाणाम्॥॥ =छयासठि (अर्थात् एकसौ बत्तीस) सागरोपमका (अन्तर) है

सासादनसम्यग्दृष्टेः॥ अन्तरं॥॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ =सासादन सम्यग्दर्शन वालेका (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से

---

(१) एकोनविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवे) तक अर्थात् अस्सी संस्कृत की संख्याओं को संज्ञा मान सकते हैं ये सब अस्सी ही स्त्री लिङ्ग में हैं । संज्ञा जिन के साथ ये लाई जाती हैं । बहु वचन संज्ञा के साथ ये एक वचन में लाई जा सकती हैं जैसे षट्षष्टि ॥ केवलिनः ॥ षट्षष्टि ॥॥ अहानि ॥॥॥ छयासठ दिवस सतषष्टि स्मृतयः ॥॥ । विंशतिः ॥ ब्राह्मणाः ॥ अथवा विंशति ब्राह्मणाः ॥ । (बीस ब्राह्मण) दूसरी संज्ञाओं के समान ये द्वि वचन और बहु वचन में भी लाई जा सकती हैं परन्तु उस समय में संज्ञायें जिन के साथ ये लाई जाती हैं षष्ठी विभक्ति में होती हैं जैसे ब्राह्मणानां ॥ विंशती ॥॥ (दो कोड़ी वा दों बीसी ब्राह्मणों) की ब्राह्मणानां ॥ विंशतयः ॥॥ बहुत कोड़ी ब्राह्मणों की ॥ इसी प्रकार द्वे॥॥ षट्षष्टी ॥॥ सागरोपमाणां ॥॥॥ दो गुणे छयासठि सागर । इन अस्सी संख्याओं में से किसी को भी एक वचनमें लानेपर भी संज्ञायें जिनके साथ ये संख्यायें लाई जावें षष्ठी विभक्तिमें भी लाई जासकती हैं जैसे ब्राह्मणानां ॥ विंशतिः ॥॥ एकवीसी ब्राह्मण ॥

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया सासादनवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ असंयत सम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्

जघन्येन ;॥ एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। पल्योपम-
असंख्येय-भागः ;। एकजीवं ;। प्रति जघन्येन ;॥
पल्योपम क असंख्येय-भागः ;। उत्कर्षेण ;। देशोनः ;।
अर्ध-पुद्गल-परिवर्तः ;। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ;।
अन्तरं ;॥ नाना-जीव अपेक्षया ;॥ सासादनवत्*

=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्योपमके
=असंख्यातवें भाग है । एक जीव के लिये जघन्यकरि
=पल्योपम का असंख्यातवां खंड है । उत्कृष्ट करि कुछ न्यून
=अर्ध पुद्गल परावर्तन है ॥ मिश्रगुणस्थान वर्तीनिका
=विरह काल अनेक जीवकी विवक्षा से सासादन (दूसरे गुणस्थान)सम है
अर्थात्जघन्य अंतर एक समय है उत्कर्ष पल्य के असंख्यातवां भाग है

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।
अर्ध-पुद्गल परावर्तः ;। देशोनः ;। असंयत-
सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ;। नानाजीव-
अपेक्षया ;। न* अस्ति T अन्तरम् ;॥
एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।
अर्ध-पुद्गल परिवर्तः ;। देशोनः ;।
चतुर्णाम् ;। उपशमकानाम् ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।
उत्कर्षेण ;। वर्ष-पृथक्त्वम् ;॥

=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कर्ष करि
=कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है । असंयमी
=सम्यग्दर्शन वाले से अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका अनेक जीव की
=विवक्षा से वियोग काल (कुछ) नहीं है ॥ (चौथे से सातवें गुणस्थान वालोंका)
=एक आत्मा के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट करि
=कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अन्तर) है
=चार उपशम श्रेणी (आठवें से ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
=अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
=उत्कृष्ट करि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गल परिवर्तो देशोनः ॥ चतुर्णां क्षपकाणामयोग केवलिना च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण षण्मासाः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलीना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ नारकाणां सप्तसु पृथ्वीषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-

---

एकजीवं ;। प्रति+जघन्येन ;॥ अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। देशोन ;। अर्द्धपुद्गल-परिवर्तः ;।
चतुर्णाम् ; क्षपकाणाम् ;।
च*अयोगकेवलीनां ;। नानाजीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;॥
एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। षण्मासाः ;॥
एकजीवं ;। प्रति * न* अस्ति T अन्तरम् ;॥
सयोगकेवलीनां ;। नाना-जीव--अपेक्षया ;॥ च *
एक-जीव -अपेक्षया ;॥ न * अस्ति अन्तरम् ;॥
विशेषेण ;। [१] गति अनुवादेन ;। नरक-गतौ ;॥
नारकाणां ;। सप्तसु ;॥ पृथ्वीषु ;॥ मिथ्यादृष्टि-
असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ;॥ नाना जीव अपेक्षया ;॥
न अस्ति अन्तरम् ;॥—एकजीवं ;। प्रति * जघन्येन
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;' एक-
त्रि-सप्त-
दश-सप्तदश-

=(चार उपशम श्रेणीवालेकानिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
= उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन (विरह काल) है
=चार(आठवें से दशवें तक-बारहवें गुणस्थानवर्ती)क्षपक श्रेणीवालेनिका
=और(=च) अयोग केवली निका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
=एक समय(विरहकाल) है। उत्कृष्टकरि छह महीना अन्तर है
=(उक्त क्षपक श्रेणियों का) एक जीव के लिये(कुछ) विरहकाल नहीं है
=सयोगकेवलीनिका अनेक जीवों की विवक्षासे और(=च)
=एक जीव की अपेक्षासे (कुछभी) विरह काल नहीं है
=भेदकरि (१) गति के कथनानुसारकरि—नरक गति में
=नारकिनका सातवें नरकमें(=पृथ्वीषु ;॥) मिथ्यादृष्टि और
असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका नानाजीव की अपेक्षा से
=(कुछ) विरह काल नहीं है। एकजीवकेलिये जघन्यकरि
=अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है। उत्कृष्ट करि (प्रथम नरक में कुछ हीन) एक
=(दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन (तीसरे नरकमें कुछ न्यून) सात
=(चौथे नरक में किंचित् घाटि) दश (पाचवां नरक में कुछ घाटि) सत्रह

द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादन सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः ।उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त- दश- सप्तदश-द्वाविंशति- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणिपल्योपमानि देशोनानि ॥

द्वा-विंशति—त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमाणि ;॥ देशोनानि ;॥॥ =(छठे नरकमें कुछ न्यून) बाईस (सातवां में) कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण है
सासादन सम्यग्दृष्टि—सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोः ;। =सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुण स्थानवाले (नारकिनिका)
नानाजीव—अपेक्षया ;॥ जघन्येन एकः ;। समयः ;। =अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय (अन्तर है)
उत्कर्षेण ;। पल्योपम—असंख्येय—भागः ;। एकजीवं ;। =उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक (नारक) जीवके
प्रति जघन्येन ;॥ पल्योपम—असंख्येय—भागः ;। च** =लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है ॥। और (च)
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। एक—त्रि— =अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि (प्रथम नरकमें कुछ घाटि) एक (दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन
सप्त—दश— =(तीसरे नरकमें कुछ हीन) सात (चौथे नरकमें कुछ न्यून) दश
सप्तदश—द्वाविंशति— =(पांचवां नरकमें कुछ घाटि) सत्रह छटे (नरकमें कुछ न्यून) बाईस
त्रयस्त्रिंशत् सागर उपमाणि ;॥॥ देशोनानि ;॥॥ =[सातवां नरकमें] कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण [विरह काल] है [नारकीयों के प्रथम मिथ्यात्व से असंयत चौथे गुणस्थान तक चारही हो सकते हैं]
तिर्यग्गतौ ;। तिर×चां ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव— =तिर्यंच गति में तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का अनेक जीवों की
अपेक्षया ;॥ न** अस्ति अन्तरम् एकजीवं ;। प्रति जघन्येन=अपेक्षा से विरहकाल नहीं है । एक (तिर्यंच) जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ;॥॥ देशोनानि ;॥॥=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन तीन पल्य प्रमाणहै

(१) अधिकमपि तस्मादेति चेत् क्षपणारम्भकवेदकयुक्तस्य तिर्यक्षुत्पादाभावात् । तत्र कोऽत्र देवत्वमेवोत्पद्यते । अन्तो मिथ्यात्वयुक्तत्रिपल्योपमायुष्को भोगभूमिभूत्पद्यते । तत्र चोत्पन्नानां तिर्यङ्मनुष्याणां किंचिदभ्युधिकचतुस्त्रिंशद्दिनेषु सम्यक्त्वग्रहणाभावतः भवति । नियमादेतावद्दिनेषु मिथ्यात्व परित्यागात् सम्यक्त्व गृह्णाति, त्रिपल्योपमायुः शेषे पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते । इति गर्भकालेकिंचिदधिकचतुस्त्रिंशद्दिनैरूनसप्तमासे शेषेण च जीवस्याहोनानि त्रीणि पल्यानि ।

अधिकम् ;। अपि क* कस्मात् ;। (कस्मात् ;॥॥) ?

न * इति * चेत् * आशङ्क्य-आशङ्कते-

= (मिथ्यादृष्टि तिर्यंचका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्यसे) अधिक किस हेतु से

= नहीं है ऐसी शंका पर =चेत्-कहते हैं कि) क्षपणका प्रारम्भ करने वाले

अर्थात् दर्शनमोहनीयकर्मकी तीन मिथ्यात्व(=अतत्त्व श्रद्धान)सम्यक्त्व मिथ्यात्व

(जिस कर्म प्रकृति के उदय से मिश्र परिणाम हों जिनको न तो सम्यक्त्वरूप ही

और न मिथ्यात्वरूप ही कह सकते हैं। और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व (जिसके

उदय से सम्यक्त्व का मूलघात तो न हो परन्तु चल मलादि दोषहों) के क्षयका

आरम्भ करने वाला

वेदक युक्तस्य ;। तिर्यक्षु ;। उत्पाद -अभावात् ;।

तत्-युक्तः ;। हि* देवेषु ;। एव * उत्पद्यते T

अतः * मिथ्यात्वयुक्तः ;। त्रिपल्योपम-आयुष्कः ;।

भोगभूमिषु ;॥ उत्पद्यते T तत्र * च * उत्पन्नानां ;।

तिर्यक्-मनुष्याणां ;। किञ्चित् * अभ्यधिक - अष्ट-

चत्वारिंशत् ;॥ दिनेषु ;॥॥ सम्यक्त्व ग्रहण-योग्यता ;।

भवति नियमात् ;। एतावत् ✻ दिनेषु ;। मिथ्यात्व-

परित्यागात् ;। सम्यक्त्वं ;॥॥ गृह्णाति T त्रि-पल्योपम-

आयुः शेषे ;। पुनःमिथ्यात्वं ;॥॥ प्रतिपद्यते T इति

गर्भकाले ;। किंचित् * अधिक अष्टचत्वारिंशत् ;॥

दिनैः ;।

= क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित(जीव) का तिर्यंचों में जन्मका अभाव होनेसे

= उस क्षपणप्रारम्भक वेदक सम्यक्त्व सहित जीव देवों में ही उपजता है

= इसलिये मिथ्यात्ववाला तीन पल्यप्रमाण आयुसहित

=भोगभूमियों में जन्म धारण करता है और (=त्र) वहां उपजने वाले

=तिर्यंच और मनुष्यों की कुछ अधिक अठ-

=चालीस दिवस में सम्यग्दर्शन प्राप्तिकी योग्यता का सामर्थ्य

=होती है क्योंकि नियमसे इतने दिनों में मिथ्यात्व-

=छोड़देता है और सम्यग्दर्शनको ग्रहण करता है : तीन पल्य प्रमाण

=आयु के कुछ शेष रहने पर फिर मिथ्यात्वको ग्रहण करता है इस प्रकार

=गर्भ (के रहने के) कालमें, कुछ अधिक अड़तालीस दिनसहित (काल में,

=अर्थात् जब भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच बाल अवस्था से तरुणाई को पहुंच के

सम्यक्त्व के प्राप्त करने के योग्य होजाता है वह समय

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

सासादन सम्यग्दृष्टि-आदीनाम् ॥ चतुर्णाम् ॥	=सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक चार (दूसरेसे पांचवां गुणस्थान वाले) निका
सामान्य-उक्तम् ॥॥ अन्तरम् ॥॥	=संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत) विरहकाल है, अर्थात् सासादन गुणस्थान वाले तिर्यंचनिका (विरहकाल) अनेक जीवों की अपेक्षा से जघन्यकरि एक

च • अवसानकाले ॥ शेषेण ॥	=और [=च] अंतिम [मरण] काल में [आयुका] बचारहुआ काल अर्थात् भोगभूमि के मनुष्य तिर्यंच के मरने से पहिले आयु के बचे हुए काल में सम्यक्त्व नहीं रहता
हीनत्वात् ॥॥ देशोनानि ॥॥ कर्तव्यानि ॥॥	=[उक्त तीन प्रकारके कालोंको उत्कृष्ट आयु तीनपल्य में से] घटाने से कुछ हीन [तीनपल्यउत्कृष्ट अन्तरकाल मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्वको प्राप्तकर फिर मिथ्यात्व में आनेका] जानना चाहिये अथवा जानो

इस टिप्पणीका भावार्थ लिखनेके प्रथम इस बातका लिखदेना उचित समझते हैं कि मिथ्यादृष्टी तिर्यंचोंका वही अन्तर है जो मिथ्यादृष्टी मनुष्यों का "मनुष्य गतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टिस्तिर्यग्वत्" पृष्ठ २२९ के अनुकूल अब प्रश्न इसमें होगया कि मिथ्यादृष्टि तिर्यंच वा मिथ्यादृष्टि मनुष्यके मिथ्यात्वका अन्तर क्या है अर्थात् पहिलेमनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यात्व सहित था पश्चात् मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व ग्रहण किया और पुनः मिथ्यात्व में आगया तो पहिलीवार मिथ्यात्वसे दूसरीवार मिथ्यात्व ग्रहण करने में कितना काल व्यतीत हुआ वही अन्तर वा विरोह काल मिथ्यात्व का है। उत्तरमें कहते हैं कुछ न्यून तीन पल्य प्रमाण है वा कैसे ? (उत्तर इस प्रकार है कि दर्शनमोहनीयकर्म की तीन मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व के क्षयका प्रारम्भक वेदकसम्यक्त्वसहित जीवका जन्म देवों में ही होता है अतः मिथ्यात्वाले जीवका जन्म भोगभूमिक तिर्यंच वा मनुष्य में ही सक्ता है। भोगभूमि में उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी हो सक्ती है जिसमें मिथ्यात्वका अंतर होता है अर्थात तीन पल्यतक सम्यक्त्व रहता परन्तु उन तीन पल्यों में से (१) गर्भमें रहने का काल (२) भोगभूमिके मनुष्य वातिर्यंचमें जन्म होने से अड़तालीस दिनसे कुछ अधिक समय तक जिसमें उक्त मनुष्य वा तिर्यंचमें सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती है (३) मरणसे पहिले कुछ कालतक सम्यक्त्व नहीं रहता ऐसे ये तीन प्रकारका समय तीन पल्यसे घटाकर अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ घाटि ही रहता है इस लिये उक्त अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ न्यून ही कहा ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥

समय है ॥ उत्कृष्टकरि पल्य के असंख्यातवां भाग है । एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है उत्कृष्टकरि कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है । मिश्र तीसरे गुणस्थान वर्तीयें तिर्यंचनिका विरहकाल अनेक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है । असंयमी सम्यग्दर्शन वाले तिर्यंचों का और संयमा संयमी पांचवें गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षा से वियोगकाल (कुछ) नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अंश) है । तिर्यंचों में पांच ही गुणस्थान होते हैं)

मनुष्यगतौ॥ मनुष्याणां॥ मिथ्यादृष्टेः॥ तिर्यग्वत्॥* =मनुष्यगति में मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका तिर्यंच सदृश (अन्तर) है अर्थात मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना जीवकी अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन तीन पल्य है
(मनुष्य भोग भूमि में वैसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे तिर्यंच टिप्पणी २२७-२२८)

सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥ =सासादन गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका मिश्र गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका

नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्* =अनेक जीवकी अपेक्षा से (अन्तर) संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) है अर्थात दूसरे गुणस्थान वालोंका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है ॥ मिश्रका भी (सासादनवत्) जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है ॥ (पृष्ठ २२३, २२४ देखो)

एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

एक-जीवं ;। प्रति*
=(सासादन और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती मनुष्यनिका) एकजीवके लिये

जघन्येन ;॥। पल्योपम-असंख्येयभागः अन्तर्मुहूर्तः ;। च
=जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवांभाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥

उत्कर्षेण; त्रीणि ;॥ पल्योपमानि ; "पूर्वकोटिपृथक्त्वैः ;॥॥
=उत्कृष्टकरि तीन पल्य प्रमाण पृथक्त्व (तीनसे ऊंचे नौसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि

अभ्यधिकानि ;॥॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ; नानाजीव–
=अधिक है असंयमी सम्यग्दृष्टिनवाले (मनुष्य) निका अनेक जीवकी

अपेक्षया ;॥ न* अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एक-जीव-अपेक्षया ;॥
=अपेक्षा से विरह काल नहीं है एक जीव के कथनानुसार से

जघन्येन ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ; उत्कर्षेण ; त्रीणि ;॥॥ पल्यो
=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन पल्य

पमानि ;॥॥ पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ;॥॥ अभ्यधिकानि ;॥॥
=प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक है ॥

संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्तानां ;। नानाजीव–
=संयमासंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी (मनुष्य) निका नानाजीव

अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एक-जीवं ;। प्रति*
=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्मा के लिये

जघन्येन ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी-
=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन करोड़ पूर्व के

पृथक्त्वानि ;॥॥ चतुर्णाम् ;।
=ऊपर नव के नीचे (= पृथक्त्वानि) है । चार (आठ से ग्यारह गुणस्थानवर्ती तक)

उपशमकानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥
=उपशम श्रेणी चढ़ने वालेनिका नाना जीवों के कथनानुसारकरि

सामान्यवत्*
=संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) वत (विरह काल) है अर्थात नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट तीन और नव वर्ष के मध्य है

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ;।
=(चार उपशम श्रेणी वालेनिका) एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण पूर्वकोटी पृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् ॥ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयो नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येय भागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी पृथक्त्वानि ;॥–शेषाणां ;। = उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नवसे नीचे (=पृथक्त्व) करोड पूर्व है अवशेष (चार अपूर्वकरण आठवां-अनिवृत्तिकरण नववां-सूक्ष्मसांपरायदशवां क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग केवली) निका

सामान्यवत्* (विरह काल) संक्षेप [प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान] सदृश है अर्थात् चार क्षपकश्रेणीवाले और अयोगकेवलियों का (अन्तर) नाना जीव की अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्टकरि छह मास है । एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ट २२५]

देवगतौ ;॥ देवानां ;। मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्टयोः ;। = देवगति में सुर मिथ्यादृष्टि और असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (देव) निका

नानाजीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अंतरं ;॥। एकजीवं ;। = नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है । एक जीवके लिये

प्रति जघन्येन ;॥अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। = जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि ;॥ देशोनानि ;॥ = कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण है

सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;। नाना-जीव अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* = सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [देव] मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवाले [देव] निका = (विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संक्षेप[विषय में पूर्वकथित गुणस्थान] = सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है [देखो पृष्ठ २२३,२२४

एकजीवं ;। प्रति*जघन्येन ;॥। पल्योपम-असंख्येय-भागः ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। च–उत्कर्षेण ;। = [सासादन-मिश्रवर्तीदेवोंका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के = असंख्यातवां भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेनएकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देशोनानि ;॥ एकत्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि ;॥॥
(२ इन्द्रिय–अनुवादेन ;। एक–इन्द्रियाणां ;। नानाजीव-अपेक्षया ;। न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एक-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;॥॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ;॥॥
उत्कर्षेण ;। द्वे ;॥ सागरोपमसहस्रे ;॥॥ पृथक्त्वैः ;॥॥ पूर्व कोटी, अभ्यधिके ;॥

=कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण (अन्तर वा विरह काल) है
=(२ इन्द्रियों के कथनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी
=अपेक्षा से अन्तर नहीं है। एक आत्माकी अपेक्षा से
=जघन्यकरि सूक्ष्मभव (का काल-श्वासके अठारहवां भागके बराबर) लिया गया है
=उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)
=करोड पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकेन्द्रिय था, एकेन्द्रिय की अवस्था को छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की तो शीघ्र से शीघ्र वही जीव फिर एकेन्द्रिय हो तो श्वांस के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजावेगा और यदि देरी से देरी करे तो वही जीव दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे करोड़ पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों वाला होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जावेगा)

विकल-इन्द्रियाणां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ अन्तरं ;॥॥
न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ;॥॥ उत्कर्षेण ;। अनन्तः ;। कालः ;।
असंख्येयाः ;। पुद्गलपरिवर्ताः ;॥॥ एवम्* इन्द्रियं प्रति* अन्तरम् ;॥॥ उक्तम् ;॥॥

=विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) निका नाना जीव अपेक्षा से अंतर
=नहीं है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव (।_ श्वांसवत्काल)
=लिया गया है। उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है
=[सो असंख्याते पुद्गलपरावर्तन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की
=[अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरहकाल कहा गया है

गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥

सर्वार्थ	गुणं ।। प्रति* उभयत* अपि* न* अस्ति T अन्तरम् ।।।।	=गुणस्थान की (=गुणं) अपेक्षा से (=प्रति) दोनों (एकेन्द्रिय-विकलत्रय) का =भी अंतर नहीं है (क्योंकि दोनों के मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है)

(१) एकेन्द्रियविकलेन्द्रियोऽपीत्यर्थः। यतस्ते एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः मिथ्यादृष्टय एव। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां चतुर्णां गुणस्थानान्तरसम्भवात्। पञ्चेन्द्रियाणां तु तत्सम्भवात्। मिथ्यात्वादीनां सम्यक्त्वादिना अन्तरं द्रष्टव्यम् ॥

| एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियतः* अपि* इति* अर्थः ।। यतः* ते ।। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियाः ।। मिथ्यादृष्टयः ।। एव* चतुर्णां ।। एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियाणां ।। गुणस्थानान्तर-असम्भवात् ।। तु-पंचेन्द्रियाणां ।। तत्-सम्भवात् ।। मिथ्यात्व-आदेः ।। सम्यक्त्व आदिना ।। अन्तरम् ।।।। द्रष्टव्यम् ।।।। | =(वृत्ति में "उभयतोऽपि" वाक्यका) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियकरे भी ऐसा =अर्थ है। क्योंकि (=यतः) वे एकेन्द्रिय जीव और विकल (दो-तीन-चार) =इन्द्रिय धारक जीव मिथ्यादृष्टी ही हैं। क्योंकि चार एकेन्द्रिय जीव के और =दो इन्द्रिय जीव त्रीन्द्रिय जीव-चतुरिन्द्रिय जीवों के अन्य गुणस्थान =नहीं हो सकता है। परंतु (= तु) पंचेन्द्रिय जीवों के =वे (द्वितीयादि गुणस्थानान्तर) संभव होने से मिथ्यात्व आदि (गुणस्थानों) का =सम्यक्त्व आदि (शेष गुणस्थानों) से (अग्रिम पृष्ठों में) अन्तर देखना चाहिये। सारांश यह है कि इन्द्रियों को गुणस्थानों से संबंधित करने पर अन्तर या विरह काल ऐसे हैं कि एकेन्द्रिय वाले जीवों से चार इन्द्रिय धारक जीवों तक के सदैव मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है अतः उन के नाना जीव की अपेक्षा से कभी विरह काल नहीं होता है। सदा उक्त चारों इन्द्रिय वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है और सासादन आदि अयोगकेवली तक शेष तेरह गुणस्थान भी होते हैं। इन पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान वर्ती जीवों के नाना जीवों की अपेक्षा से कुछ विरह काल (= अन्तर) नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय जीव भी सदा प्रत्येक मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं। पंचेन्द्रिय मिथ्यात्व वाले एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ अधिक एकसौ बत्तीस सागर है। सासादन आदि शेष तेरह गुणस्थानों का अन्तर आगे कहते हैं ॥

सर्वार्थ-सिद्धि

पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनामप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

पञ्चेन्द्रियेषु॥ मिथ्यादृष्टेः॥ सामान्यवत्*

=पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टिका संक्षेप (विषय में कथित गुणस्थान सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका नाना जीव अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट एकसौबत्तीस सागर से कुछ हीन है

सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्*

=सासादन सम्यग्दृष्टिवाले और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीनिका अनेक =जीवों की अपेक्षा से संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान सम है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है

एक जीवं॥ प्रति* जघन्येन॥॥ पल्योपम-असंख्येय-भागः॥ च अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटि पृथक्त्वैः॥॥ अभ्यधिकम्॥॥ असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि अप्रमत्त-अन्तानां॥ नानाजीव-अपेक्षया॥॥ न अस्ति॥ अन्तरम्॥॥ एकजीवं॥ प्रति जघन्येन॥॥ अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ सागरोपम-सहस्रं॥॥पूर्व कोटी पृथक्त्वैः॥॥अभ्यधिकं॥॥चतुर्णां॥ उपशमकानां॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्*

=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां =भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि एक सहस्र सागर प्रमाण (और) =पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक है ॥ असंयमी =सम्यग्दर्शनवालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवालेतिनतक अनेक जीवकी =अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवकी अपेक्षासे =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि सागरोपम =हज़ार और पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक है। चार [अपूर्वकरणसे उपशांतकषाय तक] =उपशम श्रेणीवालेनिका [अन्तर] नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप [कथन] वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नव वर्षसे नीचे है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तम् ॥ (३) कायानुवादेन-पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्तः ॥ वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवापेक्षया

एक जीवं ; प्रति* जघन्येन ;;;; अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। सागरोपम-सहस्रं ;;;; पूर्वकोटी-पृथक्त्वैः ;;;; अभ्यधिकम् ;;;; शेषाणाम् ;।

सामान्य-उक्तम् ;;;;

[३] काय-अनुवादेन ;। पृथिवी-अप्-तेजः-वायुकायिकानां ;। नानाजीव-अपेक्षया ;। अन्तरं ;;;; न-अस्ति T। एकजीवं ;। प्रति * जघन्येन ;;;; क्षुद्रभव-ग्रहणं ;;;; उत्कर्षेण ;। अनन्तकालः ;। असंख्येयाः ;। पुद्गलपरिवर्ताः ;। वनस्पतिकायिकानां ;। नानाजीव-अपेक्षया ;। अन्तरं ;;;; न अस्ति एकजीवं ;। अपेक्षया ;॥

=[चार उपशमश्रेणी वालोंका] एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कर्षकरि हजार सागर प्रमाण और तीनकरोड़ पूर्व से ऊपर
=नौकरोड़ [पूर्वसे] नीचे अधिक है। [पंचेन्द्रियों में] बचेहुये निका अर्थात अपूर्वकरण क्षपक अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसांपरायक्षपक, क्षीणकसायक्षपक अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]
=सामान्य [प्रकरणमें पहिले] कहा हुआ [गुणस्थान सदृश] है अर्थात चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है, उत्कृष्टकरि छह महीने हैं। एक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है। सयोग केवलियोंका नानाजीव की अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ [पृष्ठ २२५]
=(३) कायके कथनानुसारकरि भूमिकायिकके जलकायिकके, अग्निकायिकके
=वायुकायिकके नानाजीवोंकी अपेक्षा से अन्तर
=नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि सूक्ष्मभव ; श्वासका काल
=ग्रहण कियागया है। उत्कृष्टकरि अनंतकाल है सो असंख्यात
=पुद्गल परिवर्तन है। वनस्पति कायिकोंके नानाजीवकी
=अपेक्षा से अन्तर नहीं है। एकजीवकी अपेक्षा से

जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। उत्कर्षेणासंख्येया लोकाः ॥ एवं कायं प्रत्यन्तरमुक्तम्। गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥

जघन्येन ¦॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ¦॥
उत्कर्षेण ¦। असंख्येयाः ¦। लोकाः ¦।

=जघन्यकरि सूक्ष्मभव ($\frac{1}{18}$ श्वासकेकाल के बराबर अन्तर) लिया गया है।
=उत्कृष्टकरि असंख्यात लोक हैं अर्थात् "इहां असंख्यात लोक के प्रदेश हैं तेते कालके समय ग्रहण हैं" सर्वार्थ सिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ १०१

एवं* कायं¦। प्रति* अन्तरम्¦* उक्तम्¦* गुणं¦*
प्रति * उभयतः * अपि *
न * अस्ति T अन्तरम् ¦॥
त्रस-कायिकेषु ¦। मिथ्यादृष्टेः ¦।
सामान्यवत् *

=इस प्रकार कायकी अपेक्षा से अन्तर कहा गया। गुणस्थान की
=अपेक्षा से दोनों (पृथिवी-जल-अग्नि-पवन कायिकों में और वनस्पतिकायिकानि) में भी
=अन्तर नहीं है (क्योंकि उनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही है)
=त्रस (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय) कायिकों में मिथ्यादृष्टी का संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश्य (अन्तर) है (नाना जीवकी अपेक्षा) अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन १३२सागर है ॥

---

(१) गुण शब्द यद्यपि में पुल्लिङ्ग है परन्तु यहाँ पर गुणस्थानके लिये वृत्तिकार लाये हैं अतः गुणस्थान के सदृश हमने नपुंसक माना है

(२) पृथिव्यादि चतुर्णां वनस्पतिकायिकानां चास्ति नास्ति वा पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकास्तथा वनस्पतिकायिका उभयेऽपि मिथ्यादृष्टयो वर्तन्ते ॥

पृथिवी आदि-चतुर्णां ¦। वनस्पति कायिकानां ¦। च* = पृथिवी-जल-अग्नि-पवन (कायिकनि) चारोंका तथा वनस्पतिकायिकोंका
अन्तरं ¦॥ न अस्ति ततः * पृथिवी-अप् तेजः वायु = विरुद्धकाल नहीं है क्योंकि भूमि (कायिक) जल (कायिक) अनल (कायिक) पवन
कायिकाः । तथा* वनस्पतिकायिकाः¦। उभये ¦। अपि =कायिक और =तथा) वनस्पति कायिक दोनों (पृथिव्यादि चार और वनस्पति) में ही
मिथ्या दृष्टयः वर्तन्ते T मिथ्यादर्शनवाले जीव होते हैं अर्थात् पृथिवीकायिक,जलकायिक,अग्नि कायिक, पवन कायिक और वनस्पतिकायिकों में गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि सदैव इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही वर्तता है अथवा होता है ॥

सामादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तरमुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥

सामादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोः। = (उस कायि की अपेक्षा से) सासादन सम्यग्दृष्टि का और मिश्र गुणस्थान वालोंका
नानाजीव-अपेक्षया :। सामान्यवत्* = अनेक जीवों की अपेक्षा से संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम (अन्तर) है दोनों गुणस्थानोंका नानाजीव प्रति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभाग है)

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;।। पल्योपम-असंख्येय- = एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवें
भागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। द्वे ;।। सागरो- = भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि दो हजार सागर
पमसहस्रे ;। पूर्व कोटी-पृथक्त्वैः ;।। अभि-अधिके ;।। = प्रमाण (और) तीन से ऊपर नव से नीचे (=पृथक्त्व) करोड पूर्वकरि अधिक है ।
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अंतानां ;। = असंयमी सम्यग्दर्शनवालों से लेकर अप्रमत्तसंयमी तकनिका
नानाजीव-अपेक्षया ;। न अस्ति अन्तरं ;।। एकजीवं ;। = अनेक जीव की अपेक्षा से (कुछ) अंतर नहीं है एक जीव के
प्रति जघन्येन ;।। अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण ;। द्वे ;।। = लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो
सागरोपमसहस्रे ;।। पूर्वकोटी-पृथक्त्वैः ;।। अभि-अधिके ;। हजार सागर प्रमाण (और) तीन नौ के बीच (=पृथक्त्व) करोड पूर्व करि अधिक है
चतुर्णां ;। = चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)
उपशमकानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। सामान्यवत्* = उपशमश्रेणीवालों का नाना जीव की अपेक्षा से संक्षेप (से कथित अंतर) (वत्) है
जघन्य एक समय नाना जीव प्रति है उत्कृष्ट तीन से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;।। अन्तर्मुहूर्तः ;। = एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। द्वे ;।। सागरोपमसहस्रे ;।। = उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण (और)
पूर्व-कोटी-पृथक्त्वैः ;।। अभि-अधिके ;।। = पृथक्त्व (तीन से ऊपर नव से नीचे) करोड़ पूर्व अधिक है ।।

शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन-काययोगवाङ्मनसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

शेषाणां। पञ्चेन्द्रियवत्*

=[त्रसकायों में] बचे हुये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका, सयोगकेवलियोंका और अयोगकेवलियोंका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ] पञ्चेन्द्रिय सदृश है अर्थात् पंचेन्द्रियोंका अंतर पृष्ट २३५ के अनुसार संक्षेप में कथित गुणस्थान सदृश है इसलिये शेष उपर्युक्त त्रसकायोंका अन्तर गुणस्थान सदृश है सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि छः मास है । एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥

[४] योग-अनुवादेन। काय-वाङ्-मानस योगिनां ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयत-सम्यग्दृष्टि संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-सयोगकेवलिनां। नानाजीव-। अपेक्षया॥ एकजीव अपेक्षया। च अंतरम् ।॥ न अस्ति। सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोः नानाजीव-अपेक्षया। सामान्यवत्*

[४]योगकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी मिथ्यादर्शनवाले, असंयमी सम्यग्दर्शनवाले, देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी, सयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और [=च] एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है । सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका अनेकजीवकी विवक्षासे संक्षेप (विषयमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृ० २२३)

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च सामान्यवत्॥ (५) वेदानुवादेन—स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पंचपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि॥

एक जीवं ;। प्रति* न अस्ति-अन्तरं ;॥। चतुर्णां ;।
उपशमकानां । नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*

एक जीवम् ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम्;॥।
चतुर्णाम् ;।
क्षपकाणाम् ;। च* अयोगकेवलिनाम् ;।
सामान्य-वत्*

[५] वेद-अनुवादेन ;। स्त्री वेदेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्तिअन्तरं ;॥। एक जीवं ;।
प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ।
देशोनानि ;॥। पञ्चपञ्चाशत् ;। पल्योपमानि ;॥।

(सासदन सम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थान वाले मन-वचन-काय योगवाले की)
=एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ चार
(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म साम्पराय-उपशांतकषाय)
=उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्ष से ऊपर नौसे नीचे है (पृ०२२४)
=एक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
=चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)
=क्षपकश्रेणी वालों का और (=च) अयोगकेवलियों का (अन्तर)
=संक्षेप (प्रकरण) में (पूर्व कथित गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ विरहकाल नहीं है [पृष्ठ २२५]
=[५] वेदकी अपेक्षा से स्त्री वेदमें मिथ्या दृष्टीका
=अनेक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है। एक जीवकी
=अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
=कुछहीन पचपन पल्यके तुल्य है॥

...दनम्...मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमा-...तोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम् ॥ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया

सासादन सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥
नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत*

=(स्त्रीवेदी) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका (अन्तर)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)

एकजीवं॥ प्रति* जघन्येन॥ पल्योपम-असंख्येय-भागः॥ च अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ पल्योपम-शत-पृथक्त्वम्॥॥ असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त अन्तानां॥ नाना-जीव-अपेक्षया अन्तरं॥॥ न-अस्ति एकजीवं॥ प्रति* जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ पल्योपम-शत पृथक्त्वम् ॥॥ द्वयोः॥ उपशमकयोः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत*

=एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
=भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि पल्योपम
=तीनसौ से ऊपर और नौसौ के भीतर है । असंयत सम्यग्दृष्टी से
=अप्रमत्त संयमी तकनिका अनेक जीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है । एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कृष्टकरि पृथक्त्व शत (तीनसौसे ऊपर नौसौसे न्यून) पल्योपम है
दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणी वालोंका नानाजीव प्रति संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) तुल्य (अन्तर) है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन और नौ वर्ष के भीतर है

एकजीवम्॥ प्रति* जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ पल्योपम-शत-पृथक्त्वम् ॥॥ द्वयोः॥ क्षपकयोः॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥॥

एकजीवके प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कृष्टकरि तीनसौ पल्यसे ऊपर नौसौसे नीचे है (स्त्रीवेदी) दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षा से

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य सम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनामप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।

जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। वर्ष-पृथक्त्वम् ;॥ एकजीवं ;। प्रति-अन्तरम् ;॥ न*-अस्ति T पुंवेदेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। सामान्य-वत्*

=जघन्यकरि एक समय है । उत्कर्षकरि वर्ष
=तीन से ऊपर नौ से हीन है । एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल
=नहीं है । पुरुषवेद में मिथ्यादृष्टी का संसेर (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात मिथ्यादृष्टी पुरुषवेदी का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है एक जीव के लिए जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ ऊन एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*

=(पुरुषवेदमें) सासादन गुणस्थान और मिश्र गुणस्थान वालों का (अन्तर)
=अनेक जीव की अपेक्षा से संसेर (में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है (पृ० २२२, २२३)

एकजीवं प्रति*जघन्येन ;। पल्योपम-असंख्येय-भागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ;॥

=(पुरुषवेदी सासादन मिश्रवाले का) एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपम के
=असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (अन्तर)
=तीन सौ सागर प्रमाण से अधिक और नौ सौ से नीचे (शतपृथक्त्व) है

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न* अस्ति T अन्तरम् ;॥

=(पुरुषवेदी) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले से अप्रमत्त गुणस्थान तकनिका
=अनेक जीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।

=एकजीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । द्वयोःक्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येकः समयः । उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादिनिवृत्युपशमकान्तानां

उत्कर्षेण ;। सागरोपम-शत-पृथक्त्वम् ;॥।
द्वयोः ;। उपशमकयोः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत् *

एक-जीवम् ;। प्रति * जघन्येन ;। अंतर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। सागरोपमशत-पृथक्त्वम् ;॥।
द्वयोः ;। क्षपकयोः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।
उत्कर्षेण ;। संवत्सरः ;। स-अतिरेकः ;। एक जीवं ;।
प्रति * न * अस्ति + अन्तरम् ;॥। नपुंसकवेदेषु ;।
मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव अपेक्षया ;॥ न अस्ति अंतरं ;।
एक जीवं ;। प्रति * जघन्येन ;। अंतर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। त्रयस्त्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि ;॥।
देशोनानि ;॥। सासादन-सम्यग्दृष्टि-आदि
अनिवृत्ति-उपशमक-अन्तानां ;।

=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (बीच तीन और नौ) सौ सागरके तुल्य है
=दो (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) उपशम श्रेणीवालेनिका (अन्तर)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रकरणमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है
अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट वर्ष तीनसे ऊपर नौ से नीचे है
=एक जीवके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अंतर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीनसे ऊपर नवसे नीचे) शतसागर तुल्य है
=(पुरुषवेदमें) दो (अपूर्व करण–अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका
=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
=उत्कर्षकरि कुछ अधिक एक वर्ष अर्थात् अठारह महीना है एक जीवके
=लिये विग्रहकाल नहीं है ॥ नपुंसक वेदमें
=मिथ्यादर्शनवाले का अनेक जीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
=एक जीवके लिये जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टिकरि तेतीस सागरोपम
=कुछ घाटि है ॥ (नपुंसक वेदमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेसें
=अनिवृत्तिकरण (गुणस्थानवर्ती) उपशम श्रेणीवाले पर्यन्तनिका (अन्तर)

सामान्योक्तम् ॥ द्वयोः क्षपकयोः स्त्रीवेदवत् ॥ अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । एकजीवं प्रति जघन्यमन्तर्मुहूर्तः ॥

सामान्य-उक्तम् ॥॥

=संक्षेप (विषय) में कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि तीन वर्ष से अधिक नौ वर्ष से घाटि है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है

द्वयोः॥ क्षपकयोः॥
स्त्री-वेदवत*

=(नपुंसक वेद में) दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका
=स्त्रीवेद (में कथित क्षपक श्रेणी वालों के विरहकाल के) सदृश है अर्थात

अपगतवेदेषु॥ अनिवृत्तिबादर-उपशमक-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशमकयोः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥॥ सामान्य-उक्तम् ॥॥

नानाजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
=वेदवर्जितनि में अनिवृत्तिबादर (नवम गुणस्थान) उपशम वाले
=(तथा) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वालोंका (विरहकाल) अनेक जीवकी
=विवक्षा से संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत) है अर्थात जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ठ २२४)॥ यहां पर नवमें गुणस्थान के अन्त के तीन वेदरहित भागों की अपेक्षा से है (देखो पृष्ठ ८७)

एकजीवं॥ प्रति जघन्यम् ॥= उत्कृष्टः च॥ अन्तर्मुहूर्तः॥॥

=एकजीव की अपेक्षा जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है

(१) जघन्य शब्द पृष्ठ २२१ में " जघन्य शब्दोऽल्पवचनः समयः वाक्यमें पुल्लिंग है इसमें नपुंसक अतः इसने कहीं नपुंसकमें कहीं पुल्लिंगमें लिखा है

उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥
(६) कषायानुवादेन – क्रोधमानमायालोभकषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत् ॥

उपशान्तकषायस्य ; नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*

एक जीवं ;। प्रति* न* अस्ति T अन्तरम् ;॥॥
शेषाणां ;।

सामान्यवत्*

(६) कषाय-अनुवादेन ;। क्रोध-मान-माया लोभ-कषायाणां ; मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्ति-उपशमक-अन्तानां ;। मनः (=मनस) योगिवत्*

=(वेद वर्जितों में) उपशान्तकषाय (ग्यारहवां) गुणस्थानवालेका अनेक जीव की
=अपेक्षासे (विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश है
अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
=एक जीवके लिये विरहकाल अथवा अन्तर नहीं है
=(वेदरहितोंमें) शेष वा बचेहुये (क्षपकश्रेणीके अनिवृत्ति नवम गुणस्थान के छहभागों में से अन्तके वा पिछले तीन वेदरहित भागवाले—सूक्ष्म साम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय क्षपक, सयोगकेवलि और अयोगकेवलि) निका (विरहकाल)
=संक्षेप (प्रसंग में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृशहै अर्थात् चारक्षपक श्रेणीवालों-का और अयोगकेवलियों का नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छहमास है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है सयोगकेवलियों का नानाजीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है
=(६) कषायके कथनानुसारकरि-क्रोध-मान-माया (=कपट) लोभ
=कषायोंवालों का मिथ्यादर्शनवाले से अनिवृत्तिकरण उपशमवाले
=(नवमां गुणस्थान) तकनिका मनोयोगी सदृश है अर्थात

द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण संवत्सरः सातिरेकः ॥ केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् ॥

(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथा) संयतासंयत (पांचवां) प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । (चार कषायवाले) सासादन-सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवाले (दोनों) का अनेक जीवके लिये अघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३) एक जीवकी अपेक्षासे (इन दोनों गुणस्थानोंमें) अन्तर नहीं है । (क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) अपूर्वकरण उपशमक और अनिवृत्तिकरण उपशमकका अन्तर अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचे है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है (पृष्ठ २३८,२३९)

द्वयोः ‖ =(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) दो (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण)

क्षपकयोः ‖ नाना-जीव-अपेक्षया ‖ जघन्येन ‖ =क्षपक श्रेणीवालोंका अनेकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि

एकः समयः उत्कर्षेण ‖ संवत्सरः ‖ स-अतिरेकः ‖ =एक समय है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक एक बरस है

केवल-लोभस्य ‖ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकस्य ‖ =केवल (संज्वलन) लोभकषायधारी सूक्ष्मसाम्पराय उपशम श्रेणीवालेका

नाना-जीव-अपेक्षया ‖ सामान्यवत* =अनेकजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रकरणमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नौसे नीचे वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं ‖ प्रति* न* अस्ति अन्तरम् ‖ ‖ तस्य ‖ =एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । तिस (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान)

क्षपकस्य ‖ सामान्यवत* =क्षपक श्रेणीवालेका संक्षेप (प्रकरणमें कहा हुआ गुणस्थान) वत् है अर्थात्

अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्॥ शेषाणां त्रयाणा
मसामान्यवत्॥ [७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया
च नास्त्यन्तरम्॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया

जघन्य एक समय उत्कृष्ट छैमास है। एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है।

अकषायेषु ¦। उपशान्तकषायस्य ¦। नानाजीव-अपेक्षया ¦।। सामान्यवत् ❀

=कषाय वर्जतनि में उपशांतकषायगुणस्थानवालेका अनेक जीवकी =अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

एक जीवं ¦। प्रति ❀ न अस्ति अन्तरम् ¦।।। शेषाणां ¦। त्रयाणां ¦।

=एक जीवके लिये वियोगकाल नहीं है। बचे हुए अथवा अवशेष =तीन (क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती तेरहवां गुणस्थान में सयोग-केवली और चौदह गुणस्थानविषें अयोग केवली) निका

सामान्य-वत् ❀

=(विरहकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पहले कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थान वालोंका और अयोग केवलियों का नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छैमास है। इन्हीं गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है। सयोग केवलियों का नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (पृ० २२५)

[७] ज्ञान-अनुवादेन ¦। मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंग-ज्ञानिषु ¦। मिथ्यादृष्टेः ¦। नाना जीव-अपेक्षया ¦।। च एक जीव अपेक्षया ¦।। न ❀ अस्ति ❀ अन्तरम्¦।।। सासादनसम्यग्दृष्टेः ¦। नानाजीव-अपेक्षया ¦।।

=[७] ज्ञानके अनुवादकरि मति-अज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधि– =ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे और (=च) =एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है

=(उक्ततीन कुज्ञानियोंमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका नानाजीव अपेक्षासे

सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णाम्

सामान्य-वत् ❀

=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पल्यका असंख्यातवांभाग है पृ० २२३

एक जीवं ;। प्रति * न * अस्ति T अन्तरम् ;॥

=एक जीवकी अपेक्षा (=प्रति) विरहकाल वा अन्तर नहीं है

आभिनिबोधिक-श्रुतअवधिज्ञानिषु ;। असंयत-

=मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानियों में अविरत

सम्यग्दृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥

=सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल नहीं है

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;

=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षण ;। पूर्वकोटी ;। देशोना ;॥ संयतासंयतस्य ;।

उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (उक्त तीनों ज्ञानियोंमें) देश संयमीका

नाना जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एकजीवं ;।

=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है । एक जीवकी

प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।

=अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

स-अतिरेकाणि ;॥॥ षट् षष्टि-सागरोपमणि ;॥॥ प्रमत्त-

=कुछ अधिक छासठि सागर प्रमाण है । (उक्त तीनोंज्ञानियों में) प्रमत्त

अप्रमत्तयाः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ अन्तरम् ;॥॥

=और अप्रमत्त गुणस्थानवालोंका नानाजीव की अपेक्षा से अन्तर

न अस्ति एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।

=नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ;। सातिरेकाणि ;॥॥ त्रयस्त्रिंश त्सागरोपमाणि ;॥॥

=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है

चतुर्णाम् ;।

=(मति-श्रुत-अवधि ज्ञानियों में) चार (आठवां अपूर्वकरण, नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय),(ग्यारहवां उपशांतकषाय गुणस्थान)

"उपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥

उपशमकानाम् ;। नाना-जीव अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* =उपशम श्रेणीवर्तीयों का नाना जीवकी अपेक्षा से संक्षेप (में उक्त) सम है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। स-अतिरेकाणि ;॥। षट्षष्टि-सागरोपमाणि ;॥। =एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि =कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है

चतुर्णां ;। क्षपकाणां ;। =(मति श्रुतज्ञानियोंमें चार क्षपकश्रेणी (आठवां अपूर्वकरण नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, बारहवां क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का

सामान्यवत्* =(विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अनेक जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)

किन्तु* अवधिज्ञानिषु ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। वर्ष-पृथक्त्वम् ;॥॥ एकजीवं ;· प्रति न अस्ति अन्तरम् मनः पर्यय-ज्ञानिषु ;। प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ;। नानाजीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ;। प्रति* जघन्यम् ;॥॥ उत्कृष्टः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। =परन्तु अवधिज्ञानियों में (क्षपक श्रेणियोंका विरह काल)अनेक जीवकी =अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि =पृथक्त्व (मध्य तीन और नव) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है =मनः पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमियों का =अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की =अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् ॥ द्वयोः केवलज्ञानिनोः सामान्यवत् ॥ (८) संयमानुवादेन-सामायिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णाम् ; उपशमकानां ;।
नानाजीव-अपेक्षया ;॥
सामान्य-वत्*

=(मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण
=सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से
=संक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (विरहकाल) है
अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी ;॥ देशोना ;॥ चतुर्णां ;।
क्षपकाणाम् ;
अवधिज्ञान-वत्*

=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार
=क्षपकश्रेणी (अपूर्वकरणसे सूक्ष्मसाम्परायतक और क्षीणकषाय गुणस्थान) वालोंका
=(विरह काल) अवधिज्ञानियों के सदृश है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से
जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्ववर्ष है एक जीव प्रति अन्तर नहीं
है (देखो पृष्ठ २४८)

द्वयोः ; केवलज्ञानिनोः ;। सामान्य-वत्*

=दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में उक्त गुणस्थान) सम है
अर्थात् अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट
छह मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है । सयोग केवलियोंका नाना
जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)

[८] संयम-अनुवादेन ;। सामायिक—च्छेदोपस्थापन-

=(८) संयम के कथनानुसारकरि सामायिक और च्छेदोपस्थापन

सर्वार्थ-

शुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् ॥

२५८

(१) शुद्धिसंयतेषु ; प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ; नाना-जीव-अपेक्षया ;।। न*अस्ति अन्तरम् ;।।। एकजीवं प्रति*जघन्यम् ;।।। उत्कृष्टं ;।।। च*अन्तर्मुहूर्तः ;। द्वयोः ; उपशमकयोः ;

= शुद्धिसंयमियों में प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका अनेक = जीवकी अपेक्षा से विरहकाल (अन्तर) नहीं है एकजीव के =लिये जघन्य और (= च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है = (सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों में) दो उपशमश्रेणी (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वालों का (विरहकाल)

नानाजीव ;।। अपेक्षया ;।। सामान्यवत*

=नाना जीव की विवक्षासेसंक्षेप (विषय में उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट मध्यतीन और नौ वर्ष के है (पृष्ठ २२४)

एक-जीवं ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी ;।। देशोना ;। द्वयोः ;। क्षपकयोः ;। सामान्यवत्*

=एक जीव कीअपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है =उत्कृष्टकरि कुछहीन (एक) करोड पूर्व है । (उपर्युक्त दो शुद्धिसंयमियों में) =दो क्षपक श्रेणि (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वर्तियों का =(वियोगकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव केलिये जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट छै मास है । एकजीवके लिये अन्तर नहीं है

(१) सामायिक और छेदोपस्थापन संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, गुणस्थानों में होते है । परिहार विशुद्धि संयम, प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानों में, सूक्ष्म साम्पराय संयम दशवां सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में और यथाख्यात संयम उपशांतकषायसे अयोग केवलि तक चार गुणस्थानों में होता है ॥

परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्योत्कृष्टेन मिद्धि
न्तर्मुहूर्तः ॥ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्य-
न्तरम् ॥ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् ॥ यथाख्याते अकषायवत् ॥

परिहार-विशुद्धिसंयतेषु; प्रमत्त-अप्रमत्तयोः;।
नाना-जीव-अपेक्षया;॥ न* अस्तिअन्तरम्;॥॥
एकजीवं प्रति जघन्यम्;॥॥ उत्कृष्टे ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु;। उपशमकस्य;।
नाना-जीव-अपेक्षया;॥ सामान्यवत्*

एकजीवं; प्रति* न* अस्तिT अन्तरम्;॥॥
तस्य;। क्षपकस्य;। एव*
सामान्य-वत्=

यथाख्याते;। अकषायवत्*

=परिहारविशुद्धिसंयमियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका
=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल वा अन्तर नहीं है ।
=एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति) जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है
=सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमियोंमें उपशमश्रेणीवालेका (विरहकाल)
=अनेकजीव प्रति संक्षेप (विषयमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर
एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
=एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति=अपेक्षासे) वियोगकाल नहीं है
=तिस (सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी) क्षपकश्रेणी वालेका ही (अन्तर)
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य
एक समय है । उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है
=यथाख्यातसंयममें (विरहकाल) कषाय (वर्जित)
(उपशांतकषाय-क्षीणकषाय सयोगकेवली-अयोगकेवली) निके समान है अर्थात् कषाय
रहितमें उपशांतकषायवालेका नानाजीव प्रति गुणस्थानवत् है (पृष्ठ २४६)
(=जघन्य अन्तर एक समय है । उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्॥

संयतासंयतस्य ; नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ च
एकजीव-अपेक्षया न-अस्ति अन्तरम् असंयतेषु ॥
मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया न अस्ति अन्तरम् ;॥॥
एकजीवं ; प्रति* जघन्येन ; अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ; त्रयस्त्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि देशोनानि
शेषाणां ; त्रयाणां ;।
सामान्यवत्*

(अकषायेषु) शेषाणां त्रयाणां सामान्य (गुणस्थान) वत् (पृष्ठ २४६) इस वाक्य का भावार्थ यह है कि कषायरहितनिर्मे क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तीका और अयोग केवलियों का (अन्तर)नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है। उपर्युक्त दो गुणस्थानों में एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है। कषाय वर्जितनि में सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)॥

=संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थान वाले) का अनेक जीवकी अपेक्षासे और (=च)
=एक जीवकी अपेक्षा से विरह काल अथवा अन्तर नहीं है। असंयमियों में
=मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस सागर प्रमाण है
=(असंयमियों में) बचे हुये तीन (सासादन-मिश्र-असंयत गुणस्थान वाले) निका
=(वियोगकाल=अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में प्रथम कहा हुआ गुणस्थान) सम
है अर्थात सासादन सम्यग्दृष्टी का अन्तर अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवांभाग है उत्कृष्ट कुछहीन अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है (पृष्ठ २२३) मिश्रगुणस्थानवर्ती का अन्तर (असंयमियों में) नाना जीवकी अपेक्षा से

(९) दर्शनानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ सामान्यवत्*

= (९) दर्शन के कथनानुसारकरि चक्षुर्दर्शन वालोंमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर) = संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन एकसौबत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२२)

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत्*

= (चक्षुर्दर्शन वालोंमें) सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुणस्थानवालोंका = (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप में (पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवांभाग है (देखो पृष्ठ २२३)

एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ पल्योपम असंख्येयभागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोने ॥॥ द्वे ॥॥ सागरोपमसहस्रे ॥॥ असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥॥ अन्तरं ॥॥

= एकजीव की अपेक्षा (=प्रति) जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवांभाग = और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछघाटि दो हजार = सागर माण है । (चक्षुर्दर्शनवालों में) अविरतसम्यग्दृष्टि से =अप्रमत्त (सातवें गुणस्थानवर्तियों तक) निका अनेकजीवकी अपेक्षासे अन्तर जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन से कुछ घाटि है । असंयत-सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछहीन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है(देखो पृष्ट २२३-२२४)

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण द्वे सागरोपममहस्रे देशोने ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम् ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

न अस्ति एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। =नहीं है एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त।
उत्कर्षेण ;। देशोनं ;॥। द्वे ;॥। सागरोपमसहस्रे ;॥। =उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दो हज़ार सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ;. उपशमकानां ;। =(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार उपशमश्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय (उपशांतकषाय) वालों का
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* =(अन्तर) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व (मध्य तीन और नौ) वर्ष है (पृ० २२४)
एकजीवं ;. प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। =एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। देशोने ;॥। द्वे ;॥। सागरोपमसहस्रे ;॥। =उत्कृष्टकरि कुछ हीन दो सहस्र सागर प्रमाण है
चतुर्णां ;। क्षपकाणां ;। =(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार क्षपक श्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-(क्षीणकषाय)वालोंका
सामान्य-उक्तम् ;॥। =(अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में) वर्णित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् नाना जीव की अपेक्षा जघन्य एकसमय है। उत्कृष्ट छैमास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है (पृ० २२५)
अचक्षुर्दर्शनिषु;। मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां ;। सामान्य-उक्तम् ;॥ अन्तरम् ;॥। =अचक्षुर्दर्शन वालों में मिथ्यादृष्टि से (=आदि) क्षीणकषाय गुणस्थानवाले =पर्यन्तनिका संक्षेप (प्रसंग में पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत) अन्तर है अर्थात् मिथ्यादृष्टी अचक्षुर्दर्शनवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है

---

(१) चक्षुर्दर्शन वाले जीव और अचक्षुर्दर्शन वाले जीव भी प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थानों में होते हैं।

प्रथमोऽध्यायः

२५५

अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत् ॥

एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछघाटि एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है। अचक्षुर्दर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य पल्यके असंख्यातवां भाग है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन है। अचक्षुर्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्तियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुर्दर्शनवाले अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ अचक्षुर्दर्शनवाले चार उपशम श्रेणी (आठवां-नवमां-दशमां-ग्यारहवां—गुणस्थान) वालोंका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है॥ चार क्षपक श्रेणी (अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां सूक्ष्मसाम्पराय दशमां क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान) वालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह मास है एकजीवके लिये अन्तर नहीं है।

अवधि-दर्शिनः॥ =अवधि दर्शनवालोंका (विरहकाल अर्थात् अन्तर)

अवधि-ज्ञानिवत्* =अवधि-ज्ञानियोंके सदृश है अर्थात् अवधिदर्शन वाले (=अवधिज्ञानवाले) असंयत सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड़ पूर्व है॥ अवधि दर्शनवाले संयमा संयमीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

(१) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधिज्ञान, मिथ्यात्वप्रथम, सासादन दूसरे गुणस्थानोंमें होता है। मिश्रगुणस्थानमें तीन अज्ञान और तीनज्ञान नीरक्षीर सम मिले हुये हैं (पृष्ठ ८८, ८९ की टिप्पणी देखो)। * अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चौथेसे बारहवां गुणस्थान तक है और मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारहवां गुणस्थान तक है॥

केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसद्दृष्ट्योः नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है ॥ (अवधिदर्शनवाले) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका नाना जीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है । (अवधिदर्शनवाले वा अवधिज्ञानवाले) चार उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे गुणस्थानवत् है (जो पृष्ट २२४ के अनुकूल) जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वरससे ऊपर और नौ वर्षके नीचे (=पृथक्त्व वर्ष) है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक छयासठि सागर प्रमाण है (अवधिदर्शनवालोंमें अवधिज्ञानवालोंमें) चार उपशम श्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व वर्ष है । एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । (देखो पृष्ट २४७-२४८)

केवलदर्शनिनः ॥ केवलज्ञानिवत्* =केवल दर्शनवालोंका (वियोगकाल) केवलज्ञानी (सयोग केवली और अयोग केवली) सदृश है अर्थात सयोगकेवलीका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । अयोग-केवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छमास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ (देखो पृष्ठ २२५)

[१०] लेश्या-अनुवादेन॥ कृष्ण-नील-कापोत-लेश्येषु ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसद्दृष्ट्योः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥ =लेश्याके कथनानुसारकरि कृष्ण-नील-कापोत लेश्याधारकों में मिथ्यादर्शन प्रथम गुणस्थानवाले और =असंयमी वा अविरत चौथे गुणस्थानवालोंके अनेक जीवकी =अपेक्षासे अन्तर (अर्थात विरहकाल-वियोगकाल-विछोहकाल) नहीं है

---

*) कृष्ण, नील कापोत लेश्यायें मिथ्यात्वसे असंयत तक, पीत-पद्म लेश्यायें मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक, शुक्ल मिथ्यात्वसे सयोगी तक है ।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एक-जीवं ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।	=एकजीवके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। त्रयस्त्रिंशत् ;।।	=उत्कृष्टकरि (सातवां नरककी अपेक्षासे कुछ न्यून) तेतीस (सागर प्रमाण)
सप्तदश ;।। (सप्तदश ;।-सप्तदश ;।)	=(और पांचवां नरककी अपेक्षासे कुछ हीन) सत्रह (सागर प्रमाण)
सप्त ;।। (सप्त ;।।-सप्त ;।) सागरोपमाणि ;।। देशोनानि	=(और तीसरे नरककी विवक्षासे) कुछघाटि सात सागर के बराबर है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;।	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावर्तियोंमें) सासादनसम्यग्दृष्टी, मिश्रगुणस्थान वालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ;।। सामान्य-वत्*	=(विरहकाल) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् जघन्य अन्तरकाल एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है
एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। पल्योपम-असंख्येय-	=एकजीवके लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
भागः ;। च*अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि (सातवां नरकमें कुछ हीन)
त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-	=तेतीस (सागर प्रमाण) और (पांचवां नरक प्रति कुछ न्यून) सत्रह (सागर)
सप्त-सागरोपमाणि ;।।। देशोनानि ;।।।	=(तीसरे नरककी अपेक्षा से) कुछ घाटि सात सागर प्रमाण (विरहकाल) है
तेजःपद्मलेश्ययोः ;। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ;।	=पीत-पद्म-लेश्यावालों में मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टियों में
नाना-जीव-अपेक्षया ;।।नञ्*अस्ति 'T' अन्तरम् ;।।।	=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर काल नहीं है
एक-जीवं ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। द्वे ;।।। सागरोपमे ;।।। च स-अतिरेकाणि ;।।।	=उत्कृष्टकरि दो सागर प्रमाण है। और (=च) कुछ अधिक
अष्टादश ;।।। सागरोपमाणि ;।।।	=अठारह सागर प्रमाण है ॥

(१) टिप्पणि पृष्ठ १२१ पर देखो (२) टिप्पणि पृष्ठ १७६ पर देखो ॥ (३) इस शब्द को समास मानकर अन्तमें समस्त वाक्य प्रथमा विभक्ति [illegible]

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमा-
संख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ संयतासंयत-
प्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयत-
सम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि
देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो-

सासादन-
सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्य-वत्*
=(पीत-पद्मलेश्यावर्तियों में) सासादन
=सम्यग्दृष्टीका और मिश्र (तीसरे) गुणस्थानवर्तियोंका (अन्तरकाल)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है
अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)

एक-जीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। पल्योपम-असंख्येय-
भागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। द्वे ;॥
सागरोपमे ;॥ च सातिरेकाणि अष्टादश ;॥ सागर
उपमाणि ;॥ संयतासंतय-प्रमत्त-
अप्रमत्त संयतानां ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥
च एक-जीव-अपेक्षया ;॥ न* अस्ति† अन्तरम् ;॥
शुक्ललेश्येषु ;। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥ एक-
जीवं ;। प्रति जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।
देशोनानि ;॥ एकत्रिंशत् ;॥ सागर-उपमाणि ;॥
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ;।
=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
=भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (कुछ अधिक) दो सागर
=प्रमाण और (कुछ अधिक) अठारह सागर
=प्रमाण है । (पीत-पद्मलेश्यावालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी और
=अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीव अपेक्षासे
=और एकजीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
=शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादर्शनवाले और असंयमीसम्यग्दृष्टियोंका
=अनेकजीवकी विवक्षासे विरहकाल (=अन्तरकाल) नहीं है । एक
=जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि न्तर्मुहूर्त है उत्कर्षकरि
=कुछघाटि इकतीस सागर प्रमाण है
=(शुक्ललेश्याके धारक) सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका

नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत् ॥ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ अयदोत्ति छलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदातिये ॥ तत्तो दु

नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्य-वत्*

एक-जीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। पल्योपम-असंख्येय-भागः ;। च* अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। देशोनानि ;॥॥ एकत्रिंशत् ;॥ सागरोपमाणि ;॥॥ संयतासंयत-प्रमत्तसंयतयोः ;। तेजः लेश्यावत्*

अप्रमत्तसंयतस्य ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न* अस्ति ;। अन्तरम् ;॥। एकजीवं ;। प्रति* जघन्यम् ;॥॥ उत्कृष्टं ;॥॥ च अन्तर्मुहूर्तः ;। अयदोत्ति (=अयदो ;। त्ति* =असंयतः ;। इति*) छलेस्साओ (=छ-लेस्साओ ;॥ =षड् ;॥ लेश्याः ;॥।) सुहतियलेस्सा (=सुहतियलेस्सा ;॥ =शुभत्रयलेश्या ;॥) हु देसविरद-(=हु* देसविरद- =हि* देशविरत-) तिये ॥ तत्तो दु(=तिये ;॥॥ तत्तो*दु*=त्रये ;॥।ततः*तु)

=नानाजीवकी विवक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है
=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
=भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
=इकतीस सागर प्रमाण है । (शुक्ललेश्यावाले) देशसंयमी और
=प्रमत्तसंयमियों का (विरहकाल) पीतलेश्यावालों के सदृश है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति कुछ अन्तर नहीं है (पृष्ठ २५८)
=(शुक्ललेश्यावाले) अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थानवर्तीका) अनेक जीवकी
=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक जीवके
=लिये जघन्य और (=च) उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥
=असंयत(मिथ्यात्व-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-अविरत चार गुणस्थानों)तक (=इति)
=छहों (कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या हैं ॥
=शुभ अथवा प्रशस्त तीन (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या
=ही (=हु =हि) देशविरत वा संयतासंयत (पांचवें)
=प्रमत्त विरत (छठे) अप्रमत्त विरत (सातवां इन) तीन गुणस्थानों में है । किन्तु
(=दु=तु) तहां (अप्रमत्त) से (आगे अपूर्वकरण आदि असयोगकेवली तक

जैसे रमाओ रमा-रमाऊ प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमें रमा शब्दके रूप हैं वैसेही लेस्सा शब्द के लेस्साओ लेस्सा तथा लेस्साऊ रूप हैं ॥

सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥ १ ॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य च नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥

सुक्कलेस्सा अजोगि-सुक्कलेस्सा; अजोगि- = शुक्कलेश्या अयोगि- = शुक्कलेश्या है । अयोगी

ठाणं अलेस्सं तु (ठाणं ॥ अलेस्सं ॥ तु-स्थानं अलेश्यं तु) = गुणस्थान लेश्या (कषाय मिश्रित योग की प्रवृत्ति) रहित है (क्योंकि वहां योग और कषायका अभाव है) अर्थात् कृष्ण-नील- कापोत लेश्यायें मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत गुणस्थानों तक है । पीत (=तेजो) पद्म लेश्यायें मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत-संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों तक हैं और शुक्ल-लेश्या, मिथ्यात्व–सासादन–मिश्र–अव्रत–अणुव्रत–प्रमत्त-अप्रमत्त-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली गुणस्थानों तक है परन्तु योग और कषाय के न होने से अयोग केवली के कोई भी लेश्या नहीं है ॥

त्रयाणाम् ; = (शुक्कलेश्या में) तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय)

उपशमकानां ; नाना-जीव-अपेक्षया ; = उपशमश्रेणीवालोंका (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे

सामान्य-वत्* =संक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि तीन वर्ष से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है ॥

एकजीवं ; प्रति जघन्यम् उत्कृष्टं च अन्तर्मुहूर्तः ; =एक जीव के लिये जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है (पृष्ठ २२४)

उपशांतकषायस्य ; नाना-जीव-अपेक्षया ; = (शुक्कलेश्या में) उपशांतकषाय वाले का (अन्तर काल) नाना जीवकी अपेक्षासे

सामान्यवत्* =संक्षेप (विषय में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान वा सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कर्ष पृथक्त्व (तीन से अधिक नव के नीचे) वर्ष है

एकजीवं ; प्रति* न* अस्ति ; अन्तरम् ; = एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल (=अन्तर) नहीं है

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन–भव्येषु मिथ्यादृष्ट्य-
द्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

चतुर्णाम् ‡।

=(शुक्ललेश्यामें) चार
(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषाय गुणस्थान)

क्षपकाणाम् ‡। सयोगकेवलिनाम् ‡। अलेश्यानाम् ‡। च • सामान्य-वत्*

=क्षपकश्रेणीवालोंका सयोगकेवलियोंका और लेश्या रहित (अयोगी) निका
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् चार उपर्युक्त क्षपकश्रेणीवालोंका और सयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय (अन्तर) है उत्कृष्ट छै मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ सयोगकेवलियोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)

[११] भव्य-अनुवादेन ‡। भव्येषु ‡। मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ‡। सामान्य-वत्*

=(११) भव्यजीवोंके कथनानुसारकरि भव्यजीवोंमें मिथ्यादर्शनवालेसे (आदि) =अयोगकेवली पर्यंतोंका (अन्तर) संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् भव्यजीवोंमें मिथ्यादृष्टिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीव प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है। भव्यजीवोंमें सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य पल्यके असंख्यातवां भाग है। उत्कृष्ट आधा पुद्गल परिवर्तनसे कुछ घाटि है ॥ भव्य जीवोंमें मिश्रगुणस्थानवर्तीका अन्तर नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवांभाग है। एक जीवके लिये जघन्य एक समय है उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है ॥

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेनक्षायिक-सम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसँयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

भव्य जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधा पुद्गल परिवर्तन है ॥

भव्य जीवों में चार उपशमश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है । एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है ॥ भव्य जीवोंमें चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ भव्य जीवोंमें सयोग केवलियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ (पृष्ठ २२२—२२५)

अभव्यानाम् ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ च एक-जीव-अपेक्षया;॥ न अस्ति अन्तरम् [१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ;। असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एकजीवं प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। देशोना ;॥ पूर्व-कोटी ;॥ संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;। नाना-जीव अपेक्षया ;॥ न*अस्ति ;। अन्तरम् ;॥॥

=अभव्य जीवों का अनेक जीवकी विवक्षा से और एक जीवकी
=अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है ॥ (१२) सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा से
=क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक
=जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये
=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
=एक करोड पूर्व है । (क्षायिक सम्यग्दर्शनविषे) संयमासंयमी प्रमत्तसंयमी
=अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से
=विरहकाल नहीं है ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ शेषाणां सामान्यवत् ।

एक-जीवम् ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। स-अतिरेकाणि ;॥। त्रयस्त्रि -सागर-
उपमाणि ;॥। चतुर्णाम् ;।

उपशमकानाम् ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;।
सामान्य-वत्*

= एक जीवकी अपेक्षासे (= प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
= उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
= प्रमाण (= उपम) है ॥ (क्षायिक सम्यग्दर्शन में) चार
(अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान)
= उपशमश्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे
= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान)सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य
एक समयहै उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपर नौ से नीचे(वर्ष) है (पृष्ठ २२४)

एक-जीवम् ;। प्रति*जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। स-अतिरेकाणि ;॥। त्रयस्त्रिंशत्सागर-
उपमाणि ;॥। शेषाणाम् ;।

सामान्यवत् *

= एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
= उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
= प्रमाण (= उपम) है ॥ अवशेष अथवा बचेहुये
(चार क्षपकश्रेणी वाले सयोग केवली और अयोग केवली) निका
= संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान (अन्तर) है अर्थात्
चार क्षपकश्रेणी वालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षासे
जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मासहै । एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥
सयोग केवलियोंका नाना जीव और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥

(*. उपशामकत्व चार से ग्यारह गुणस्थान तक है। क्षेपक सम्यक्त्व चार से सात गुणस्थान तक है और क्षायिक चार से चौदह तक है ॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण सप्त रात्रिंदिनानि ॥ एकजीवं प्रति जघन्यम्

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ;। असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। =वेदक सम्यग्दर्शनवालों में अविरत सम्यग्दृष्टी का
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ =अनेक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। =एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (विरहकाल) है
उत्कर्षेण ;। पूर्वकोटी ;॥ देशोना ;॥॥ =उत्कृष्टकरि कुछहीन एक करोड़ पूर्व है ॥
संयतासंयतस्य ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। =(वेदकसम्यग्दृष्टियों में) देशसंयमी का अनेक जीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एकजीवम् ;। प्रति जघन्येन ;। =विरहकाल नहीं है । एकजीव के लिये (=प्रति) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। देशोनानि ;॥॥ षट्षष्टि- =अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन छ्यासठि
सागरोपमाणि;॥॥ प्रमत्त- =सागर प्रमाण है ॥ (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) प्रमत्त और
अप्रमत्तसंयतयोः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ =अप्रमत्त संयमियों का अनेक जीवकी अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्येन ;। =विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;। स-अतिरेकाणि ;॥॥ =अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
त्रयस्त्रिंश त्सागरोपमाणि ;॥॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ;। =तेतीस सागर के बराबर (अन्तर काल) है । उपशमसम्यग्दृष्टियों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ =अविरत सम्यग्दृष्टी का (विछोहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से
जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। सप्त ;॥॥ = जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि सात
रात्रिंदिनानि ;॥॥ एक-जीवम् प्रति* जघन्यम् ;॥॥ =रात दिवस है । एक जीवके लिये जघन्य और (=च)

उत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिंदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टंचान्तर्मुहूर्तः ॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्।

उत्कृष्टम् ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। संयतासंयतस्य ;। =उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (विरह काल) है। (उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) देश संयमीका
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;॥ =अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय (अन्तरकाल) है
उत्कर्षेण ; चतुर्दश ;॥॥ रात्रिंदिनानि ;॥॥ एकजीवम् =उत्कृष्टकरि चौदह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ;॥॥ च उत्कृष्टम् ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। =अपेक्षासे जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ;। =(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) प्रमत्त और अप्रमत्तसंयमियोंका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। =अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। पञ्चदश ;॥॥ रात्रि-दिनानि ;॥॥ एकजीवम् =उत्कृष्टकरि पन्द्रह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति* जघन्यम् ;॥॥ च उत्कृष्टम् ;॥॥ अन्तर्मुहूर्तः ;। =अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट विरहकाल अन्तर्मुहूर्त है।
त्रयाणाम् ;। =(उपशम सम्यग्दृष्टियों में) तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय)
उपशमकानाम् ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। जघन्येन ;। =उपशमश्रेणियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि
एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। वर्षपृथक्त्वम् ;॥॥ =एक समय है। उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है
एकजीवम् ;। प्रति* जघन्यम् ;॥॥ च उत्कृष्टम् ;॥॥ =एक जीवकी अपेक्षा से (=प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तः ;। उपशान्तकषायस्य ;। =अन्तर्मुहूर्त है ॥ (उपशम सम्यग्दर्शनवालोंमें) उपशान्तकषाय वालेका
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्य-वत्* =(विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान)सम है

अर्थात्जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बरस है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन···संज्ञिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यो-र्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ॥

एक जीवम् ;। प्रति* न० अस्ति अन्तरम् ;।
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;।
नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;।
उत्कर्षेण ;। पल्योपम-असंख्येय-भागः ;। एकजीवं ;।
प्रति न अस्ति अन्तरम् ;॥ मिथ्यादृष्टेः ;। नानाजीव-
अपेक्षया ;॥ च एक-जीव-अपेक्षया ;। न अस्ति अन्तरम्
[१३] सञ्ज्ञा-अनुवादेन ;। संज्ञिषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;।
सामान्यवत *

=एक जीवके लिये वियोगकाल (=अन्तर) नहीं है ।
=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवालेका (अन्तर)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है ॥
=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश है । एक जीवकी
=अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी
=अपेक्षासे और (=च) एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (काल) नहीं है ।
=(१३) संज्ञी (=मन सहित जीव) निको अपेक्षासे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिका
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात्
संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक
जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एकसौ बत्तीस सागर
प्रमाण है (पृष्ठ २२३ देखो)

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;।
नानाजीव-अपेक्षया ;। सामान्यवत *

=(संज्ञी जीवोंमें) सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवालेका
=(अन्तर) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रकरणमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है
अर्थात् जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (२२३-२२४)

एक जीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। पल्योपम-
असंख्येय-भागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;। उत्कर्षेण ;।
सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ॥

=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके
=असंख्यातवां भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि
=तीनसौ सागरसे ऊपर नौसौ सागरके नीचे प्रमाण है ॥

असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ तदुभय-

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानाम् ;।
नानाजीव-अपेक्षया ;॥ न* अस्ति । अन्तरम् ;॥।
एक जीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ;॥।
चतुर्णाम् ;।
उपशमकानाम् ;। नानाजीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्*

एक जीवम् ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;।
उत्कर्षेण ;। सागरोपम-शत पृथक्त्वम् ;॥।
चतुर्णाम् ;।
क्षपकाणाम् ;। सामान्यवत्*

असंज्ञिनाम् ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। च एकजीव-अपेक्षया ;॥ न * अस्ति अन्तरम् ;॥। तद्-उभय-

=(सैनी में) असंयमी सम्यग्दर्शन वालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती तकनिका
=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल (= अन्तर) नहीं है
=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि तीनसौ सागरसे ऊपर और नौसौ सागर के नीचे प्रमाण है
=(सैनियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-उपशान्तकषाय)*
=उपशम श्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में गुणस्थान) वत् है
अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अन्तर है (२२४)
=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीन से ऊपर नौसे नीचे) सौ सागर प्रमाण है
=(सैनियोंमें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
=क्षपक श्रेणीवालों का अन्तर संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है
अर्थात नानाजीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है
एक जीव प्रति विरह काल नहीं है (पृष्ठ २२५ देखो)
=असंज्ञियोंका (जो मिथ्यात्वगुणस्थानमें हैं) नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी
=विवक्षा से अन्तर नहीं है ॥ उन (सैनीमनसहित असैनी मनरहित) दोनों

(१) सैनी अथवा मनसहित जीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानतक होते हैं असैनी केवल मिथ्यात्व गुणस्थान में है ॥

व्यपदेशरहितानां सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। सासादन-सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागो-ऽन्तर्मुहूर्तश्च ।

व्यपदेश-रहितानाम् ;। सामान्य-वत्*

=नामों से वर्जित (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निका (विरहकाल) =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) समान है अर्थात सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे अन्तर नहीं है अयोग केवलियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)

(१४)आहार-अनुवादेन ;। आहारकेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। सामान्यवत*

=आहारके कथनानुसारकरि आहारकोंमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर) =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान है अर्थात आहारक मिथ्यादृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट एकसौ बत्तीस सागर से कुछ न्यून है

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;। सामान्यवत*

=(आहारकों में) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका =नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व-उक्त गुणस्थान) वत् (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभागहै (पृष्ठ २२३)

एकजीवम् ;। प्रति॰जघन्येन;। पल्योपम-असंख्येयभागः ;। च अन्तर्मुहूर्तः ;।

=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपमके =असंख्यातवांभाग और(=च) अन्तरमुहूर्त है ॥

---

(१) आहारक जीव मिथ्यात्व से सयोगकेवली गुणस्थान तक १३ स्थानों में होते हैं अनाहारक जीव, मिथ्यात्व सासादन, असंयत सम्यग्दृष्टि, सयोगकेवली और अयोगकेवली इन पांच स्थानों में (और सर्वसिद्ध) होते हैं अर्थात् विग्रहगतिको प्राप्तहोनेवाले चारों गति संबंधी जीव, प्रतर और लोक पूर्ण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, सर्वसिद्ध (भगवान), इतने जीवतो अनाहारक होतेहैं। अन्य शेष जीव आहारक होते हैं॥ गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६६६ ॥

उत्कर्षेणाङ्गुलासंख्येयभाग असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमतान्ता। नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ॥

उत्कर्षेण ;। अंगुल-असंख्येयभागः ;। = उत्कृष्टकरि (सूचीरूप) अंगुल के असंख्यातवां भाग है अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के बराबर आकाश में वा आकाश के जितने प्रदेश गणना में हैं उतने समयों के बराबर विरह काल वा अंतरकाल है

असंख्येयासंख्येयाः ;॥ उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः ;॥ = (वे पूर्वोक्त समय) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल हैं अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग में जितने अकाशके प्रदेश संख्या में हैं उतनी ही (गणना अन्तर काल) के समयों की है और ये समय गिनती में उन समयों के बराबर हैं (जितने कि समय असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों (असंख्यातासंख्यात कल्प कालों) में है

असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ;। = असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थान वर्ति) नि तक
नानाजीव-अपेक्षया ;॥ न-अस्ति-अन्तरम् ;॥॥ = अनेक प्राणियों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है
एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। = एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥

---

(१) "असंख्येया" पृष्ठ ८६ (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में दो बार आया है ॥ यह छापे की अशुद्धि है । पृष्ठ ८७ (पृष्ठ ४९) में असंख्येयासंख्येयाः आया है वह शुद्ध है क्योंकि जय चन्दजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १११ और हस्तलिखित वचनिका में भी तीनों स्थानों में असंख्यातासंख्यात वाक्य है और अर्थभी यही है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागके आकाश प्रदेशोंको गणना असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी (न कि असंख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी) कालों के समयों के बराबर है ॥

(२) पृष्ठ ८६, ८७ (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में तीनों स्थानोंन "असंख्येयभागः" (= असंख्यातवाँभाग) के स्थान में 'असंख्येभागाः' असंख्यातेभाग अशुद्ध छप गया है क्योंकि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (न कि असंख्याते भाग) के आकाश के प्रदेशों को संख्या असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालोंके समयोंके बराबर गणनामें हैं । क्योंकि "अंगुल असंखभागो" इत्यादि गाथा तथा टिप्पणी (२) पृष्ठ१२१में देखो ॥ "सूच्यंगुलासंख्यतैकभागः

(३) "अंगुल" पृष्ठ ८६, ८७ व ६८ में जहाँ जहाँ पर अंगुल शब्द लगे हैं वहां वहां सूच्यंगुलसे प्रयोजन है न कि प्रतर (वर्ग) अंगुलसे वा घनअंगुल से अर्थात् एक प्रमाण अंगुल (न कि उत्सेध अंगुल वा आत्मांगुल) लंबे और एकप्रदेश चौड़े और ऊंचे आकाशमें जितने प्रदे । होते हैं उसे सूच्यंगुल कहते हैं सूच्यंगुल के कथन में सूचो, जघन्ययुक्ता संख्यात प्रमाण इत्यादि शब्द आये हैं अतः अलौकिक गणित के (१) संख्यामान और उपमामान दोनों भेद जो तत्त्वार्थ सूत्र के अगले अध्यायों के सूत्रों से भी सम्बन्ध रखते हैं नीचे के पृष्ठ २७२ से २७६ तक लिखे जाते हैं ॥ अलौकिक गणित के मुख्य दो भेद हैं एक संख्यामान और दूसरा उपमामान । संख्यामान के मूल ३ भेद हैं; अर्थात् १ संख्यात-

(टिप्पणी) २ असंख्यात और ३ अनंत। असंख्यातके तीन भेद हैं १ परीतासंख्यात २ युक्तासंख्यात और ३ असंख्यातासंख्यात। अनंतके भी ३ भेद हैं —१ परीतानंत २ युक्तानंत ३ अनंतानंत। संख्यात का एक भेद ही है। ऐसे संख्यात का एक भेद, असंख्यात और अनंत के तीन तीन भेद सब मिल कर संख्यामान के ७ भेद हुए। इन सातों में से प्रत्येक के जघन्य (सब से छोटा मध्यम बीच के) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा) की अपेक्षा से तीन तीन भेद हैं इस प्रकार संख्यामान के २१ भेद हुए अर्थात् (1) जघन्य संख्यात, मध्यम संख्यात, उत्कृष्ट संख्यात

(2) जघन्य परीतासंख्यात, मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, मध्यम युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात; जघन्य असंख्यातासंख्यात, मध्यम असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात,

(3) जघन्य परीतानन्त, मध्यम परीतानन्त, उत्कृष्ट परीतानन्त; जघन्य युक्तानन्त, मध्यम युक्तानन्त, उत्कृष्ट युक्तानन्त; जघन्य अनन्तानन्त, मध्यम अनन्तानन्त, उत्कृष्ट अनन्तानन्त॥

एकमें एकका भाग देने से अथवा एकको एकसे गुणाकार करने से कुछभी हानि वृद्धि नहीं होती। अतः संख्याका आरंभ दो के अङ्क से ग्रहण किया है। और एक को गणना (गिनती) शब्द का वाच्य (कहने वाला) माना है, इस लिये जघन्य संख्या का प्रमाण दो (२) है। तीन चार पांच इत्यादि एक हीन उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत मध्यम संख्यात के भेद हैं। एक न्यून जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं

अब आगे जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण कितना है सो लिखते हैं। अलौकिक गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण है लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोड़े) पदार्थों का परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिक गणित से सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनाधिकता का बोध कराया जाता है। जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप समझाने के लिये जो उपाय लिखा जाता है वह किसी से किया नहीं था किन्तु बड़े गणित का परिमाण समझाने के लिये एक कल्पित उपाय मात्र है॥

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रति शलाका, और महा शलाका, नाम के चार गोल कुंड हैं। जिन में से प्रत्येक का व्यास (=गोल पदार्थ की एकतट से दूसरे तट तक की चौड़ाई) एक लक्ष योजन (योजन का प्रमाण यहां दो सहस्र कोस का समझना) और गहराई (ओंडाई) का प्रमाण एक सहस्र योजन है। इनमें से अनवस्था कुंडको गोल सरसों से शिखाऊ (पृथ्वी पर अन्नकी राशिके भांति) भरना। इस अनवस्था कुंड में १९९७११२९ ३८ ४५ १३१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ,, सरसों छियालीस अंक प्रमाण गणित शास्त्रके अनुसार समाई। यहां अपूर्णांक का ग्रहण नहीं करना।

इस अनवस्था कुंडके भरनेपर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुंडोंकी गिनती करने के लिये शलाका कुंडमें डालनी। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लक्षयोजन है उसके चारों ओर लवण समुद्र है। उसको चारों ओरसे घेरकर धातकीखंड है। इस प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्रके आगे द्वीप क्रमसे असंख्यात द्वीप समुद्र है। चौड़ाई दूनी दूनी होती गई है। किसी द्वीप वा समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौड़ाई को सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्रकी सूची ५ लाख योजन है।

अब अनवस्था कुंड में से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देव के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से डालते चलिये जिस द्वीप वा समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर अंतकी सरसों डालो उसी द्वीप वा समुद्रकी सूची के समान सूची वाला और एक सहस्रयोजन गहराईवाला दूसरा अनवस्थाकुंड बनाइये और उसको भी सरसों से भिन्न भिन्न एक दूसरी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप वा समुद्र में पहिले समाप्ति हुई थी उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में डालते चलिये जहां ये सरसों भी समाप्त हो जायें वहां उसी द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण चौड़ी और एक सहस्र योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनवाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुंड में तीसरी सरसों डालिये इस तीसरे कुंड की भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों डालते डालते जब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुंड करकर चौथी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब शलाका कुंड भी शिखाऊं भरजाय तब एक सरसों प्रति शलाका कुंड में डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुंड (शिखाऊ) भर जाय तो दूसरी सरसों प्रतिशलाकाकुण्ड में डालिये, एक एक अनवस्था कुण्ड की एक एक सरसों शलाकाकुंड में और एक एक शलाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशलाकाकुंडमें डालते डालते जब प्रतिशलाकाकुण्डभी भर जाय तब एक सरसों महाशलाकाकुण्डमें डालिये, जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुंड भरा है उसी क्रमसे दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुण्डमें डालिये। इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जब महाशलाका कुंड भी भरजाय उस समय

सबसे बड़े अंतके अनवस्थाकुंडमें जितनी सरसों समाई उतनाही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है ।

संख्यामान के मूलभेद सात कहेथे इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे इक्कीस भेद कहे । यहांपर आगेके मूलभेद के जघन्य भेदमें से एक घटाने से पिछले मूल भेदका उत्कृष्ट भेद होता है, जैसे जघन्य परीतासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट संख्यात तथा जघन्य युक्तासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है । इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें भी जानना । जघन्य और उत्कृष्ट भेदों के बीचके सब भेद मध्यम भेद कहलाते हैं । इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्ट केस्वरूप जघन्य के स्वरूप को जानने से ही ज्ञात होसके हैं इसलिये अब आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखाजाता है । जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप ऊपर लिखा जाचुका है अब आगे जघन्य युक्तासंख्यात का प्रमाण लिखते हैं ।

जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना, एक विरलनराशि और दूसरी देयराशि, विरलनराशिका विरलन करना अर्थात् विरलनराशिका जितना प्रमाण है उतने एके लिखना और प्रत्येक एकेके ऊपर एक एक देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणन करने से जो गुणन फल हो उतना ही जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण है भावार्थ यदि जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण चार मानाजाय तो चार का विरलनकर १,१,१,१, प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि चार चार रखकर ४ ४ ४ ४ चारौ चौकोंका परस्पर गुणन करनेसे गुणनफल २५६ जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इसही जघन्य युक्तासंख्यातको आवलीभी कहते हैं क्योंकि एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसी से गुणा कार करने से जो गुणनफल होता है उसको वर्ग कहते हैं जैसे ५ का वर्ग २५) को जघन्य असंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानंतका प्रमाण कहते हैं–

जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीनि राशि अर्थात् १ विरलनराशि २ देयराशि ३ शलाका लिखना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना, और शलाकाराशि में से एक घटाना, इस गये हुये गुणनफल प्रमाण

एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशिकरना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाकाराशिमेंसे एक और घटाना । इस दूसरीवार पाये हुये गुणनफल प्रमाण पुनः विरलन और देयराशि करना और पूर्वोक्तानुसार समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना तथा शलाकाराशियों में से एक और घटाना इसही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन और देयके क्रमसे एक एक बार देयराशियों का गुणाकार होने पर शलाकाराशि में से एक एक घटाते घटाते जब शलाकाराशि समाप्त होजाय उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय उस प्रमाण फिर विरलन-देय-शलाका ये तीनि राशि लिखनी । विरल राशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रख देयराशिका परस्पर गुणाकार करते करते पूर्वोक्त-क्रमानुसार एक बार देयराशियोंका गुणाकार होनेपर शलाकाराशिमें से एक एक घटाते घटाते जब यह द्वितीयवार स्थापनकी हुई शलाकाराशिभी समाप्त होजाय उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुनः विरलन-देय-शलाका, ये तीनिराशि लिखनी । पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरीवार स्थापना की हुई शलाकाराशि भी समाप्त होजाय उस समय यह अन्तिम गुणनफलरूप जो महाराशि हुई वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है ।

कथित क्रमानुसार तीनिवार तीनितीनि राशियों के गुणन विधानको शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं आगे भी जहां "शलाकात्रयनिष्ठापन" ऐसा पद आवे वहां ऐसाही विधान समझ लेना । इस महा राशि में लोक प्रमाण (जिसका कथन उपमामान के कथन में कहा जायगा) लोकप्रमाण धर्मद्रव्यके प्रदेश, लोकके प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाणलोकाकाशके प्रदेश, लोकसे असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण और उसके भी असंख्यात लोक गुणा तथापि सामान्यपनेसे असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण-ये छह राशि मिलाना । इस योगफलप्रमाण विरलन-देय-शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर पूर्वोक्तानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना । इसप्रकार करने से जो महाराशि उत्पन्न हो उस में बीसकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकालके समय, असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान (स्थितिबंधको कारण भूतआत्मा के परिणाम) इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान और इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मन वचन काय योगों के अविभाग प्रतिच्छेद (गुणोंके अंश) ये चार राशि मिलाना । इस दूसरे योगफल प्रमाण फिर -

विरलन-देय-शलाका ये तीनिराशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रय-निष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानंत कहते हैं । जघन्य परीतानंतका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्य परीतानंतरूप सब जघन्य परीतानंतोंका परस्पर गुणकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य युक्तानंत कहते हैं । अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्य युक्तानंत समान है । जघन्य युक्तानंतके वर्गको जघन्य अनंतानंत कहते हैं ।

अब आगे केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंतका स्वरूप कहते हैं— जघन्य अनंतानंत प्रमाण विरलन-देय शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो वह अनंतानंतका एक मध्यम भेद है । अनंतके दूसरे दो भेद हैं, एक संख्य अनंत और दूसरा असंख्यअनंत । यहां तक जो संख्या हुई वह संख्यअनंत है इससे आगे असंख्यअनंतके भेद हैं । क्योंकि, इस महाराशिमें आगे छह राशि असंख्य अनंत मिलाई जाती हैं । नवीन वृद्धि न होने पर भी व्यय करते करते जिस राशिका अंत नहीं आवै उसको असंख्यअनंत कहते हैं । इस महाराशिमें जीवराशिके अनंतवें भाग सिद्धराशि, सिद्धराशिसे अनंतगुणी निगोदराशि, वनस्पतिकायिकराशि, जीवराशिसे अनंतगुणी पुद्गलराशि, पुद्गलसे भी अनंतगुणे तीनिकालके समय और अलोका काशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योगफल हो उस प्रमाण विरलन-देय शलाका ये तीनिराशि स्थापनकर शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर योगफल प्रमाण विरलन-देय-शलाका स्थापनकर फिर शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनंतानंतका भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई उसको केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेषबचे उसमें पुनः वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होता है । उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेंसे घटाकर फिर मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बड़ा है । उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करने पर भी केवल ज्ञानके प्रमाणसे बहुत न्यून रहता है इसलिये केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है । इस प्रकार संख्या मानके छब्बीस भेदोंका कथन समाप्त हुआ ।

अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते हैं। जो प्रमाण किसी पदार्थको उपमा देकर कहा जाता है उसे उपमामान कहते हैं। उपमामानके ८ भेद हैं, १ पल्य (अर्थात् नाज भरनेको जो खत्ती उसकी उपमा है) २ सागर (यहां लवण समुद्रकी उपमा है) ३ सूच्यंगुल ४ प्रतरांगुल ५ घनांगुल ६ जगच्छ्रेणी ७ जगत्प्रतर और ८ लोक। इनमेंसे पल्यके तीन भेद हैं, १ व्यवहारपल्य, २ उद्धारपल्य और ३ अद्धा पल्य। व्यवहारपल्यका स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है कि पुद्गलद्रव्यके सबसे छोटे खंडको (टुकड़ेको) परमाणु कहते हैं। अनंतानंत परमाणुओंके स्कंधको (समूहरूप पिंडको) अवसन्नासन्न कहते हैं, ८ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, ८ सन्नासन्नका एक त्रुटरेणु ८ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुका एक रथरेणु, ८ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिवालोंका बालाग्रभाग, ८ उत्तम भोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक मध्यमभोग भूमिवालोंका बालाग्र, ८ मध्यमभोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक जघन्यभोगभूमिवालोंका बालाग्र, ८ जघन्यभोगभूमिवालोंके बालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका बालाग्र, ८ कर्मभूमिवालोंके बालाग्रकी एक लीख, ८ लीखोंका एक सरसों ८ सरसोंका एक जौ, और ८ जौका एक अंगुल होता है। इस अंगुलको 'उत्सेधांगुल' कहते हैं। चारों गतियोंके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर तथा मन्दिरादिकका परिमाण इसी अंगुलसे वर्णन किया जाता है इस उत्सेधांगुलसे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल (भरत क्षेत्रके अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्तिका अंगुल) है। इस प्रमाणांगुलसे महापर्वत, नदी, द्वीप, समुद्र इत्यादिकका परिमाण कहा जाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने अपने कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी, कलस, धनुष, ढोल, हल, मूसल, छत्र, चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है। छह अंगुलका एक पाद, दो पादका एक बिलस्त, दो बिलस्तका एक हाथ, चार हाथका एक धनुष, दो सहस्र धनुषका एक कोस, चार कोसका एक योजन होता है। प्रमाणांगुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासयुक्त एक गोलगर्त (गढ़ा) बनाना उस गर्तका उत्तम भोगभूमिवालेके मेढेके बालोंके अग्रभागोंसे भरना। गणित करनेसे उसगर्तके रोमकी संख्या ४१३४५२६३०३०८,०३१७७४९५१२१९२०००००००००००००००० हुई (अध्याय ३ सूत्र ८की टिप्पणी गणितके लिये देखो) इसगर्तके एक एक रोमको सौ सौ वरस पीछे निकालते निकालते जितने कालमें वे सब रोम समाप्त होजाय उतने काल को व्यवहार पल्यका काल कहते हैं। उपर्युक्त रोम संख्या को सौवरस के समयसमूह से गुणा करने पर व्यवहार पल्यके समयोंका प्रमाण होता है।

[१ वर्षके २ अयन, १ अयनकी तीन ऋतु, १ ऋतुके ५ मास, १ मासके ३० अहोरात्रि, १ अहोरात्रिके ३० मुहूर्त, १ मुहूर्तकी संख्यात आवली और १ आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं। व्यवहार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात कोटि वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से उद्धार पल्यके रोम खंडका प्रमाण होता है जितने उद्धारपल्यके रोम खंड हैं उतने ही व्यवहार पल्यके समय जानने। एक कोटीके वर्गको कोडाकोडी कहते हैं। द्वीप समुद्रों की संख्या उद्धारपल्य से है अर्थात् उद्धार पल्यके समयोंका पच्चीस कोड़ाकोडी से गुणा करने से जो गुणनफल होता है उतनेही सब द्वीप समुद्र हैं। उद्धार पल्यके प्रत्येक रोमखंडके असंख्यात वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से अद्धापल्यके रोम खंड होते हैं। जितने अद्धापल्यके रोमखंड हैं उतने ही अद्धापल्यके समय हैं।

उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥

उत्कर्षेण ;। अंगुल-असंख्येय-भागः ;। =उत्कृष्टकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग है (इस भागके प्रदेशों के तुल्य है)

असंख्येयासंख्येयाः ;॥ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ;। =(ये प्रदेश संख्यामें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य है

चतुर्णाम् ;। उपशमकानाम् ;। =चार उपशमश्रेणी (आठवेंसे ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)

नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ सामान्यवत्* =अनेक जीव की विवक्षासे सामान्य (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नौसे नीचे) वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं ;। प्रति* जघन्येन ;। अन्तर्मुहूर्तः ;। =(चार उपशम श्रेणी वालों का) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ;। अंगुल-असंख्येयभागः ;। =उत्कृष्टकरि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (के आकाश प्रदेशों के तुल्य) है

असंख्येयासंख्येयाः ;॥ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ;॥ =(ये प्रदेश गिनतीमें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य हैं

कर्मोंकी स्थिति अद्धापल्यसे वर्णन की गई है पल्यको दश कोड़ाकोड़ी से गुणा करनेपर सागर होता है अर्थात् दशकोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्यका एक व्यवहार सागर दशकोड़ाकोड़ी उद्धारपल्यका एक उद्धार सागर और दशकोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका एक अद्धा सागर होता है किसी राशिको जितनी बार आधा आधा करने से एक शेष रहे उसको अर्धच्छेद कहते हैं जैसे ४ को दोबार आधा आधा करनेसे एक होता है अतः चार के अर्धच्छेद २ हैं। आठ के तीन हैं। सोलह के अर्धच्छेद चार हैं इसही प्रकार सर्वत्र लगा लेना अद्धापल्यको अर्द्धच्छेदराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर अद्धापल्य रखकर सब अद्धा पल्योंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको सूच्यंगुल कहते हैं अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौड़े और ऊंचे आकाशमें इतने प्रदेश हैं। सूच्यंगुलके वर्ग को प्रतरांगुल और घन (एक राशि का तीनबार परस्पर गुणाकरने से जो गुणनफल हो उसे घन कहते हैं। जैसे दोका घन आठ और तीन का घन सत्ताइस है) का घनांगुल होते हैं पल्यकी अर्द्धच्छेद राशिके असंख्यातवां भागका विरलनकर प्रत्येक एक एकके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणनफल हो उसको जगच्छ्रेणी कहते हैं जगच्छ्रेणीका सातवां भाग राजू कहा गया है अर्थात् सात राजूकी एक जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं। यही तीनों लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है।

इस उपमामानके भेदोंसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावका परिमाण दिया जाता है भावार्थ जहां द्रव्य का परिमाण कहाजाय वहां उतने पृथक २ पदार्थ जानना जहां क्षेत्रका परिमाण कहा जाय वहां उतने प्रदेश जानने, जहां कालका परिमाण कहा जाय वहां उतने समय जानने और जहां भावका परिमाण कहाजाय वहां अविभाग प्रतिच्छेद जानने ॥

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्यनैकः समयः उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलिनां

चतुर्णाम् ;। क्षपकाणाम् ;। च※ सयोगकेवलीनाम् ;। सामान्यवत※ अनाहारकेषु ;। मिथ्यादृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ च※एक-जीव-अपेक्षया ;॥ न※अस्ति अन्तरम् ;॥॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः ;। नाना-जीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। पल्य-उपम-असंख्येयभागः ;। एकजीवं ;। प्रति※ न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। नानाजीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। उत्कर्षेण ;। मास-पृथक्त्वं ;॥॥ एकजीवं ;। प्रति※न अस्ति अन्तरम् ;॥॥ सयोगकेवलीनाम् ;।

=(आहारकों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
=क्षपकश्रेणीवाले और सयोगकेवलियोंका (विरहकाल)
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अहारकोंमें चार क्षपकश्रेणीवालोंका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है। एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोंमें सयोग-केवलियोंका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है
=(अनाहारकोंमें) मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी विवक्षासे अन्तर (काल) नहीं है
=(अनाहारकोंमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
=जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्यके
=असंख्यातवां भाग प्रमाण (=उपम) है। एक जीवकी अपेक्षासे
=अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारकोंमें) असंयमी सम्यग्दृष्टीका (विरहकाल)
=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नौ से नीचे (=पृथक्त्व) मास है एक जीवकी
=अपेक्षासे (=प्रति) अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारक अवस्थामें) सयोगकेवलियोंका

नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अन्तरमवगतम् ॥ भावो विभाव्यते ॥ स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्- मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः । सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिको भावः ॥

नानाजीव-अपेक्षया ;। जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। =(अन्तर काल) अनेक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ;। वर्ष पृथक्त्वम् ;॥। एकजीवम् ;। =उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे न्यून (=पृथक्त्व) बरस है ॥ एक जीव के

प्रति* न अस्ति अन्तम् ;॥। अयोगकेवलिनाम् ;। =लिये विरह काल नहीं है । (अनाहारकों में) अयोगकेवलियों का

नानाजीव अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एकः ;। समयः ;। =(अन्तरकाल) अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ;। षण्मासाः ;। एकजीवम् ;। प्रति अन्तरम्;॥। =उत्कृष्टकरि छह मास है । एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर

न* अस्ति T अन्तरम् ;॥। अवगतम् ;॥। =नहीं है ॥ अन्तर (का कथन) जाना अथवा ज्ञान हुआ ॥

भावः;। विभाव्यतेT सः ;। द्विविधः;। सामान्येन ;॥। =भाव (प्ररूपणा) प्रारंभ की जाती है । सो भाव दो प्रकार संक्षेप से

विशेषेण ;। च सामान्येन ;॥। तावत्* =और (=च) विस्तारकरि है । संक्षेपसे प्रथम (तावत)

मिथ्यादृष्टिः ;। इति* औदयिकः ;। भावः ;। =" मिथ्यादृष्टि यौ औदयिक भाव है " क्योंकि यहां मिथ्यात्व का उदय है

सासादनसम्यग्दृष्टिः ;। इति* पारिणामिकः ;। भावः ;। =सासादन सम्यग्दृष्टी पारिणामिक भाव है अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थान में दर्शनमोहका उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होती है

सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ;। इति* क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। =सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिक भाव है (क्योंकि यहां दर्शनमोहकी सर्वघाती मिथ्यात्व प्रकृति का उदयाभावीक्षय और उपशम तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व का उदय रहता है ॥ देखो जी. कां. गाथा ११ की म. प्र. सं० टीका

---

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तक दर्शन मोह की अपेक्षा से भावों का कथन जानना चाहिये ॥

(२) द्रव्यक्षेत्र काल भावके निमित्त से कर्म जब अपना रस (फल) देता है वो उदय है कर्मोंके उदय से जो आत्माके भाव होते हैं वे औदयिक भाव है

असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भावः ॥ उक्तं च मिच्छे खलु आदइओ विदिए पुण परिणामिओ भावो । मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव ॥१॥

असंयत-सम्यग्दृष्टिः ;। इति * औपशमिकः ;। वा *	=अविरत सम्यग्दृष्टी यह औपशमिकभाव सहित है अर्थात् दर्शनमोहके उपशम होनेसे (=उदयनहोनेसे) आत्माके दर्शन गुणकी विशुद्धता है
क्षायिकः ;। वा*	=अथवा क्षायिक भाव सहित है क्योंकि दर्शन मोहका सर्वथा नाश होने से आत्मा के दर्शनगुणकी अत्यन्त विशुद्धि होजाती है
क्षायोपशमिकः ;। वा भावः ;।	=वा क्षायोपशमिकभाव सहित है अर्थात् मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सर्वघाती प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय (=उदयमें आकर-फलनदेकर-खिरजाना)और उपशम होने से तथा देशघाति सम्यक्त्व के उदय होने से दर्शन मोह का क्षायोपशम है
उक्तम् ;॥। च*	=(जैसा कि निम्न लिखित गाथा में) कहा भी है
मिच्छे खलु (=मिच्छे;॥।खलु* =मिथ्यात्वे;॥।खलु*)	=मिथ्यात्व (=प्रथम गुणस्थान) में नियमसे (=खलु) वा "प्रकटपने" (=खलु)
ओदइओ (=ओदइओ ;। =औदायिकः ;।)	=औदयिक (=कर्मके उदयसे आत्माके जो परिणाम हों सो भाव) होता है
विदिए पुण (=विदिए;॥।पुण* =द्वितीये;॥। पुनः*)	=और (=पुण) दूसरे (सासादन गुणस्थान) में
पारिणामिओ (=परिणामिओ;। =परिमाणिकः ;।)	=पारिणामिक (=जिसमें कर्म के उदय उपशमादिक की कुछ भी अपेक्षा न हो सो।
भावो ॥ मिस्से (=भावो ;।मिस्से;॥। =भावः ;।मिश्रे;॥।	=भाव वा परिणाम होता है ॥ मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे गुणस्थान) में
खओवसमिओ (=खओवसमियो;। =क्षायोपशमिकः ;)	=क्षायोपशमिक (सर्वघाति स्पर्धकों के वर्तमान निषेकों के बिना फल दियेही निर्जरा होनेपर और उनही सर्वघाति स्पर्धकों के अगामि निषेकोंके सदवस्था रूप उपशम होनेपर और देश घाति स्पर्धकोंके उदय पर आत्मा का) भाव होता है ॥
अविरद— (=अविरद— =अविरत—)	=अविरत अथवा असंयत
सम्मम्मि . (=सम्मम्मि;॥। =सम्यक्त्वे;॥।)	=सम्यग्दर्शन (चतुर्थ गुणस्थान) में
तिण्णेव (=तिण्ण+एव* =त्रयः ;। एव*)	=तीनों (औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव) ही होते हैं

(१) जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मलहो जाता है उसही प्रकार कर्मोंके उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो विशुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते हैं ॥

असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः ॥ चतुर्णामुपशमकानामित्यौपशमिको भावः ॥ चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेननरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादयसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां

असंयतः ;। पुनः*औदयिकेन ;। भावेन ;। =और (यहां चौथे गुणस्थानमें) असंयतपना है सो औदयिक भावसे है

संयतासंयतः ;। प्रमत्तसंयतः ;। च अप्रमत्त- =देश संयतगुणस्थान प्रमत्तसंयत गुणस्थान और अप्रमत्त-

संयतः ;। इति* क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। =संयत गुणस्थान "वालोंके क्षायोपशमिक भाव है" चारित्र मोह विशेष का क्षयोपशम (होने से)

चतुर्णाम ;। =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)

उपशमकानाम ;। इति * औपशमिकः ;। भावः ;।=उपशमवालोंके औपशमिकभाव है (चारित्रमोहका उपशम होने से)

चतुर्षु ;। क्षपकेषु ;। =चार (अपूर्वकरण से क्षीणकषाय तक) क्षपक श्रेणी में (चरित्र मोह क्षयसे)

च सयोग-अयोगकेवलिनोः ;। क्षायिकः ;। भावः ;। =और (=च) सयोग-अयोगकेवलियों में (भी) क्षायिक भाव है

विशेषेण ;। (१) गति-अनुवादेन ;। नरकगतौ ;। =विशेषकरि (१) गतिके कथनानुसार से नरक गति में

प्रथमायाम् ;। पृथिव्याम् ;। नारकाणाम् ;। मिथ्या =पहिली भूमि (नरक) में नारकियोंके मिथ्या-

दृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ;। =दर्शनवाले से असंयमी सम्यग्दर्शन वाले पर्यंतोंका

---

(१) असंयतसम्यग्दृष्टौ सम्भवतो ऽसंयतत्वस्यौदयिकत्वं प्राहुः असंयतत्वस्य चारित्र मोहोदय हेतुत्वात् ॥

असंयत सम्यग्दृष्टौ ? असंयतत्वस्य ;।।। सम्भवतः * = असंयमी सम्यग्दर्शनवाले में असंयमपना के (सम्भव) होने से

औदयिकत्वम ;।।। प्र-आहुः ? असंयतत्वस्य ;।।। = औदयिकभावको (कारण) बतलाते हैं (क्योंकि) असंयम का होना

चारित्र-मोह-उदय हेतुत्वात ;।।। = चारित्र मोहनीयकर्मके उदय होने (के हेतु) से है भावार्थ यह है कि चौथे गुणस्थान में औदयिक भावके कारण असंयम होता है क्योंकि वहां चारित्र मोहनीयकर्म अप्रत्याख्यानावरण का उदय है (२) यहां असंयतः असंयतत्व के अर्थ में है ॥

(३) पांचवां संयत गुणस्थानसे क्षीण कषाय बारहवां गुणस्थान तक चारित्र मोहनीयकर्म की अपेक्षा से यह कथन किया है ॥

सामान्यवत् ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भावः । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥

सामान्यवत्*

=संक्षेप (विषयमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारकियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है और असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नारकियोंके औपशमिक वा क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है

द्वितीय-आदिषु ;। आ-सप्तम्याः ;। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनाम् ;। सामान्यवत्*

दूसरी (भूमि) आदिमें सातवीं (भूमि) तक (=आ) (छहनरकोंमें) मिथ्यादर्शनवाले
=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकि) निके
=संक्षेप (विषयमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् दूसरे नरकसेलेकर सातवें नरक तकके मिथ्यादर्शनवाले नारकियोंके औदयिक भाव है उक्त छहों नरकोंमें सासादनसम्यग्दर्शनवाले नारकियोंके पारिणामिक भाव है और इनही छह नरकोंके मिश्रतीसरे गुणस्थानवर्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८)

असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। औपशमिकः ;। वा=क्षायोपशमिकः ;। वा भावः ;। पुनः

=(दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके) असंयमी सम्यग्दृष्टि (नारकी) के
=औपशमिक वा क्षायोपशमिक भाव है। (नारकियोंके प्रथमसे चौथेतक गुणस्थान है)
=और (इन दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके असंयमी सम्यग्दृष्टी चौथे गुणस्थानवर्तीनारकियोंके)

असंयतः ;। औदयिकेन ;। भावेन ;।

=असंयतपना औदयिक भावकरि है ॥

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसँयतासंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्या-द्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ ¦॥ तिरश्याम् ¦। मिथ्यादृष्टि-आदि-संयता-संयत-अन्तानाम् ¦। सामान्यवत्*

=तिर्यंचगतिमें तिर्यंचों के मिथ्यादृष्टी से संयमा-
=संयमी तकनिके (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यंचों के औदायिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थान-वर्ती तिर्यंचों के पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंकेक्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों के औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी तिर्यंचों के क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यंच गतिमें मिथ्यात्व सेसंयतासंयत तक पांच ही गुणस्थान होते हैं

मनुष्यगतौ ¦॥ मनुष्याणाम् ¦। मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ¦। सामान्यवत्*

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि)
=अयोगकेवलितकनिके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी मनुष्यों के औदयिक भाव है। सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यों के पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के क्षायोपशमिक भाव है। असंयमी सम्यग्दृष्टी मनुष्योंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी से अप्रमत्त संयमी तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशम श्रेणी वालों के औपशामिक भाव है। चार क्षपक श्रेणियों के और सयोग और अयोग-केवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०) ॥
मनुष्यों के सर्व चौदह गुणस्थान होते हैं ॥

देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भावः । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

देवगतौ ;। देवानाम् ;- मिथ्यादृष्टि-आदि— असंयत-सम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ;। सामान्यवत्*

=देवगतिमें देवोंके मिथ्यादृष्टिसे असंयमी
= सम्यग्दर्शनवालेतकनिके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम (भाव) हैं अर्थात मिथ्यादृष्टि देवोंके औदयिक भाव है । सासादन दूसरे गुणस्थानवर्ती देवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टी देवोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव हैं ॥ देवों के प्रथम से चौथे तक चारही गुणस्थान हैं ॥

इन्द्रिय-अनुवादेन ;। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियाणाम्;। औदयिक-भावः ;।

=(२) इन्द्रियके कथनानुसारकरि एकेन्द्रियवालेजीव और
=विकल (दो-तीन-चार) इन्द्रियधारक जीवोंके औदयिक भाव है

पञ्चेन्द्रियेषु ;। मिथ्यादृष्टि-आदि— अयोगकेवलि-अन्तानाम ;। सामान्य-वत्*...

=पांचइन्द्रियवाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे अयोगकेवली
=पर्यंतोंका संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि पंचेंद्रिय जीवोंके औदयिक भाव हैं ॥ (सासादनसे अयोगीतक के पांचों इन्द्री होती हैं अतः इन्द्रिय शब्द लिखनेकी आवश्यकता नहीं है) सासादन सम्यग्दृष्टिके पारिणामिक भाव होताहै । मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भावहै । असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । देशसंयतसे अप्रमत्तसंयततक क्षायोपशमिक भावहै । चार उपशमश्रेणीवालोंके औपशमिक भावहै । चार क्षपकश्रेणीवालोंमें और सयोगकेवली- अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है। (देखो पृष्ठ २७८से २८० तक)

[३] कायानुवादेन–स्थावरकायिकानामौदयिको भावः। त्रसकायिकानां सामान्यमेव ॥ [४] योगानुवादेन–कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यमेव ॥

---

[३] काय-अनुवादेन ।। स्थावर-कायिकानाम् ।। औदयिकः ।। भावः ।। त्रस—कायिकानाम् ।। सामान्यम् ।।। एव*

=(३) कायके कथनानुसारकरि स्थावर (पृथिवी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) =कायिकोंके औदयिक भाव है। त्रस (अर्थात् चलने फिरने वाले) =कायधारी (जीव निके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (=एव) है अर्थात् मिथ्यादृष्टी जीव स्थावर भी हैं और त्रस भी हैं उन दोनोंके औदयिक भाव है। दूसरे से चौदहवां गुणस्थान तक त्रस पञ्चेन्द्रिय जीव हैं॥ उन में सासादन सम्यग्दृष्टीके पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है॥ संयतासंयत से अप्रमत्त संयत तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमश्रेणी वालोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपकश्रेणी वालों के, सयोगकेवलियोंके और अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८० तक)

[४] योग-अनुवादेन ।। काय-वाङ्-मानस-योगिनाम् ।। मिथ्यादृष्टि-आदि— सयोगकेवलि-अन्तानाम् ।। च अयोग-केवलिनाम् ।। सामान्यम् ।।। एव*

=योग की अपेक्षा से काय-वचन-मनोयोगीनिके =मिथ्यादर्शन वाले से सयोगकेवली पर्यंतों का और (=च) =अयोगकेवलियोंका संक्षेप (प्रकरण में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (एव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भाव है। सासादनमें परिणामिक है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है॥ देशव्रतीसे अप्रमत्त-तक क्षायोपशमिक है। चार उपशमकके औपशमिक है। चार क्षपकोंके, सयोग-अयोग केवलियोंके क्षायिक भाव है (पृष्ठ २७८–२८० तक देखो)

(५) वेदानुवादेन- स्त्रीपुन्नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन-क्रोधमानमायालोभकषायाणामकषायाणां च सामान्यवत् (७) ज्ञानानुवादेन- मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् ॥

---

(५) वेद-अनुवादेन ;। स्त्री-पुम्-नपुंसक-वेदानाम् ;।
च*अवेदानाम् ;।
सामान्यवत्*

=(५) वेदके कथनानुसारसे स्त्री पुरुष नपुंसक वेद वाले (जीव) निके
=और वेदरहित जीव (सूक्ष्मसांपरायसे अयोगकेवली गुणस्थान वर्ती) निके
=संक्षेप (प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भावहै। सासादनमें पारिणामिक। मिश्रमें क्षायोपशमिक। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमक के औपशमिक भाव और चार क्षपकके, सयोगकेवलि-अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है। (२७८से२८०)

(६) कषाय-अनुवादेन ;। क्रोध-मान-माया-लोभ-कषायाणाम् ;। च*अकषायाणाम् ;।
सामान्यवत्*

=(६) कषायकी विवक्षा से क्रोध-मान-कपट (=माया) लोभ कषाय
=वालोंके और (=च) कषायवर्जित (उपशांतकशायसे अयोगकेवली तक) निका
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृशहै (पृष्ठ २७८ से २८०)

[७] ज्ञान-अनुवादेन- ;। मतिअज्ञानि-श्रुतअज्ञानि-विभङ्गज्ञानिनां ;।

=ज्ञानके कथनानुसारकरि कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान
=कुअवधिज्ञान [ये तीन कुज्ञान मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान वाले और तीन कुज्ञान तीन मति-श्रुत-अवधिज्ञान-मिश्रसम्यग्मिथ्यात्व वाले] निके

च*मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानिनाम् ;।
सामान्य-वत्*

=और [=च] मति-श्रुत-अवधि [असंयतसे क्षीण कषाय वर्ती]
=मनः पर्यय [प्रमत्त संयमीसे क्षीणकषाय वाले] और केवल ज्ञानि निके
=संक्षेप [प्रकरणमें पूर्वकथित गुणस्थान] सदृश भाव हैं [देखो२८५ पंक्ति ७से१३]

(८) सँयमानुवादेन—सर्वेषां सँयतानां सँयतासँयतानामसँयतानां च सामान्यवत् (९) दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शिनां सामान्यवत् ॥

---

[८] संयम-अनुवादेन ।। सर्वेषाम् ।। संयतानाम् ।।
संयतासंयतानाम् ।। च* असंयतानाम् ।।
सामान्यवत्*

= (८) संयमके कथनानुसारकरि सब संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका
= देशसंयमियोंका और असंयमी (मिथ्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका
= (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिकभाव है । सासादनमें पारिणामिक भाव है । मिश्रमें क्षायोपशमिक है । असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है । संयतासंयतसे अप्रमत्तनक क्षायोपशमिक, चार उपशमकके औपशमिक, चार क्षपकके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है ॥

[९] दर्शन-अनुवादेन ।। चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शन-
अवधिदर्शन-
केवलदर्शिनाम् ।।
सामान्य-वत्*

= (९) दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन वालोंके (ये दोनों मिथ्यात्व-प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक १२ गुणठाणे हैं)
= अवधिदर्शन (असंयतसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक) निके (भाव)
= केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निके (भाव)
= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात् शब्दशः वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें घटलो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातसे दशतक दिया है ।

---

(१) सामायिक-छेदोपस्थापना दो संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें होते हैं । परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है । सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें होता है । यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है । संयमासंयम देशविरत गुणस्थानमें होता है और असंयम मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

(१०) लेश्यानुवादेन-पद्मलेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन--भव्याना मिथ्यादृष्ट्या-द्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । अभव्यानां पारिणामिको भावः॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन ;। पद्म-लेश्यानाम् ;। च* अलेश्यानाम्;। सामान्य-वत्*

=(१०) लेश्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-कपोत-पीत-पद्म-शुक्ल)
=लेश्यावालोंके और लेश्यारहित (अयोगकेवलि)निके (भाव)
=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छहोलेश्या मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत गुणस्थानोंमें हैं वहां क्रमसे औदयिक-पारिणामिक-क्षायोपशमिक और औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव हैं। पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यायें देशविरतसे अप्रमत्त तक हैं वहां क्षायोपशमिक भाव है। शुक्ललेश्या चार उपशमक में हैं वहां औपशमिक भावहै। शुक्ललेश्या चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके हैं वहां क्षायिक भाव है ॥

(११)भव्य-अनुवादेन ;। भव्यानाम् ;। मिथ्यादृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानाम् ;। सामान्यवत*

=(११)भव्य जीवोंकी अपेक्षासे भव्योंके मिथ्यादृष्टिसे
=अयोगकेवलीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव है। सासादनमें पारिणामिक है। मिश्र-में क्षायोपशमिक है असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक है चार उपशमकके औपशमिक है। चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है।

अभव्यानाम् ;। पारिणामिकः ;। भावः ;।

=अभव्योंके पारिणामिक भाव है (जो भाव जिसमें कर्मकी कुछभी अपेक्षा नहीं है) भावार्थ अभव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औदयिकही है ॥

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असँयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् । असंयतत्वमौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वं च ॥ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः

---

[१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन ;। क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ;। असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। क्षायिकः ;। भावः ;। क्षायिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। असंयतत्वम् ;॥। औदयिकेन ;। भावेन ;।

=(१२) सम्यग्दर्शन के अनुवादकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालों में =" असंयत सम्यग्दृष्टी के क्षायिक भाव तौ =क्षायिक सम्यक्त्व है अर असंयतपणां है सो =औदयिक भाव करि है " जयचंदजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ११४)

संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;। क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। च*

=(क्षायिक सम्यग्दर्शन वालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्त- =संयमियोंके क्षायोपशमिक भाव हैं और (=च)

क्षायिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥।

=" सम्यक्त्व क्षायिक है (सो क्षायिक भावकरिहै" जयचंदजी व चनिका ११४

चतुर्णाम् ;। उपशमकानाम् ;।

=(क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) वालोंके

औपशमिकः ;। भावः ;। क्षायिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। =औपशमिकभाव है । क्षायिक सम्यक्त्व (यहां) है (सो क्षायिक भाव करि है)।

शेषाणाम् ;। =(क्षायिक सम्यग्दृष्टीयोंमें) अवशेष (चार क्षपक श्रेणीवाले-सयोगी-अयोगी)निका

सामान्य-वत्* =संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान समान भाव) हैं (इन सबके क्षायिक भावहै)

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ;। असंयतसम्यग्दृष्टेः ;। =वेदकसम्यग्दर्शनवालोंमें असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (चौथे गुणस्थानवर्ती) के

---

(१) क्षायिक सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थानसे अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान तक है । क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से अप्रमत्त संयत सातवें तक है । उपशमसम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से उपशांतकषाय ग्यारहवां तक है ॥

(२) क्षायिक सम्यक्त्वी जीव भी उपशम श्रेणी मांड सकता है

क्षायोपशमिको भावः । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥

क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। क्षायोपशमिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। असंयतः ;। पुनः* औदयिकेन ;। भावेन ;। संयत-असंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;। क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। क्षायोपशमिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। औपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ;। असंयत-सम्यग्दृष्टेः ;। औपशमिकभावः ;। औपशमिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। पुनः* असंयतः ;। औदयिकेन ;। भावेन ;। संयत-असंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ;। क्षायोपशमिकः ;। भावः ;। क्षायोपशमिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥। औपशमिकम् ;॥।

=क्षायोपशमिक भाव है (सो तो) क्षायोपशमिक
=सम्यग्दर्शन है । और (=पुनः) असंयतपना (=असंयतः=असंयतत्वम्) है
=(सो) औदयिक भावकरि है । (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी,
=प्रमत्त और अप्रमत्त विरतियोंके क्षायोपशमिक
=भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है ॥
=उपशमसम्यग्दर्शनवालों में
=असंयमी सम्यग्दर्शनवाले कें औपशमिक भाव है
=(सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है
=(सो) औदयिक भावकरि है ॥ (असंयतः=असंयमपना)
=(उपशमसम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के
क्षायोपशमिकः;। भावः;। सम्यक्त्वम्;॥। औपशमिकम्;॥। =क्षायोपशमिक भाव है । सम्यक्त्व औपशमिक है ॥

---

(१) अत्र औदयिको भावः इत्येकः पाठः । औपशमिको भावः इत्येकः पाठः ॥

अत्र*औदयिकः ;। भावः ;। इति*एकः ;। पाठः ;। =यहां औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार देश-संयमी, प्रमत्तसंयमी, और अप्रमत्तसंयमीनिकें औदयिक भाव है।

औपशमिकः ;। भावः ;। इति*एकः ;। पाठः ;। =औपशमिक भाव है ऐसा और (=एक-यशचन्द्र कोश पृष्ठ ५७) पाठ है अर्थात् इस पाठानुकूल औपशमिक भाव है भावार्थ ऐसा है कि भिन्न भिन्न पाठानुकूल संयमासंयमियों के, प्रमत्तसंयमियों के, अप्रमत्तसंयमियों के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव संभव हैं ॥

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ;। उपशमकानाम् ;।

=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निके

औपशमिकः ;। भावः ;। औपशमिकम् ;॥। सम्यक्त्वम् ;॥।

=औपशमिक भाव है। (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है॥

सासादन-सम्यग्दृष्टेः ;। पारिणामिकः ;। भावः ;।

=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ;। क्षायोपशमिकः ;। भावः ;।

=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तिके क्षायोपशमिक भाव है।

मिथ्यादृष्टेः ;। औदयिकः ;। भावः ;। [१३] सज्ञा-अनुवादेन संज्ञिनाम् ;। सामान्य-वत्*

=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तिके औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे =सैनी (=मनसहितजीव) निके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है। सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थनवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमक संज्ञीयोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है।

असंज्ञिनाम् ;। औदयिकः ;। भावः ;।

=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है।

तद्-उभय-व्यपदेशरहितानाम् ;।

=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

---

(१) संज्ञीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं। असंज्ञी मिथ्यात्वमें है। संज्ञी असंज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं॥

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकाणामनाहारकाणां च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्*
(१४) आहार-अनुवादेन ;। आहारकाणाम् ;।
च*अन्-आहारकाणाम् ;। सामान्य-वत्*

=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं
=(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तकहैं)
=और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै। संयतासंयतसे अप्रमत्त-गुणस्थानवर्त्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥
चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतरसमुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असंयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥

भावः ;। परि-समाप्तः ;।
=भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अल्प-बहुत्वम् ;॥। उपवर्ण्यते T
=एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै ।

तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-त्रय उपशमकाः सर्वतः स्तोकाः स्वगुणस्थान-कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥ उपशान्तकषायास्तावन्त एव ॥

तत् ।॥। द्वि-विधम् ।॥। सामान्येन ।॥। विशेषेण ।। च
सामान्येन ।॥। तावत्* त्रयः ।।
उपशमकाः ।। सर्वतः* स्तोकाः ।। स्व-
गुणस्थान-कालेषु ।। प्रवेशेन ।। तुल्यसंख्याः ।।

=वह (अल्प-बहुत्व प्ररूपणा) दो प्रकार संक्षेपकरि और विस्तारकरि है ।
=प्रथम (=तावत्) संक्षेपकरि तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ)
=उपशमश्रेणीवाले सबसे थोड़े हैं । (वे तीन उपशम श्रेणी वाले) अपने २
=गुणस्थान कालों में प्रवेशकरि समान वा बराबर संख्यावाले होते हैं अर्थात् प्रत्येक उक्त तीन गुणस्थान में कोई आचार्य तीनसौ (३००) कहते हैं । कोई तीन सौ चार (३०४) कहते हैं । कोई दो सौ निन्यानवे (२९९) कहते हैं ॥ (देखो गोम्मटसारगाथा ६२६ तिसयं भणंतिकेई इत्यादि)

उपशान्तकषायाः ।। तावन्तः ।। एव*

=उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले उतने ही हैं अर्थात् उक्त गाथा के अनुकूल २९९, वा ३०० अथवा ३०४ उत्कृष्ट हैं

(१) अष्टसु समयेषु प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादि जघन्याः ॥ उत्कृष्टास्तु १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्वगुणस्थान कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥ संख्याकथनावसरे प्रोक्ताः ' तत्र द्रष्टव्यम् ॥ पृष्ठानि ९३, ९४, ९५, अयमनुवादस्य ॥

अष्टसु ।। समयेषु ।। प्रवेशेन ।। एकः ।। वा* द्वौ ।।
वा त्रयः ।। वा इत्यादि* जघन्याः ।॥ उत्कृष्टाः ।॥ तु
१६ । २४ । ३० । ३६ ।
४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्व-गुणस्थान-
कालेषु ।। प्रवेशेन ।।
तुल्यसंख्याः ।।

संख्या-कथन-अवसरे ।। प्रोक्ताः ।।
तत्र* पृष्ठानि ।॥। ९३, ९४, ९५ द्रष्टव्यम् ।॥।

=आठ समय में प्रवेश होकर एक अथवा दो
=अथवा तीन इत्यादि जघन्य (=न्यून से न्यून) संख्या है । और (=तु) उत्कृष्ट (संख्या)
=(प्रथम समय से आठ समय तक यथा संख्य) सोलह-चौबीस-तीस-छत्तीस-
=बयालीस-अड़तालीस-चौवन-चौवन अपने अपने गुणस्थान
=समयों में प्रवेश होनेरि (आठ से ग्यारह गुणस्थान उपशमश्रेणी) के
=समान संख्यावाले (प्रत्येक गुणस्थान में) हैं अर्थात् ३०४ सबके प्रत्येक प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में उत्कृष्टकरि हैं । (देखो पृष्ठ ९३, ९४)
=संख्या (प्ररूपणा) का कथन (जो पहले कर चुके हैं उस के) प्रसंग में कह चुके हैं
=तहाँ पृष्ठ ९३, ९४, ९५ (इस अनुवादके देखना चाहिये)

त्रयः क्षपकाः संख्येयगुणाः ॥ क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव ॥ सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्याः ॥

त्रयः ।।
=तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-)

क्षपकाः ।। संख्येयगुणाः ।।
=क्षपकश्रेणीवाले (उक्त तीन उपशमश्रेणीवालोंसे) संख्याते गुणेहैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालोंसे दूने हैं (गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६२६) ॥ प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार २९९ हैं केईके ३०० हैं केईके ३०४ हैं अतः प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार ५९८ हुये, केईके ६०० हुये केईके ६०८ मुनिहुये ॥

क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्थाः ।। तावन्तः ।।
=क्षीणकषाय वीतरागच्छद्मस्थ बारहवांगुणस्थानवर्ती उतने

एव*
=ही (=एव) हैं अर्थात् ५९८ हैं अथवा ६०० अथवा ६०८ मुनिहैं

सयोगकेवलिनः ।। च अयोग-केवलिनः ।।
=सयोगकेवली और (=च) अयोगकेवली (=चौदहवें गुणस्थानवर्ती)

प्रवेशेन ।। तुल्यसंख्याः ।।
=प्रवेशको (नेकी अपेक्षा) करि समानगणनावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली, अयोग-केवली गुणस्थानोंमें जघन्यपनासे जीव प्रवेश करैं तौ एक समयमें एक वा दो वा तीन इत्यादि जीव (पृथक् पृथक् गुणस्थान) में प्रवेश करैं और उत्कर्षकरि एकसौ आठ जीव तक एक समयमें प्रवेश होसक्ते हैं(देखो इसके पृष्ठ९४, ९५)। स्मरण रहै कि यह तुल्य संख्या केवल तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश होनेवाले जीवों की, चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश होनेवाले जीवोंके तुल्य प्रवेश होनेकी अपेक्षासे ही तुल्य है । तेरहवें गुणस्थानमें रहने वाले जीवोंकी संख्या चौदहवें गुणस्थान में रहने वाले जीवोंकी संख्याके कदापि तुल्य नहीं है क्योंकि

सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिताः संख्येयगुणाः । ८९८५०२ ॥ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । २९६९९१०३ । प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । ५९३९८२०६ ॥ सँयतासंयता असंख्येयगुणाः ॥

तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव उत्कृष्टकरि होसकते हैं और चौदहवें गुणस्थानमें उत्कृष्टकरि ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ जीव हो सकते हैं ॥
देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)

सयोगकेवलिनः ;। स्वकालेन ;। समुदिताः ;। संख्येयगुणाः ;। ८९८५०२

=सयोगकेवली अपनेकालकरि समुदाय अथवा इकट्ठे हों
=(तब अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं । (सयोगकेवली) ८९८५०२ हैं

अयोगकेवली ५९८ अथवा ६०० वा ६०८ तक भिन्न २ आचार्योंके मतानुसार उत्कृष्टकरि होसकते हैं (इसके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी (२) देखो)

अप्रमत्तसंयताः ;। संख्येयगुणाः ;। २९६९९१०३ प्रमत्त संयताः ;। संख्येयगुणाः ;। ५९३९८२०६ संयतासंयताः असंख्येयगुणाः ;।

=अप्रमत्तसंयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती-इन सयोगकेवलियोंसे)
=संख्यातगुणे हैं । दो करोड़ छियानवैलाख निन्यानवै सहस्र एकसौ तीन हैं
=प्रमत्त संयमी (छठवांगुणस्थानवर्ती-इन अप्रमत्त संयमियोंसे)
=संख्यातगुणे हैं । "पांच करोड़ तिरानवै लाख हज़ार अठानवै दोसौ छ जानो"
=संयमासंयमी (प्रमत्तसंयमियोंसे) असंख्यातगुणे हैं " तेरह करोड़ मनुष्य हैं ॥ और पल्यके असंख्यातवें भाग तिर्यंच हैं ।

---

(१) संयतासंयताः संख्येयगुणाः । संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । एक गुणस्थानवर्तित्वात् । संयतासंयतानामिवगुणस्थानभेदात् ।३०००००० ॥

संयतासंयताः ;। संख्येयगुणाः ;। एकगुणस्थानवर्तित्वात् ;॥। संयतासंयतानाम् ;। अल्प-बहुत्वम् ;॥।

न • अस्ति T

=देशसंयमी वा संयमासंयमी संख्यात गुणे हैं । एक गुणस्थान
=वर्ती होने (के हेतु) से संयमासंयमियों के अल्प बहुत्व (का मिलान वा उपमा)
=नहीं (हो सकी) है क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुये दो स्थानों में विद्यमान हैं

सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;।	=सासादनसम्यग्दृष्टि (देशसंयमियोंसे) असंख्यात गुणेहैं ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;।	=मिश्रगुणस्थानवर्त्ती (सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) संख्यात गुणेहैं ।
असंयत - सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;।	=अविरतसम्यग्दृष्टी (सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे) असंख्यात गुणे हैं ।

तब कहते हैं कि अमुक प्रकारकी वस्तुयें अमुक जात की वस्तुओंसे थोड़ी वा घनी हैं। संयमासंयमी एक ही गुणस्थानमें होते हैं। इससे अल्प बहुत्व नहीं है ॥ असंयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि वे मिथ्यात्व सासादन-मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें हैं सोसेही संयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि वे छठेसे १४ गुणस्थान तक हैं

संयतासंयतानाम् ;। गुणस्थान-भेदात् ;। इव॰ =संयमासंयमीकी (गणना) गुणस्थानभेदसे बराबर (=इव)
१३०००००० । इति॰श्रुतसागरः ;। =तेरह करोड़के हैं । ऐसे (श्री) श्रुतसागरसरि (श्रुतसागरीटीकामें) कहते हैं
(१) सासादनसम्यग्दृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;। =सासादनसम्यग्दर्शनवाले (देशसंयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं (अर्थात्)
५२०००००० ॥ (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ;। =बावनकरोड़ हैं ॥ मिश्रतीसरेगुणस्थानवर्ती (सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
संख्येयगुणाः ;। १०५०००००० =संख्यातगुणे हैं (अर्थात्) एकसौपांचकरोड़ है ॥ चार
(३) असंयतसम्यग्दृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;। = अविरतसम्यग्दृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थानवालों से) संख्यातगुणे वे
७००००००००० । इति॰श्रुतसागरः ;। =सातअरब हैं ॥ ऐसे श्रुतसागरसरि (का वचन श्रुतसागरीटीकामें है)

टिप्पणी १ पृष्ठ २९४ और टिप्पणी १,२ पृष्ठ २९५में श्रुतसागर सरिने चार गुणस्थानोंमें जो गणना लिखी है वह केवल मनुष्योंकी समझना क्योंकि गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६२३ (टोडरमल ६२४) में मिथ्यात्व गुणस्थानसे संयतासंयतकी सर्व संख्या ऐसे लिखी है कि

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य । पल्लासंखेज्जदिमसेढिगुणं संखसेढिगुणं ॥६२४॥ मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताः च । पल्यासंख्येयमसंख्येयगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥छाया॥

मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन-नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चां सर्वतः स्तोकाः सँयताँसंयताः । इतरेषां सामान्यवत् ॥

मिथ्यादृष्टयः ।। अनन्तगुणाः ।। विशेषेण ।। गति—	=मिथ्यादृष्टी (असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥ विशेषकरि गतिके
अनुवादेन ।। नरकगतौ ।।। सर्वासु ।।। पृथ्वीषु ।।।	=कथनानुसारकरि नरकगतिमें सब भूमियों (नरकों) में
सर्वतः * स्तोकाः ।। सासादन-सम्यग्दृष्टयः ।।	=सबसे थोड़े सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ।।	=(उन सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियों से) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकी)
संख्येयगुणाः ।। असंयतसम्यग्दृष्टयः ।।	=संख्यातगुणा हैं । (मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंसे) असंयतसम्यग्दृष्टि(नारकी)
असंख्येयगुणाः ।। मिथ्यादृष्टयः ।।	=असंख्यातगुणे हैं । (असंयमी सम्यग्दृष्टीनारकियोंसे) मिथ्यादृष्टी (नारकी)
असंख्येयगुणाः ।। तिर्यग्गतौ ।।। तिरश्चाम् ।। सर्वतः	=असंख्यातगुणे हैं ॥ तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें सबसे
स्तोकाः ।। संयतासंयताः ।।	=अल्प संयमासंयमी(तिर्यंच)है अर्थात् पल्यके असंख्यातवां भागहैं (देखो टिप्पणी)
इतरेषाम् ।।	=अन्य (असंयतसे मिथ्यादृष्टी तक तिर्यंचों) का
सामान्यवत् *	=संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (अल्पबहुत्व) है नीचेकी टिप्पणी देखो

अर्थः—मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं । श्रावक पल्यके असंख्यातमे भाग हैं सासादन गुणस्थानवर्ती श्रावकोंसे असंख्यात गुणे हैं । मिश्रसासादनवालोंसे संख्यातगुणे है अव्रतसम्यग्दृष्टि मिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं । इनमें संयमा संयमीमें,सासादनगुणस्थानमें,मिश्रमें,असंयतागुणस्थानमें कुछ २ अधिक जानलो अर्थात् संयतासंयतगुणस्थान के धारक मनुष्य और तिर्यंच ही गति के जीव होते हैं सो इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं पल्य के असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं । सासादनगुणस्थानमें चारो गति के जीव होते हैं । इनमें बावन करोड़ मनुष्य हैं और नारकी तिर्यंच और देव संयतासंयतसे असंख्यातगुणे हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी चारों गति में होते हैं सो एकसौचार करोड़ मनुष्य हैं और सासादनवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन नरक, तिर्यंच, देवगति के जीव हैं । असंयतगुणस्थानमें भी चारोंगति के जीव हैं उनमें सातसौकरोड़ मनुष्य है मिश्रवालोंसे संख्यातगुणे अवशेष तीनगतिके जीव हैं ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ ततः संख्येयगुणाः संयतासंयताः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ देवगतौ देवानां नारकवत् ॥

मनुष्यगतौ ;॥ मनुष्याणाम् ;। उपशमक-आदि-प्रमत्तसंयत-अन्तानाम् ;। सामान्यवत्*

मनुष्यगतिमें मनुष्योंका (अल्प-बहुत्व) उपशम श्रेणीवालोंसे
=प्रमत्तसंयमीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय इन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें २९९, कई आचार्योंके मतमें ३०० अथवा कईकके मतमें ३०४ जीव हैं और अप्रमत्त गुणस्थानमें २०६९९१०३ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे अप्रमत्तमें संख्यातगुणा जीवद्वये और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ५९३९८२०६ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे, और अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीसे भी प्रमत्तगुणस्थानमें संख्यातगुणे जीव हैं॥

ततः* संख्येयगुणाः ;। संयतासंयताः ;।
सासादन-सम्यग्दृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;।
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;।
असंयत-सम्यग्दृष्टयः ;। संख्येयगुणाः ;।
मिथ्यादृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;।
देवगतौ ;॥ देवानाम् ;। नारकवत्*

=तिन (प्रमत्त संयमीयों) से संख्यातगुणे संयमासंयमी (मनुष्य तिरह कोटि) हैं
=(उन देशव्रतियोंसे) सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (बावन) करोड़ हैं
=(सासादनवालोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नर) संख्यातगुणे (एकसौचार कोटि) हैं
=(मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (सातसौकरोड़) हैं।
=(असंयमी सम्यग्दृष्टीयोंसे) मिथ्यादृष्टी (मनुष्य नकि सर्वजीव) असंख्यातगुणे हैं
=देवगतिमें देवोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) नारकियोंके तुल्य है अर्थात्
सासादन सम्यग्दृष्टि देव सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती देव हैं। इन (मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी देव असंख्यातगुणे हैं।

(२) इंद्रियानुवादेन--एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभावः ॥ इंद्रियं प्रत्युच्यते। पंचेंद्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहवः ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत्।

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन ;। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ;। गुणस्थान-भेदः ;। न*अस्ति T इति*अल्प-बहुत्व-अभावः ;। इन्द्रियम् ;॥। प्रति* उच्यते T पंचेन्द्रिय-आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ;। उत्तरोत्तरम् ;॥। बहवः ;।

पंचेन्द्रियाणाम् ;। सामान्य-वत*

=(२) इंद्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार) =इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है =(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है =इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है =पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे =अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं एसे आगे आगे बहुलता है॥

=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान) =सदृश है। अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त-कषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (केईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें)३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकी अपेक्षा सबसे अल्प वा थोड़ीहै। और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (केईकके मतमें)

अयं तु विशेषः—मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ (३)

छसौ अथवा (केइक आचार्योंके मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले गुणस्थान से प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थानके मुनियोंकी संख्या संख्यातगुणी है। अयोगकेवलीकी संख्या५९८ वा ६०० वा ६०८ है (जी.का. गाथा.६२६और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यातगुणी हैं और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थान वर्तियों के बराबर है॥ सयोगकेवलियोंकी संख्या आठ लाख अठानवें सहस्र पांचसौ दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे संख्यातगुणी है और प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यातगुणी है। इन सयोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संयमी सातवां [illegible] नवर्ती संख्येयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९९९९१०३ है। और इन अप्रमत्तसंयमियों [illegible] संख्यात गुणे हैं क्योंकि ये ५९३९८२०६ हैं॥ उक्त प्रमत्तसंयमियोंसे संयमासंयमी असंख्यात हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही यह देशसंयम गुणस्थान होता है इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यंच पल्यके असंख्यातमें भाग हैं। इन संयमासंयमियोंसे सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारों गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और श्रावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। इन सासादन वालोंसे संख्यात गुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती हैं क्योंकि इनमें एकसौ चारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। और असंयत गुणस्थान भी चारों गतिमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय जीव संज्ञीकेही इनमेंसे बारह गुणस्थान हो सक्ते हैं। असंज्ञी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है॥

अयम् ;। तु* विशेषः ;। मिथ्या- =परन्तु (=तु) यह विशेष है कि पंचेन्द्रिय मिथ्या-
दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;। =दृष्टी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पंचेन्द्रिय जीवों से) असंख्यात गुणे हैं॥

कायानुवादेन--- स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः ॥ कायं प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजः कायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ [४] योगानुवादेन--- वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्।

---

[३] काय-अनुवादेन ;। स्थावर-कायेषु ;।
गुणस्थानभेद अभावात ; अल्प-बहुत्व-अभावः ;।
= (३) कायके कथनसे स्थावर (पृथिवी अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) कायोंमें
= गुण स्थानमें भेद न होने (के हेतु) से थोड़े बहुतपनेका अभाव है
(क्योंकि समस्त स्थावर कायोंके एक मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान ही होता है)
(अतः गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछभी अल्प बहुत्व नहीं हो सक्ता है)

कायम् ;। प्रति* उच्यते। सर्वतः* अल्पाः ;।
तेजःकायिकाः ;। ततः* बहवः ; पृथिवी कायिकाः ;।
ततः* अप्कायिकाः ;। ततः वातकायिकाः ;।
= कायकी अपेक्षासे (अल्प बहुत्व) कहाजाता है। सबसे थोड़े
= अनल कायिक हैं। तिन (अनल कायिक)से भूमिकायिक बहुत हैं
= उन (भूमिकायिकोंसे) जल कायिक (बहुत) हैं। तिन (जलकायिकसे)
पवन कायिक (बहुत) हैं

सर्वतः* अनन्त-गुणाः ;। वनस्पतयः ;।
त्रसकायिकानाम् ;। पञ्चेन्द्रियवत्*
= सबसे अनन्तगुणे वनस्पति (कायिक) हैं
= त्रसकायिकोंका (अल्प-बहुत्व) पञ्चेन्द्रिय समान है अर्थात् पांचइन्द्रियवाले जीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चारइन्द्रियवालेजीवोंसे तीन इन्द्रिय वाले जीव घने हैं। तीन इन्द्रियवाले जीवोंसे दो इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ पांच इन्द्रियवालोंका परस्पर अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है ॥
(देखो-चारअपूर्वकरण इत्यादि लेखमें··· पृष्ठ २९८में और २९९ के अन्ततक)

[४] योग अनुवादेन ;। वाङ्मानस-योगिनाम् ;।
पंचेन्द्रियवत् *
= [४] योगके कथनानुसारसे वचन मन योगियोंका [अल्प-बहुत्व]
= पांच इन्द्रियवाले जीवोंके अल्प-बहुत्वके सदृश है ॥ अर्थात् पांच इन्द्रियवालोंका अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत् [पृष्ठ २९८से२९९ के अन्त तक] है

---

(१) वाच् = वाक् (यो: कु ८-२-३० से) = वाक् (८-४-४५ से) ॥ देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी ४ और पृष्ठ ३६ टिप्पणी ४ वास्ते व्युत्पत्ति के ॥

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन---- स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ।। सामान्यवत् *

=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व ..... पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद-अनुवादेन ।। स्त्री-पुम्-वेदानाम् ।। पंचेन्द्रियवत् *

=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुंवेद वालोंका (अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं। अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं। इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ वह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो अन्यन्य उपयोग तीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो है। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीकके पर्यायतीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिये है पुरुष वेदक उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अरु स्त्री दोउनिका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लि (अंगोपांग नामे नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ डाढ़ी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले जीव भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी सबसे थोड़े हैं २९९ वा ३०० वा ३०४ प्रत्येकगुणस्थानके मेंसे भाव नपुंसकवेदी घटादिये जावें तो भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी शेष रहे जावेंगे । इनसे संख्यातगुणे प्रत्येक अपूर्वकरण क्षपकश्रेणी और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणी होंगे क्योंकि इन प्रत्येक दोनों गुणस्थानोंमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव उत्कृष्टकरि तीनों वेदवाले हो सक्ते हैं। अप्रमत्त संयमी इनसे संख्यातगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या तीनों वेदवालोंकी २९६९९१०३ हो सक्ती है। इनसे अधिक प्रमत्तसंयमी हैं क्योंकि तीनों वेदवालोंकी संख्या ५९३९८२०६ जीव हैं॥ शेषके लिये देखो उक्त प्रमत्तसे···अन्त तक पृष्ठ २९९

बहुरि निर्माण नामका उदय संयुक्त स्त्रीवेदरूप आकारका विशेष लीए अंगोपांगनामा नामकर्मके उदयतैं रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतैं संबुक्कनपुंसकवेदरूप आकारका विशेष लिएं अंगोपांगनामा नामप्रकृतिके उदयतैं मूछ डाढ़ी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिन्ह रहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है। सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तौ समान वेद होई जैसा द्रव्यवेद होइ तैसाही भाववेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ। तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिकै तौ जैसा द्रव्यवेद है तैसा ही भाववेद है बहुरिकर्म भूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषैं कोई जीवनिकै तौ जैसा द्रव्यवेद हो है तैसाही भाव वेद है बहुरि केई जीवनिकै द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाववेद अन्य हो है द्रव्यतैं पुरुष है अर भावतैं पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है। ऐसे ही द्रव्यतैं स्त्री वेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है। बहुरि द्रव्यतैं नपुंसक वेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है। ऐसा विशेष जानना, जातैं आगमविषै नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं अर द्रव्यतैं एक पुरुषवेद ही है ऐसा कथन करया है गो०मट० जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९२, ५९३ ॥

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी अग्नि समान है। स्त्री वेदीका परिणाम कारीषकी अग्नि समान है नपुंसक वेदीका परिणाम पजावाकी अग्नि समान है ऐसे तीनोही जातिके परिणामनिकी जो पीड़ा तीहिंकरि जे रहित भए हैं ऐसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरणका अपगत वेद भागतैं लगाय अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाववेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ॥ गो०जीव० मुद्रित पृष्ठ ५९८

नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन-क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत् । अयं तु विशेषः-मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या । क्षपकाः

नपुंसकवेदानाम् ।। अवेदानाम् ।। च

=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाववेद) वर्जित
(सूक्ष्मसाम्परायसे अयोगकेवली गुणस्थानवर्ति) जिका (अल्पबहुत्व)
=संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुंसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है । और भाववेद रहित दशवां गुणस्थानसे चौदहवां तक है ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण...मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं । मिथ्यादृष्टीजीव नपुंसकलिंगी अनंतगुणे हैं क्योंकि स्त्रीलिंग पुल्लिंगजीव पंचेन्द्रिय होते हैं । और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौबीसस्थाना ग्रंथ) परन्तु नपुंसक लिंगी जीव एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैनी असैनी दोनों होते हैं (देखो चौबीसस्थानाग्रन्थ)

सामान्यवत्*

कषाय-अनुवादेन-क्रोध-मान-माया-कषायाणाम् ।।
पुंवेदवत्*

=(६) कषायके कथनानुसारसे क्रोध-मान-कपट कषायवालोंका (अल्प बहुत्व)
=पुरुष वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रिय वत् है अतः क्रोध मान-माया-कषाय वालोंका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये " चार अपूर्व...२९८ से २९९ पृष्ट के अन्त)

अयम् ।। तु* विशेषः ।। मिथ्यादृष्टयः ।। अनन्तगुणाः
लोभकषायाणाम्।। द्वयोः ।। उपशमकयोः ।।
तुल्या ।।। संख्या ।।। क्षपकाः ।।

=परन्तु भेद यह है कि मिथ्यादृष्टि (प्रत्येक गुणस्थानवालोंसे) अनन्त गुणे हैं
=लोभकषायवाले दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणीवालोंकी
=समान गणना है । (उन दो उपशमश्रेणीवालों से) क्षपकश्रेणी

संख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धयुपशमकसँयता विशेषाधिकाः । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ;।

=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं वा कैएक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुण हुए

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ;।

=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती

विशेष-अधिकाः ;।

=विशेषकरि अधिक हैं

सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ;।

=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले

संख्येय-गुणाः ;।

संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

शेषाणाम् ;।

=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)

सामान्यवत्*

=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण-कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन—मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषुः सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। विभङ्गज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतानुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
(देखो अष्टम ८५ अनुवादके पृष्ठ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)
ये उपशांतकषायवालोंसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं। इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं

ज्ञान-अनुवादेन ;। मति-अज्ञानि-श्रुतअज्ञानिषु ;। =(७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वतः* स्तोकाः ;। सासादनसम्यग्दृष्टयः ;। =सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
(उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ;। अनन्तगुणाः ;। =मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं वा "तिनतैं अनंतगुणां मिथ्यादृष्टि हैं" जय० ब० ११७
विभङ्ग-ज्ञानिषु ;। सर्वतः* स्तोकाः सासादनसम्यग्- =कुअवधिज्ञानियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्-
दृष्टयः ;। =दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें)
मिथ्यादृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;। =(कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

"सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्गज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों अनुवृत्तियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयो ऽ संख्येयगुणाः ॥ भूलसे छपगया है अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्ग ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १)जयचंदजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतैं स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि हैं। तीनितैं अनंत गुणां मिथ्यादृष्टि है। विभंग ज्ञानीनि विषै सर्वतैं थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है। तिनितैं असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि हैं" ऐसी भाषा वचनिका है वह शब्दशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है ॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंके, सर्वगतिमें, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत ज्ञान होते हैं और मिथ्यात्व सासादन दो ही गुणस्थान इन कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

संवाँय-

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणाः ।

सिद्धि

मति-श्रुत-अवधिज्ञानिषु ;। सर्वतःस्तोकाः ;। चत्वारः ;। =मति-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)

उपशमकाः ;। चत्वारः ;। =उपशमश्रेणीवाले हैं । (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)

क्षपकाः ;। संख्येयगुणाः ;। =क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११०६ वा १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं

अप्रमत्तसंयताः ;। =(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी

संख्येयगुणाः ;। =संख्यातगुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३

प्रमत्तसंयताः ;। =(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी

संख्येयगुणाः ;। =संख्यातगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ है और प्रमत्त

होते हैं ॥ (देखो चौबीस स्थान चरचा ग्रंथ) मिथ्यात्व गुणस्थान के जीवों की संख्या इसी ८ वें सूत्र की संख्या प्ररूपणामें अनंतानंत कही है (देखो पृष्ठ ९३) और गोम्मटसार जीवकांडकी गाथा ६२४ "मिथ्या...दुवारणंताय" में मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं । और 'इसी गाथामें सासादन गुणस्थान में बावन करोड़ मनुष्य और बावनों से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके जीव हैं ऐसी गणना लिखी है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुश्रुत ज्ञानियों सासादन गुणस्थानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुश्रुतज्ञानी अनंत गुणे ही हैं नकि असंख्यात गुणे ॥ (३) तीसरा हेतु यह भी है कि कुअवधि ज्ञानी भी मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थानोंमें होते हैं (देखो चौबीस स्थान चरचा) और यदि हम संस्कृत सर्वार्थसिद्धि का पाठ शुद्धमान लें तो मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुअवधिज्ञानियोंकी अपेक्षासे सर्वथा छूटाजाता है ॥ अतः हमने जो उपर्युक्त पाठ लिखा है वह शुद्ध है ॥ मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणाः अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण हैं ॥ (पृष्ठ ३११) भी उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः

संयता संयताः ;।
असंख्येयगुणाः ;।

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥
=(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
=असंख्यातगुणे हैं अर्थात 'मनुष्य और तिर्यंच इन दो गतियों में ही देश संयम गुणस्थान होता है । इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातमें भाग तिर्यंच हैं ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चौथेसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानों में है ॥ इन में मति-श्रुत-ज्ञान चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।

असंयत सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;।

=(देशसंयमियोंसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं

मनः पर्यय-ज्ञानिषु ;। सर्वतः* स्तोकाः ;। चत्वारः ;।

=मनः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोडे चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय)

उपशमकाः ;। चत्वारः ;।

=उपशम श्रेणीवाले होते हैं (मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)

क्षपकाः ;। संख्येयगुणा ;।

=क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥

अप्रमत्त संयताः ;।

=(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मनः पर्यय ज्ञानी)

संख्येयगुणाः । प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः ॥ केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्यः सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥

संख्येय-गुणाः ;।
=संख्यात गुणे हैं । (अप्रमत्तसंयमी मनः पर्ययज्ञानियोंसे)

प्रमत्तसंयताः ;। संख्येयगुणाः ;।
=प्रमत्तसंयमी (मनः पर्ययज्ञानी) संख्यात गुणे हैं । मनः पर्यय ६ से १२ तक है

केवल-ज्ञानिषु ;। अयोगकेवलिभ्यः ;। सयोग-केवलिनः ;। संख्येयगुणाः ;।
=केवल ज्ञानियोंमें अयोगकेवलियोंसे सयोग
=केवली संख्यात गुणे हैं अर्थात अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोगकेवली ८९८५०२ तक हो सकते हैं

(१) अयोगकेवलिनः एको वाद्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः स्वकालेन समुदिताश्चेत् । संख्येयाः सयोगकेवलिनः ॥ ८९८५०२ । अयोग-केवलिनः ;। एकः ;। वा॰द्वौ ;। वा॰ त्रयः ;।
=अयोगकेवली (जघन्यकरि) एक अथवा दो अथवा तीन (प्रवेशहोकरि)
वा॰ उत्कर्षेण ;। अष्टोत्तरशतसंख्याः ;। स्वकालेन ;। समुदिताः ;। तेभ्यः ;। संख्येयाः ;। सयोगकेवलिनः ;। ८९८५०२
=वा उत्कृष्टकरि एकसौआठकी संख्यामें (प्रवेशहोकरि) अपने अपने कालसे =समुच्चयहोकर उन (अयोगकेवली नि) से संख्याते (गुणे) सयोगकेवली है =(अर्थात् तेरहमें) आठ लाख हजार अठानवें पांचसौ दोय (बखाने)

(२) उपर्युक्त विवरण से यह बात झलकती है कि चौदह गुणस्थानमें उत्कृष्ट संख्या ६० लक अयोगकेवलीकी हो सक्ती है । क्योंकि इस अनुवादके पृष्ठ ९५और९५के वाक्य कि "चत्वारः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्याः स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः ॥ से प्रगट हैंकि क्षपकश्रेणी वालोंके प्रवेश होनेके तुल्य अयोगकेवलियों का भी प्रवेश होता है और क्षपकश्रेणीवाले जीव (गोम्मटसार जीवकांड-गाथा ६२८ बत्तीस अडदाल इत्यादि के अनुसार) अन्तराय रहित आठ समय पर्यंतोंमें से प्रथम समयमें ३२, दूसरे समयमें ४८ तीसरे समयमें ६०, चतुर्थ समयमें ७२, पांचमे समयमें ८४, छठे समयमें ९६, सातमे समयमें, १०८ आठमे समयमें १०८ होते हैं ॥ सर्वयोग ६०८ हुये ॥ किसी किसी आचार्यका मत है कि क्षपक श्रेणीवाले ५९८ प्रत्येक २ गुणस्थानमें उत्कृष्ट समुच्चय हो सके हैं केईकके मतमें ६०० केईकके मतमें ६०८ होते हैं गोम्मसार०जीव० गाथा ६३३ अन्तादी अहंता इत्यादिमें जो क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ माने हैं वे उन आचार्योंके मतानुसार है जो हैं कहते कि प्रत्येक उपशमक २९९ और प्रत्येक क्षपक ५९८ हो सके हैं इस गाथामें तीन घाटि नो करोड़ मुनिकी संख्या का वर्जन है ॥

(क) अयोगकेवलिनः तावन्त एव पृष्ठ ३१०

(८) सँयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसँयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसँख्या। ततः संख्येयगुणौ क्षपकौ। अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः। प्रमत्ताः संख्येयगुणाः॥ परिहारविशुद्धिसँयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ताः संख्येयगुणाः। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसँयतेषु उपशमकेभ्यः

---

[८] संयम-अनुवादेन ;। सामायिक-च्छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयतेषु ;। द्वयोः ;। उपशमकयोः ;। तुल्य-संख्या ;॥ ततः* संख्येय-गुणौ ;। क्षपकौ ;।

=(८) संयमके कथनानुसारकरि सामायिक च्छेदोपस्थापना-
=शुद्धिसंयमियों में दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण)
=उपशमश्रेणीवालोंकी समान गणना है। उन (दो उपशमश्रेणीवालों) से
=संख्यात गुणे दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपक श्रेणीवाले (सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धि संयमी) हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणी वालों की संख्या २९९ वा ३०० वा ३०४ है और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

अप्रमत्ताः ;। संख्येय-गुणाः ;।

=अप्रमत्त संयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमी)
=(उक्त दो क्षपक सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और अप्रमत्तसंयमी गणना में २९६९९१०३ है

प्रमत्ताः ;।

=प्रमत्तसंयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमी) (उन अप्रमत्तसंयमी सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों से)

संख्येय-गुणाः ;। परिहारविशुद्धि-संयतेषु ;। अप्रमत्तेभ्यः ;। प्रमत्ताः ;। संख्येय-गुणाः ;। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु ;। उपशमकेभ्यः ;।

=संख्यात गुणे हैं॥ परिहार विशुद्धिसंयमियों में
=अप्रमत्तसंयमियोंसे प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं
=सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमियों में उपशमश्रेणी वालोंसे

क्षपकाः संख्येयगुणाः ॥ यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतेषु उपशांतकषायेभ्यः क्षीणकषायाः संख्येयगुणाः ॥ अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । असंयतेषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । सम्यङ्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणाः ।

क्षपकाः ;। संख्येयगुणाः ;।
=क्षपक श्रेणीवाले (सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमी) संख्यातगुणे हैं

यथाख्यात-विहार शुद्धि-संयतेषु ;। उपशांत-
=यथाख्यात विहार शुद्धिसंयमियोंमें उपशांत

कषायेभ्यः ;। क्षीणकषायाः ;।
=कषाय ग्यारहवां गुणस्थानवालोंसे क्षीणकषाय (यथाख्यात संयमी)

संख्येय-गुणाः ;।
=संख्यातगुणे हैं अर्थात् ग्यारहवेंमें २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं और क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

अयोगकेवलिनः ;। तावन्तः ;। एव*
=अयोगकेवली (जितने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हैं) उतने ही हैं अर्थात् ५९८ वा ६०० अथवा ६०८ हैं

सयोगकेवलिनः ;। संख्येय-गुणाः ;।
=सयोगकेवली (अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं (८९८५०२ सयोगी हैं)

संयतासंयतानाम् ;। न अस्ति अल्प-बहुत्वम् ;॥॥
=संयमासंयमी वा देशसंयमियोंका अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि गुणस्थान तीन भागोंमें विभक्त हैं असंयत (प्रथमसे चार गुणस्थान तक), संयत छठेसे चौदह गुणस्थानतक और संयतासंयत एक ही है इससे अल्पबहुत्व नहीं है (देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ २९४-२९५)

असंयतेषु ;।
=असंयमियोंमें अर्थात् प्रथमगुणस्थान वालोंसे चौथा गुणस्थानवालोंमें

सर्वतः* स्तोकाः ;। सासादन-सम्यग्दृष्टयः ;।
=सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । अर्थात् सासादनगुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे इतरतीनिगति के जीव हैं ॥ गोमट्ट०जीव०गाथा ६२४

सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः ;। संख्येय-गुणाः ;।
=(उन सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यातगुणे हैं

असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ (९) दर्शनानुवादेन--चक्षुर्दर्शनिनां मनोयोगिवत् ॥ अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत् ॥

असंयत-सम्यग्दृष्टः ;। असंख्येय-गुणाः ;।

अर्थात् मिश्रगुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इसमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट० जीव० गाथा ६२४) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मुद्रित की दोनों आवृत्तियोंमें संख्येयके स्थानमें असंख्येय अशुद्ध छपगया है ॥

=(उन मिश्रगुणस्थानवर्तियोंसे) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात =गुणे हैं अर्थात अव्रत गुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट०जीव० गाथा ६२४ देखो)

मिथ्यादृष्टयः ;। अनन्तगुणाः ;।

=मिथ्यादर्शनवाले (इन असंयमी सम्यग्दर्शनवलोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥

(९) दर्शन-अनुवादेन ;। चक्षुष्-दर्शिनिनाम् ;। मनस्-योगिन्-वत्*

=(९) दर्शनकी विवक्षासे चक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व) =मनयोगीवालोंके सदृश है अर्थात् पञ्चेन्द्रियवत् है क्योंकि पृष्ठ ३०० के अनुकूल मनयोगियोंका पन्चेन्द्रियवत् है जिसके कथन के लिये पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण...पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव (अन्य किसी गुणस्थानके ? पञ्चेन्द्रिय जीवोंसे) असंख्यात गुणे हैं पृष्ठ २९९ के अन्ततक शब्दशः पढ़लो

अचक्षुष्-दर्शनिनाम् ;। काययोगिवत्*

=अचक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व) काययोगियोंके सदृश है और काय योगियों का गुणस्थान तुल्य है (सयोगी अयोगीको छोड़कर पृष्ठ) २९८अपूर्व-२९९तक)

---

(१) यथार्थमें यह शब्द चक्षुष्दर्शन है इसका ष् का परिवर्तन र् में होकर चक्षुर्दर्शन होगया । स् और विसर्ग (:) का परिवर्तन र् में होनेके लिये पृष्ठ ३२ की टिप्पणी [१] देखो ॥

अवधिदर्शिनिनामवधिज्ञानिवत् ॥ केवलदर्शिनिनां केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन- कृष्णनील-कापोतलेश्यानां असंयतवत् ॥

अवधिदर्शिनिनाम् ६। अवधिज्ञानिवत्*

क्योंकि चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यात्वसे क्षीणकषाय तक होते हैं ॥
=अवधि दर्शनवालों का (अल्प-बहुत्व) अवधि ज्ञानियों के सदृश है अर्थात पृष्ठ ३०६ अवधि ज्ञानियोंमें ..... असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं । पृष्ठ ३०७ में देखो ॥ अवधिज्ञान चौथेसे बारहवें गुणस्थानतक है ॥

केवल दर्शिनिनाम ६। केवल ज्ञानिवत्*

=केवल दर्शन (तेरहवें चौदहवें गुणस्थान) वालों का केवल ज्ञानियोंवत् है । अर्थात् केवल ज्ञानियोंमें सयोग केवली अयोग केवलियों से संख्यात गुणे हैं अयोग केवली ५९८ केइक के मत में ६०० अथवा केइक के मतानुसार ६०८ हैं और सयोग केवली ८९८५०२ हो सक्ते हैं ॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन-कृष्ण-नील-कापोतलेश्यानाम् ६। असंयतवत्*

=लेश्या के कथनानुसार से कृष्ण-नील-कापोत लेश्यावालों का (अल्प-बहुत्व)
=असंयमी (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-अविरत गुणस्थानवर्ती) नि सम है ॥
अर्थात् ये तीन अशुभ लेश्यायें उक्त चार गुणस्थान तक ही हैं । भावार्थ सासादन गुणस्थान चारों गतियों में होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यात गुणे इतर तीन गतिके जीव हैं । ये इन चारों गुणस्थानोंमें सबसे थोड़े हैं । मिश्रगुणस्थानमें १०४ करोड़ मनुष्य हैं । और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे शेष तीन गतियोंके जीव हैं । अविरत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं । और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं ॥ मिथ्यादृष्टि इन असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे अनंतगुणे हैं (पृष्ठ ३११) वैसे अनंतानंत है ॥ (गाथा ६२४)

तेजःपद्मलेश्यानां सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । एवमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

तेजः पद्म-लेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥

=पीत-पद्म लेश्यावालोंमें सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी हैं
अर्थात् अप्रमत्त विरत २९६९९१०३ मुनि हैं (षष्ठी सप्तमी अर्थ में हैं)

प्रमत्ताः ॥ संख्येय-गुणाः ॥

=(इन अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं
अर्थात दूने (५९३९८२०६) मुनि हैं

एवम्* इतरेषाम् ॥
पञ्चेन्द्रियवत्*

=ऐसे अन्य (मिथ्यात्व गुणस्थान से संयतासंयत पीत-पद्म लेश्यावालों) का
=पंचेन्द्रिय जीवों के सदृश (अल्प-बहुत्व) है क्योंकि पीत-पद्मलेश्यावाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं और मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक हैं अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही देशसंयम गुणस्थान होता है इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्यके असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं इस संख्यामें से शुक्ललेश्यावाले संयमासंयमीको घटादेनेसे शेष पीत-पद्मलेश्यावाले रहजाते हैं सासादन गुणस्थानमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं इनमेंसे कृष्ण-नील-कापोत और शुक्ललेश्यावालोंको घटादेनेपर शेष जीव पीत-पद्मलेश्यावाले रहजावेंगे। मिश्रगुणस्थानमें एक सौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे तीन गतिके जीव हैं। इनमें से कृष्णनील-कापोत और शुक्ललेश्या वालोंको घटाने से शेष पीतपद्मलेश्या वाले जीव रहजाते हैं। अव्रत सम्यग्दृष्टीयोंमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालों से असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं इनमें से कृष्ण-नील

शुक्ललेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः । क्षपकाः संख्येयगुणाः । सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । प्रमत्तसँयताः संख्येयगुणाः । सँयतासँयताः असंख्येयगुणाः । सासादनसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणाः । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । (११) भव्यानुवादेन –

शुक्ललेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ उपशमकाः ॥ क्षपकाः ॥ संख्येय–गुणाः ॥

संयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥ अप्रमत्तसँयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥ प्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥ संयता संयताः ॥ असंख्येय–गुणाः ॥ सासादन–सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येययगुणाः ॥ [१२] भव्य अनुवादेन ॥

कार्योंका=शुक्ललेश्यावालों को घटाने से शेषक पीत-पद्म लेश्यावाले रह जाते हैं
=शुक्ललेश्यावालों में सबसे अल्प (चार) उपशम श्रेणी वाले हैं
=(चार उपशम श्रेणी वालोंसे) (चार) क्षपक श्रेणीवाले संख्यात गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में २९९ वा ३०० वा ३०८ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणी वाले गुणस्थान में ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव हैं
=(उन चार क्षपक श्रेणी वालोंसे) संयोगकेवली संख्यात गुणे हैं । ८९८५०२ हैं ॥
=(सयोगकेवलियों से) अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । २९६९९१०३ हैं ॥
=(अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं । ५९३९८२०६ हैं ॥
=(प्रमत्त संयमी शुक्ललेश्यावालों से) संयमासंयमी (शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात
=गुणे हैं ॥ (देशासंयमी शुक्ललेश्यावालों से) सासादनसम्यग्दृष्टि (शुक्ललेश्या) वाले
=असंख्यात गुणे हैं । (सासादन सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से)
=मिश्रगुणस्थानवर्ती (शुक्ललेश्यावाले) संख्यात गुणे हैं
=(मिश्रगुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावालों से) मिथ्या दृष्टि (शुक्ललेश्यावाले)
=असंख्यात गुणे हैं । मिथ्या दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से) असंयत सम्यग्दृष्टि
=(शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात गुणे हैं । भव्य (जीवों) के कथन करि

शुक्ललेश्यानाम् शब्द में षष्ठी विभक्ति अष्टाध्यायी २, ३, ४१, सूत्रसे सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है । पृष्ठ १३८ में यह टिप्पणी पूर्ण रूप से है ॥

भव्यानां सामान्यवत् । अभव्यानां नास्त्यल्पबहुत्वम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन--क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । इतरेषां प्रमत्तान्तानां सामान्यवत् ॥

भव्यानाम् ‡। सामान्यवत् *

=भव्यजीवों का (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्तगुणस्थान) सदृश है अर्थात भव्यजीव मिथ्यात्वगुणस्थानसे अयोगकेवली गुणस्थानों तक सब चौदह गुणस्थानों में है अतः पृष्ट २१२ "प्रथम से पृष्ठ २१३, २१४, २१५ समस्त २१६ में मिथ्या दृष्टी असंख्यात गुणे हैं यहां तक शब्दशः पढ़लो ॥

अभव्यानाम् ‡। न * अस्ति ‡। अल्प-बहुत्वम् ‡॥

=अभव्यों के (अल्प-बहुत्व) नहीं है क्योंकि अभव्यजीव केवल मिथ्यात्व पहिले गुणस्थान में ही हैं

(२१) सम्यक्त्व - अनुवादेन ‡। क्षा यिक-सम्यग्दृष्टिषु ‡। सर्वत :* स्तोकाः ‡। चत्वारः ‡। उपशमकाः ‡।

=(१२) सम्यग्दर्शनके कथन करि क्षायिकसमसम्यग्दर्शनवालों में =सब से थोड़े चार उपशम श्रेणी [अपूर्वकरण–अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसांपराय–उपशांतकषाय] वाले हैं

इतरेषाम् ‡।

अवशेष [अपूर्वकरण–अनिवृत्तिकरण–सूक्ष्मसांपराय–क्षीणाकषाय गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी, सयोग केवली, अयोगकेवली अप्रमत्त संयमी येसर्व क्षायिक सम्यक्त्वधारक और]

प्रमत्त–अन्तानाम् ‡। सामान्य–वत् *

=प्रमत्तसंयमीयो तकनिका [अल्प बहुत्व [संक्षेप विषय में उक्ति गुणस्थान ॥ =सदृश है अर्थात चार क्षपक श्रेणी वाले चार उपशम श्रेणी वालोंसे संख्यात गुण हैं अयोग के वली क्षपक श्रेणी वालों के तुल्य हैं। सयोग केवली उक्त पांचो गुण स्थान वर्तियों से संख्यात गुणे हैं। इन से अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं। अप्रत्त संयतमियो से प्रमत्त संयमी संख्यात गुण हैं।

(१) क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से अयोग के वली तक, उपशमसम्यक्त्व चौथे से ग्यारहतक, वेदकसम्यक्त्व चौथे से सातवंतक होता है।

ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोकाः अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ औपदायिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । प्रमताः संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयताः संख्येयगुणाः ॥

ततः संयता संयताः ॥
संख्येय–गुणाः ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टयः ॥
असंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥
सर्वतः* स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥
प्रमत्ताः ॥ संख्येयगुणाः ॥
संयतासंयताः ॥
असंख्येयगुणाः ॥
असंयत–सम्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥
औपशमिक-सम्यग्दृष्टी नाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥
चत्वारः ॥
उपशमकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥
संख्येयगुणाः ॥
प्रमत्ता : ॥ संख्येयगुणाः ॥
संयतासंयताः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

=उन (प्रमत्त संयमियों] से देश संयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
=संख्यात गुणे हैं । [उन संयमासंयमियोंसे] असंयमी सम्यगदृष्टी
=असंख्यातगुणे हैं । वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
=सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
=प्रमत्त संयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] संख्यातगुणे हैं
=[उन प्रमत्त संयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] संयमा संयमी
=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असंख्यातगुणे हैं । [देश संयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
=असंयत सम्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं ।
=उपशम सम्यादर्शन [१] वालों में सब से थोड़े
=चार [अपूर्व करण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशंतकषाय ।
=उपशम श्रेणी वाले हैं । (चार उपशम श्रेणी वालों से] अप्रमत्त संयमी
=संख्यात गुणे हैं । [अप्रमत्त संयमी उपशम सम्यादृष्टियों से]
=प्रमत्त संयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] संख्यात गुणे हैं
=[प्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दर्शन वालों से] संयम संयमी असंख्यात गुणे हैं

* यहां षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अतः हिन्दी अनुवाद "वालोंके" स्थानमें "वालोंमें" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १३८ ॥

असँयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम् । विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन-सञ्ज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

असंयत
सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;। विपक्षे ;।
एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ;। ॥

=[देशसंयमी उपशम सम्यग्दर्शनवालोंसे] असंयमी [उपशम]
=सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे हैं । पक्षान्तरमें वा अन्य ओर में
=एक एक गुणस्थान को (भिन्न भिन्न) मान लेनेसे वा विवक्षित एक एक गुणस्थान होने से

शेषाणाम् ;।
अल्प-बहुत्वम् ;॥। नञ् अस्ति T

=बचे हुये (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत सम्यग्दृष्टिवालोंमेंके-
=थोडा और अधिकपना नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुयें कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुयें इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही हैं ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि दूसरे में ही हैं सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिश्र तीसरे गुणस्थान में ही हैं और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविरत गुणस्थान में ही हैं इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु असंयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और वह असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । इनसे मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यात गुणे हैं । इनसे अविरत सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विशेष जानने के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।

(१३) संज्ञा अनुवादेन ;। संज्ञिनाम ;। चक्षुर्दर्शनिवत्

=(१३) संज्ञा की अपेक्षासे मनीनिका (अल्प बहुत्व) चक्षुदर्शनवालों के सम है और चक्षुदर्शनवालों का अल्प बहुत्व मन योगी के समान है और मनयोगियों का

अनाहारकाणां सर्वतः स्तोकाः सयोगकेवलिनः। अयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः॥ एवं मिथ्यादृष्टयादीनाम् गत्यादिषु मार्गणा कृता सामान्येन॥ तत्र सूक्ष्मभेद आगमाविरोधेनानुस्मर्तव्यः॥

अनाहारकाणाम् ;। सर्वतः * स्तोकाः ;। सयोग-केवलिनः ;।

=अनाहारकों में सब से थोड़े सयोग-केवली हैं (अर्थात् यद्यपि सयोग केवलियों की संख्या ८९८५०२ तक उत्कर्षकरि होसक्ती है और अयोग केवलियों की संख्या ५९८ वा ६०० ६०८ तक हो सक्ती है परंतु सयोगकेवलियों की अनाहारक अवस्था प्रतरसमुद्घात और लोकपूर्ण समुद्घात में ही होती है दंड समुद्घात और कवाटसमुद्घात में आहारक ही अवस्था होती है इस अपेक्षा से सयोग केवली अनाहारकों की संख्या सर्व से अल्प है ॥ जीवों की अनाहारक अवस्था मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और अयोग केवली गुणस्थानों में ही होती है। सयोग केवली उक्त समुद् घातों में ही अनाहारक होते हैं।

अयोगकेवलिनः ;। संख्येयगुणाः ;।

=(सयोग केवलि अनाहारकों से) अयोग केवली संख्यात गुणे हैं

सासादन-सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येयगुणाः ;।

=(अनाहारक अयोगकेवलियों से) सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं

असंयत-सम्यग्दृष्टयः ;। असंख्येय गुणा ;।

=(सासादन सम्यग्दृष्टियों से) असंयमी सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं

मिथ्यादृष्टयः ;। अनन्त-गुणाः ;।

=(असंयमी सम्यग्दर्शन वालों से) मिथ्यादृष्टी अनन्तगुणे हैं

एवम् * मिथ्यादृष्टि-आदीनाम् ;। गति-आदिषु ;।

=ऐसे मिथ्यादर्शन वाले आदिकनिकें गति आदिकों में

सामान्येन ;॥। मार्गणा ;। कृता तत्र * सूक्ष्म भेदः ;।

=संक्षेप कथन करि मार्गणा निर्देश की गई। तहां (इनके) सूक्ष्मभेद

आगम-अविरोधेन ;। अनुस्मर्तव्यः ;।

=शास्त्र के अनुसार करि अंगीकारकरना वा अनुस्मरण करना योग्य है

असंज्ञिनां नास्त्यल्पबहुत्वम्। तदुभयव्यपदेशरहितानां केवलज्ञानिवत्॥ (१४) आहारानुवादेनआहारकाणां काययोगिवत्।

अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियवत् है (पृष्ट ३११ और पृष्ट ३०१ - ३०२ को क्रम से देखो) इसलिये संज्ञियों का अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियों के सदृश हुआ (संज्ञी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान तक होते हैं) पंचेन्द्रियों का अल्पबहुत्व गुणस्थानसदृश है इसलिये अंतमें संज्ञियोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीवों के अल्प बहुत्व के सदृश हुआ॥ चार अपूर्व करण·····पृष्ठ २९८ से २९९ कोअंत तक॥

असंज्ञिनाम् ;। अल्प-बहुत्वम् न * अस्ति T
तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानाम् ;। केवलिज्ञानि-
वत् *

=मन रहित जीवों के अल्प-बहुत्व नहीं है (क्योंकि ये सब मिथ्यादृष्टी हैं)
=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामों से वर्जित (जीव) जिनें केवल ज्ञानियों के
=समान (अल्प-बहुत्व) है अर्थात् अयोगकेवलियों से सयोगकेवली संख्यातगुणे हैं अयोग केवली उत्कृष्टकरि ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं और सयोग केवली उत्कृष्ट करि आठलाख अठानवैहज़ार पांचसो दो हैं

(१४) आहारक-अनुवादेन ;। अहारकाणाम् ;।
काय योगिवत् *

=(१४) आहारक की अपेक्षा से आहारकों का (अल्प-बहुत्व)
=काय योगियों के सदृश है (और काययोगियों का अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत्) है अतः आहारकों का अल्पबहुत्व गुण स्थान सदृश हुआ। काययोगी प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से सयोग केवली तेरहवां गुणस्थान तक हैं अतः अयोग केवलियों को छोड़ कर पृष्ठ २९८ में चार अपूर्व करण से·····२९९ पृष्ठ के अंत तक शब्दशः पढ़लो तो वही आहारकों का अल्पबहुत्व होवेगा।

एवं सम्यग्दर्शनस्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया निर्दिष्टाः । तत्सम्बन्धेन च जीवादीनां सञ्ज्ञापरिणामादि निर्दिष्टम् । तदनन्तरं सम्यग्ज्ञानं विचारार्हमित्याह--

एवम्* आदौ ¦। उद्दिष्टस्य ¦।।। सम्यग्दर्शनस्य ¦।।।	=इसप्रकार प्रथममें उपदेश कियागया सम्यग्दर्शनका
*लक्षण	=लक्षण (देखो सूत्र २ पृ० ३१)
उत्पत्ति	=(उस सम्यग्दर्शनके) उत्पन्न होनेका निमित्त (देखो सूत्र ३ पृष्ठ ३६)
स्वामि-विषय	=(सम्यग्दर्शनका) अधिपति (जीव); (सम्यग्दर्शनका) विषय (सूत्र ४ पृष्ठ ४०)
न्यास	=(सम्यग्दर्शनका) न्यास वा निक्षेप वा लोकव्यवहार (सूत्र ५ पृष्ठ ४४ देखो)
अधिगम-उपायाः ¦।	=(सम्यग्दर्शनके) ज्ञान का स्वरूप (जानने) के उपाय (सूत्र ६ पृष्ठ ५४, सूत्र ७ पृष्ठ ५८, सूत्र ८ पृष्ठ ८१ को देखो)
निर्दिष्टाः ¦। च* तत सम्बन्धेन ¦। जीवादीनाम ¦।	=कहे गये हैं । और (च) इस (सम्यग्दर्शन) के सम्बंधकरि जीवादिक (तत्वों) के
सञ्ज्ञा-परिणाम-आदि ¦।।।	=नाम (देखो सूत्र ४) परिणामादिक अथवा भावादिक (देखो सूत्र ६, ७, ८)
निर्दिष्टम् ¦।।।	=कहे गये हैं
तत् ¦।।। अनन्तरम् ¦।।। सम्यग्ज्ञानम् ¦।।। विचार	=तिस (सम्यग्दर्शन) के निकट वा समीप सम्यग्ज्ञान (है सो) विचारने
अर्हम् ¦।।। इति* आह॰	=योग्य है । सो (आचार्य] इसप्रकार कहते हैं कि

(*) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्ति हेतुर्लक्षणम्

व्यतिकीर्ण-वस्तु-	=परस्पर वा आपमें मिलीहुई (व्यतिकीर्ण) वस्तुओंमें
व्यावृत्ति-हेतुः ¦। लक्षणम् ¦।।।	=जो उनके भेद करानेमें (व्यावृत्ति) हेतु है सो लक्षण है

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ९

॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय-केवलानि॥॥ज्ञानम्॥॥ — मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय और केवल ऐसे ज्ञान (पांच प्रकार) है अर्थात् (१) जो पांच इन्द्रियों से और मनसे पदार्थ को जाने सो मति ज्ञान है,

(२) मति ज्ञानके द्वारा जाने हुये पदार्थ की सहायतासे उसी पदार्थ के भेदोंको वा अन्य पदार्थों को जाने सो श्रुतज्ञान है। इसका लक्षण अन्य प्रकारसे भी है॥

(३) क्षेत्रकाल भाव तथा द्रव्यकी मर्यादालिये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष रूपसे जाने सो अवधि ज्ञान है (४) अन्यके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थोंको प्रत्यक्ष जाने सो मनःपर्यय ज्ञान है (५) समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको प्रत्यक्ष रूप से जानै अर्थात् भूत-भविष्यत वर्तमानमें होनेवाली पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंको एकही समयमें जाने सो केवल ज्ञान है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

(१) दिगंबर आम्नायमें किसी किसी पुस्तकमें "मनःपर्य्यय" पाठ है और किसी किसीमें "मनःपर्यय" है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "मनःपर्याय" मनःपर्यय अथवा मनः पर्य्ययके स्थानमें है। शेष पाठ इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भी दिगम्बर आम्नाय और श्वेताम्बर आम्नाय में एकसा है। मनः पर्याय और मनः पर्यय दोनोंका एक अर्थ है। मनः पर्यय और मनः पर्य्यय दोनों ठीक है क्योंकि किसी शब्दमें र् अथवा ह् से प्रथम कोई स्वर आवे और (र् वा ह् के) पश्चात् ह् को छोड़कर कोई व्यंजन आवै तो वह व्यंजन विकल्पकरि अर्थात् लेखक की इच्छानुसार अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद ४ सूत्र ४६ (अचो रहाभ्यां द्वे = अचो रहोभ्यां द्वे वा) से द्वित्व होजाता है- चाहै उस व्यंजन को दुहरा करदो चाहै न दुहराओ। जैसे अर्क वा अर्क-मर्क वा मर्क-धर्म वा धर्म्म-कर्म वा कर्म्म ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा-अपहनुते वा अपहन्नुते। ऐसेही सूर्य वा सूर्य्य-मनः पर्यय वा मनः पर्य्यय दोनों ही ठीक और शुद्ध है॥ (२) यहां ज्ञान शब्द के साथ सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति है (पृष्ठ ३४२)

ज्ञानशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ॥ इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः ॥

ज्ञानशब्दः ;। प्रत्येकम् ;॥।
परिसमाप्यते T मतिज्ञानम् ;॥। श्रुतज्ञानम् ;॥।
अवधिज्ञानम् ;॥। मनः पर्ययज्ञानम् ;॥।
केवलज्ञानम् ;॥। इति*इन्द्रियैः ;॥। मनसा ;॥। च
यथास्वम्*अर्थान् ;। मन्यते T

=ज्ञानशब्द प्रत्येक (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवल) को
=लगाया गया है। (तब) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान
=अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-
=केवल ज्ञान ऐसे हैं। पांच इन्द्रियोंकरि और (=च) मनकरि
=अपनी (शक्ति) के अनुकूल (=यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोंकरि और मनकरि अपने योग्य देश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है वा जानता है सो मतिज्ञान है

अनया ;॥ मनुते T
वा*मननमात्रम् ;॥। मतिः ;॥

=(अथवा) जिसकरि जानता (है=मनुते)
=(सो मतिज्ञान है) वा जानने मात्र मतिज्ञान है ॥

---

(१) परिसमाप्यते यह शब्द आप् (=प्राप्त होना) स्वादि पांचवें गणके परस्मैपद धातुमें परि और सम् उपसर्ग लगाने से और 'य'कर्मणि प्रधान प्रत्यय और ते अन्य पुरुष, वर्तमानकाल, आत्मनेपद-एकवचनके प्रत्ययको जोड़कर ऐसे बना लेते हैं कि परि+सम्-आप्+य+ते=परिसमाप्यते

(२) मन्यते-मन्=जानना, दिवादि चतुर्थगणके आत्मनेपदी, सकर्मक, अनिट् धातुमें य चतुर्थगणका विकरण जोड़कर मन्य बना लिया पश्चात् ते वर्तमानकालका एकवचन अन्य पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय जोड़नेसे (मन्य+ते) मन्यते (=जानता है) बनगया ॥

(३) मनुते-मन्=जानना, (यहाँपर) तनादि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेट् धातुमें उ आठवें गणका विकरण जोड़नेसे (मन्+उ)=मनु बनगया पीछे, ते वर्तमान कालका एकवचन, अन्यपुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय, जोड़ने से मनुते (=जानता है) बनगया ॥ मानयते-मन्=अहंकार करना चुरादि दशवें गणका आत्मनेपदी सकर्मक सेट् धातु है। इस गणके अय विकरण धातुमें लगाने से पहिले अन्तके स्वर और उपान्त्य अ की वृद्धि संज्ञा हो जाती है अतः मान्+अय् प्राप्त हुआ, ते उक्त आत्मनेपदी वर्तमानकालकरि मानयते हुआ ॥ मनति-मन्=दिवादि प्रथमगणका धातुपूजा करने के अर्थ में सकर्मक परस्मैपद है। और अहंकार करने के अर्थ में अकर्मक भ्वादिगण परस्मैपद है ॥

तदावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुयते अनेनेति तत् शृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् ॥ अनयोः प्रत्यासन्ननिर्देशः कृतः कार्यकारणभावात् । तथा च वक्ष्यते "श्रुतं मतिपूर्वमिति" ॥

तद्-आवरण-क्षयोपशमे ;। सति ;।
=उस (श्रुत ज्ञान) आवरणीयकर्मके क्षयोपशम होने पर (=सति)

निरूप्यमाणम् ;॥। अनेन ;॥। श्रुयते T इति*
=कथित वस्तु का नाम (=निरूप्यमाण) जिससे सुनकरि जाना जाता है ऐसा (श्रुतज्ञान) है ।

तत् ;॥। शृणोति T
=वा उस (निरूप्यमाण वस्तु) को (=तत) सुनकरि जानता है (सो श्रुतज्ञान है)

वा* श्रवणमात्रं ;॥। श्रुतम् ;॥।
=अथवा (=वा) जो सुनकरि जानने मात्र (सो) श्रुतज्ञान है ॥

कार्य-कारण-भावात् ;।
=(दोनों मतिज्ञान-और श्रुतज्ञान का आपस में) कार्य-कारणभाव होने से

अनयोः ;॥। प्रत्यासन्न-निर्देशः ;। कृतः ;।
=इन दोनों(मतिज्ञान और श्रुतज्ञानों)का अति निकट उपदेश किया गया है ॥ अर्थात् मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है ।

तथा च* वक्ष्यते T
=जैसा कि (=तथा च-आगे इसी अध्याय के बीसवां सूत्र में) कहेंगे (टिप्पणी पृष्ठ ४१)

श्रु-म् ;॥। मतिपूर्वम् ;॥। इति*
=श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है-श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात् होता है । अर्थात् श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को मतिज्ञान कारण है । और श्रुतज्ञान कार्य है

---

(१) सति—यथार्थमें सत् शब्द त्रिलिंगी है । यहां पर क्षयोपशमे सप्तमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है अतः सति शब्द भी सप्तमी एकवचन पुल्लिंगमें ही है । यहाँ पर विद्यमानता अर्थमें है । सदाचारी, पूज्य, बहुत उत्तम, यथार्थ, (ठीक) सच इन अर्थोंमें भी आता है (देखो त्रि०ण० पृष्ठ ८०) ब्रह्म (न०) पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४०९ जैसे ओ३म् तत्सत् =मंगल मय (=ओ३म्) वह (=तत्) ब्रह्म (=सत्)

(२) श्रु—भ्वादि प्रथम गणका परस्मैपदी जाना वा हिलना अर्थ में आता है । इस गणके धातु का अंतिम स्वर और धातु का उपान्त ह्रस्व प्रथमगण के विकरण अके पहिले पहिले गुण संज्ञा को प्राप्त हो जाता है । अतः श्रु = श्रो, श्रो = श्रव्+अ (विकरण जोड़कर टिप्पणी पृष्ठ १३ द्वारा) =श्रवति, अन्य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमानकाल का ति प्रत्यय जोड़ने से श्रव+ति=श्रवति (जाताहै) बन गया ॥ यदि श्नु =नु, विकरण स्वादि पांचवां गण का श्रु धातु में जोड़ा जावे तो यह धातु पांचवा स्वादि गणका हो जाता है और श्रु का शृ हो जाता है । शृ+णु (=नु) देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४ ॥ शृणु = शृणो । पृष्ठ ५६) उक, ति जोड़ो =शृणोति =सुनकरि जानता है । श्रुवःशृ च ३-१-७४ यह सूत्र, ६७ व ६८ व ७२ सूत्रों से अनुवर्त्तियों द्वारा श्रुवः (शृ) च (सार्वधातुके कर्तरि अः) श्रु: के स्थान में शृ हो और उसके पश्चात् श्नु विकरण हो यदि कर्त्ता में सार्व धातुक प्रत्यय परे हो तो

अवांग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः ॥

	(अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासे)
अवाग्-धानात् ; वा* अवच्छिन्न-	=पुद्गलको (प्रत्यक्षपने करि) जाननेसे अथवा रूपी पदार्थ (=अवच्छिन्न)
विषयात् ; अवधिः ;	=(जिसका) विषय होने (के हेतु) से अवधि (ज्ञान कहाता) है । अर्थात् मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को जो प्रत्यक्षपनेसे जाने सो अवधिज्ञान है ॥

(१)अवाग्-यथार्थमें वाच् शब्द है। अ ओढ़नेसे अ+वाच् (=अवाक्=अवाग् देखो टिप्पणी १४, १५) वचन या बोल रहित अर्थात् जड़ पदार्थ या पुद्गल है। अवायन्ति व्रजन्तित्यवायाः पुद्गलाः । तान् दधातिजानातीत्यवधिः अवाग्धानात्पुद्गल परिज्ञानादित्यर्थः ॥

अवायन्ति T व्रजन्ति T इति अवायाः ; पुद्गलाः ;	=नहीं बोलते हैं (वा नहीं) हिलते चलते हैं ऐसे वचन वर्जित जड़ वस्तु हैं ॥
तान् ; दधाति T जानाति T इतिक अवधिः ;	=तिन (पुद्गलों) को ग्रहण करता है जानता है ऐसा अवधि (ज्ञान) है ॥
अवाग्धानात् ; पुद्गल-परिज्ञानात् ;॥ इति अर्थः ;	=अवाग्धानात् (वाक्य)से जड़ पदार्थका विशेषरूप ज्ञानसे अभिप्राय है ॥

(२) द्रव्य क्षेत्रकाल भावै नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यत् (ते) इत्यर्थः ॥

द्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः ; नियत त्वेन ;॥ अवधीयते T	=द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे मर्यादाकरि सीमाकिया गया है
नियम्यते T प्रमीयते T परिच्छिद्यते T	=नियम किया गया है परिमित किया गया है विशेष रूप से सीमा किया गया है ॥
इति*अर्थः	=इस प्रकार अभिप्राय है

(३) अवधानं अवधिः । कोऽर्थः । अधस्ताद्बहुतर विषय ग्रहणादवधिरुच्यते । देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तम नरक पर्यन्तं पश्यन्ति । उपरिस्तोकं पश्यन्ति । निजविमानध्वजदण्डपर्यन्तमित्यर्थः ॥ अवच्छिन्न विषयत्वादवधिः । कोऽर्थः रूपित लक्षणविषयत्वादवधि अवधानम् ॥

= अवधान अर्थात् प्राय नीचले वा पाताल का (=अध)(विषयोंका)ग्रहण(=ज्ञान)है ।	
अवधिः ; कः ; अर्थः ; अधस्तात्*बहुतर	= सो अवधि है । (इस वाक्य से) क्या अभिप्राय है । नीचले वा पाताल के अधिकतर
विषय-ग्रहणात् ;॥ अवधिः ; उच्यते T देवाः ;	=विषय ग्रहण करनेसे अवधि कहा गया है । देव
खलु*अवधिज्ञानेन ;॥ सप्तम-नरक-पर्यन्तम् ;	= निश्चयकरि (=खलु) अवधिज्ञान से सातवां नरक तक

परकीयमनोगतोऽर्थः मन इत्युच्यते । हचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मनःपर्ययः । मतिज्ञानप्रसंग इति चेन्न । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजृम्भितं तत्केवलं

परकीय-मनस्-गतः ;।
अर्थः ;। साहचर्यात् ;॥॥
मनः ;॥॥ इति उच्यते T तस्य ;।
पर्ययणम ;॥॥ परिगमनम् ;॥॥ मनः पर्ययः ;।

= परसम्बन्धी (= परकीय) वा अन्यके (= परकीय) मनमें प्राप्त वा तिष्ठे हुये
= रूपी पदार्थ (= अर्थ) की साहचर्यासे-अनुरूपतासे-समवायसे वा समागमसे
= मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् तिस (अन्यके मनमें चिंतमन किये हुये) पदार्थका
= ज्ञान वा जानना (= पर्ययणम् = परिगमनम्) सो मनः पर्यय है अर्थात् जो मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने सो मनः पर्यय ज्ञान है ॥

मतिज्ञान-प्रसंगः ;। इति * चेत् *
न* अपेक्षा-मात्रत्वात् ;॥॥

= (मनः पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका संयोग वा मेल होता है ऐसे संदेहपर (= चेत्)
=(उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मनः पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है जैसाकि मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है ।

क्षयोपशम-शक्ति-मात्र–
विजृम्भितम् ;॥॥ । तत् ;॥॥ केवलम् ;॥॥

=(मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी शक्ति मात्रसे
=विकसित वा प्रकाशित (=विजृम्भितम्) हुआ है ॥ वह (मनः पर्यय ज्ञान) केवल

पश्यन्ति T उपरि* स्तोकम् ;। अल्पन्ति T
निजविमान-ध्वज-दण्ड-पर्यन्तम् ;॥॥ इति* अर्थः ;।
अवच्छिन्न-विषयत्वात् ;॥॥ अवधिः ;। कः ;। अर्थः ;।
रूपित-लक्षण विषयत्वात् ;॥॥ अवधिः ;।

= देखते हैं । ऊपर अल्प वा थोड़ा देखते हैं ।
= अपना विमान ध्वजा दंड पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है ।
= अवच्छिन्न विषयत्व सहित अवधि ज्ञान है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है ।
= रूपी लक्षणवाला (पदार्थ) है विषय जिसका सो अवधि ज्ञान है ॥

(१) विजृम्भित, (त्रि०) वि+जृभि+क्त । विकसित । खिला हुआ । भावेक्त ॥ प्रकाश । चमक । पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३५१ देखो ॥

स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते । यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्येति ॥ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर-मनोभिः ;॥॥ व्यपदिश्यते T =अपने और परके मनों (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात इसकी मनःपर्यायज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रक्खी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा* अभ्रे ;। चन्द्रमसम् ;। पश्यति T इति* =जैसे बादलमें चंद्रमाको देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है तैसे मनः पर्यय वाक्यमें मन शुब्द अपेक्षामात्र है मनः पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥

बाह्येन ;॥॥ अभ्यन्तरेण ;॥॥ च* तपसा ;॥॥ यद्-अर्थम् ;। =बाह्य और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मार्गम् ;। अर्थिनः ;। केवन्ते T सेवन्ते T =जिस पथको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् ;॥॥ केवलम् ;॥ वा* असहायम् ;॥ इति* =सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है बाह्य किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं वैसे यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं वैसे भी केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

व्यपदिश्यते—यह शब्द दिश् तुदादि छठेगणके उभय परस्मैपद और आत्मनेपद सकर्मक अनिट् धातुसे वि और अप उपसर्गोंके जोड़नेसे वि+अप+दिश् रूप बना यत् कर्मणि प्रत्यय जोड़कर और ते अन्यपुरुष, एकवचन, वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्ययको जोड़नेसे व्यपदिश्यते बनालिया ॥ केवृ धातु जिसका अर्थ सेवा करना है "केवल" शब्द निकला है ॥

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मनः पर्ययग्रहणम् । कुतः प्रत्यासत्तिः ? । संयमैकाधिकरणत्वात । तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः । कुतः ! विप्रकृष्टतरत्वात ॥

तत् ;॥॥ अन्ते ;। प्राप्यते॥ इति* अन्ते ;। क्रियते॥
तस्य ;॥॥ प्रत्यासन्नत्वात् ;॥॥ तत्-समीपे :
मनः पर्यय-ग्रहणम् ;॥॥ कुतः*
प्रत्यासत्तिः ;॥ एक -
संयम-अधिकरणत्वात् ;॥॥

=वो (केवलज्ञान) अन्तमें प्राप्त किया जाता है सो इस (सूत्रके) अन्तमें लाया गया है
=तिस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
=मनः पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है । (प्रश्न) कहांसे (=कुतः) वा क्योंकर (कुतः)
=(मनः पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके) अति निकट है । केवल (=एक)
=संयमके आश्रयपना से (मनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अतः मनः पर्ययज्ञानको संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है

तस्य ;॥॥ अवधिः ;। विप्रकृष्टः ;।
कुतः *
विप्रकृष्टतरत्वात् ;॥॥

=तिस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान दूर है (अतः इसको मनः पर्ययज्ञानके समीप कहा)
=(प्रश्न केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योंकर (=कुतः) (दूर है – उत्तर)
=क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) दूरवर्ती (तीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

---

(१) केवलज्ञानापेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात् ॥
केवलज्ञान-अपेक्षया ;॥ विप्रकृष्टेषु ;॥ मति-श्रुत-अवधिषु ;। अन्यतमत्वात् ;॥।
=क्योंकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से दूरवर्ती मतिज्ञान श्रुतज्ञान
=अवधिज्ञानों में से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यदि मनः पर्ययज्ञानके लिये आता तो वृत्तिकर्ता प्रत्यासत्ति वा इसी अर्थ का कोई शब्द देते
(३) " समीपे " विभक्ति शब्द है यहाँ पर इसको सप्तमी एक वचन पुल्लिंग में वा सप्तमी एकवचन नपुंसक लिंग में मान सकते हैं ।

प्रत्यक्षान्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात् । श्रुतपरिचितानुभूता हि मतिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्रायः प्राप्यते यतः ॥ एवमेतत्पञ्चविधं ज्ञानम् ॥ तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम् । प्रमाणं च केषाञ्चित् ज्ञानमभिमतम् । केषाञ्चित् सन्निकर्षः ।

प्रत्यक्षात् ;॥। परोक्षम् ;॥।
सुगमत्वात् ;॥। पूर्वम् ;॥। उक्तम् ;॥।
यतः श्रुत-परिचिता-अनुभूता ;॥ हि*
मति-श्रुतपद्धतिः ;॥ सर्वेण ;। प्राणि-गणेन ;। प्रायस्*
प्राप्यते ;।

=प्रत्यक्ष (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-श्रुतज्ञान)
=स्पष्ट वा सुगमहोने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
=क्योंकि (=यतः) श्रुतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवकियागया ही।
=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंके समूहद्वारा बहुधा
=प्राप्त किया जाता है। भावार्थ मति-श्रुतज्ञान परिचय किये जाते हैं,
अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंके
बाहुल्यपनेकरि वा बहुतायतकरि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान)
सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कहे हैं।

एवम् एतत् ;॥। पञ्च-विधम् ;॥। ज्ञानम् ;॥। च तद्-
भेद आदयः ;। पुरस्तात्*वक्ष्यन्ते T
प्रमाण-नयैः ;।
अधिगमः ;। इति*उक्तम् ;॥।
प्रमाणम् ;॥। च*केषाञ्चित्*ज्ञानम् ;॥। अभिमतम् ;॥।
केषाञ्चित्*सन्निकर्षः ;।

=इस प्रकार यह पांच भांति ज्ञान है। और उस (=तद्-ज्ञान) के
=भेद आदिक आगे कहे जायेंगे ॥
=(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और जीव-अजीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
=ज्ञान होताहै ऐसा (सूत्र ६ में) कहागया है
=और(=च) कितनेकरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमतम्)
=कितनेकें (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कितेक मताचार्य
विषय और इन्द्रियका सम्बन्ध वा व्यापार को प्रमाण मानते हैं

---

(१) श्रुतेन परिचितानुभूता =श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च
श्रुतेन ;॥। परिचिता ;॥ सा ;॥ च*अनुभूता ;॥ च*
=जो श्रुतकरि जानाजाता है,और अनुभव कियाजाता है सो श्रुतपरिचितानुभूत है
(२) सौगतानाम्
=सुगत बुद्धदेवके मानने वालोंके (३) यौगानाम्=योगमतवालोंके

केषांञ्चिदिन्द्रियमिति । अतेऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वख्यापनार्थमाह-

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षः प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति

केषांञ्चित्* इन्द्रियम् ;॥ इति*

=केतेकके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) हैं—इस सबका भावार्थ है कि सुगत (बुद्धदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका जोड़रूप संनिकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संबन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं

अतः* अधिकृतानाम् ;।

=इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा प्रकरणमें लायेगये

मति-आदीनाम् ;। एव*

=मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञानोंके ही (=एव)

प्रमाणत्व-ख्यापन-अर्थम् ;॥ आह T

=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तत्-

=वे (मतिज्ञान श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान)

प्रमाणे ;॥

=दो (परोक्ष और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं । उन ज्ञानोंको ही प्रमाण संज्ञा है । अर्थात् उपर्युक्त पांच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण हैं । अन्य प्रकार नहीं है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

तद्-वचनम् ;॥ किमर्थम् ;॥

=तद् पद (इस दशमें सूत्रमें) किस लिये है ? ॥

प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ;॥

=(इस सूत्रमें तद् पद) दूसरे दूसरे प्रमाणोंकी अनेक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है

सन्निकर्षः ;। प्रमाणम् ;॥ इन्द्रियम् ;॥ प्रमाणम् ;॥ इति* केचित्* कल्पयन्ति T

=सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका संबन्ध) और इन्द्रिय प्रमाण =ऐसे कितेक (मतधारी) कल्पना करते हैं

(१) दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२) सांख्यानाम् = सांख्यमतवालोंके ॥

तान्निवृत्त्यर्थं तदित्युच्यते। तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति ॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसंगः। नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते। अतःसर्वज्ञत्वाभावः स्यात ॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः। अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां। ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात्। सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात्।

तद्-निवृत्ति-अर्थम् ;॥॥ तद्-इति* =उन (सन्निकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तद् ऐसा शब्द
उच्यते ; तद् ;॥॥ एव मति-आदि ;॥॥ प्रमाणम् ;॥॥ =कहागया है। वोही (=एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है।
न*अन्यत्*इति अथ*सन्निकर्ष-प्रमाणे ;॥॥ सति ;॥॥ =इसरा कोई प्रमाण नहीं है। अथ (=अथ) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर
वा*इन्द्रिये ;॥॥ कः ;। दोषः ;।? यदि*सन्निकर्षे ;। =अथवा इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दूषण है? जो (=यदि) सन्निकर्ष
प्रमाणम् ;॥॥ सूक्ष्म- =प्रमाण हो तो सूक्ष्मपदार्थ (परमाणु आदिक) निका
व्यवहित- =अन्तरित वा पहिले (=व्यवहित) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
विप्रकृष्टानाम् ;। अर्थानाम् ;। =दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें)
अग्रहण-प्रसङ्गः ;। =ग्रहण का अवसर नहीं आता है। क्योंकि
ते ;। इन्द्रियैः ;॥॥ न*हि* =वे (सूक्ष्म पदार्थ-अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं
सन्निकृष्यन्ते T अतः सर्वज्ञत्व-अभावः ;। स्यात T =सन्निकर्ष वा स्पर्श किये जासकते हैं ॥ इसलिये सर्वज्ञपना का अभाव होगा
(क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, वही प्रमाण सर्वज्ञके मानना पड़ेगा, सन्निकर्ष सूक्ष्म
अन्तरित-दूरीवर्ती पदार्थों को जानता नहीं अतः सर्वज्ञभी न जान सकेगा अतः असर्वज्ञत्व हुआ)
इन्द्रियम् ;॥॥ अपि* प्रमाणम् ;॥॥ =इन्द्रिय प्रमाण होनो भी (वही असर्वज्ञताका दूषण आता है)
चक्षुष्-आदीनां ;। अल्प-विषयत्वात् ;॥॥ च ज्ञेयस्य ;॥॥ =क्योंकि नेत्र आदिका थोड़ा विषय होने (के हेतु)से व-ज्ञानके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका
अपरिमाणत्वात् ;॥॥ सः ;। एव*दोषः ;। =अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (=स) एव (=ही) दोष (असर्वज्ञत्वका)
आता है (असर्वज्ञताका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
चक्षुष्-मनसोः ;॥॥ प्राप्यकारित्व-अभावात् ;। =नेत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे(=वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेपरभी ग्रहण)
सर्व-इन्द्रिय-सन्निकर्ष-अभावः ;। च* =समस्त (ही) इन्द्रियों के पदार्थसे स्पर्शन वा सन्निकर्ष भी (=च) नहीं है।

अप्राप्यकारित्वं च उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ यदि ज्ञानं प्रमाणं, फलाभावः । अधिगमो हि फलमिष्टं न भावान्तरम् । स चेत्प्रमाणं, न तस्यान्यत्फले भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् ॥

सारांशः—इन्द्रियको प्रमाण माने तो (१) इंद्रियोंका विषय अल्प और परिमित है । ज्ञेय पदार्थ अनंत और अपरिमित हैं अतः असर्वज्ञता दोष आता है (२) सन्निकर्षको प्रमाण मानें तो अंतरित-सूक्ष्म-दूरवर्ती पदार्थोंका इन्द्रियद्वारा सन्निकर्ष न होनेसे असर्वज्ञता दोष आता है (३) नेत्र और मन (पदार्थके साथ) भिड़न न होने से नेत्र और मनके साथ सन्निकर्ष नहीं बनता ॥

अप्राप्यकारित्वं ¦॥। च*	=और(नेत्र तथा मनको) अप्राप्यकारित्व (वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेमें भी ग्रहण)
उत्तरत्र* वक्ष्यते T	=आगे (उन्नीसवां सूत्र " न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" में) कहा जायगा
यदि* ज्ञानं ¦॥। प्रमाणं ¦॥। फल-अभावः ¦। हि*	=(प्रश्न) जो ज्ञान प्रमाण होगा तो फलका अस्तित्व नहीं होगा क्योंकि =हि)
अधिगमः ¦। फलम् ¦॥ इष्टं ¦॥ न*	=ज्ञान या अधिगम ही प्रमाणका फल है नकि
भावान्तरम् ¦॥। सः ¦। चेत्* प्रमाणं ¦॥।	=अन्यवस्तु भावान्तर (वांछित फल) है यदि (=चेत्) अधिगम (=सः) प्रमाण हो तो
तस्य ¦। अन्यत्* फलम् ¦॥। भवितुम्-न अर्हति T	=तिस (अधिगम) का दूसरा फल होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है
फलवता ¦॥। च* प्रमाणेन ¦॥। भवितव्यम् ¦॥।	=(अधिगमका अन्यफल नहीं हो सक्ता है) और प्रमाण फलसहित होना चाहिये

(१) न चक्षुर निन्द्रियाभ्यामिति सूत्र व्याख्यानावसरे ॥ =(व्यञ्जनस्य-अवग्रहः) न चक्षुस्-अनिन्द्रियाभ्याम् इति सूत्र-व्याख्यान-अवसरे

(व्यञ्जनस्य ¦॥। अवग्रहः ¦।) चक्षुस्—	=(अप्रगटरूप शब्दादिक पदार्थोंका अवग्रहरूप ज्ञान) नेत्र और
अनिन्द्रियाभ्याम् ¦॥। न*	=मनसे नहीं होता है । इसलिये उनका ईहा आवाय धारणारूप ज्ञान भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि जिस पदार्थका अवग्रह नहीं होता है उसके ईहादि भी नहीं होते हैं

अन्य (चार स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र) इन्द्रियोंसे व्यंजन (अप्रगटरूप वस्तुओं) का केवल मात्र अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है । ईहा आवाय-धारणनहीं होता है ।

इति* सूत्र-व्याख्यान-अवसरे ¦।	=इस प्रकार (उपर्युक्त) सूत्रके अवसर पर " अप्राप्यकारित्वे " कहा है ॥

सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाणे सति, अधिगमः फलमर्थान्तरभूतं युज्यते इति तदयुक्तम् ॥ यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, अर्थाधिगमः फलं, तस्य द्विष्ठत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्ठेन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगमः प्राप्नोति ।

भावार्थ यदि ज्ञानको प्रमाण मानोगे तो उस प्रमाणका कुछ फल नहीं होगा क्योंकि यदि अधिगम फल कहोगे तो ज्ञान-प्रमाण-अधिगम सब एकार्थवाची होनेसे कुछ फल वा लाभ नहीं है और प्रमाणका फल अवश्य होना ही चाहिये

सन्निकर्षे ;। इन्द्रिये ;॥। वा प्रमाणे ;॥। सति ;॥। अधिगमः ;। =सन्निकर्ष वा इन्द्रिय के प्रमाण होते संते अर्थका ज्ञान-वस्तु का ज्ञान
फलम् ;॥। अर्थान्तर- =(=अधिगम) (उस प्रमाण का फल है। जो (फल) पदार्थ वा द्रव्यसे भिन्नरूप (=अर्थान्तर)
भूतम् ;॥। युज्यते T इति तद् ;॥। अयुक्तम् ;॥ =हुआ (=भूतम्) ऐसा युक्त-उचित वा ठीक है। वो युक्त नहीं है ॥
यदि* सन्निकर्षः ;। प्रमाणम् ;॥। अर्थ-अधिगमः ;। =क्योंकि जो सन्निकर्ष प्रमाण हो (और) पदार्थ का ज्ञान (=अधिगम)-
फलम् ;॥। तस्य ;। =(उस सन्निकर्ष का वा ऐसे प्रमाण का) फल हो तो उस (सन्निकर्ष) के
द्विष्ठत्वात् ;॥। =द्विष्ठपना से अर्थात् इन्द्रिय और स्पर्श हुये पदार्थ दोनों में तिष्ठने से
तत्-फलेन ;॥। अधिगमेन ;। अपि* =उस (सन्निकर्ष) का फल पदार्थ का ज्ञान भी
द्विष्ठेन ;। भवितव्यम् ;॥। =प्रमाता और प्रमेय (पदार्थ) दोनों को होना चाहिये (अर्थात् सन्निकर्ष द्विष्ठ होने के कारण प्रमेय को भी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये)
इति* अर्थादीनाम् ;। अपि* अधिगमः ;। =ऐसे पदार्थ आदिकों को भी (जो अचेतन हैं) अधिगम वा वस्तु का ज्ञान
प्राप्नोति T =प्राप्त होता है। भावार्थ यह है कि सन्निकर्ष से पदार्थ का ज्ञान होता है और सन्निकर्ष इन्द्रिय और पदार्थ के जोड़ रूप है। तब उक्तपदार्थ का ज्ञान इस इन्द्रिय और पदार्थके जोड़रूपसे हुआ, इस प्रकार सन्निकर्ष वाले पदार्थ को भी अन्य पदार्थ का ज्ञान होना, यह दोषरूप है ॥ क्योंकि जड़ रूप पदार्थ को दूसरे पदार्थ का ज्ञान मानना दोषरूप है अतः सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सक्ता।

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मनः । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

(ऊपर यह सिद्धकिया है कि सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)

आत्मनः १। चेतनत्वात् १। तत्र* एव* समवायः १।
=आत्माको चेतन होनेसे वहां (आत्मामें) ही ज्ञानका) नित्यसम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य जड़ पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)

इति* चेत्१ त.
=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते हैं कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं

ज्ञ-स्वभाव-अभावे ७। सर्वेषाम् ६।
=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थों) को

अचेतनत्वात् १॥ वा* आत्मनः १। ज्ञस्वभाव-
=जड़ता (समानरूपसे आजाती) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व

अभ्युपगमे ७। स्व-
=मानने पर आप के (अर्थात् नैयायिकोंके)

मतविरोधः १। स्यात् T
=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावेगा ॥

(१) नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे उसमें ज्ञानका नित्य संबंध वा समवाय रहता है इसलिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्ता परंतु यह कथन उनका ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)में किसी पदार्थको स्वयं ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किस प्रकार कहा जा सक्ता है । यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं उनके सिद्धान्त का (कि गुण सर्वथा गुणीसे भिन्न रहते हैं) व्याघात (नाश) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहांपर उन्होंने स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर लिया है ॥ योग=सांख्य अर्थात् सांख्यमतवाले ॥ यौग=नैयायिक (मतवाले) ॥

ननु, चोक्तं, ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभावः इति । नैष दोषः । अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात् । ज्ञस्वभावस्यात्मनः कर्ममलीमसस्य करणालम्बनादर्थनिश्चये प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् ॥ रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा । अन्धकारकल्पाज्ञानाभावः अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते ॥ प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन

ननु॰ च॰ उक्तम् ;॥ =पुनः प्रश्न कहा जाचुका है कि (अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं कहचुकाहूंकि)

ज्ञाने ;॥ प्रमाणे ;॥ सति ;॥ फल-अभावः ;। इति॰ =ज्ञानको प्रमाण होने पर फलका अभाव होगा अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं पहले कह चुका हूं कि ज्ञान को प्रमाण मानने में उसका कुछ भी फल न होगा (उत्तर)

एषः ;। दोषः ;। न॰ अर्थ-अधिगमे ;। प्रीति-दर्शनात् ;॥ =यह दूषण नहीं है क्योंकि पदार्थ के ज्ञानमें प्रीति उपजती है । (अर्थात्) पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होने पर आनन्द (=प्रीति) और सन्तोष (=प्रीति) होता है यह आनन्द, संतोषही फलहै ।

ज्ञ-स्वभावस्य ;। कर्ममलीमसस्य ;। आत्मनः ;। करण- =ज्ञान स्वभाववाले कर्मकरि मलीन चेतनके इन्द्रियों के

आलम्बनात् ;। अर्थनि॰ ये ;। प्रीतिः ;॥ उपजायते T =अवलम्बन वा आश्रयसे वस्तुके ज्ञानमें प्रीति उपजती है ॥

सा ;॥ फलम् ;॥ इति॰ उच्यते T । उपेक्षा ;॥ =सो (यह प्रीति उस प्रमाणका) फल है ऐसा कहा गया है । मध्यस्थ भाव (=उपेक्षा)

अज्ञान-नाशः ;। वा * =और (=वा) अज्ञानका लोप, अज्ञान का नाश (उस प्रमाणका क्रमसे दूसरा तीसरा)

फलम् ;॥ =फल वा परिणाम है । (उपेक्षा और अज्ञाननाशका विवरण नीचेकी पंक्तियों में ऐसेहै)

राग-द्वेषयोः ;। अप्रणिधानम् ;॥ उपेक्षा ;॥ =रागद्वेष में प्रयत्न रहित मध्यस्थ स्वभावका वा उदासीन होना सो उपेक्षा है ।

अन्धकार-कल्पा ;॥ =अन्धकार की प्रलय (=कल्पा अर्थात् अज्ञानका विलाना) अज्ञानका न होना

अज्ञान-अभावः ;। अज्ञान नाशः ;। वा* =अज्ञानका ध्वंस, अज्ञानका मिटजाना वा अज्ञानकी शून्यता

फलम् ;॥ इति॰ उच्यते T =(प्रमाण का तीसरा) फल ऐसे कहागया है ।

सारांश इस सबका यह है कि प्रीति-उपेक्षा-अज्ञानका नाश ये तीन प्रमाण के फल हैं ।

प्रमिणोति T प्रमाणम् ;॥ =(पदार्थ का) सच्चा ज्ञान करता है सो प्रमाण है (कर्तरि प्रयोग वा कर्तृ साधन है)

प्रमीयते T अनेन ;॥ प्रमाण ;॥ =जिससे सच्चाज्ञान (वस्तुओं का) किया जाता है सो प्रमाण है ।

(यहां पर कर्मणि प्रयोग वा करण साधन हुआ)

प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् ॥ किमनेन प्रमीयते ? जीवादिरर्थः ॥ यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं, प्रमाणाधिगमे अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयितव्यम् । तथा सत्यनवस्था । नानवस्था । प्रदीपवत् ॥ यथा घटादीना प्रकाशने प्रदीपो हेतुः, तत्स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरमस्य मृग्यं, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम् ॥ प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात् स्मृत्यभावः ।

वा* प्रमितिमात्रम् ;॥॥ प्रमाणम् ;॥॥ =अथवा (पदार्थका) सच्चा ज्ञान मात्र ही प्रमाण है
(यहां भावेप्रयोग वा भावसाधन वा क्रिया साधन हुआ)

किम् ;॥॥ अनेन ;॥॥ प्रमीयते T जीव-आदिः ;। अर्थः ;। =इस (प्रमाण) करि क्या ज्ञान कराया जाता है। (उत्तर) जीवादि पदार्थ (जाने जाते हैं)

यदि* जीव-आदेः ;। अधिगमे ;। प्रमाणम् ;॥॥ प्रमाण- =यदि जीवादिक (पदार्थ) के ज्ञान (कराने) में प्रमाण (हेतु) है तो प्रमाणके
अधिगमे ;। अन्यत् ;॥॥ प्रमाणम् ;॥॥ परिकल्पयितव्यम् ;॥॥ =ज्ञान (कराने) में भिन्न प्रमाण कल्पना करना चाहिये

तथा• सति ;। अनवस्था ;॥ =तिस प्रकार (=तथा) होने पर अवस्थाका अभाव होगा (अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा)
=(अथवा पूर्वोक्त तर्कका अन्त न होगा) (उत्तर) अनवस्था (दोष) न होगा

न* अनवस्था ;॥ =(क्योंकि) दीपक (के प्रकाश) के समान (अवस्था) है (अर्थात) जैसे घटादिकके

प्रदीपवत्• यथा* घट-आदीनाम् ;। =प्रकाश करने में दीपक (=प्रदीप) कारण है उस (दीपक) के रूप प्रकाशने में

प्रकाशने ;। प्रदीपः ;। हेतुः ;। तत्-स्वरूप-प्रकाशने ;। =भी वह (दीपक) ही (कारण) है। इस (दीपक) के (=अस्य) (प्रकाशके लिये)

अपि* सः ;। एव* अस्य ;। =अन्य प्रकाश (=प्रकाशान्तर) नहीं अन्वेषण किया जाता है (=न मृग्यम्)

प्रकाशान्तरम् ;॥॥ न* मृग्यम् ;॥॥ =और (=च) वैसेही (=तथा) यह (=एतद्) प्रमाण भी अवश्य

च• तथा* एतद् ;॥॥ प्रमाणम् ;॥॥ अपि अवश्यम् ;॥॥ =(स्व परस्वरूपका प्रकाशक) मानना योग्य है। यदि प्रमेय(=सामान्य विशेषात्मकवस्तु)

अभ्युपगन्तव्यम् ;॥॥ इति प्रमेय- =सदृश प्रमाण को अन्य प्रमाणकी (=प्रमाणान्तर) कल्पना करने पर

वत्* प्रमाणस्य ;॥॥ प्रमाणान्तर-परिकल्पनायाम् ;॥ =(प्रमाणकें) अपना (स्वरूपके) जाननेके अभावसे स्मरणका अभाव होजावेगा॥२३५

स्व-अधिगम-अभावात् ;। स्मृति-अभावः ;।

तदभावाद्व्यवहारलोपः स्यात् ॥ वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः । वक्ष्यते हि "आद्ये परोक्षं प्रत्यक्षमन्यदिति" स च द्विवचननिर्देशः प्रमाणान्तरसंख्यानिवृत्यर्थः ॥

तद्-अभावात् ; व्यवहारलोपः ;।
स्यात् T
वक्ष्यमाण-भेद-अपेक्षया ;॥ द्वि-वचन-
निर्देशः ;। द्वि* वक्ष्यते T
आद्ये ;॥। परोक्षम् ;॥। अन्यत् ;॥। इति
प्रत्यक्षम् ;॥।
सः ;। च* द्वि-वचन-
निर्देशः ;। प्रमाणान्तर-
संख्या-
निवृत्ति-अर्थः ;।

=उस (स्मृति) की शून्यतासे व्यवहार वा लोक की प्रवृत्ति वा लोकाचार का अभाव
=होगा (अतः प्रमाणको अपना प्रकाशक और अन्यका प्रकाशक मानना योग्य है)
=आगे कहेजाने वाले (प्रमाणके) भेदोंकी विवक्षासे ("प्रमाणे" ऐसा) दो वचनका
=उच्चारण वा उपदेश है । क्योंकि (=हि) (अग्रिमसूत्र दशवें ग्यारहवेंमें) कहेंगे
=कि पहिले दो =आद्ये-(मतिज्ञान श्रुतज्ञान) परोक्ष (प्रमाण) है । अन्य वा बचेहुये
=प्रत्यक्ष प्रमाण (तीन अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान-केवलज्ञान) है ॥
=और (=च) वो (प्रमाणे शब्दका नवमें सूत्रमें प्रथमा विभक्ति) दो वचनमें
=उपदेश वा उच्चारण ज्ञानकी भिन्न (भिन्न) (=प्रमाणान्तर)
=गणना (एक-दो तीन-चार-छह आदि अन्य मतावलम्बियों स्वीकृत प्रमाणोंकि)
=निषेधके लिये भी है अर्थात् इस नवमें सूत्रमें "प्रमाणे" शब्द दोवचनमें
(१) दशवांसूत्र आद्ये परोक्षमूके आद्ये (शब्द जो दो वचनमें है उस)के लिये है
(२)अन्यवादियोंके कल्पेहुये वा मानेहुये एक दो तीन, चार, छह इत्यादिक प्रमाणों
की संख्याके निराकरणके लिये है

(१) "चार्वाक तौ एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही माने है। बहुरि बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष अनुमान ये दोय प्रमाण माने है सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन मानते है बहुरि नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान ऐसैं च्यारि प्रमाण माने है। बहुरि मीमांसक चारि तौप अरु अर्थापत्ति अभाव, ऐसै छह प्रमाण माने है। सो प्रत्यक्ष परोक्ष ए दोय संख्या कहने तैं सर्व प्रमाण इनिमें गर्भित होय है" पं० जयचंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ १२८

एषामर्थापत्त्यादीनामत्रैवान्तर्भावादुक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तर्भूतत्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिवृत्त्यर्थमाह—

उपमान-अर्थापत्ति-	=क्योंकि उपमान (=सादृश्यज्ञान) अर्थापत्ति अर्थात् न कहे गये अर्थको समझना (जैसे देवदत्त जीता है पर घरमें नहीं, तो समझ सक्ते हैं बाहर अवश्य है)
आदीनाम् ।। अत्र * एव * अन्तरभावात् ।।	=आदिका यहां (अर्थात् तत्प्रमाणे—आद्यपरोक्षं प्रत्यक्षमन्यत्में) ही गर्भित हैं
उक्तस्य ।।। पञ्च-विधस्य ।।। ज्ञानस्य ।।। प्रमाणद्वय-अन्तःपातित्वे ।।। प्रतिपादिते ।।। प्रत्यक्ष-अनुमानादि-प्रमाणद्वय-कल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ।।।	=कहे हुए पांच प्रकारके ज्ञानका दो प्रमाणमें =गर्भित (=अन्तःपातित्वे) कहनेमें (=प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि =(अन्य प्रकारके) दो प्रमाणोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चोपमया सह। अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः॥ जैमिनेः षट् प्रमाणानि चत्वारिन्यायवादिनः। सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिक बौद्धयोः॥ २॥ इत्यप्यधिकः पाठः तालपत्रपुस्तके वर्तते॥ (=च

प्रत्यक्षम् ।। च अनुमानम् ।।। च शाब्दम् ।।।। च उपमया ।।। सह * अर्थापत्तिः ।।। च * अभावः ।। षट् ।।। प्रमाणानि ।।। जैमिनेः ।।	=प्रत्यक्षप्रमाण और (=च) अनुमानप्रमाण और (=च)आगम वा शाब्दप्रमाण और =उपमान प्रमाण सहित, (और) अर्थापत्ति प्रमाण (=न कहे गये अर्थका समझने वाला) =और (=च) अभाव प्रमाण छह प्रमाण जैमिनी मुनि (पूर्वमीमांसा के रचक) के हैं
जैमिनेः ।। षट् ।।।। प्रमाणानि ।।।। चत्वारि ।।।। न्यायवादिनः ।। सांख्यस्य ।। त्रीणि ।।।। वाच्यानि ।।।। द्वे ।।।। वैशेषिक-बौद्धयोः ।।	=जैमिनीमुनि के छह (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम-उपमान-अर्थापत्ति-अभाव। =प्रमाण हैं। चार (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम-उपमान) प्रमाण =न्यायवादी (गौतममुनि के न्याय शास्त्रके मानने वाले) के हैं। सांख्य अर्थात् -(कपिलमुनि के दर्शनशास्त्रके मानने वालेके) तीन (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम) कहे हैं। दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) =वैशेषिक (कणादमुनि के बनाये हुये शास्त्रके मानने वाले) के और बौद्ध के हैं॥
इति * अपि * अधिकः ।। पाठः ।। तालपत्रपुस्तके ।। वर्तते = ऐसा भी अधिक पाठ ताड वृक्ष के पत्तों की (से बनी हुई) पुस्तक में वर्तता है॥	

आह

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्दः प्राथम्य (प्रथम) वचनः । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयोः प्रथमत्वं ?

(अर्थात बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधार्थ तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्थन करने के लिये)

आह T =कहते हैं कि

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिश्रुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् ;॥। च* आद्यम् ;॥। च* =(पांच ज्ञानों में) आदि में जो हो तथा प्रारम्भ में जो हों वे

आद्ये ;॥। मति-श्रुते ;॥। ज्ञाने ;॥। =दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्ये) मतिज्ञान श्रुतज्ञान

परोक्षम् ;॥। प्रमाणम् ;॥। भवतः T =परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपदेश प्रकाशआदि जन्य) प्रमाण हैं अर्थात् वह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है। वह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपदेश जन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आदिशब्दः ;। प्राथम्य-वचनः ;। आदौ ;। =(इस सूत्र में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है। आरम्भ में (=आदौ)

भवम् ;॥। आद्यम् ;॥। कथम्* द्वयोः ;॥। प्रथमत्वम् =हुआ है सो आद्य है। दोके आदिपना (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम वा पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रगट करते हैं और एकही वस्तु को (बहुतों में से) प्रथम वा पहिली कह सक्ते हैं यहां आद्ये दो वचन में लाये हैं तो दो वस्तुओं के प्रथमपना कैसे आसक्ता है। सारांश—पांच ज्ञान नवमें सूत्रमें कहे हैं आद्य वचन में मतिज्ञान आसक्ता है श्रुतज्ञान भी कैसे आगया ॥

---

(१) इस सूत्रका दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय दोनों में पाठ और अर्थ एक सा है ॥

मुख्योपचारपरिकल्पनया । मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम् । श्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्त्या प्रथममित्युपचर्यते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्यादगौणस्यापि ग्रहणम् । आद्यं च आद्यं च आद्ये मतिश्रुते इत्यर्थः । तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभिसम्बध्यते ॥ कुतोऽस्य परोक्षत्वं ? परायत्तत्वात् ॥

मुख्य-उपचार-परिकल्पनया ;॥ = मुख्य उपचार वा व्यवहारके मानलेनेसे (दोनों के आदिपना कहा है क्योंकि)

मतिज्ञानम् ;॥ तावत्*मुख्य-कल्पनया ;॥ प्रथमम् ;॥ = मतिज्ञान तो (=तावत) प्रधान माने जानेसे आदिमें व प्रथम है

श्रुतम् ;॥ अपि*तस्य ;॥ प्रत्यासत्त्या ;॥ प्रथमम् इति उपचर्यते T = श्रुतज्ञान भी उस (मति ज्ञान) के अतिनिकट होनेसे प्रथम ऐसा = मानलियागया है । उपचार कियागया है अर्थात् उपचारसे प्रथम कहा है

द्वि-वचन-निर्देश-सामार्थ्यात् ;॥ गौणस्य ;॥ अपि ग्रहणम् ;॥ = दो वचनके निरूपण वा उच्चारणकी शक्तिसे अप्रधान (श्रुतज्ञान) का भी = ग्रहण है । (सूत्रमें आद्ये वाक्यका समास यह है कि)

आद्यश्च ;॥ च* आद्यम् ;॥ च* आद्ये ;॥ = आदि में जो हो और (=च) आरम्भ में जोहो सो दो आदिमें आनेवाले (=आद्ये)

मति-श्रुत ;॥ इति* अर्थः ;। = मतिज्ञान-श्रुतज्ञान हैं ऐसा अभिप्राय है । (आद्यं च आद्यं च वाक्यमें पहिला च संस्कृतकी बोलचाल के लिये आया है । अतः इस च का अनुवाद नहीं हो सक्ता)

तद्-उभयम् ;॥ अपि*परोक्षम् ;॥ प्रमाणम् ;॥ = वे (मति-श्रुत) दोनों ही परोक्ष प्रमाण हैं

इति अभिसम्बध्यते T = ऐसा सम्बन्ध कियागया है (तत्र सूत्र मतिज्ञानं परोक्षं श्रुतज्ञानं परोक्षं च है)

कुतः*अस्य ;॥ परोक्षत्वम् ;॥ = (प्रश्न) इस मतिज्ञान वा श्रुतज्ञान) के परोक्षपना क्योंकर (=कुतः) है

पर-आयत्तत्वात् ;॥ = अन्यके आधीनपना वा वशीभूतपना से (मति श्रुतज्ञानों के परोक्षपना है)

---

(१) कैयट का मत है कि उभय का द्विवचन नहीं होता है किन्तु पं० हरदत्त और पूज्यपाद स्वामी के मत में दो वचन होता है ।

(२) पर-अपेक्षत्वात् ;॥ इति*अपि*पाठ-अन्तरम् ;॥ = पर अपेक्षत्वात् (= अन्यकी आवश्यकता से) ऐसा भी अन्य वा भिन्न पाठ है

मति ज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च । अतः परााणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीत्य तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुतं परोक्षमित्याख्यायते । अत उपमानागमादीनामत्रैवान्तर्भावः ॥

मतिज्ञानम् ‡॥। इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ‡॥।	= मतिज्ञान (बाह्यमें पांच) इन्द्रिय (और) मन जन्य, निमित्तक वा कारणक है अर्थात मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और अंतःकरण छह बाह्य निमित्तोंसे उत्पन्न होता है
इति* वक्ष्यते ‡ च* श्रुतम् ‡॥।	= ऐसा (तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम । चौदहवां सूत्रमें) कहेंगे । और श्रुतज्ञान
अनिन्द्रियस्य ‡॥। (अर्थः ‡।)	= मनका विषय वा अर्थ है अर्थात श्रुतज्ञान मनसे उत्पन्न होता है
इति*	= ऐसा (दूसरे अध्यायके इक्कीसवांसूत्र "श्रुतमनिन्द्रियस्य" में कहेंगे)
अतः* परााणि ‡॥। इन्द्रियाणि ‡॥ च* मनस् ‡॥।	= इस हेतुसे (=अतः) पर जे पांचों) इन्द्रियें और (=च) मन (=अंतःकरण)
च* प्रकाश-उपदेशादि ‡॥। बाह्यनिमित्तम् ‡॥	= और (=च) प्रकाश उपदेशादिक बाहिरके कारणको
प्रतीत्य ÷ तद्-आवरण-कर्म- क्षयोपशम-अपेक्षस्य ‡। आत्मनः ‡ उत्पद्यमानम् ‡॥।	= सहाय लेकर (=प्रतीत्य) उन (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) के ढकने वाले कर्मके = क्षयोपशम संयुक्त (=अपेक्षस्य) जीवके उत्पन्न हुये
मतिश्रुतम् ‡॥। परोक्षम् ‡॥। इति* आख्यायते ।	= मतिश्रुतज्ञान परोक्ष हैं ऐसा कहा गया है अर्थात जीवके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होनेकेलिये बहिरंग कारण इन्द्रियें-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक हैं इससे इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष कहते हैं और अंतरंग कारण इनदोनों ज्ञानोंके उत्पन्न होनेका आत्माके मतिज्ञानावरणीय और श्रुतज्ञानावरणीय कर्मोंका क्षयोपशम ही है ॥ (प्रतीत्य=सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है) ।
अतः* उपमान-आगम-आदीनाम् ‡॥। अन्तर्भावः ‡ अत्र* एव*	= इसलिये उपमानप्रमाण, आगम (=शाब्द) प्रमाण आदिका गर्भित होना = इस(परोक्षज्ञान) में ही (=एव) है (अन्योंके मानेहुये प्रमाण इनमें गर्भित हैं) ॥

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह-

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षीणावरणं वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् ;॥ परोक्षात् ;॥ इतरस्य ;॥ सर्वस्य ;॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् ;॥ आह T

=कथित वा कहे हुये (=अभिहित) लक्षण सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य
=सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षपना के कहने के लिये (आचार्य) कहते हैं कि

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

पदच्छेद और सूत्रार्थः-अन्यत् ;॥ प्रत्यक्षम् ;॥

=(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से) भिन्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)
=(अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात्
आत्मा के ही आश्रय से बिन (=बिना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होते हैं । अतः ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं । उक्त तीनों ज्ञानोंमें से अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तो परिमित वस्तु विषय करने से विकल (=सीमाबद्ध) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से सकल (=सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

अक्ष्णोति T व्याप्नोति T जानाति T

इति*अक्षः ;। आत्मा ;। प्राप्त-क्षयोपशमम् ;। वा प्रक्षीण-आवरणम् ;। तम् ;। एव* प्रतिनियतम् ;। प्रत्यक्षम् ;॥

=पहचानता है वा बोध करता है (अक्ष्णोति) व्याप्त होता है जानता है ।
=ऐसा अक्ष (अर्थात्) आत्मा है वा चेतन है । कर्मका क्षयोपशम प्राप्त अथवा
=कर्मके आवरण के नाश प्राप्त तिस (आत्मा) के ही (=एव)
=आश्रय से (बिना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष है अर्थात् कर्मके क्षयोपशम और क्षय के अनुसार बिना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपदेशादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न हो और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान) हैं। उनमें

अवधिदर्शनं केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति। नैष दोषः। ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदासः। एवमपि विभंगज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहणं प्राप्नोति। सम्यगित्यधिकारात्। ततस्तन्निवृत्तिः॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञानं विशिष्यते,

---

अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विकल (=अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है॥

अवधिदर्शनम् ;॥। केवलदर्शनम् ;॥। अपि अक्षम् ;॥।
एव* प्रतिनियतम् ;॥। अतः *
तस्य ;॥। अपि* ग्रहणम् ;॥। प्राप्नोति T

=(प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम्)
=ही जनित वा आश्रित (=प्रतिनियत) वा व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये
=तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है
(अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण ठहरेंगे ऐसा प्रश्न है)

न* प ;। दोषः ;। ज्ञानम् ;॥। इति अनुवर्तते T
तेन ;॥। दर्शनस्य ;॥। व्युदासः ;।

=(उत्तर) यह दोष नहीं है। (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार-प्रकरण है
=तिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहां ज्ञान
का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है

एवम्* अपि विभङ्ग ज्ञानम् ;॥। अपि प्रतिनियतम् ;॥।
अतः* अस्य ;॥। अपि* ग्रहणम् ;॥। प्राप्नोति T

=(प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित वा (आत्माके) आश्रित है
=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी प्रसंग वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् प्रश्न
का आशय यह है कि यदि ज्ञान का प्रकरण है तो तो कुअवधिज्ञान को भी यहां
ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रमाण कहना चाहिये क्योंकि कुअवधिज्ञान भी आत्मासे
विना किसी इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक द्वारा उत्पन्न होता है

सम्यक् ;॥। इति* आधिकारात् ;॥। ततम्* तत्-
निवृत्तिः ;॥। सम्यक् ;॥। इति* अनुवर्तते T
तेन ;॥। ज्ञानम् ;॥। विशिष्यते T

=(उत्तर) सम्यक् (प्रशस्त) ऐसा प्रकरण होनेसे वहां (=ततः) उस (विभंगज्ञान) का
=निषेध है॥ सम्यक् ऐसा (पद) अनुवर्तता है उपस्थित है
=तिस (सम्यक् पदकी अनुवृत्ति) से ज्ञान विशेषित किया गया है

ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिः कृता। तद्धि मिथ्यादर्शनोदयाद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक्॥ स्यान्मतमिन्द्रियव्यापारजनितं ज्ञानं प्रत्यक्षं, व्यतीतेन्द्रियविषयव्यापारं परोक्षमित्यतदविसंवादिलक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति। तदयुक्तम्। आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात्॥ यदिइन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञानं प्रत्यक्षमिष्यते, एवं प्रसक्त्या आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात्। नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगमः॥ अथ तस्यापि करणपूर्वकेएवज्ञानं कल्पते तस्या सर्वज्ञत्वंस्यात्॥ तस्य मानस प्रत्यक्षमिति चेत् मनः प्रणिधान पूर्वकत्वात्

ततः* विभङ्ग-ज्ञानस्य ;॥॥ निवृत्तिः ;॥ कृता ;॥
तद् ;॥॥ हि* मिथ्यादर्शन-उदयात् ;। विपरीत-अर्थ विषयम् ;॥ इति* न* सम्यक् ;॥॥
स्यात्T मतम् ;॥ इन्द्रिय-व्यापार-जनितम् ;॥ ज्ञानम् ;॥॥ प्रत्यक्षम् ;॥॥
व्यतीत-इन्द्रिय विषय-व्यापारम् ;॥॥ परोक्षम् ;॥॥ इति एतद् ;॥॥ अविसंवादि-लक्षणं ;॥ अभ्युपगन्तव्यं ;॥ इति
आप्तस्य ; प्रत्यक्ष-ज्ञान-अभाव-प्रसङ्गात् ;।
तद् ;॥॥ अयुक्तं ;॥। यदि इन्द्रिय-निमित्तम् ;॥ एव* ज्ञानं ;॥ प्रत्यक्षम् ;॥ इष्यतेT एवं प्रसक्त्या ;॥
आप्तस्य ;। प्रत्यक्ष-ज्ञानं ;॥ न स्यात् T
नहि* तस्य ;। इन्द्रिय-पूर्वः ;। अर्थ अधिगमः ;।
अथ* तस्य ;। अपि* करण-पूर्वकम् ;॥ एव* ज्ञानं कल्प्यते T तस्य ;। असर्वज्ञत्वम् ;॥॥ स्यात् T
तस्य ;। मानसम् ;॥॥ प्रत्यक्षम् ;॥॥
इति* चेत्* मनस्-प्रणिधान-पूर्वकत्वात् ;॥॥

= तिससे कुअवधिज्ञानका (प्रत्यक्ष ज्ञानमें ग्रहण करनेका) निषेध किया गया।
= क्योंकि (= हि) वह (= तद्) मिथ्यादर्शनके उदयसे प्रतिकूल
= पदार्थका ग्रहण करता है। ऐसे (कुअवधिज्ञान) प्रशस्त (= ज्ञान) नहीं है
= (वैशेषिकके मतानुसार-प्रश्न) मत है (= स्यात्) कि इन्द्रियोंके व्यवसायसे-उद्योगसे
= उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है
= इन्द्रियोंके विषयके उद्योग (=व्यापार) वर्जित (ज्ञान) परोक्ष है ऐसा
= यह बाधारहित स्वरूप मानना योग्य है
= (उत्तर) आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञानके लोपका प्रसंग आने (के हेतु) से
= वह (=इन्द्रियजनित ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना) ठीक नहीं है। जो इन्द्रिय जनित ही
= ज्ञान प्रत्यक्ष (प्रमाण) माना जाय तो ऐसे प्रसंगसे
= आप्तके प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता (=होगा)।
= क्योंकि नहीं है तिस (आप्त) के इन्द्रिय पूर्वक वा इंद्रिय जनित वस्तुका ज्ञान
= यदि (=अथ) तिस (आप्त)के भी इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय निमित्तक ही
= ज्ञान माना जाय तो तिस (आप्त)के असर्वज्ञता होगी॥
= तिस (आप्त) के मानसिक वा मनसा (=मानसम्) ज्ञान प्रत्यक्ष मानाजाय 'कल्प्यते'
= ऐसी शंका होनेपर (उत्तर है कि) मनके चिंतवन वा उद्योग जनित होनेसे

ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभावः

ज्ञानस्य ¦॥| सर्वज्ञत्व-अभावः ¦। एव ❀

=ज्ञानके सर्वज्ञपनाका लोप ही [=एव] आता है अर्थात् यदि मनजन्य ज्ञान पूर्णपक्ष माना जाय तो भी सर्वज्ञपना नहीं बनता है
[निम्नटिप्पणीमें विशेष है]

(१) युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति परैरभ्युपगमात्सर्ववस्तुषु युगपन्मनः प्रणिधानं न घटते । ततः सर्वज्ञत्वाभावः । एकं ज्ञानमनेकार्थं न जानातीति । प्रतिज्ञामद्भावाच्च क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानं च न घटते । वस्तूनामानन्त्यादेकवस्तु परिज्ञानावसरे अन्यवस्तुपरिज्ञानाभावाच्च सर्वज्ञत्वाभावः सुघटः ॥

युगपत् • ज्ञान-अनुत्पत्तिः ¦॥| = एक बार ही व एक साथ (= युगपत्) ज्ञानका सम्बन्ध वा सङ्गत न होना
मनसः ¦ ■ लिङ्गम् ¦ ॥| इति परैः ¦। अभि-उपगमात् ¦। = मनका लक्षण ऐसा है । दूसरों करि मानने से
सर्व-वस्तुषु ¦॥| युगपत् • मनसः-प्रणिधानम् ¦॥। = समस्त पदार्थों में एक साथ मनका चिंतवन वा उद्योग वा व्यापार
न घटते T = नहीं बनता है अर्थात् अन्यमतके सिद्धान्त अनुसार भी मन सर्व पदार्थों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता है ।

ततः सर्वज्ञत्व-अभावः ¦। एकम् ¦॥| ज्ञानम् ¦॥| अनेक-अर्थम् ¦। न जानाति T इति प्रतिज्ञा-सद्भावात् ¦। = तिससे सर्वज्ञपने का अभाव है । (और) एक ज्ञान अनेक वा नाना = पदार्थों को नहीं जानता है । ऐसी प्रतिज्ञा की विद्यमानता से अर्थात्
क्रमेण¦ सर्ववस्तुज्ञानम् ¦। च न• घटते T = अनुक्रमसे सब पदार्थों का ज्ञान होना भी नहीं बनता है
वस्तूनाम् ¦। आनन्त्यात् एक वस्तु-परिज्ञान-अवसरे ¦। = पदार्थों के अनन्त होने (के हेतु) से एक पदार्थ के ज्ञानके प्रसंग में
च • अन्य वस्तु परिज्ञान-अभावात् ¦। = और भिन्न पदार्थ के परिज्ञान की शून्यतासे सर्वज्ञता का अभाव
सर्वज्ञत्व-अभावः ¦। सुघटः ¦। = भले प्रकार घटता है वा बनता है भावार्थ यह है कि

आगमतस्तत्सिद्धिरिति चेन्न । तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत्,न तस्य प्रत्यक्षत्वं, इन्द्रियनिमित्ताभावात् । अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात् ॥

आगमनः* तत्सिद्धिः ;॥ इति* चेत्* न*
तस्य ; आगमस्य ; प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ;॥

=शास्त्रसे उस (सर्वज्ञपना) की सिद्धि है ऐसी शंका (=चेत्) है। (उत्तर) यह ठीक नहीं है।
=क्योंकि उस शास्त्र को प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्त वा कारण है अर्थात वही आगम माना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाण जन्य है भावार्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी ही प्रमाणभूत आगम कह सकता है परंतु इन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सब पदार्थोंको ग्रहण नहीं करसक्ता, नहीं जानसक्ता तब उससे बनाहुआ आगम भी सर्व पदार्थों का ज्ञान कैसे करा सक्ता है जिस (आगम) से आपके ज्ञानको सर्वज्ञता मानीजाय ॥

योगिन्-प्रत्यक्षम् ;॥ अन्यत् ;॥ ज्ञानम् ;॥
दिव्यम् ;॥ अपि* अस्ति T इति* चेत्*
तस्य ;॥ प्रत्यक्षत्वम् ;॥ न*
इन्द्रिय-निमित्त-अभावात् ;। अक्षम् ;॥ अक्षम् ;॥
प्रति* यद् ;॥ वर्तते T तत् ;॥ प्रत्यक्षम् ;॥
इति अभ्युपगमात् ;।

=(बौद्धमतवाले) योगियोंका प्रत्यक्ष एक जुदा ज्ञान (=अन्यत् ज्ञान)
=अलौकिक (=दिव्य) ही (=अपि) है यदि (=चेत्) ऐसा है ?
(उत्तर) =(तो) तिस (अलौकिक) ज्ञान को साक्षात्पना नहीं हो सकैगा
=क्योंकि वह इन्द्रियोंके निमित्तसे नहीं होता है। (और आपने) इन्द्रिय इन्द्रिय
=प्रति जो प्रवर्तता है वो (ही) प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् है
=ऐसा माना है (अतः) अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता) भावार्थ अलौकिक ज्ञान वही है जिसका इन्द्रियों से कुछ किसी प्रकारका संबंध नहीं है और प्रत्यक्ष प्रमाण वही माना गया है जो इन्द्रिय जन्य है अतःदिव्यज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है ॥

मन एक साथ सर्व पदार्थों का ग्रहण नहीं कर सक्ता है और क्रमकरि सर्व पदार्थोंका ज्ञान बनता नहीं। क्योंकि पदार्थ अनन्त है युगपत् जबतक अनन्त पदार्थों को न जाने तबतक सर्वज्ञ नहीं इसलिये मनद्वारा युगपत् सर्व पदार्थों के जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सक्ता इसलिये सर्वज्ञता का अभावही हुआ

(१) तस्य और आगमस्य शब्दों के पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग दोनों हो सके हैं ॥

किञ्च सर्वज्ञत्वाभावः प्रतिज्ञाहानिर्वा । तस्य योगिनो यज्ज्ञानं तन्नात्यर्थवशवर्ति स्यात् ? अनेकार्थग्राहि वा ? यदि प्रत्यर्थवशवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिनः, ज्ञेयस्यानन्त्यात् ॥ अथानेकार्थग्राहि,या प्रतिज्ञा "विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयम् यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वयं तथा" इति सा हीयते ॥ अथवा क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते । अनेकक्षणवर्त्येकविज्ञानाभ्युपगमात् ॥

सर्वज्ञत्व-अभावः ;। किञ्च*
वा* प्रतिज्ञाहानिः ;॥ तस्य ;। योगिनः ;। यत् ;॥
ज्ञानम् ;॥ तत् ;॥ प्रति-अर्थ- वशवर्ति ;॥ स्यात् T

वा*अनेक-अर्थग्राहि ;। यदि *
प्रति-अर्थ-वशवर्ति ;। सर्वज्ञत्वम् ;॥ अस्य ;।
योगिनः ;। न अस्ति T ज्ञेयस्य ;।
अनन्त्यात् ;॥
अथ*अनेक-अर्थ-ग्राहि ;।
या ;॥ प्रतिज्ञा ;॥
विजानाति T न * विज्ञानमेकमर्थद्वयम् ;॥ यथा*
एकमर्थम्; ;॥ विजानाति T न विज्ञानद्वयं ;॥ तथा*
इति* सा ;॥ हीयते T अथवा*सर्वसंस्काराः ;।
क्षणिकाः ;। इति*प्रतिज्ञा ;॥ हीयते T अनेक-
क्षणवर्ति-एक-विज्ञान अभ्युपगमात् ;।

=(अलौकिक ज्ञानको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें) सर्वज्ञताका अभाव, भी(=किञ्च) है
=अथवा प्रतिज्ञा भंग वा प्रणकी क्षति हो जावेगी क्योंकि जिस योगीके जो (=यत्)
=ज्ञान है सो एक पदार्थ के (=प्रत्यर्थ) वशीभूत है । अर्थात् योगीश्वर का यह
ज्ञान एक एक पदार्थ अथवा एक एक वस्तुको क्रमानुसार ग्रहण करैगा
=अथवा बहुत पदार्थोंका ग्रहण करने वाला होगा । जो (योगीश्वर का ज्ञान)
=एक वस्तु का ग्रहण करने वाला हो तो सर्वज्ञपना इस
=योगीके नहीं (होसक्ता) है। क्योंकि ज्ञानमें ग्रहण होने योग्य पदार्थके (=ज्ञेयस्य)
=अनंतता है (और सर्वज्ञ तबहीं हो जब सब पदार्थों को एक कालमें जान सकै)
=जो (=अथ)(इस योगीश्वरका ज्ञान)अनेक पदार्थका जाननेवाला हो वा ग्राहीहो तो
=(निम्नलिखित श्लोकमें) जो (=या) प्रण अथवा नियम है कि
=जैसे (=यथा) एक विज्ञान दो पदार्थोंको नहीं जानता है (=विजानाति)
=तैसे (=तथा) दो विज्ञान एक अर्थ वा वस्तुको नहीं जनाते हैं
=ऐसी प्रतिज्ञा (=सा) क्षति की जाय है। अथवा सब संस्कार (=ज्ञानक्षण)
=एक समयवर्ती हैं ऐसा प्रण वा नियम क्षता जाय है क्योंकि अनेक
=क्षणवर्ती एक विज्ञान मानागया है वा स्वीकार कियागया है ।

अनेकार्थग्रहणं क्रमेणेति युगपदेवेति ॥ चेत्, योऽस्यजन्मक्षणः स आत्मलाभार्थ एव । लब्धात्मलाभं हि किञ्चित्स्वकार्यं प्रति व्याप्रियते,

अनेक-अर्थ-ग्रहणम् ;॥॥ क्रमेण ;। इति*

=(और) बहुत-पदार्थोंका ग्रहण अनुक्रमसे होता है भावार्थ बौद्धोंका सिद्धान्त है कि पदार्थको पहिले क्षणमें उत्पत्ति होती है उसी पदार्थका दूसरे क्षणमें नाश होजाता है और यह भी कहते हैं कि एक विज्ञान एकवार एकही पदार्थको जानता है तो अनेक पदार्थोंका ज्ञान क्रमसे हो सकनेके कारण एक विज्ञानको अनेक क्षणवर्ती होनेसे सब संस्कारोंके एक क्षणवर्ती होनेमें दूषण आगया ।

युगपत्* एव*

=एकसाथ वा एककालमें (अनेक पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके ही है

इति• चेत्* यः ;। अस्य ;॥॥ जन्म-क्षणः ;। सः ;। आत्म-लाभार्थः ;। एव•

=ऐसा यदि (चेत्) हो तो ? (उत्तर) जो (=यः) इस (ज्ञान)के उत्पन्न होनेका क्षण है =वह क्षण (उस ज्ञानके) स्वरूपके उपार्जनके लिये (=अर्थ) ही है

लब्ध-आत्म-लाभम् ;। हि*

=क्योंकि (=हि) स्वरूपके लाभको प्राप्तकरि अर्थात् स्वरूपको प्राप्त करनेके पीछे

किञ्चित्* स्वकार्यम् ;॥॥ व्याप्रियते[1]

=कुछ अपने कार्य (=पदार्थोंके ग्रहण) की ओर प्रवृत्त होता है वा व्यापार करता है अर्थात् यदि बौद्ध कहैं कि नाना पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके एक साथ होता है सो असम्भव है क्योंकि जिस क्षणमें विज्ञान उत्पन्न हुआ है वह क्षण उस विज्ञानके होनेमें लगगई । उसके पीछे वह विज्ञान पदार्थके ज्ञान वा ग्रहण करनेमें लगेगा।

(१) व्याप्रियते – यहांपर पृ तुदादि छठवां गणका आत्मनेपदी-अकर्मक अनिट् धातु व्यापार करना वा काम करनेके अर्थमें है । छठवां गणके धातुओं की अंत की ह्रस्व ऋ में रिङ् का आदेश होता है पश्चात् रि को रियू कर देते हैं और अ छठवां गण के विकरणको जोड़कर और वि-आङ् उपसर्ग प्रथम लाकर वि+आङ्+प्रियू =व्याप्रिय बना, पश्चात् से, एक वचन, आत्मने पदी, अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय लगानेसे 'व्याप्रियते' बनगया ॥

प्रदीपवदिति चेन्न । तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत * =दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश वा बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जावेगी

इति * चेत * न * =ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है

तस्य ¦¦ अपि अनेकक्षण-विषयतायां ¦¦ सत्यां ¦¦ एव=क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)

प्रकाश्य-प्रकाशन-अभ्युपगमात् ¦¦ =प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) बना रहता है

च * तस्य ¦¦¦ विकल्प-अतीतत्वात् ¦¦¦ =और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)

शून्यता-प्रसङ्गः ¦¦ =अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

---

(१) स्वस्मिन्सकलविकल्पाभावात्सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यतप्रसंगः ॥ तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पै- । विश्वाभिलाषास्पदतामतीतम् ॥ न स्वस्य वेद्यं न च तद्विगाद्यं । सुपुत्र्यवस्थं मनदुः सदाह्यम् ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

स्वस्मिन् ¦¦¦ सकल-विकल्प-अभावात् ¦¦ =(क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में संपूर्ण विकल्पों वा भेदों से रहित है

च सकलविकल्प-अविषयत्वात् ¦¦¦ =और (=च) (दूसरे) संपूर्ण विकल्पों द्वारा (वह विज्ञान) विषय वा ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प वा भेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सके

योगिप्रत्यक्षस्य ¦¦¦ शून्यता-प्रसङ्गः ¦¦ =(अतएव) योगीके प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता वा अविद्यमानता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि जब योगी का ज्ञान स्वयं अपने स्वरूप में निश्चय रहित है तथा

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भेद विवक्षारहित) मानते हैं । अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है । क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सक्ता है ॥

अभिहित-उभय-प्रकारस्य ।॥। प्रमाणस्य ।॥।	=भाषित वा कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके
आदि-प्रकार-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।॥। आह ।'	=प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विकल्पों (=निश्चयात्मक ज्ञानों) से नहीं जाना जा सक्ता है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवादः—

तत्त्वं ।॥। विशुद्धं ।॥। सकलैः ।' विकल्पैः ।। (अतीतम् ।॥।)=(वह विज्ञान) तत्त्व संपूर्ण कल्पनाओं (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध वा विशद है	अर्थात् विज्ञानमें ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे वह विशुद्ध है निर्मल है ।
विश्व-अभिलाप-आस्पदताम् ।॥। अतीतम् ।॥।	=सब (=विश्व) (वक्ताओंकि बोलनेकी) इच्छाकी (=अभिलाषा) योग्यतासे(=आस्पदतासे) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व संसार में अनिर्वचनीय है वा अवक्तव्य है
नच स्वस्य ।॥। वेद्यम् ।॥।	=(वह विज्ञान तत्व) अपने को नहीं जानता है (=वेद्यम) अर्थात् अपना भी ज्ञेय नहीं है।
नच च तत् ।॥। निगद्यम् ।॥।	=और (=च) वह (=तत्=विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है
सुषुप्ति-अवस्थ्यं ।॥।	=शयन (=सुषुप्ति) अवस्थावाला है (=अवस्थ्यम्) अर्थात् स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्य के सदृश है
भवदुःख-बाह्यम् ।॥।	=संसारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=बाह्यम्) ॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि वह विज्ञानतत्व संपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विश्वका कोई भी वचन कथन करने को समर्थ नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेको नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान ज्ञेय भाव रहित है और न वह कथन कियेजाने योग्य है । स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्यके सदृशहै । संसारसंबंधी सर्व क्लेशोंसे रहितहै वा वर्जितहै
इति वचनात् ।॥।	=ऐसे (वचनसे विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

=मतिः ;॥ स्मृतिः ;॥ संज्ञा ;॥ चिन्ता ;॥ अभिनिबोधः ;। इति-अव्-अर्थ-अन्तरम् ;॥ ॥१३॥

सूत्रार्थः— मतिः =मति अर्थात् मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थको अवग्रहादि रूप साक्षात् जानना सो मति (ज्ञान) है ॥

स्मृतिः ;॥ =स्मृतिज्ञान अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें वा और समयमें स्मरण होना वा सुधि आना सो स्मृति (ज्ञान) है ॥

संज्ञा ;॥ =संज्ञा ज्ञान अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था इस प्रकार जोड़ रूपका ज्ञान होना सो संज्ञा—ज्ञान है वा प्रत्यभिज्ञान है उसके अनेक भेद हैं उनमेंसे मुख्य चार हैं। अर्थात् (१) एकत्व प्रत्यभिज्ञान (२) सादृश प्रत्यभिज्ञान (३) तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान (४) तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान ॥ एकत्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमें एकता दिखाते हुये जोड़रूप ज्ञान जैसे किसी पुरुषको देखकर जानले कि-यह प्रथम देखा था सो ही पुरुष है ॥ सादृश प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुये जोड़रूपज्ञान जैसे किसीने वनमें गवयनामा तिर्यंच, नीलगाव, रोझ, देखकर जाना सो यह गौको देखा था तैसा है। तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान-स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थों में विलक्षणता दिखाते हुए जोड़रूपज्ञान—जैसे किसी भैंसेको देखकर जानना कि प्रथम जो बैल देखा था उससे विलक्षण ये भैंसा है ॥ तत्प्रतियोगि प्रत्यभिज्ञान किसी वस्तुको निकट देखकर अन्य किसी वस्तुको ऐसा जानना जो यह इससे दूर है ॥

चिन्ता ;॥ =चिन्तवन ज्ञान अर्थात् किसी चिन्हको देखकर "वहांपर इस चिन्ह वाला अवश्य होगा" ऐसा विचार सो चिंतन ज्ञान है। इसको ऊह, ऊहा, तर्क वा व्याप्ति ज्ञान भी कहते हैं ॥ व्याप्तिके ज्ञानको—

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय तथा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय दोनोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) ऽजिस शब्दके पीछे ऽ ऐसा चिन्ह आवे उस शब्दके अन्तमेंसे एक अकार ली जाती है। जैसे ऊपर चिन्ता शब्दसे एक अकार ली जावेगी ऽऽऐसे दो चिन्ह हों तो ऐसे चिन्होंके पहिले शब्दके अन्तसे दो अकार ली जावेंगी ॥ जैसे शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया ऽऽतपो द्योतवन्तश्च ॥ अध्याय ५ सूत्र २४ यहां आतप शब्द छायाके पश्चात् है ॥

तर्क कहते हैं, और अविनाभाव सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं ॥ जहां जहां साधन (=हेतु) होय, वहां वहां साध्य (=सिद्ध करने की इच्छा किया गया वा साधने योग्य वस्तु,) का होना, और जहां जहां साध्य नहीं होय, वहां वहां साधन के भी न होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं। जैसे जहां जहां धूम है, वहां वहां अग्नि है और जहां जहां अग्नि नहीं है वहां वहां धूम भी नहीं है ॥ अथवा "व्याप्तिज्ञान को तर्क कहिए है। जहां अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है। यह याकूं होतें संतें होई यो तो अन्वय अर नहीं होतें संतें नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसें दोऊनितें व्याप्तिज्ञान होय है ॥ जैसें अग्नि कें होतें संतें ही धूम होय अर अग्नि का अभाव होतें धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करने का नाम तर्क है सो प्रमाण है" ॥ अर्थ प्रकाशिका में इसी सूत्र को देखो

अभिनिबोधः [1]।

=आभिनिबोधिकज्ञान वा "स्वार्थानुमान" (ज्ञान) जय० वचनिका पान १४० वा "अनुमान" (ज्ञान-अर्थप्रकाशिका) अर्थात् सन्मुख लिंगादि (=चिन्हादिक) देखकर उस लिंगी वा चिन्हवाले आदिका निश्चय करना सो अभिनिबोध है ॥ जैसे धूम को देखकर अग्नि का निश्चय करना कांचली देखकर सर्पका बोध करना साधन कहिये लिंग-चिन्ह तातैं साध्य कहिये जानने योग्य वस्तु लिंगी-चिन्हवान् ताका निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है। तहां साधन ताकूं कहिये, जाकी जहां साध्य वस्तु न होतहां प्राप्ति न होय "जैसे जहां साध्य वस्तु (अग्नि न हो) तहां धूम (अग्निके साधनकी प्राप्ति न होगी "तथा जहां साधन होय तहां साध्य होयही होय" जैसे जहां जहां धूम (अग्निका साधन) होगा वहां २ अग्नि (धूमका साध्य) अवश्य ही होगा ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १४२-१४३ ॥

(१) आभिनिबोधिक—संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदल देते हैं उसीको तद्धित कहते है) यहां सम्बन्धके अर्थमें अभिनिबोधमें ठक् (=अक) प्रत्यय लाकर और उसे (इक) से बदलकर आदि में वृद्धि कर देते हैं जैसे अभिनिबोध-शब्द =आभिनिबोध+ठक् शब्द+ठक् =अभिनिबोध+इक -शब्द+इक, वृद्धि करने से आभिनिबोधिक और शाब्दिक रूप बनाये।

अनुमानः— "साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं" जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ८॥ "साधन कहिए हेतु तातैं साध्य कहिए साधने योग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमान प्रमाण है" साध्यके तीन विशेषण हैं (१) अबाधित वा शक्य—"तहां प्रमाणकरि अबाधित पणाकरि साधिवेकूं शक्य होय सोही साध्य होय है जामें साधने की योग्यता नहीं सो साध्य नाहीं। जैसे आकाशका फूल साधनेकूं शक्य नाहीं॥" अग्नि का ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सक्ता है॥ (२) अभिप्रेत वा इष्ट—वादी जिसको सिद्ध करना चाहे अथवा जिसको साधनेवाला पुरुष अभिप्रायमें ले, सो ही साध्य है तिस अभिप्रेत विना जगतमें अनेक वस्तु हैं वे साध्य नहीं हैं॥ (३) असिद्ध—जो प्रतिवादीको दूसरे प्रमाणसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निश्चय न हो अर्थात् जो पहिले सिद्ध नहीं हुवा है सो साध्य है जो प्रथमही सिद्ध होचुका है उसको क्या साधेगा? सिद्ध हुए को साधन निष्फल है जिसमें कुछ संदेहादिक हो सो असिद्ध है सो ही साधने योग्य है। इस प्रकार के विशेषण युक्त साध्य के सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातैं याकूं अभिनिबोध कहिये॥ साधनके संक्षेपसे दो भेद हैं (१) उपलब्धि (२) अनुपलब्धि॥ अभावके ग्रहणको अनुपलब्धि कहते हैं॥ इन्द्रियमनकरि वस्तुके सद्भावका ग्रहण हो सो उपलब्धि है उसके तीन प्रभेद हैं कार्योपलब्धि जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि अग्निका कार्य धूम दीखे है। (२) "कारणोपलब्धि जैसे वर्षा होगी जातैं याका कारण बादल सघन दीखे है"॥ (३) स्वभावोपलब्धि जैसे वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप सहित है॥ (अर्थात् वस्तु उत्पत्ति-विनाश अस्तित्व वा विद्यमानता स्वभाववाली है अध्याय ५ सूत्र ३०) क्योंकि सत्व स्वरूप है। सत्वका स्वभाव ऐसाही है। इत्यादिक साधनके अनेक भेद श्लोकवार्तिक में कहे हैं॥

इति-अन्-अर्थान्तरम् ॥॥ =इस प्रकार (इस मतिज्ञानके) अनर्थान्तर वा नामान्तर (मतिः स्मृतिः संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं अर्थात् मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, इनके शब्दभेद (के हेतु)से वा नामभेदसे अर्थभेद होते संते भी रूढिप्रसिद्धके बलसे मतिके नामान्तर ही हैं । भावार्थ जैसे इन्द्र (ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति) शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (पुरका फाड़नेहारा शचीपति) ऐसे इन तीन शब्दोंमें ऐश्वर्य-शक्ति-फाडनेवाले क्रियाओंके भेद होने पर भी एक शचीभर्ताका नाम समभिरूढनय (=नाना अर्थको छोडकर एकही अर्थमें स्थापित करने वाली नीति वा रीति) की अपेक्षा (इन्द्र) ही है तैसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी एक मतिज्ञानके नामान्तर ही माने गये हैं क्योंकि ये सर्व एक मतिज्ञानावर्णकर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं तिससे ये मतिज्ञानही हैं अन्य (पदार्थ) नहीं है ॥ सारांश यह है कि जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर न्यारी न्यारी क्रियाओंके करनेवाले को प्रकट करने परभी एक शचीपति काही नाम है तैसेही मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थबोधक होने परभी एक मतिज्ञान केही नाम हैं क्योंकि सब मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं ॥

(१) "सूत्र विषैं इति शब्द प्रकारवाची है, सो बुद्धि तौ मतिका प्रकार जानना । जातै पदार्थके ग्रहणके शक्ति स्वरूपकूं बुद्धि कहिये है । बहुरि मेधा स्मृतिका प्रकार है । जातैं शब्दके स्मरणकी शक्ति कूं मेधा कहिये है । बहुरि प्रज्ञा चिंताका प्रकार है । जातैं वितर्कणाका निवेश स्वरूप है । बहुरि प्रतिभा उपमा ये संज्ञाका प्रकार है । जातैं सामान्य पदार्थ को सादृश्य दिखावने रूप है । बहुरि संभव अर्थापत्ति अभाव व स्वार्थानुमानके प्रकार हैं जातैं ये सर्व लिंगही तैं आनिये है ।" जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १४१ ॥

(२) कईएक मतावलम्बियोंके अनुसार "ज्ञान दोप्रकारका है वस्तुमात्रको प्रकाश करनेहारा निर्विकल्पक, संज्ञा (नाम) आदिको प्रकाश करनेहारा सविकल्पक है। यह (सविकल्पक) संकल्प, संशय, भ्रान्ति, सहति, सादृश, निश्चय और अनुभव आदि भेदसे कई प्रकारका है" पञ्च० कोष पृष्ठ१६१

आदौ यदुद्दिष्टं ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः । मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वात् । एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च ॥ मननं मतिः । स्मरणं स्मृतिः । सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

"ऐसैं स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है" बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है ॥ "बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यादिक प्रमाण न्यारा माने हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भूत होय हैं" ॥ अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तेरहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

आदौ ;। यद् ;॥ उद्दिष्टम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ =पहिले जो (इस तेरहवां सूत्र में) उपदेशकियागयाज्ञान (अर्थात् मतिज्ञान)
तस्य ;॥ पर्यायशब्दाः ;॥ =तिस (मतिज्ञान) के पर्यायशब्द-नामान्तर-अनर्थान्तर-वा अभिधेयार्थवाची
एते ;। वेदितव्याः ;। ; मतिज्ञान- = ये (स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) जानने चाहिये । मतिज्ञान
आवरण- =आवरणीय कर्मका
क्षयोपशम-अन्तरंगनिमित्त- = क्षयोपशम अन्तरंग कारणसे
जनित-उपयोग-विषयत्वात् ;॥ = जन्य वा उत्पन्न हुआ जो उपयोग तिस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं
च एतेषां ;। अप्रवृत्तेः ;॥ श्रुत- = और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) की अप्रवृत्ति श्रुतज्ञान
आदिषु ;॥ मननम् ;॥ = आदिकज्ञानोंमें है ॥ मानना (=मननं) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ के अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो)
मतिः ;॥ स्मरणम् ;॥ स्मृतिः ;॥ =मतिज्ञान है। सुध (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
सञ्ज्ञानम् ;॥ = जोड़रूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान)
(अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था ऐसाजोड़रूप ज्ञान)
सञ्ज्ञा ;॥ चिंतनम् ;॥ =सो सञ्ज्ञाज्ञान है ॥ चिंतवन =किसी चिन्हको देखके यहां इस चिन्हवाला अवश्य होगा ऐसा विचार)
चिंता ;॥ =सो चिंता वा तर्क वा व्याप्तिज्ञान वा ऊहा वा ऊह ज्ञान है ॥

अभिनिबोधनमाभिनिबोधः । इति यथासम्भवं विग्रहान्तरं विज्ञेयम् ॥ सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिबलाभात् पर्यायशब्दत्वम् । यथा—इंद्रः शक्रः पुरन्दरः इति, इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरेकस्यैव संज्ञाः । समभिरूढनयापेक्षया तेषामर्थान्तरकल्पनायां

अभिनिबोधनम् ;॥॥ =साधन (=लिंग वा चिन्ह वा हेतु)से साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु)का ज्ञान
(अर्थात् सन्मुख चिन्हादिक देखकर उस चिन्हवालेका निश्चय करलेना सो)

अभिनिबोधः ;। =अभिनिबोधज्ञान वा स्वार्थानुमान ज्ञान वा अनुमान ज्ञान है
(यहां मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध शब्दोंका भाव साधनमें अर्थ किया है)

इति* यथासम्भवम् ;॥॥ विग्रह-अन्तरम् ;॥॥ =ऐसे योग्यता पूर्वक वा योग्यतानुसार (=यथासम्भव) अन्य विग्रह
(समासके अर्थको जनानेवाले अन्यवाक्य जैसे इनके करण साधन कर्तृ साधन)

विज्ञेयम् ;॥॥ प्रकृतिभेदे ;। =जानना योग्य है। (मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोधके) अर्थ (=प्रकृति) भेद
सति ;। अपि* रूढि-बल-लाभात् ;। =होनेपर (=सति) भी (=अपि) रूढि (=प्रसिद्ध) की सामर्थ्य प्राप्तिसे
पर्याय-शब्दत्वम् ;॥॥ यथा* इन्द्रः ;। =(मतिके) पर्यायशब्द वा नामान्तर हैं। जैसे इन्द्र (=ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति)
शक्रः ;। पुरन्दरः ;। =शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (=पुरके फाड़नेवाला शचीपति)
इति-इन्दन- =ऐसे (इन तीन इन्द्र-शक्र-पुरन्दर शब्दोंमें) ऐश्वर्य होनेरूप
आदि-क्रिया-भेदे ;। अपि* =शक्ति होनेरूप, फाड़ने (यथासंख्य) क्रियाओंके भेद होनेपर भी
एकस्य ;। शची-पतेः ;। एव संज्ञा ;॥ समभिरूढनय- =एक शची भर्ताके ही नाम समभिरूढनय
(नाना अर्थको छोड़कर एक ही अर्थमें स्थापित करनेवाली नीति वा रीति)की
अपेक्षया ;॥ तेषाम् ;। अर्थ-अन्तर-कल्पनायाम् ;॥ =अपेक्षा, तिन (इन्द्र-शक्र-पुरन्दर)के भिन्न भिन्न अर्थ माननेमें

सर्वार्थ-सिद्धि

मत्यादिष्वपि स क्रमो विद्यत एव। किंतु मतिज्ञानावरणाक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति अयमत्रार्थो विवक्षितः। इतिशब्दः प्रकारार्थः। एवंप्रकारा अस्य पर्यायशब्दा इति। अभिधेयार्थो वा। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्योऽभिधीयते स एक एव इति॥

३५६

मति-आदिषु ;। अपि* सः ;। क्रमः ;। विद्यते T
एव* किंतु* मति-ज्ञान-आवरण—
क्षयोपशमनिमित्त-उपयोगम् ;। न* अति-वर्तते T

=मति आदिकमें भी वह नियम रीति-वानय (=क्रम) विद्यमान
=ही है क्योंकि (=किंतु) (मति-स्मृति संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) मतिज्ञानावरणकर्मके
=क्षयोपशम जनित उपयोगको उलंघकरि नहीं वर्तते हैं वा नहीं छोड़ते हैं अर्थात्
इन पांचोंके अर्थ तो भिन्न हैं परंतु मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे ये सब उपजते
हैं। अतः सब मतिज्ञान के ही पर्याय वाची शब्द वा नामान्तर माने जाते हैं॥
सारांशः—जैसे इन्द्र-शक्र-पुरंदर न्यारी न्यारी क्रियाके करनेवालेको प्रगट करने
पर भी समभिरूढनयकी अपेक्षा से शचीपति के ही नाम हैं तैसेही मति स्मृति
संज्ञा चिंता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थोंके बोधक होनेपरभी एक मतिज्ञानकेही
नाम उक्तनयसे हैं क्योंकि पांचों मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न
होते हैं॥

इति* अत्र* अयम् ;। अर्थः ;। विवक्षितः*
इतिशब्दः ;। प्रकार-अर्थः ;।
एवम्* अस्य ;। प्रकाराः ;। पर्याय-शब्दाः ;। इति*
वा* अभिधेय-अर्थः ;।
मतिः ;। स्मृतिः ;। संज्ञा ;। चिंता ;। अभिनिबोधः ;।
इति* एतैः ;। यः ;। अर्थः ;। अभिधीयते T
सः ;। एकः ;। एव* इति*

=ऐसे यहां यह अर्थ अपेक्षा से किया गया है (विवक्षितः)
=(इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकारके निमित्त (=अर्थ) है अर्थात् भेदोंका वाचक है
=ऐसे (=एवम्) इस (मतिज्ञान) के (=अस्य) भेद हैं (=प्रकाराः) नामान्तर हैं
=अथवा (=वा) (इति शब्द सूत्रमें) अभिधेय अर्थवाची है अर्थात्
=मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध
=इस प्रकार इन (शब्दों) करि जो अर्थ कहा गया है (अभिधीयते)। सो (अर्थ)
=एक ही है अर्थात् मतिज्ञानकेही पर्याय शब्द वा नामान्तर हैं॥

विद्यत एव और नातिवर्तत इति = विद्यते एव और नातिवर्तते इति॥ लोपःशाकल्यस्य ८।३।१९ सूत्रसे इनदोनों वाक्योंके यूका लोप होगया है॥

अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्याह ॥

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्य स्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धि-निमित्तं लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियमित्युच्यते ॥

अथ* अस्य ¦॥ आत्म-लाभे ¦। किम्¦॥ निमित्तम् ¦॥ इति* आह T

=अब (=अथ) इस (मतिज्ञान) के स्वरूपके (=आत्म) उपार्जन में क्या हेतु है
=ऐसा (प्रश्न होने पर) कहते हैं कि

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

तद्-इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ¦॥॥

=वह (पूर्वोक्त मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध इत्यादि शब्दरूप मतिज्ञान)
=(बहिरंग में) पांच इन्द्रिय और मननिमित्तक, वा मनजनित वा मनजन्य है
अर्थात् उस मतिज्ञानके उत्पन्न होनेके लिये स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र मन ये छै बाह्य कारण हैं पर अंतरंग मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है ॥ मनः, अंतःकरण, अनिन्द्रिय (=किंचित् वा ईषद् इन्द्रिय, न कि इन्द्रिय रहित) है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (चौदहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

इन्दति T इति इन्द्रः ¦। आत्मा ¦।
=परम ऐश्वर्यरूप प्रवर्तता है (=इन्दति) ऐसा इन्द्र है वा (अर्थसे) चेतना है आत्मा है ॥

तस्य- ¦। स्वभावस्य ¦। तद्-आवरण-क्षयोपशमे ¦।
=तिस (आत्मा) के (ज्ञान) स्वभाव को उस ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम

सति ¦। स्वयम्* अर्थान् ¦। गृहीतुम्०
=होनेपर आपही आप (=स्वयम्) पदार्थों को ग्रहण (करने) के लिये

असमर्थस्य ¦। यद्-अर्थ-उपलब्धि-निमित्तम् ¦॥॥
=असमर्थ (आत्मा) को जो पदार्थ को जनावने का कारण है

लिङ्गम् ¦॥॥ तद्-इन्द्रस्य ¦। लिङ्गम् ¦॥॥ इन्द्रियम् ¦॥॥ इति* उच्यते T
=सो लिंग वा चिन्ह है। वह आत्मा का चिन्ह इन्द्रिय
=कहा जाता है ॥ भावार्थ यह है कि चेतनके अंतरंग मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम से पदार्थों के जाननेकी अंतरंग शक्ति तो

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। बाह्य कारणोंसे स्पार्शन-रासन-घ्राणज-चाक्षुष-श्रावण-मानस छैभेद हैं(२)हेत्वर्थभूत कृदन्तादे

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमोऽग्नेः ॥ एवमिदं स्पर्शनाद्यधिकरणं नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रियं मनःअंतःकरणमित्यनर्थान्तरम् ॥

आत्मामें प्रगट हुई परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना जाननेको समर्थ नहीं हो सक्ता है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥

अथवा* लीनम् ;। अर्थम् ;। गमयति T इति* =अथवा गूढ़ वस्तुको जताता है (=गमयति-बोधयति) ऐसा

लिङ्गम् ;॥। आत्मनः ;। सूक्ष्मस्य ;। अस्तित्व-अधिगमे ;। =लिंग वा चिन्ह है । चेतनकी गूढ़ वा अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें

लिङ्गम् ;॥। इन्द्रियम् ;॥। यथा* इह* धूमः ;। अग्नेः ;। =चिन्ह वा लिंग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है

एवं* इदम् ;॥। स्पर्शन-आदि-करणम् ;॥। आत्मनि ;। =ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन

असति ;। कर्तरि ;। भवितुम्-अर्हति T न* =कर्ताके न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)

इति* ज्ञातुः;। अस्तित्वम् ;॥। गम्यते T =ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तौ असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पाचों इन्द्रियें करण हैं कर्ता विना करण नहीं हो सक्ता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें ज्ञाता जो आत्मा हैं तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं

अथवा* इन्द्रः ;। इति* नामकर्म ;॥। उच्यते । =अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है

तेन ;। सृष्टम् ;॥। इन्द्रिम् ;॥। इति* तत- =तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन

स्पर्शन-आदि ;॥। उत्तरत्र * वक्ष्यते T =रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे

अनिन्द्रियम् ;॥। मनस् ;॥। अंतकरणम् ;॥। इति * =अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये

अन्-अर्थ-अन्तरम् ;॥ =अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

कथं पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः ।। ईषदर्थस्य नञः प्रयोगात् । ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थः ।। इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश-विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मनः इन्द्रस्य लिङ्गमपिसत्प्रतिनियत-

---

पुनः * इन्द्रिय-प्रतिषेधेन ।। अनिन्द्रिय-शब्दस्य ।।
प्रवृत्तिः ।।। इन्द्र-लिङ्गे ।।। एव* मनसि ।।। कथम् *

=(प्रश्न) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
=प्रवृत्ति आत्माका चिन्ह मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो अनिन्द्रिय है तो मन अनिन्द्रिय कैसे हैं ।

ईषत् *
अर्थस्य ।। नञः प्रयोगात् ।।

=(उत्तर) (इन्द्रिय रहित वा वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प वा किञ्चित्
=अर्थमें (इन्द्रिय शब्दके) नञ् (=अत्) समासके प्रयोग से

ईषत् * इन्द्रियम् ।।। अनिन्द्रियम् ।।। इति* यथा *
अनु- उदरा ।। कन्या ।। इति *

=ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । जैसे
=अनु-पेट वाली कुमारी ऐसे
(यहांपर-अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् वा किञ्चित् अर्थमें है अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को कहते हैं जिसका पेट पतलाहो, क्षीणहो, कृशहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)

कथम् * ईषत् * अर्थः ।। इमानि ।।। इन्द्रियाणि ।।।
प्रति-नियत-देश-विषयाणि ।।। च*
कालान्तर-अवस्थायीनि ।।।

=(प्रश्न) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=इमानि) (पांचों) इन्द्रियें
=नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करती हैं और (=च)
=कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) ठहरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र पांचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी अवस्थित रहती हैं

तथा * मनस् ।।। इन्द्रस्य ।।। लिङ्गम् ।। प्रतिनियत-

=तैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिङ्ग होने पर भी (सत्-अपि) प्रतिनियत

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्तःकरणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते॥ तदिति किमर्थम्?। मतिज्ञाननिर्देशार्थम्॥ ननु च तदनन्तरं अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहणं भवति।

देशविषयं ॥॥ च कालान्तर- =स्थानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें
अवस्थायि ॥ नः* तद् ॥॥ =अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन चंचल है। वह (=तद्=अनिंद्रिय=मन)
अन्तःकरणम् ॥॥ इति* च* उच्यतेT =अन्तःकरण वा अभ्यन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है।
गुण-दोष-विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु ॥ इन्द्रिय- =गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उद्योगमें इन्द्रियोंकी
अन्-अपेक्षत्वात् ॥॥ च* चक्षुरादि-वत्* =अपेक्षा न होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सदृश (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)
बहिस्-अन्-उपलब्धेः ॥ अन्तर्गतम् ॥॥ करणम् ॥॥ =बाह्यसे न देखे जानेसे (=अनुपलब्धेः) वा न जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय
अन्तःकरणम् ॥॥ इति उच्यते T =(वा) अंतःकरण वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषत् अर्थ अनूमें सम्भव है)
तद् ॥॥ इति* किमर्थम् ॥॥ मतिज्ञान-निर्देश- =(इस सूत्रमें) तद् ऐसा शब्द किस लिये है। (तत् शब्द) मतिज्ञानके कथनके
अर्थम् ॥॥ ननु* च* तद्-अनन्तरम् ॥॥ =लिये है। और (=च) प्रश्न (=ननु)। वह (मतिज्ञान शब्द इस सूत्रके) लगता ही है
(अर्थात् इस सूत्रके अत्यन्त समीप लगता ही मतिस्मृतिसंज्ञाचिन्ताभिनिबोधः इत्यादि सूत्र कह चुके हैं तिस सूत्रका मति शब्द इस सूत्रके लगता ही है जब एक सूत्र के पीछे दूसरा सूत्र आवे तो दूसरे सूत्रसे पहिले सूत्रकी)
अनन्तरस्य ॥॥ विधिः ॥ वा* भवतिT प्रतिषेधः ॥ =अत्यन्तसमीपवर्ती (वस्तु) का विधान होता है वा निषेध ऐसा (परिभाषा सूत्र) है
तस्य ॥॥ एव* ग्रहणम् ॥॥ =(अतः इस सूत्रमें विना तत् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान
भवति T =होना है (इसलिये इस सूत्रमें तत् शब्द निरर्थक ही है)

इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहावायधारणा इति । इतरथा हि प्रथमं मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं श्रुतम् । तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ॥

इह * अर्थम् ;॥ च • उत्तर-
अर्थम् ;॥ तद् ;॥ इति*
उच्यते T यद् ;॥ मति-आदि-पर्याय शब्द-
वाच्यम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ तद् ;॥ इन्द्रिय-
अनिन्द्रिय-निमित्तम् ;॥ तद् ;॥
एव • अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणाः ;॥ इति*
इतरथा * हि * प्रथमं ;॥ मति-आदि-
शब्द-वाच्यम् ;॥ ज्ञानम् ;॥ इति* उक्त्वा-
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ;॥ श्रुतम् ;॥
तद-एव* अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणाः ;॥ इति*
अनिष्टम् ;॥ अभिसम्बध्येत T

=(इह) यहांके लिये अर्थात् इस सूत्रके लिये और (=च) पश्चात् वा पिछले
=(सूत्र) के लिये (अर्थात् कहे जाने वाले पंद्रहवां सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है॥ ऐसे
=कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध समानार्थक शब्दोंकरि
=वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
=तथा अन्तः करण जनित है (और) वो (मतिज्ञान)
=ही अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा रूप (देखो सूत्र १५) है क्योंकि (=हि)
=अन्यथा (तत् शब्द न लाया जाय तो) पहिले मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध
=शब्दोंकरि वाच्य (=कहेजानेवाला) मतिज्ञानहै ऐसा कहकर वा कथन करि
=इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं (=इन्द्रिय और मन जनित) श्रुत ज्ञान है ऐसा संबंध होजाता
=तोवह (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (सूत्र १५) रूप है ऐसा
=विरुद्ध वा प्रतिकूल सम्बन्ध वा प्रसंग हो जाता यदि इस सूत्रमें तद् शब्द न लाते)

सारांशः—"इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं" ऐसा सूत्र होता तो तद् शब्द का लाभ होजाता (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं (देखो सूत्र ११) मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध ये मतिके पर्यायशब्द हैं (सूत्र १३) अब यदि तत शब्द न लाते तो (यथा संख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं का संबंध श्रुतज्ञान तो११वां सूत्रमें है) उससे होकर यह अर्थ होजाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जन्य श्रुतज्ञान है पश्चात्

एवं निर्ज्ञातोत्पत्तिनिमित्तमनिर्णीतभेदमिति तद्भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह--

॥ अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

इस श्रुतकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रमें जाकर इस१५वें सूत्रका अर्थ होजाता कि अवग्रह ईहा-अवाय-धारणारूप श्रुतज्ञान है, ऐसे अर्थ विरुद्ध हो जाता अतः तत् शब्द लाये हैं ॥

एवम्* निर्ज्ञात-उत्पत्ति-निमित्तम् ;॥॥
अनिर्णीत-भेदम् ;॥॥ इति* तद्-
भेद-प्रतिपत्ति-अर्थम् ;॥॥ आह T

=ऐसे (मतिज्ञानके) उत्पन्न होने का हेतु जानागया (परन्तु मतिज्ञानके)
=भेद वा विधान नहीं जाने गये इस प्रकार (प्रश्न होने पर) उस (मतिज्ञान) के
=भेदोंको जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः

(पूर्वोक्त पांच इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जनित मतिज्ञानके एक होने पर भी)

अवग्रह-
=अवग्रह (पदार्थके सत्तामात्र जाननेके पीछे श्वेत कृष्णादि विशेष विकल्परूप ज्ञान)

ईहा-
=ईहा (अवग्रह से जाने हुये पदार्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा रूप ज्ञान)

अवाय-
=अवाय वा अपाय (ईहासे जानी हुई वस्तुका अवधारणरूप वा निश्चयरूप ज्ञान)

धारणाः ॥॥
=धारणा (अवायसे जानेहुये पदार्थको अन्य कालमें न भूलना, सुध रखना (ये चार भेद) हैं

भावार्थः—जो इन्द्रिय और इन्द्रियके ग्रहण योग्य विषय के संयोग होते ही जो वस्तु के सत्तामात्र का ग्रहण सो दर्शन है जैसे दृष्टिके पडते ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प ग्रहणमें आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसेही कर्णादिक चार इन्द्रियोंके द्वारें सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। और तिस (दर्शन) के लगता ही जो देखेहुये पदार्थ का वर्णन संस्थानादिक विशेष ग्रहण में आवे सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्रमें 'अवाय और आपाय' दोनों पाठ हैं॥ दोय पाठ दोनों आम्नायोंमें एक हैं अर्थ भी एक है॥

(२) ईहादिक ज्ञान विना अवग्रह के नहीं हो सकते किंतु अवग्रह पूर्वकही होते हैं इसलिये अवग्रह आदि चारों भेदोंमें सबसे पहिला अवग्रह का उल्लेख है अवाय और धारणा ईहा पूर्वक होते हैं इस लिये अवग्रहके पश्चात् ईहाका कथन है धारणा ज्ञान अवाय पूर्वक होता है इस लिये ईहाके पीछे अवायका कथन है। धारणा ज्ञान सबसे अंतमें होता है इसलिये सबके अंतमें धारणा ज्ञान रक्खागया है। इसप्रकार उत्पत्तिके क्रमकी अपेक्षा-

विषयाविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः। विषयाविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तरमर्थस्य ग्रहणमवग्रहः।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्वेत है॥ (२) बहुरि श्वेत रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा जो यह श्वेत है सो बकपंक्ति होना चाहिये अथवा श्वेत धुजा होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मतिज्ञान है। ऐसे ही शब्दादिकोंमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाय मतिज्ञान है॥ जैसे बगुला (=बगला-बग-बक)की पंक्तिमें बगलोंकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परंतु ध्वजाका निषेध नहीं किया था ऐसा तो ईहा ज्ञान था। अब ऊंचा नीचा आवना पंखोंका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये बक पंक्तिही है अन्य धुजादिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढ़ज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें भूलना नहीं सुधवनी रहै उसको धारण ज्ञान वा धारणा मतिज्ञान कहते हैं॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद॥

विषय-विषयिन्-	=विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पांचइन्द्रिय और मन) निके
सन्निपात-समय-अनन्तरम् ‡॥॥	=संबंध होनेके समयसे लगताही (=अनन्तर)
आद्य-ग्रहणम् ‡॥॥ अवग्रहः ‡।	=प्रथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवै (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
विषय-विषयि-	=(स्पर्श-रस-गंध-रूप-शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन :
सन्निपाते ‡॥॥ सति ‡॥ दर्शनम् ‡॥॥	=संबंध वा संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता वा होने मात्रका ग्रहण दर्शन
भवति T तद्-अन्तरम् ‡॥॥	=होता है। उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)
अर्थस्य ‡। ग्रहणम् ‡॥॥ अवग्रहः ‡।	=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है॥

यथा--चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः ॥ अवगृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणमीहा । यथा--शुक्लं रूपं किं बलाका पताकेति ॥

भावार्थः— किसी पदार्थका इन्द्रिय और मनके संबंध होने से उस वस्तुके होने वा सत्ता मात्रको जानना सो दर्शन है। दर्शनके पश्चात् ही वा लगता ही वस्तुका श्वेत अरुणादिरूप विशेषज्ञान सो अवगृह नामा मतिज्ञान है =जैसे नेत्रकरि श्वेतरूप इसप्रकार आदान वा गृहण =सो अवग्रह है। अवग्रहकरि ग्रहण किये हुये पदार्थ में उस पदार्थ के =अधिक वा विशेष (जानने) की अभिलाषा वा वांछा रूप ज्ञान सो ईहा है =जैसे यह श्वेत रूप क्या वक श्रेणी होना चाहिये (अथवा) ध्वजा।

यथा ❀ चक्षुषा ३। शुक्लम् ३॥। रूपम् ३॥ इति गृहणम्
अवग्रहः ३। अवग्रह-गृहीते ३। अर्थे ३। तद्-
विशेष-आकाङ्क्षणम् ३॥। ईहा ३॥
यथा • शुक्लम् ३॥। रूपम् किम् बलाका ३॥ पताका ३॥ इति

(१) ईहा और संशय ज्ञानमें यह अन्तर है कि संशय ज्ञान तो दोय पक्षमें अनिश्चित ज्ञान है अप्रमाण है बहुरि ईहा एकही पक्षमें वांछारूप ज्ञान है जो वक पंक्ति है तो उसहीकी जाननेकी इच्छा है जो पताका है तो उसहीकी जाननेकी अभिलाषा है। बहुरि संशय ज्ञानमें न जाने बगुलाकी पांती है अथवा न जाने पताका है॥

१ ननु ईहा संशयज्ञानं भवितुमर्हति, किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात्, प्रसिद्धसंशयज्ञानवत् ॥ तथा च कथमस्याः प्रामाण्यमिति न शंकितव्यम्। हेतोरसिद्धेः। तस्या भवितव्यताप्रत्ययरूपतेन उभयकोटीपरामर्शिप्रत्ययरूपत्वायोगात्। किं बलाका पताकेति वचनं तु निदर्शनत्रयोपदर्शनार्थमुक्तम्। तथा च किं बलाकेत्यत्र बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पताकेत्यत्र च पताकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्॥ कथमेषा प्रतीतिरिति चेत् प्रकरणशास्त्रे ज्ञानमार्गणाणां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमदमयसूरिवर्यैस्तथैव निरूपितत्वात्॥ यथाहि तद्ग्रन्थः- अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञातेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानंभवेत्॥ अथवा पताकारूपं विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा

आकांक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेत् ॥ एवमिन्द्रियान्तर विषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथा व्यवस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम् ॥ मतिज्ञानावरण क्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेद संभवात् ॥ अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥

ननुक ईहा ¦॥ संशयज्ञानम् ¦॥॥ भवितुम्-अर्हति T —प्रश्न, ईहा संदेहज्ञान होना चाहिये वा होना योग्य है। (भवितुम् हेत्वर्थभूत कृदन्त है)
किम् ¦॥॥ बलाका ¦॥ पताका ¦॥ इति* उभयकोटीपरामर्श- —क्योंकि, बक श्रेणी (वा) ध्वजा ऐसा दोनों पक्ष का अवलम्बन करने वाले
प्रत्ययत्वात् ¦॥॥ : प्रसिद्धसंशय-ज्ञानवत् • ॥ —ज्ञान होने वा प्रतीति होनेसे प्रगटकरि संशयज्ञान सदृश है ॥
तथा* च* कथम* अस्याः ¦॥ प्रामाण्यम् ¦॥॥ —इसपरभी (=तथाच) अर्थात् दोनों पक्षमें होनेपरभी इस (ईहा) के प्रमाणका होना कैसे है
इति* नक शंकितव्यम् ¦॥॥ —ऐसा संदेह (आचार्य कहते हैं) न होना चाहिये। प्रश्नका भावार्थ यह है कि ईहाज्ञानको बक पंक्ति है वा ध्वजा है ऐसा विचार होनेसे संशयज्ञान कहना चाहिये, उत्तर यह है कि दोनों पक्षमें विचार होनेपर भी ईहाको संशयज्ञान न कहना चाहिये।

हेतोः ¦। असिद्धेः ¦॥ —(क्योंकि) हेतु (=साधन) की सिद्धि नहीं होती सारांश यह है कि ईहाज्ञानको संशयज्ञान बनाने के लिये जो हेतु "दो कोटि परामर्शी ज्ञान होनेसे" दिया है वह असिद्ध है, हेत्वाभास है

तस्या ¦॥ भवितव्यता-प्रत्ययरूपत्वेन ¦॥॥ —क्योंकि तिस (ईहा) के होनेकी (भवितव्यता) प्रतीति रूपपना से
उभय-कोटी-परामर्शि-प्रत्ययरूपत्वअघटनात् ¦॥॥ —दोनों पक्ष अवलम्बी ज्ञानरूपका होना नहीं घटता है वा नहीं बनता है ॥
किम् ¦॥॥ बलाका ¦॥ पताका ¦॥ इति* वचनम् ¦॥॥ —क्या बगुल की पंक्ति है (वा) ध्वजा है ऐसा वाक्य तो (=तु)
निदर्शनद्वयउपदर्शन- अर्थम् ¦॥॥ उक्तम् ¦॥॥ —(ईहाके) दो उदाहरण (=निदर्शन) दिखलाने के लिये कहा गया है ॥

सर्वार्थ-
३६६
श्रीमद्भट्टाकलङ्कदेवविरचितराजवार्तिकालङ्कार-स्वोपज्ञभाष्यसहितस्य तत्त्वार्थाधिगमाख्यस्य मोक्षशास्त्रस्य हिन्दीभाषानुवादः
भट्टाकलङ्कदेवविरचित राजवार्तिक एवं स्वोपज्ञ भाष्य सहित तत्त्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्र की हिन्दी भाषानुवाद

एवम्* इन्द्रियान्तरविषयेषु ।
मनस्-विषये ; च*
अवग्रहगृहीते ; यथावस्थितस्य ।
विशेषस्य ; आकांक्षात्मिका ; ईहा ;॥ इति* निश्चेतव्यम्॥
मतिज्ञान-आवरणक्षयोपशमस्य ; तारतम्यभेदेन ;
अवग्रह-ईहा-ज्ञानयोः ;॥ भेदसंभवात् ; अस्ति* ।
सम्यग्ज्ञानप्रकरणे ; बलाका ;॥ वा* पताका ;॥
वा* इति* संशयस्य ; च* बलाकायाम् ;॥
पताकया ;॥ भवितव्यम् ;॥ इति विपर्ययस्य ;॥
मिथ्याज्ञानस्य ;॥ अन+अवतारात् ;॥

=इस प्रकार अन्य (स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र) इन्द्रियों के विषयोंमें
=और (=च) अनिन्द्रिय विषयमें वा अन्तः करण गोचर (वस्तु) में
=अवग्रह ज्ञानसे ग्रहण किये हुये वा जाने हुये (पदार्थ) में यथा अवस्थित (पदार्थ) के
=अधिक (जानने) की वाञ्छारूप ईहा ज्ञान है इस प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये (वा)
=मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके न्यूनाधिक्य भेदकरि
=अवग्रह ईहा ज्ञानोंके भेद संभव हैं इस
=सुज्ञानके अधिकार में बगुलोंकी पांती है अथवा ध्वजा है
=ऐसे संदेह की तथा वक्र श्रेणी में
=पताका होनी चाहिये ऐसे विपर्यय
=मिथ्या ज्ञानका अवतार (प्रसंग) नहीं होसक्ता ॥ प्रश्न और उत्तरका सारांश यह है कि ध्वजा है वा वक पंक्ति है-यह तो संशय ज्ञान हुआ ॥ उत्तर में कहते हैं कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं ईहाज्ञानवाला उनको देखकर यह नहीं कहता है कि ध्वजा है वा वक पंक्ति है यह यह कहता है वा विचारता है कि यह श्वेत वस्तु ध्वजा होना चाहिये, वक पंक्ति होना चाहिये ॥ उसका ज्ञान दो ओर नहीं जाता है कि न जाने ध्वजा है कि न जाने वक पंक्ति है उक्त दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं ध्वजा होना चाहिए, वक पंक्ति होना चाहिये ऐसी इच्छाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहां सम्यग्मतिज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यग्ज्ञान का भेद है, संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अवतरण का प्रसंग नहीं आता ॥

स्मरण रहै कि अग्रिम पृष्ठ ३६८ में अपाय और अवाय दोनों शब्द के पाठोंके मानने में कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष दक्षिणी नहीं है' जिस समय ऐसा अपाय निषेध किया जाता है उसमसय 'उत्तरी है' इस अर्थसे अवाय ज्ञानसे ग्रहण होता है और जिस समय 'यह उत्तरी है' इस रूपसे पदार्थका ग्रहण होता है उस समय 'यह दक्षिणी नहीं है' इन पदार्थ का निषेध हो जाता है इस लिये अवाय और अपाय यह दोनों प्रकार का पाठ शुद्ध है ॥ और यह भी स्मरण रहै कि जिस पदार्थ को जाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा जाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं इस लिये यहां विषयी शब्दसे इन्द्रियों का ग्रहण है और विषय का अर्थ षट् पद आदिक है ॥

विशेषनिर्ज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवायः उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिभिर्बलाकैवेयं न पताकेति ॥ अथैतस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारणं धारणा । यथा-सैवेयं बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्यासक्रमः उत्पत्तिक्रमतः कृतः ॥

विशेष-निर्ज्ञानात् ;॥॥
याथात्म्य-अवगमनम् ;॥॥ अवायः ;।
उत्पतन-निपतन-पक्षविक्षेप-आदिभिः ;।
बलाका ;॥ एव* इयम् ;॥ न* पताका ;॥ इति*
अथ* एतस्य ;॥॥ काल-अन्तरे* अविस्मरण-
कारणम् ;॥॥ धारणा ;॥

=(ईहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
=वास्तविक वा ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान सो अवाय है ।
=ऊंचा चढ़ना (=उत्पतन) नीचे आवना (=निपतन) पंख फैंकना हिलावना आदिसे
=बगुलोंकी पांतीही (=एव) यह है पताका नहीं है ॥
=उपरान्त, पश्चात् वा पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका
=कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा दृढ़
ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देवै सो धारणा है

यथा* सा ;॥ एव* इयम् ;॥ बलाका ;॥ याम् ;॥
पूर्व-अह्ण ;॥॥ अहम् ; अद्राक्षम् T इति*
एषाम् ;। अवग्रह-आदीनाम् ;। उपन्यास-क्रमः ;।
उत्पत्ति-क्रमतः* कृतः ;।

=जैसे वो (=सा) ही (=एव) यह (=इयम्) बक पंक्ति है जिसको (=याम् ;॥)
=प्रातःकालमें वा प्रभातमें मैंने देखा था । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है) ॥
=इन अवग्रह आदिकोंका कहनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
=उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं
उसी उसी क्रमसे ये जीव के उत्पन्न होते हैं ॥ इस सबका भावार्थ यह है कि

जो वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों के संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार दर्शन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । तिस के पीछे उक्त वस्तुमें विशेष बहुत हैं उन विशेषोंमें से किसी एक विशेषरूप जाननेकी अभिलाषारूप जो ज्ञान प्रवर्तता है जो यह अमुक विशेष होना चाहिये तिसको ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विशेषकी क्रिया चिन्ह देखकर यह निश्चय हुआ कि जो यह अभिलाषामें ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान दृढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं भूले उस को धारणा कहिये ॥ (१) अवाय वा अपायके संबन्ध में देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ३६७॥

उक्तानामवग्रहादीनां प्रभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह ॥

बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् ¦। अवग्रह-आदीनाम् ‖। प्रभेद-प्रतिपति-अर्थम् ‖॥ आह T — =वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष भेदोंकी =प्राप्ति (=प्रतिपत्ति-यह अर्थ पं० जयचंदजीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— बहु बहुविधं क्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः— बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुवाणाम् सेतराणाम्

(अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा भवन्ति एकशः एते इन्द्रिय-अनिन्द्रियैः प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते) ॥

(१) इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों में एक अर्थ है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि " बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ अर्थात् निसृत के स्थान में " निश्रित " है S ऐसे दो स्थानों में भिन्न नहीं है शेष पाठ एक है।

(२) अधिकतम पाठों में हमारे यहां S ऐसा चिन्ह नहीं है। यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि 'क्षिप्रा' और "अनिसृता" में से केवल लघु अकार ग्रहण किया है॥ (देखो पृष्ठ ३५०)

(३) विसर्ग के पश्चात् श्-ष् अथवा स् आवे तो इस विसर्गका विसर्गही बना रहता है अथवा यह विसर्ग श्-ष्-स् में यथासंख्य परिवर्तन होजाता है अतः हमारे यहां कहीं कहीं 'निः सृत' पाठ है और कहीं कहीं 'निस्सृत' भी पाठ है ॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ४८ में भी यही नियम दिया है)

(४) किसी किसी प्रति में हमारे यहां 'सेतराणां' भी पाठ है वह आयुत पाणिनि-शाकटायन और जैनेन्द्र प्रक्रिया के रचयिता के मतानुसार अशुद्ध है परन्तु कातंत्ररूपमाला व्याकरण के अनुसार शुद्ध है जैसा कि हम इस पुस्तक के आरम्भ में सिद्ध कर चुके हैं॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)

(५) यहां छहो बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुव शब्दों में षष्ठी विभक्ति है सो द्वन्द समासके होनेसे अंतके शब्द ध्रुव में और उनके प्रतिपक्षीवाचक शब्द में लगाई गई है अर्थात् बहुका, बहुविधिका, क्षिप्रका, अनिःसृतका, अनुक्तका, ध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय-और धारणा होता) है और इनके प्रतिपक्षीयों अल्पका-अल्पविधका-अक्षिप्रका-निःसृतका-उक्तका-अध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा होता है) ॥ इस सूत्रमें 'बहु' शब्द (१) संख्या, गणना वा गिनती के अर्थ में है जैसे एक-दो-तीन-चार-पांच-छह इत्यादि बहुत ये तो संख्या हुई दूसरे विपुल अथवा समूहपना के अर्थमें आया है जैसे भात बहुत है दाल बहुत है यहां विपुलताही कहीं। सूत्रमें बहु शब्द दोनों अर्थों में है॥

(६) बहुविधः = बहुत प्रकार (के पदार्थों) का, अनेक प्रकार (की वस्तुओं) का, नानाभांति (की द्रव्यों) का जैसे सेनामें हस्ती, घोड़े, ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला बहुविध है॥

बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त (=अन्-उक्त)-ध्रुवाणाम् ॥ स-इतराणाम् ॥

=(१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना भांति के (पदार्थों) का, =(३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थ) का (=क्षिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थ) का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का =(५) बिना कहे हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का वा वचनसे सुने बिना (अभिप्राय में ही पदार्थ) का =(६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक जितनाका तितना निश्चलरूप (पदार्थों) का =इन छहोंसे विरुद्धोंके प्रतिपक्षीयोंके वा विपरीतों के सहित अर्थात् (७) एक पदार्थका वा अल्प (पदार्थ) का (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अक्षिप्रका वा मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निःसृत का वा समस्त बाह्य निकले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, वा शब्द सुनकरि के (पदार्थ) का (१२) अध्रुवका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने वाले (बिजली सदृश) का-इन बारहों में से—

एकशः॰॰अवग्रह-ईहा-अवाय--प्रत्येकके वा भिन्न भिन्नके वा पृथक् पृथकके (उक्त बारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाय (=अवाय) धारणाः ॥ भवन्ति T एते ॥ =और धारण होते हैं और (इन अड़तालीस में से)

प्रत्येकं ॥ इन्द्रिय-अनिन्द्रियैः ॥॥=प्रत्येक स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र- और ईषद् इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा

प्रादुर्भाव्यन्ते T =(समुच्चय होकर दोसो अठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जाते हैं कि

(१) स्पार्शन (अथवा स्पर्शनइन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(२) स्पार्शन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(४) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान(५) स्पार्शन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६) स्पार्शन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(८) स्पार्शन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९ स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१०) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१२) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान॥

(१३) रासन बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१४) रासन अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१५) रासन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१६) रासन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१७) रासन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (१८) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२०) रासन निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२२) रासन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२४) रासन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२६) घ्राणज अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (२८) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३०) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३१) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३२) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३४) घ्राणज उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३६) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) चाक्षुष बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३८) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४०) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४२) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४४) चाक्षुष निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४६) चाक्षुष उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (४८) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

) तेरह भेदसे चौबीस भेद तक 'रासन' शब्दके स्थानमें 'रसनेन्द्रिय जन्य (बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान) ऐसा भी वाक्य लासके है इसी
पचीस भेदसे छत्तीस तक और सैंतीससे अड़तालीस तक 'घ्राण.ज' के स्थानमें घ्राणेन्द्रिय जन्य और 'चाक्षुष'के स्थानमें चक्षुरिन्द्रिय जन्य लासके है॥

(४९) श्रावण बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५०) श्रावण अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५१) श्रावण बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५२) श्रावण अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५३) श्रावण क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५५) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५६) श्रावण निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५७) श्रावण अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५८) श्रावण उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६१) मानस बहुपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६२) मानस अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६३) मानस बहुविधपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६४) मानस अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६५) मानस क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६६) मानस अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६७) मानस अनिस्सृतपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (६८) मानस निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६९) मानस अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूपमतिज्ञान (७०) मानस उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७२) मानस अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(७३) स्पार्शन बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७४) स्पार्शन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७५) स्पार्शन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७६) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७७) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (७८) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७९) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८०) स्पार्शन निसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८१) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८२) स्पार्शन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८३) स्पार्शनध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८४) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१) अवग्रह के ७२ भेदों में अर्थावग्रहसे तात्पर्य्य रक्खा है क्योंकि अवग्रह ज्ञान व्यक्त पदार्थ और व्यंजन (अव्यक्त) पदार्थ दोनोंका होता है। ईहा ज्ञान, अवायज्ञान, धारणा ज्ञान ये व्यक्त पदार्थके ही होते हैं व्यंजन पदार्थके नहीं होते हैं इसलिये अवग्रह ज्ञानकेही अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह ऐसे दो भेद होते हैं अन्यके नहीं॥ तिसपर भी स्मरण रहे कि व्यंजनका अवग्रह नेत्र और मनके पदार्थ से भिन्न न होनेके हेतु से केवलचार इन्द्रियो द्वारा होता है॥

(८५) रासन बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८६) रासन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८७) रासन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८९) रासन क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९०) रासन अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९१) रासन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९२) रासन निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९४) रासन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९५) रासन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९६) रासन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०१) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०२) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०३) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०४) घ्राणज निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०७) घ्राणज ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०८) घ्राणज अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१०९) चाक्षुष बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११०) चाक्षुष अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१११) चाक्षुष बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११२) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११३) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११४) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११५) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११६) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११७) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११७) चाक्षुष उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११९) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२०) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१२१) श्रावण बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२२) श्रावण अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान।
(१२३) श्रावण बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२४) श्रावण अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान।
(१२५) श्रावण क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२६) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२७) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२८) श्रावण निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२९) श्रावण अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३०) श्रावण उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३१) श्रावण ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३२) श्रावण अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

---

(१३३) मानस बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३४) मानस अल्पपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३५) मानस बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३६) मानस अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३७) मानस क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१३८) मानस अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३९) मानस अनिस्सृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४०) मानस निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४१) मानस अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४२) मानस उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४३) मानस ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१४४) मानस अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

---

(१४५) स्पार्शन बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१४६) स्पार्शन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४७) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१४८) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४९) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५०) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५१) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५२) स्पार्शन निस्सृतपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५३) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५४) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५५) स्पार्शनध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५६) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(१) "श्रावण" शब्द और मानस शब्दके स्थानमें घ्राणेन्द्रिय जन्य और मनोजन्य क्रमसे ऊपरके उदाहरणों में लासक्ते हैं॥

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६१) रासन क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६२) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६४) रासन निःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६५) रासन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६७) रासन ध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६८) रासन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१६९) घ्राणज बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७०) घ्राणज अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७१) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७२) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७३) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७४) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७५) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७६) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७७) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७८) घ्राणज उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७९) घ्राणज ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८०) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१८१) चाक्षुष बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८२) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञात (१८४) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८६) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८८) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९०) चक्षुष उक्तपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९२) चाक्षुष अध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१९३) श्रावणबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९४) श्रावणअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९५) श्रावणबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९६) श्रावणअल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९७) श्रावणक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९८) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९९) श्रावणअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२००) श्रावणानिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०१) श्रावणअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०२) श्रावणउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०३) श्रावणध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०४) श्रावणअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२०५) मानसबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०६) मानसअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०७) मानसबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०८) मानस अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०९) मानसक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१०) मानसअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२११) मानसअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१३) मानसअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१४) मानसउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१५) मानसध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१६) मानसअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२१७) स्पार्शनबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१८) स्पार्शनअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) स्पार्शनबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२० स्पार्शनअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) स्पार्शनक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२२) स्पार्शनअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२४) स्पार्शननिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२६) स्पार्शनउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) स्पार्शनध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२८) स्पार्शनअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२२९) रासन बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३०) रासन अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३१) रासन बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३२) रासन अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३३) रासन क्षिप्र पदार्थकाधारणारूप मतिज्ञान (२३४) रासन अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३५) रासन अनिस्सृत पदार्थकाधारणारूपमतिज्ञान (२३६) रासन निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३७) रासन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३८) रासन उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३९) रासन ध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४०) रासन अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२४१) घ्राणज बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४२) घ्राणज अल्प पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२४३) घ्राणज बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४४) घ्राणज अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४५) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४६) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४७) घ्राणज अनिस्सृतपदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२४८) घ्राणज निःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४९) घ्राणज अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५०) घ्राणज उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५१) घ्राणज ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५२) घ्राणज अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२५३) चाक्षुष बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५४) चाक्षुष अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५५) चाक्षुष बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५६) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५७) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५८) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५९) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६०) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६१) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६२) चाक्षुष उक्तपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६३) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६४) चाक्षुष अध्रुवपदार्थका धारणरूप मतिज्ञान

(२६५) श्रावणबहु पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२६६) श्रावणअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६७) श्रावणबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६८) श्रावणअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६९) श्रावणक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७०) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७१) श्रावणअनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७२) श्रावणनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७३) श्रावणअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७४) श्रावणउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७५) श्रावणध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७६) श्रावणअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७७) मानसबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२७८) मानसअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७९) मानसबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८०) मानस अल्पविध पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२८१) मानसक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८२) मानसअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८३) मानसअनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८४) मानसनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८५) मानसअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८६) मानसउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८७) मानसध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२८८) मानसअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (सोलहवां) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद

प्रकृताः ;। अवग्रह- =अधिकृत वा अधिकार में लाये गये अथवा पूर्वकथित अवग्रह
आदयः ;। क्रिया-विशेषाः ;। =ईहा-अवाय तथा धारणा (जानना रूप अथवा ज्ञानरूप) क्रिया के विशेष वा भेद हैं ।
तद्-अपेक्षः ;। अयम् ;। =उन (ज्ञानरूप क्रियाओं) की अपेक्षारूप यहां (=अयम् वा इस सूत्र में)
कर्म-निर्देशः ;। बहु- =(षष्ठी विभक्तिकरि) कर्मका निर्देश अथवा उपदेश किया गया है (अर्थात्) बहु
आदीनां ;। स-इतराणां ;। =आदिकोंका तथा इनसे उलटोंका (अवग्रहरूपजानना-ईहारूपजानना-अवायरूपजानना-धारणारूपजानना होता है
इति॥ =इस प्रकार (षष्ठी विभक्तिकरि कर्मका निर्देश वा उपदेश किया गया) है

(१) अयम् शब्द इदम्की प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग है। और इदम् शब्दके दो अर्थ "यह-यहां" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६६में किये हैं। इसने अयमको यहां के अर्थ में लिया है

बहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । संख्यावाची यथा--एकः द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा--बहुरोदनो बहुः सूप इति । विधशब्दः प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम् । अनिःसृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्

बहु शब्दस्य ;। संख्या-वैपुल्य-वाचिनः ;। =बहु शब्दका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्)
अविशेषात् ;। ग्रहणम् ;॥ =अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) में भेद नहीं माना है सामान्य रूप से संख्या तथा ढेर अर्थों में बहु शब्द को ग्रहण है।

संख्यावाची ;। यथा※ एकः ;। द्वौ ;। बहवः ;। इति※ =गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार हैं
वैपुल्यवाची ;। यथा※ बहुः ;। ओदनः ;। बहुः ;। =समूह वाचक जैसे अधिक भात बहुत
सूपः ;। इति※ । विधशब्दः ;। प्रकारवाची: ;। =दाल (=सूप) ऐसे है ।। विध शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है
(जैसे हस्ती-ऊंट, घोडा, बैल, गाय, बकरी, बन्दर इत्यादि अनेक जाति का ग्रहण करने वाला बहुविध अवग्रह, बहुविध ईहा, बहुविध अवाय, बहुविध धारणा है)

क्षिप्र-ग्रहणम् ;॥। अचिर-प्रतिपति-अर्थम् ;॥। =(सूत्रमें) क्षिप्र (शब्द) का लाना शीघ्रता (=अचिर) के प्राप्ति के लिये है
अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो क्षिप्र ग्रहण है

अनिःसृत-ग्रहणम् ;॥। असकल-पुद्गल-उद्गम-अर्थम् ;॥। =(सूत्र में) अनिस्सृत (शब्द) का ग्रहण असमस्त पुद्गल वा असमस्त शरीर के प्रगटके =लिये है अर्थात् समस्त वस्तु बाह्य प्रगट नहीं निकली हो
जैसे जलमें डूबे हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से संपूर्ण पदार्थका अवग्रह रूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो अनिःसृत ग्रहण है ॥

बहूनामनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम् । ध्रुवं निरन्तरं यथार्थग्रहणम् । सेतरग्रहणं प्रतिपक्षसंग्रहार्थं ॥ बहूनामवग्रहः । अल्पस्यावग्रहः । बहुविधस्यावग्रहः । एकविधस्यावग्रहः

बहूनाम् ;। अभिप्रायेण ;। ग्रहणम् ;॥।	=बहुतों का (बिना कहे हुये) अभिप्राय अथवा प्रयोजन से ग्रहण सो
अन्-उक्तम् ;॥।	=अनुक्त है अर्थात् वचन से सुने बिनाही अभिप्राय से जान लेना अनुक्त (ग्रहण) है
निरन्तरम् ;॥। यथार्थ* ग्रहणम् ;॥। ध्रुवम् ;॥।	=अंतर वा लगातार जैसा का तैसा (=यथार्थ-ठीक ठीक पदार्थ का) ग्रहण ध्रुव है अर्थात् निरन्तर पदार्थ के सत्य स्वरूप का निश्चलरूप से ज्ञान होते रहना सो ध्रुव ग्रहण है
स-इतरग्रहणम् ;॥।	=(इस सूत्रमें) सेतर (वाक्य) का ग्रहण (इन बहु-बहुविध आदिक के)
प्रतिपक्ष-संग्रह-अर्थम् ;॥।	=प्रतिपक्षियों के वा विरुद्धों के संचये के लिये है (अर्थात्)
बहूनाम् ;। अवग्रहः ;। अल्पस्य ;। अवग्रहः ;।	=बहुत (पदार्थ) निका अवग्रह और थोड़े (पदार्थ) निका अवग्रह
बहु-विधस्य ;। अवग्रहः ;।	=बहुविध वा अनेक प्रकार के (पदार्थ) निका अवग्रह (और)
एक विधस्य ;। अवग्रहः ;।	=एकविध अथवा एक भांति के (पदार्थ) निका अवग्रह

(१) बहुबेक विधयोरविशेष इति न मन्तव्यम् । बहुविधावग्रह इत्यत्र बहुत्व संख्याया मुख्यतया ग्रहण एक विधस्यावग्रह इत्यर्थः ।

बहु एकविधयोः ;। अविशेषः ;। इति न मन्तव्यम् ;॥।	=बहु विध (और) एक विध में भेद नहीं है ऐसा न समझना चाहिये (दोनों में भेद है)
बहूनाम् ;। अवग्रहः ;। इति अत्र बहुत्व-संख्यायाः ;।	=बहुतों का अवग्रह ऐसा यहां बहुत्व गणना की
मुख्यतया ;। ग्रहणेन ;। एक-विधस्य ;। अवग्रहः ;।	=प्रधानता से ग्रहण करि एक प्रकार की (वस्तुका) अवग्रह है
इतिश्च अर्थः ;।	=ऐसा अर्थ है । जैसे पशुओं में हाथी-घोड़ा-ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक प्रकार के हैं इनका ग्रहण सो बहुविध वा अनेक प्रकार ग्रहण है और इनमेंसे हाथी वा घोड़ा वा ऊंट वा बैल वा भैंसा एक जाति के पशु हीं का ग्रहण सो एकविध अवग्रहादि है अथवा इस

क्षिप्रमवग्रहः । चिरेणावग्रहः । अनिःसृतस्यावग्रहः । निःसृतस्यावग्रहः । अनुक्तस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रहः । ध्रुवस्यावग्रहः । अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियद्वारैर्मनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

क्षिप्रम् ।॥। अवग्रहः ।।
=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होजाना

चिरेण * अवग्रहः ।।
=देरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात् वस्तुका धीरे धीरे बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)

अनिःसृतस्य।। अवग्रहः।। निःसृतस्य।। अवग्रहः।।
=सर्व प्रगट न हो ताका अवग्रह, बाह्य निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह

अन्-उक्तस्य।। अवग्रहः।। उक्तस्य।। अवग्रहः।।
=विना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह

ध्रुवस्य।। अवग्रहः।। च* अध्रुवस्य।। अवग्रहः।।
=ध्रुवका अवग्रह और (=च) अध्रुवका अवग्रह वा अध्रुवका ग्रहण

इति* अवग्रहः ।। द्वादशविकल्पः ।। एवम्* ईहा ।।। आदयः ।। अपि*
=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है। (और) इस भांति (=एवम्) =ईहा अवाय-धारणा (=आदयः) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) हैं अर्थात् सब मिलकर अड़तालीस भेद हुये

ते ।। एते ।।
=वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, धारणा छत्तीस प्रकार में से)

प्रत्येकम्।।।पञ्चभिः।।।इन्द्रियद्वारैः।।।मनसा।।। च*
=प्रत्येक पांच इन्द्रियों द्वाराकरि और (=च) मनसे

प्रादुर्भाव्यन्ते T
=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा प्रत्येक के बारह बारह भेद हैं सो इन अड़तालीस भेदों को पांच और छठा मन पर लगाने से सब दोसौ अठासी भेद हुये

दृष्टान्त वा उदाहरण को यों भी ले सक्ते हैं कि बहुत गायों में काली-श्वेत-कायरी-खांडी-मुंडी अनेक प्रकार की हैं बहुविध तो इन गायों में से नाना प्रकारकी गायों का ग्राही है और एकविध केवल एक वर्णकी गायका ग्रहण करने वाला है ॥ एक विध और बहुविध में यही भेद वा अन्तर है ॥

तत्र बहुबग्रहादयः मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति । नेतर इति । तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते ॥ बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति ।

तत्र* बहु-अवग्रह-आदयः ;।
मतिज्ञान-आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात् ;
प्रभवन्ति T इतरे ;।
न* इति*

=वहाँ (सूत्रमें) बहु अवग्रह आदि (=बहु-विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे
=उपजें हैं। अन्य वा अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से
नहीं होते हैं वरन थोडे क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छै पीछे कहे गये हैं

तेषाम् ; अभ्यर्हितत्वात् ;॥
आदौ ;। ग्रहणम् ;॥ क्रियते T बहु-बहुविधयोः ;।
कः ;। प्रतिविशेषः ;। यावता ;। बहुषु ;।
बहुविधेषु ;। अपि* बहुत्वम् ;॥ अस्ति T

=तिन (बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिस्सृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
=आदि में वा प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है। (प्रश्न) बहु और बहुविध में
=क्या भेद वा अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) बहु में और
=बहुविध में भी (=अपि) बहुतपना है

---

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते ॥

आदि-शब्देन ;। बहुविध-अवग्रह-आदयः ;। =आदि शब्दसे बहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह, अनिःसृतअवग्रह, अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह
गृह्यन्ते T =ग्रहण किये गये हैं

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता ऽबहुबग्रहादयः ॥

सूत्रे ;॥ इतरशब्द-गृहीताः ;। अबहु-अवग्रह- =इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे लिये गये हैं अबहु अवग्रह
आदयः ;। =आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (वा अबहुअवग्रह) अनेकविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह,
निःसृतअवग्रह, उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह ॥

एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेषः ॥ उक्तनिःसृतयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता सकलनिःसरणान्निःसृतम् । उक्तमप्येवंविधमेव ॥ अयमस्ति विशेषः—अन्योपदेशपूर्वकं ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहणं निःसृतम् ॥ अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एवं वर्णयन्ति—श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य वा कुररस्येति कश्चित्प्रतिपद्यते । अपरः स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकार-नाना प्रकार कृतः ;। विशेषः ;।
उक्त-निःसृतयोः ;। कः ;। प्रतिविशेषः ;।
यावता* सकलनिःसरणात् ;।।। निःसृतम् ;।।।
उक्तम् ;।।। अपि* एवम्* विधम् ;।।। एव*
अयम् ;। अस्ति T विशेषः ;। अन्य-उपदेश-
पूर्वकम् ;।।। ग्रहणम् ;।।। उक्तम् ;।।। स्वतस्* एव*
ग्रहणम् ;।।। निःसृतम् ;।।। अपरेषाम् ;। क्षिप्र-
निःसृतः ;। इति* पाठः ;।

ते ;। एवम्* वर्णयन्ति T श्रोत्र-इन्द्रियेण ;।।।
शब्दम् ;। अवगृह्यमाणं ;। मयूरस्य ;। वा कुररस्य ;। वा*
इति* कश्चित* प्रतिपद्यते T
अपरः ;। स्वरूपम् ;।।। एव* अनिःसृतः ;। इति*

=एक प्रकार अनेक प्रकार से किया हुआ भेद अथवा अंतर है
=उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविशेष) है
=ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है
=उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटता है
=(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह भेद है कि दूसरे के उपदेश
=निमित्तक ग्रहण सो उक्त है । अपनेआप (=स्वतस्) ही
=ग्रहण सो निःसृत है । अन्य वा दूसरे (आचार्य) निका क्षिप्र
=निसृत पाठ है अर्थात् सोलहवां सूत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के
स्थानमें क्षिप्रनिःसृत पढते हैं अतः निःसृत शब्द पहले छै शब्दों में आता है
=वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से
=अवग्रह किया हुआ शब्द मोरका वा कुरचि (कुरर-कूंज) पक्षीका (शब्द) है
=ऐसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)
=दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें जब प्रथम छै शब्दोंमें निःसृत माना तब उससे
भिन्न अथवा उलटा शब्द अनिःसृत सोलहवां सूत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होवेगा

ध्रुवावग्रहस्य धारणायाश्च कः प्रतिविशेषः ? उच्यते । क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्तात्क्षयोपशमात्प्रथमसमये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु नोनाभ्याधिक इति ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ यदा पुनर्विशुद्धपरिणामस्य संक्लेशपरिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत उत्पद्यमानोऽवग्रहः कदाचिद्बहूनां कदाचिदल्पस्य कदाचिद्बहुविधस्य कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिक भावात् ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ धारणा पुनर्गृहीतार्थाविस्मरणकारणमिति महदनयोरन्तरम् ॥

ध्रुवअवग्रहस्य ;। च* धारणायाः ;॥ कः ;। =ध्रुव अवग्रहके और (=च) धारणाके क्या
प्रतिविशेषः ;। उच्यते T क्षयोपशम प्राप्तिकाले ;। =भेद अथवा अन्तर कहा गया है । क्षयोपशमके लाभ कालमें
विशुद्धपरिणामसन्तत्या ;॥ क्षयोपशमात् ;। =विशुद्ध स्वभावके विस्तार वा सन्तानकरि क्षयोपशमकी
प्राप्तात् ;। प्रथमसमये ;। यथा* अवग्रहः ;। =लब्धि से पहिले समय में जैसा अवग्रह है
तथा* एव* द्वितीयादिषु ;। समयेषु ;। अपि* =तैसा ही दूसरे आदिक समयों में भी (होय)
न* ऊनः ;। न* अभ्यधिकः ;। इति* =न हीन (होय) न अधिक (होय)
ध्रुव-अवग्रहः ;। इति* उच्यते T यदा* पुनर्* =ध्रुव अवग्रह ऐसा कहा गया है । और (=पुनः) जब
विशुद्धपरिणामस्य ;। च* संक्लेशपरिणामस्य ;। =विशुद्ध परिमाणका और (=च) संक्लेश परिमाणका
मिश्रणात् ;। क्षयोपशमः ;। भवति T ततः* =मिलाप होने से वा संयोग से क्षयोपशम होता है । वहां से
उत्पद्यमानः ;। अवग्रहः ;। कदाचिद्* बहूनाम् ;। =उत्पन्न होनेवाला अवग्रह कभी (=कदाचित) बहुतों का
कदाचिद्* अल्पस्य ;। कदाचिद्* बहुविधस्य ;। =कभी थोडों का कभी बहु प्रकार का
वा* कदाचिद्* एकविधस्य ;। इति* न्यून- =अथवा (=वा) कभी एक प्रकार का ऐसे हीन
अधिकभावात् ;। अध्रुव-अवग्रहः ;। इति* उच्यते T =अधिकपना से (=अधिकभावात्) अध्रुवअवग्रह इस प्रकार कहा गया है
धारणा ;। पुनः * गृहीत-अर्थ-अविस्मरण-कारणम्- =पुनि धारणा ग्रहण किये हुये पदार्थका न भूलनेका हेतु (रूपज्ञान) है
इति* अनयोः ;। महत् ;॥ अन्तरम् ;॥ =इस प्रकार इन दोनों (ध्रु। अवग्रह और धारणा) में बडा भेद है ॥

पश्चवग्रहादयो बह्वादीनां कर्मणामाक्षेप्तारः, बह्वादीनि पुनर्विशेषणानि कस्येत्यत आह--

॥ अर्थस्य ॥ १७ ॥

भावार्थ क्षयोपशमकी प्राप्तिके कालविषैं शुद्ध परिणामके संतानकरि पाया जो क्षयोपशम तातैं पहले समय जैसा अवग्रह भया तैसाही द्वितियादिक समयनिविषैं होय है किछु कम भी नाहीं होय अरु अधिक भी नाहीं होय है ताकूं तौ ध्रुवावग्रह कहिये । बहुरि धारणा है जो जा पदार्थकूं ग्रह्या ताकूं नाहीं भूलनेका कारण रूपज्ञान है।" ऐसे ध्रुवावग्रह और धारणा में बड़ा अन्तर वा भेद है ॥ प० जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५१, १५२

यदि* अवग्रह-आदयः ;। बहु-आदीनाम् ;। =जो अवग्रह ईहा-अवाय-धारणा (=आदयः) बहु आदिक (बारह)
कर्मणाम् ;॥ आक्षेप्तारः ;। पुनर्*बहु-आदीनि ;॥ =कर्मोंके ग्रहण करने वाले हैं फिर (=पुनः) बहु आदिक (बारह)
कस्य ;। विशेषणानि ;॥ इति* अतः* आह T =किसके विशेषण हैं । ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अर्थस्य ॥ १७ ॥ =अवग्रहादयो मतिज्ञान विकल्पाः अर्थस्य भवन्ति

अवग्रह-आदयः ;। मतिज्ञान- =अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, (=आदयः) जो (पूर्वोक्त २८८) मतिज्ञान के
विकल्पाः ;। अर्थस्य ;। भवन्ति T =भेद हैं सो अर्थ, पदार्थ, द्रव्य वा वस्तु के होते हैं भावार्थ

ये बहु, अल्प, बहुविध, अल्पविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, और ध्रुव-अध्रुव बारह हैं ते द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थके विशेषण हैं और अर्थ (पदार्थ-वस्तु-द्रव्य) इन बहु आदिकका विशेष्य है और अवग्रह, ईहा, अवाय-धारणा बहु आदिक (बारह) कर्मोंके ग्रहण करने वाले हैं जैसे अल्प पदार्थका अवग्रह बहु-वस्तु वा पदार्थका अवग्रह इत्यादि अवग्रहके बारह; अल्प पदार्थ का ईहा, बहु पदार्थका ईहा इत्यादि ईहा के बारह; बहुद्रव्य वा अर्थका अवाय, अल्प अर्थ वा पदार्थका अवाय ऐसे अवायके बारह; इसी प्रकार बहुवस्तुका धारणा अल्प वस्तु वा अर्थ का धारणा इत्यादि बारह, ऐसे ४८ हुये पांच इन्द्रिय और छठे

दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है

चक्षुरादिविषयोऽर्थः। तस्य बह्वादिविशेषणविशिष्टस्य अवग्रहादयो भवन्तीत्यभिसम्बन्धः क्रियते॥ किमर्थमिदमुच्यते यावता बह्वादिरर्थ एव? सत्यमेव किन्तु प्रधानादिपरिकल्पनानिवृत्यर्थम्।

मनपर प्रत्येक ४८ भेदको लगाने से सर्व २८८ हुये (देखो पृष्ठ ३७०-३७८)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सत्रहवां सत्रपर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः भाषानुवाद

चक्षुः आदि-विषयः ;	= नेत्रादिक इन्द्रियोंका विषय वा नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहण होनेवाला (सो)
अर्थः ;। तस्य ; बहु-आदि-विशेषण-	= अर्थ है। तिस (अर्थ) के बहु आदिक (बारह) विशेषण हैं।
विशिष्टस्य ; अवग्रह-	= (उपर्युक्त अर्थ) विशेष्य के (= विशिष्टस्य) अवग्रह
आदयः ;। भवन्ति। इति॰ अभिसम्बन्धः ;।	= ईहा अवाय-धारणा (= आदयः) होते हैं। ऐसे संबंध (अर्थ और अवग्रह आदि में)
क्रियते।	= किया गया है अर्थात् द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थ के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ज्ञान होते हैं। ऐसा अभिसंबंध 'अर्थ' और अवग्रह आदिका आपसमें है।
यावता ;। बहु-आदिः ;। अर्थः ;।	= (प्रश्न) जब (= यावता) बहुआदि (बारह) अर्थ वा वस्तु
एव॰किम् ;॥। अर्थम ;॥। इदम ;॥। उच्यते। सत्यम्-;।	= ही (= एव) हैं तो किसलिये यह (सूत्र) कहागया है। (उत्तर) सत्य वा ठीक
एव॰किन्तु॰ प्रधानादि-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ;॥।	= ही (तुम्हारा कहना) है परन्तु अन्य वादियोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

(१) तस्य बह्वादि विशेषण विशिष्टस्य = तस्य बहु-आदि-विशेषणेन विशिष्टस्य यहां ॥ विशेषण शब्द करण तृतीया विभक्तिमें है समासके कारण करण विभक्तिका लोप है। अतः वाक्य का क्रम ऐसे है कि 'तस्य विशिष्टस्य बहु आदि विशेषणेन अवग्रह आदय भवन्ति।

तस्य ; विशिष्टस्य ;। बहु-आदि विशेषणेन ;॥। अवग्रह-आदयः ;। भवन्ति। = विशेषणकरि वा गुणवाचककरि अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा (ज्ञान) होते हैं।

अर्थस्येत्युच्यते । केचित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते तेषामेव ग्रहणमिति । तदयुक्तम् । नहि ते रूपादयो गुणा अमूर्ता इन्द्रियैः सन्निकर्षमापद्यन्ते । न तर्हि इदानीमिदं भवति रूपं मया दृष्टं, गन्धो वा घ्रात इति भवति कथम् ।

अर्थस्य ;। इति॰ उच्यते। । केचित॰ प्रवादिनः ;। = 'अर्थस्य' ऐसा (सूत्र) कहा गया है । (क्योंकि) कोई (= केचित्) अन्यवादी
मन्यन्ते। रूप-आदयः ;। गुणाः ;। एव॰ इन्द्रियैः ;॥। = मानते हैं (कि) रूपादिक गुण ही इन्द्रियोंकरि
सन्निकृष्यन्ते। तेषाम् ;। एव॰ = स्पर्श जाते हैं वा ग्रहण किये जाते हैं (= सन्निकृष्यन्ते)। तिन (रूपादिक गुणों)का ही
ग्रहणम् ;॥। = अवग्रह होता है (ग्रहणम्) (नकि द्रव्योंका अवग्रह इन्द्रियों से होय है) ॥
इति॰ तद् ;॥। अयुक्तम् ;॥। = ऐसी (कल्पना) है वह ठीक नहीं है । अर्थात् ऐसा मानना कि इन्द्रियों द्वारा
रूपादिक गुणोंका ही ग्रहण होता है द्रव्यका ग्रहण नहीं होता है ठीक नहीं है ।
उक्त कल्पनाके निषेध के लिये यह सूत्र कहा है ।
रूप-आदयः ;। गुणाः ;। अमूर्ताः ;। = (क्योंकि परमतकी अपेक्षासे) रूपादिक गुण अमूर्तिक (आकार रहित) हैं ।
ते ;।इन्द्रियैः ;॥। सन्निकर्षम्;। न॰ हि॰ आपद्यन्ते। = वे (रूपादिक गुण जैन मतानुसार) इन्द्रियोंकरि सन्निकर्ष वा स्पर्शको नहीं प्राप्त होतेहैं ।
तर्हि॰ इदानीम्॰ = (अन्यवादी फिर प्रश्न करता है कि) तौ (= तर्हि) इस समय
इदम्;॥। न॰ भवति। रूपम् ;॥। मया;। दृष्टम्;॥। = यह (कथन) नहीं बनता है कि रूप मुझसे देखा गया
गन्धः ;। वा॰ घ्रातः ;। इति॰ भवति। कथम्॰ = वा गंध मुझसे सूंघा गया । ऐसा कैसे (प्रतीति) होगा [शब्दशः होता है] अर्थात्
वादी कहता है कि यदि आप रूपादिक गुणका इन्द्रियोंके साथ संबंध न मानेंगे तो
(मैंने रूप देखा और मैंने गंध सूंघा यह प्रतीति न होगी ॥ (उत्तर)

---

(१) परमत-अपेक्षया ;॥। (परमतापेक्षया)

= अन्यमतकी अपेक्षासे । संस्कृतवृत्ति पृष्ठ ११४ की टिप्पणीके आधारपर अनुवाद में 'परमतकी अपेक्षासे' ऐसा वाक्य कोष्ठकमें अधिक लिखदिया है ॥

इयर्तिपर्यायांस्तैर्वाऽर्ज्यत इत्यर्थो द्रव्यं ।

पर्यायान्+इयर्ति[1] वा* तैः +। अर्ज्यते[2]	=जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (=वा) तिन (पर्यायों) करि (=तैः) जो प्राप्त किया जाता है।
इति* अर्थः +। द्रव्यम् +॥	=ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ वा वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है।

(१) इयर्ति—यह शब्द जुहोत्यादि तीसरे गणके ऋ (=जाना, गमन करना) धातुके प्रथम (अन्य) पुरुष कर्त्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है। यह रूप इस प्रकार बना है कि तृतीयगणके धातुओंके अंग बनानेमें धातु कुछ नियमोंके अनुकूल दोहराया जाता है। इस ऋ धातुमें "एकाचो द्वे प्रथमस्य" ६-१-१ अष्टाध्यायी॥ (धातुके) प्रथम एकाच (अवयव) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो तो उस स्वरको दुहरा देते हैं (जैसे ऋ धातु का स्वर दोहराने से ऋ ऋ ऐसा रूप बना) यदि धातुके प्रारंभमें व्यंजन हो तो प्रारंभिक व्यंजन सहित स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुष्=पोषना का पुपुष् रूप हो जाता है)॥ श्लु (जुहोत्यादि का विकरण) परे हो (पश्चात्में आवे) तो अर्ति और पिपर्ति धातुओंके अभ्यास को इ आदेश हो जाय अर्थात् ऋ ऋ रूपके प्रथम ऋ के स्थानमें इ होवे अतः ऋ ऋ=इ ऋ (७-४-७० अष्टाध्यायी)=इ य् ऋ (अभ्यासस्यासवर्णे=अभ्यासस्य-असवर्णे (ष्योःह्यङ्-उवङौ)=असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण और उवर्ण को ह्यङ् (=ह्य्) उवङ् (=उव्) आदेश हो॥६-४-७८ टिप्पणी पृष्ठ ५६से इस ऋ का गुण होकर इयर् ऐसा रूप हुआ इसमें प्रथम पुरुष कर्त्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रत्यय जोड़नेसे इयर्ति हुआ=इयर्ति।

(२) अर्यते—धातु शी (अदादि द्वितीयगण आत्मने पदी)=सोना-शयन करना)के ई स्वरके स्थानमें ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जिसके प्रारम्भमें य हो और धातु ऋ (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी=प्राप्त करना, आना) और जागृ (=जगना द्वितीयगण के) गुण होजाते हैं आत्मने पदका ते प्रत्यय कर्मणि प्रधानमें लगाया जाता है अतः शी द्वितीय गण आत्मनेपदी=शयते सुलाया जाता है जागृ=द्वितीयगण परस्मैपदी जागर्यते=जगाया जाता है (देखो धातु रूप चंद्रिका पृष्ठ ३६४) ऋ=अर् (गुण संज्ञा करनेसे) य कर्मणि प्रधान प्रत्यय लगानेसे अर्य हुआ पश्चात् ते प्रथम पुरुष कर्मणि प्रधान आत्मनेपदी एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका लगाने से अर्य+ते अर्यते प्राप्तकिया जाता है॥

तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि संव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः सर्वेस्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

सर्वार्थ-सिद्धि

३८६

तस्मिन् ;॥। इन्द्रियैः ;॥। सन्निकृष्यमाणे ;। रूपादिषु ;। अपि* तद्-अव्यतिरेकात् ;। संव्यवहारः ;। युज्यते T

=तिस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में =भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकोंके) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार =प्रवर्तता है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप मैंने देखा वा गंध मैंने सूंघा इत्यादि

किम् ;॥। इमे ;। अवग्रह-आदयः ;। सर्वस्य ;। इन्द्रिय-अनिन्द्रियस्य ;॥ भवन्ति T उत* कश्चित् * विषय-विशेषः ;। अस्ति T इति* अतः* आह T

=(प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (=आदय) सब =इन्द्रियों (तथा) मनके होते हैं अथवा (=उत) कोई (=कश्चित्) =विषयका भेद वा अन्तर है ? ऐसा (पूछने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ =व्यञ्जनस्यावग्रहः (एव भवति नेहादयः)

व्यञ्जनस्य ;॥ अवग्रहः ;॥। एव* भवति T न ईहा-आदयः ;।

=अव्यक्त वा अप्रगट (जे शब्दादिक) पदार्थ है तिसका अवग्रहरूपज्ञान =ही (=एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त-प्रगट वस्तुओंके संबंध में दूसरा अव्यक्त वा अप्रगट वस्तुओंके संबंधमें परंतु ईहा-अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान केवल प्रकट वा व्यक्त पदार्थोंके संयोगमें होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होजाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होजाता है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

३८६

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२) व्यञ्जन = (i) चिन्ह (ii) दाढी (iii) चटणी-तेमन (iv) गुप्त अवयव (v) व्यञ्जन नामक वर्ण। देखो अमर कोश २३ वर्ग श्लोक ११६

व्यञ्जनमव्यक्तं शब्दादिजातं तस्यावग्रहो भवति। किमर्थमिदं? नियमार्थं, अवग्रह एव नेहादय इति।

अर्थावग्रह हो जाता है जैसे माटीके डेल अथवा नवीन भोलुआ-मटकना वा और कोई मिट्टीका नवीन भाजन लीजिये और उसमें जलके कण-बूंदें डालिये तहां दो तीन आदि कण तक सींचा हुआ गीला वा आला नहीं होता है तब तक अव्यक्त है तिसको व्यंजन कहिये और वही उक्त भाजन जब धीरे धीरे (मंद मंद) गीला हो जाय तब व्यक्त होता है। तैसे ही कर्ण आदिक इन्द्रियोंके अवग्रह में शब्दादिरूप परिणमें पुद्गलके सकन्ध दो तीन आदि समयोंमें ग्रहण हुये प्रकट ग्रहण नहीं होते हैं व्यक्त ग्रहण में नहीं आते हैं तब तक व्यंजनावग्रह है॥ पुनि पुनि उन पुद्गल स्कन्धोंके ग्रहण होनेपर प्रगट होते हैं तब अर्थावग्रह है इस प्रकार व्यक्त ग्रहणसे पूर्व पूर्व तो व्यंजनावग्रह है व्यक्त ग्रहण होने पर वही अर्थावग्रह है इसलिये अप्रगट वा अव्यक्तके ग्रहणमें अवग्रह ही होता है ईहा अवाय धारणा इन तीनोंमेंसे कोई भी नहीं होता है॥

॥ पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अठारहवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

व्यञ्जनम् ।॥। अव्यक्तम् ।॥। शब्द-आदि-जातम् ।॥। = व्यंजन अर्थात् अप्रगट शब्दादिकों का समूह है
तस्य ।॥। अवग्रहः ।। भवति। = तिस (व्यंजन) का अवग्रहरूप (ज्ञान) होता है
किम् ।॥। अर्थम् ।॥। इदम् ।॥। नियम-अर्थम् ।॥। = (प्रश्न) यह (अठारहवां सूत्र) किस लिये (कहागया) है। निश्चय के लिये है
अत्रमह॰ ।। एव॰न॰ ईहा आदयः ।। इति॰ = (अर्थात व्यंजन का) अवग्रह (ज्ञान) ही होता है नकि ईहा अवाय धारणा॥

स तर्हि एवकारः कर्तव्यो न कर्तव्यः ? । सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणैवकारं नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽयं विशेषः ? ॥

सः ; तर्हि* एवकारः ;
कर्तव्यः ;।

= (यदि-यह इस यदि) निश्चयार्थ (=सः) है तो (=तर्हि) एवकार
= (इस सूत्रमें) लाना चाहिये (कर्तव्यः)
भावार्थ—जो यह सूत्र निश्चय वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात "एव" शब्द लाते और सूत्र ऐसा होता "व्यंजनस्यावग्रह एव" ॥

न* कर्तव्यः ;।
सिद्धेः ;॥ विधिः ;।
आरभ्यमाणः ;। नियम-अर्थः ;। इति*
अन्तरेण* एवकारम् ;।
नियम-अर्थः ;। भविष्यति ;। ननु अवग्रह-ग्रहणं ;॥
उभयत्र* तुल्यम् ;॥।
तत्र* अयम् ;।
किं* कृतः ;। विशेषः ;। ॥

= (उत्तर—एव इस सूत्रमें) नहीं लाना चाहिये
= (मतिज्ञानं सूत्रमें अवग्रह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से
= (पुनि इस सूत्र में अवग्रह शब्दका) आरम्भ किया जाना नियमके लिये है
= बिना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात इस सूत्रमें बिना एव शब्द लाये हुये ही) नियमके लिये (यह सूत्र) होगा । प्रश्न (=ननु) अवग्रहका लाना
= दोनों स्थानोंमें (अर्थात अर्थमें तथा व्यंजनमें) समान है
= उस स्थानमें (=तत्र-अर्थावग्रह सूत्र १७ में और) यहां (=अयम्)
= अर्थात (व्यंजनावग्रह सूत्र १८में) क्या विशेष, भेद वा अन्तर कियागया है

---

(१) "इदम् (त्रि०) (अयं-पु०; इयं-स्त्री०; इदं-न०) यह किसी ऐसी चीज़को जतलाता है जो कहने हारेके हिंस हो । यह । यहाँ" पद्म० पृष्ठ ७६ । यहांके अर्थमें लिया है ॥

(२) विशेषाभावे षट् त्रिंशत्त्रिशत मतिज्ञान संख्या विघटनादित्यभिप्रायः पूर्वपक्षिणः ।
विशेष-अभावे ;। षट्त्रिंशत्त्रिशत-मतिज्ञान-संख्या-विघटनात् ;॥ इति अभिप्रायः ;। पूर्वपक्षिणः ;। = (अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहके भेद न होनेमें तीनसौ छत्तीस मतिज्ञानके भेदोंकी) गणनाके न्यून करने (के हेतु) से है—ऐसा अभिप्राय प्रश्नकर्ता का है

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ताव्यक्तकृतो विशेषः । कथम् । अभिनवशरावार्दीकरणवत् । यथा जल कणद्वित्रिसिक्तः शरावोऽभिनवो नार्द्रीभवति, स एव पुनःपुनः सिच्यमानः शनैस्तिम्यते, एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दादिपरिणताः पुद्गला द्वित्र्यादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुनःपुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति ॥ अतो व्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रहः । व्यक्तग्रहणमर्थावग्रहः । ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति

अर्थ-अवग्रह-व्यंजन-अवग्रहयोः ६। व्यक्त-अव्यक्त-कृतः ५। विशेषः १।

=अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहमें प्रगट और अप्रगट
=कृत भेद वा अन्तर है अर्थात् प्रगट पदार्थोंका ग्रहण हो सो अर्थावग्रह है
और अप्रगट वस्तुओंका ग्रहण हो सो व्यंजनावग्रह है

कथम्* अभिनव-शराव-आर्दीकरणवत्* यथा* जल-कण-द्वि-त्रि-सिक्तः १। शरावः १। अभिनवः १। न*आर्दी-भवति[1] सः १। एव*पुनः*पुनः* सिच्यमानः १। शनैः* तिम्यते

=(प्रश्न) किस प्रकार है (उत्तरमें कहते हैं कि) नवीन (माटीका)
=कटोरा वा सकोराके भिजोने (गीला करने)के सदृश है। जैसे जलके
=दो तीन कणसे सींचा हुआ नवीन माटीका कटोरा गीला नहीं
=होता है (तबतक अव्यक्त है) वो (=सः) ही (=एव) फिर फिर सींचा हुआ
=धीरे धीरे (=शनैः) गीला होजाता है (तब व्यक्त है)

एवं* श्रोत्र-आदिषु७॥ इन्द्रियेषु७॥ शब्दादि-परिणताः १।
पुद्गलाः १। द्वि-त्रि-आदिषु७। समयेषु७। गृह्यमाणाः १।
न व्यक्तीभवन्ति पुनः* पुनः* अवग्रहे ७ सति ७। व्यक्तीभवन्ति[1]

=ऐसे कर्ण आदिक इन्द्रियों (के अवग्रह)में शब्दादिक रूप परिणम्या
=पुद्गलके स्कन्ध (=पुद्गलाः) दो तीन आदिक समयोंमें ग्रहण हुये (=गृह्यमाणाः)
=प्रकट नहीं होते हैं (तबतक व्यंजनावग्रह है) वार वार
=(उन पुद्गलस्कन्धोंके) ग्रहण (=अवग्रह) होनेपर प्रगट होते हैं (तब अर्थावग्रह होता है)॥

अतः* व्यक्त-ग्रहणात् ५॥ प्राग्-व्यंजन-अवग्रहः १।
व्यक्त-ग्रहणम् १॥ अर्थ-अवग्रहः १। ततः अव्यक्त-अवग्रहणात् ५॥ ईहा-आदयः १। न भवन्ति[1]

=इसलिये प्रगट ग्रहणसे पहिले पहिले व्यंजनावग्रह है
=प्रगटका ग्रहण (है सो) अर्थावग्रह है। तिससे अप्रगटके
=ग्रहणसे ईहा-अवाय-धारणा नहीं होते हैं

---

(१) आर्दीकरणवत्-आर्दीभवति-व्यक्तीभवति—अनार्द्रः आर्द्रः सम्पद्यते = आर्द्रीकरोति-आर्द्रीभवति-व्यक्ती भवति = गीला करता है अगीला गीला होजाता है अव्यक्त व्यक्त हो जाता है जैसे आर्द्रीं करोति-आर्द्रीं भवति-व्यक्तीं भवति हैं अनुवृत्ति तो पहले गीला न हो पश्चात् गीला हो जावे ।

सर्वेन्द्रियाणामविशेषेण व्यञ्जनावग्रहप्रसंगे यत्रासम्भवस्तदर्थप्रतिषेधमाह –

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सर्व–इन्द्रियाणाम् $\frac{६}{ब}^{111}$ अविशेषेण $\frac{३}{त}^{1}$ व्यञ्जनावग्रह–
असंगे $\frac{७}{स}^{1}$ यत्र*
असम्भवः $\frac{१}{प्र}^{1}$ तद्–अर्थम् $\frac{२}{द्वि}^{111}$ प्रतिषेधम् $\frac{२}{द्वि}^{1}$ आह T

सूत्रम्–न [१]चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ–चक्षुर्–अनिन्द्रियाभ्याम् $\frac{३}{त}^{111}$

व्यंजन–अवग्रहः $\frac{१}{प्र}^{1}$ न* भवति T

= (पूर्वोक्त कथन में) विशेष न होनेसे समस्त इन्द्रियों के व्यंजनावग्रहका
= संयोग या सम्बन्ध आनेपर जहां (जिस जिस इंद्रियमेंव्यंजनावग्रह)
= असम्भव है। तिस (व्यंजनावग्रह) के लिये निषेध (को) कहते हैं कि
= (व्यंजनस्यावग्रहो) न(भवति) चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्
= नेत्रइन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन,ईषत् इंद्रिय, नो इंद्रिय वा अन्तःकरण) से
= अप्रगट पदार्थों का वा अव्यक्त वस्तुओं का अवग्रहरूप ज्ञान नहीं होता है।
(किंतु स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र इनचार इन्द्रियों द्वारा व्यंजनावग्रह होता है)

व्याख्या: – उपर्युक्त अर्थ से प्रगट है कि "न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" सूत्र में "व्यंजनस्यावग्रह" अठारहवाँ समस्त सूत्र की अनुवृत्ति आती है और उन्नीसवां सूत्र अठारहवां सूत्र का अपवाद है अर्थात् व्यंजनस्यावग्रह सूत्र से यह झलकता है कि पांच इन्द्रिय और छठवां मन इन छहो द्वारा अप्रगट पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है। यह सूत्र उपर्युक्त सूत्र का केवल इतना विरोधक है कि व्यंजन (अप्रगट) पदार्थों का अवग्रहरूपज्ञान नेत्र और मन को छोड़कर अवशेष स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र चार इन्द्रियों द्वारा (अवग्रह रूप ज्ञान) होता है। ध्यान रहे कि व्यंजन पदार्थ के द्वारा आवाप धारणा किसी भी इन्द्रिय से

व्यक्त हो जावै उसको आर्द्री भवति और व्यक्ती भवति कहते हैं॥ अष्टाध्यायी ५-४-५० सूत्र से अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरिच्विः = अभूततद्भावे कृ-भू-अस्ति-योगे सम्पद्यकर्तरि च्विः = सम्पद्य कर्ता में (वर्तमान प्रातिपदिक से) कृ (=करना) भू (=होना) अस्ति (होना) के योग में च्वि (=इ) प्रत्यय हो जो अवस्था प्रथम न थी उसके हो जाने पर (च्वि प्रत्यय हो) इसलिये आर्द्र+इ भवति, आर्द्र इ करोति, व्यक्त इ भवति क्रम से हुये॥ अस्य च्वौ सूत्र (७–४–३२) द्वारा = अस्य च्वौ (ई)॥ च्विके पहिले अंग के अन्त अ के स्थान में ई हो, अतः आर्द्री भवति आर्द्री करोति, व्यक्ती भवति रूप हुये—(१) दोनों समास में इस सूत्र का पाठ अर्थ यक्त है।

नहीं होवे । क्योंकि व्यंजन पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है ईहा आदाय धारणा कदापि नहीं हो सकते । प्रश्न-नेत्र इन्द्रिय और मन अनिन्द्रिय द्वारा व्यंजन वा अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान क्यों नहीं होता है ? उत्तरः— क्योंकि "नेत्र इन्द्रिय और मन ए दोऊ पदार्थनितैं भिडकरि नाहीं जानैं हैं अपने विषय कूं दूरि ही तैं जानैं हैं यातैं ए दोऊ इन्द्रिय अप्राप्यकारी हैं ॥ जैसे नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अञ्जनकूं नाहीं जानैं हैं दूरि ही तिष्ठता पदार्थ कूं जानैं हैं ॥ अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थ कूं विचार में ले है । ऐसैं नेत्र अर मन ए दोऊ अप्राप्यकारी हैं" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ४९ ॥ अप्राप्यकारी = पदार्थों से भिडकर स्पर्शनकरि नहीं जानते हैं दूरि ही से जानते हैं ॥ इन दोनों सूत्रों का सार यह है कि 'अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान भी केवल स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा होता है और इनका फल यह हुआ कि स्पर्शन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह वा अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है और व्यंजन वा अप्रगट पदार्थों के ईहा, अवायरूप, और धारणारूप ज्ञान नहीं होते हैं इसलिये स्पर्शन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन प्रत्येक इन्द्रियों से प्राप्त हुये व्यंजनावग्रहरूप ज्ञान को बहु एक [अल्प] बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव, अध्रुव, में से पृथक २ पर लगावने से व्यंजनावग्रह [अर्थात् अप्रगट पदार्थ के अवग्रहरूप ज्ञान] के निम्न लिखित अडतालीस भेद होते हैं :—

(१) स्पार्शन बहुव्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(२) स्पार्शन अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(३) स्पार्शन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(४) स्पार्शन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(५) स्पार्शन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(६) स्पार्शन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(७) स्पार्शन अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(८) स्पार्शन निस्सृत व्यंजन अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(९) स्पार्शन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१०) स्पार्शन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(११) स्पार्शन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(१२) स्पार्शन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।

(१३) रासन बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१४) रासन अल्प व्यंजन का अवग्रह रूप मतिज्ञान।
(१५) रासन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१६) रासन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१७) रासन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१८) रासन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१९) रासन अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२०) रासन निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२२) रासन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२४) रासन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२६) घ्राणज अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२८) घ्राणज अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३०) घ्राणज अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३१) घ्राणज अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३२) घ्राणज निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३४) घ्राणज उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३६) घ्राणज अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) श्रावण बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३८) श्रावण अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) श्रावण बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४०) श्रावण अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) श्रावण क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४२) श्रावण अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
४३) श्रावण अनिस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४४) श्रावण निस्सृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(४५) श्रावण अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४६) श्रावण उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) श्रावण ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४८) श्रावण अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।

मतिज्ञान के २८८ भेद पृष्ठ ३७० से ३७८ तक लिखे ४८ भेद ये हुये ऐसे ३३६ भेद सर्व मिलकर हुये।

पदच्छेद और विभक्तयर्थ सहित इस (उन्नीसवां) सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः भाषानुवाद॥

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यंजनावग्रहो न भवति। कुतः ? अप्राप्यकारित्वात् ॥ यतोऽप्राप्तमर्थमविदिकं युक्तसन्निकर्षविशेषेऽवस्थितं बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते चक्षुः, मनश्चाप्राप्तमतो नानयोर्व्यंजनावग्रहोऽस्ति ॥ चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वं कथमप्यवसीयते ? । आगमतो युक्तितश्च ॥ आगमतस्तावत्–

चक्षुषा $\frac{३}{१}^{III}$ च* अनिन्द्रियेण $\frac{३}{१}^{III}$ व्यंजन-अवग्रह $\frac{१}{१}$ = नेत्र से और (= च) अन्तः करण से अप्रगट वस्तु का अवग्रहरूप ज्ञान (भी)
न* भवति T कुतः* अप्राप्यकारित्वात् $\frac{५}{१}^{III}$ = नहीं होता है। (प्रश्न) क्योंकर ? अस्पर्शक्रियापन से अर्थात् नेत्र और मन
ये दोनों बिना स्पर्श किये हुये वा बिना भिड़े हुये [दूरही से] पदार्थ को ग्रहण करते हैं।

यतः* अप्राप्तम् $\frac{२}{१}$ अर्थम् $\frac{२}{१}$ अविदिकम् $\frac{२}{१}$ = क्योंकि बिना स्पर्शे हुये (वस्तु) को (अप्राप्तम्) सन्मुख आये हुये को (अविदिकं)
युक्त–सन्निकर्ष—विशेषे $\frac{७}{१}$ अवस्थितम् $\frac{२}{१}$ = उचित (= युक्त) निकटता के विशेष में (= सन्निकर्षविशेष) ठहरे हुये (अवस्थितं)
बाह्य-प्रकाश-अभिव्यक्तम् $\frac{२}{१}$ चक्षुः $\frac{१}{१}^{III}$ = [और] बाह्य उजालाकरि प्रगट किये गये को [= अभिव्यक्तं] नेत्र (इंद्रिय)
उपलभते T; च* मनस् $\frac{१}{१}^{III}$ अप्राप्तम् $\frac{२}{१}$ = जाने है (= उपलभते) और अन्तःकरण बिनास्पर्शे हुये को वा दूर तिष्ठ हुये को
(उपलभते) अतः* अनयोः $\frac{७}{२}^{III}$ = (विचार में लेता है) इसलिये इन (नेत्र और मन) दोनों में
व्यंजन–अवग्रहः $\frac{१}{१}$ न* अस्ति T = व्यंजनावग्रह (= अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान) नहीं होता है

चक्षुषः $\frac{६}{१}^{III}$ अप्राप्यकारित्वम् $\frac{१}{१}^{III}$ कथम् अध्यवसीयते T = (प्रश्न) नेत्र के अप्राप्यकारीपना कैसे निश्चय किया गया है ('अध्यवसीयते')
आगमतः* युक्तितः* च* आगमतः* ॥ तावत् = (उत्तर) शास्त्रसे और न्याय वा अनुमान से प्रथम (= तावत्) शास्त्रद्वारा ऐसे है कि

---

[१] अप्राप्य कारित्वात्—यह शब्द, अ + नहीं; प्राप्य = गम्य, पहुंचने योग्य; कारि (स्त्रीलिंग) + क्रिया; त्व + पन, ता जो भाववाची प्रत्यय है' बना है अतः पंचमी विभक्ति अपादानका चिन्ह जोड़नेसे अ + प्राप्यकारि + त्व + अत् = अप्राप्यकारित्वात् = अगम्य क्रियापनसे अस्पर्श क्रियापन से

[२] अप्राप्तं—अविदिकं—अवस्थितं—अभिव्यक्तं ये "अर्थम्" शब्दके विशेषण हैं इन सर्व के आगे अर्थम् शब्द का लोप जानना ॥

पुट्ठं सुणोदि सद्दं अपुट्ठं चेव (१)पस्सदे रूवम्। फासं रसं च गन्धं बद्धं पुट्ठं च (२)आणीहि युक्तितश्च—अप्राप्य-कारि चक्षुः स्पृष्टानवग्रहात्। यदि प्राप्यकारि स्यात् त्वगिन्द्रियवत्

पुट्ठ[२]। सुणोदि[१] सद्दं[२]।[=स्पृष्टं। शृणोति। शब्दं]। =स्पर्श हुये शब्द को सुनता है

{अपुट्ठं च[अ] एव[अ] (१)पस्सदे रूवम्[२]।।। / अस्पृष्टं[२]।।। च[अ] एव[अ] पश्यते रूपम्[२]।।।} =और [=च] विना स्पर्श हुए ही [=एव] अर्थात् विना स्पर्शक्रियेहुयेही रूपको देखता है

फासं[२]। रसं[२]। च गन्धं[२]। [=स्पर्शं। रसं। च[अ] गन्धं]। =स्पर्शको रसको और गन्धको

बद्धं[२] पुट्ठं[२] च(न जानाति)[१] [बद्धं। स्पृष्टं। च जानाति] =बन्ध [बन्धन] से और [=च] स्पर्श से जानता है

युक्तितः[अ] च[अ] स्पृष्ट अनु-अवग्रहात्[५]। =और अनुमान से स्पर्श हुये वा भिड़े हुये [पदार्थ] को न जानने के हेतु से

अप्राप्यकरि[१]।।। चक्षुः[१]।।। =नेत्र [इन्द्रिय] अप्राप्यकारी है अर्थात् नेत्र विना स्पर्श किये हुये वा विना भिड़े हुये [दूर ही से] पदार्थ को ग्रहण करता है

यदि[अ] प्राप्यकारि[१]।" स्यात्[१]' त्वक्-इन्द्रियवत्[अ] =जो [नेत्र इन्द्रिय] प्राप्यकारी होती [तो] त्वचा वा स्पर्श इन्द्रिय के सदृश

---

(१) दृश् धातु भ्वादि प्रथम गणका है उसका रूप कर्तरि प्रयोगमें 'पश्य' होजाता है। अ विकरण वा चिन्ह भ्वादिगणका लगानेसे 'पश्य' हो जाता है यह धातु उभय आत्मनेपद और परस्मैपदी है। प्रथमपुरुष वा अन्यपुरुष, एकवचन आत्मनेपदी कर्तरिप्रधान वर्तमान क्रियाका ते प्रत्यय लगानेसे पश्य+ते=पश्यते (=देखता है) बनजाता है॥ इसी प्रकारसे प्रथमपुरुष, एक वचन परस्मैपद, कर्तरि प्रधान, वर्तमानका का ति प्रत्यय लगानेसे पश्य+ति=पश्यति बन जाता है परन्तु ध्यानरहे कि कर्मणि प्रयोगमें दृश् इसी रूपमें यक् (=य) प्रत्यय लगानेसे दृश्य हो जाता है पुनः ते आत्मनेपदी लगाकर दृश्य+ते=दृश्यते=देखाजाता है दिखा गया है बनजाता है। (देखो धातुरूप चन्द्रिका पृष्ठ ५०१ जिसमें 'पश्यति' और पश्यते दोनों रूप दिये हैं)॥

(२) ज्ञानाति—ज्ञा (=जानना) क्र्यादि नवमा गणका धातु है प्रत्ययसे प्रथम इस गणके धातुओंमें ना जोड़ा जाता है। ज्ञा जनोर्ना (शिति ७-३ ७९ अष्टाध्यायी=शित् प्रत्यय परे हो तो ज्ञा और जन् धातुओंको जा आदेश हो (=शिति ज्ञाजनोर्जा)॥ परन्तु ना में जो आ है उसके स्थानमें ई लाते हैं यदि व्यञ्जनादि सार्वधातुक प्रत्यय ना के पश्चात् का हो ज्ञा+ना+ति=जा+नी+ति=जानीति बन गया॥

स्पृष्टमञ्जनं गृह्णीयात्। न तु गृह्णात्यतो मनोवदप्राप्यकारित्यवसेयम्। ततश्चक्षुर्मनसी वर्जयित्वा शेषाणामिन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहः। सर्वेषामिन्द्रियानिन्द्रियाणामर्थावग्रह इति सिद्धम्॥

आह निर्दिष्टं मतिज्ञानं लक्षणतो विकल्पनश्च, तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् श्रुतं तस्येदानीं लक्षणं विकल्पश्च वक्तव्य इत्यत आह॥

स्पृष्टम्[1] अञ्जनम्[2] [१]गृह्णीयात्[3]
= स्पर्शहुये अर्थात् आँख में लगाये हुवे अंजन को ग्रहण करती वा देखती

न* तु* गृह्णाति अतः
= किन्तु [आँख] नहीं ग्रहण करती है अर्थात् नहीं देखती है। इसलिये

मनोवत्* अप्राप्यकारि[4] इति अवसेयम्[5]
= अन्तःकरण सदृश अप्राप्यकारी है इस प्रकार निश्चय वा प्रतीति करना चाहिये

ततः चक्षुर्मनसी[1] वर्जयित्वा शेषाणाम्[2]
= तिससे [= ततः] नेत्र [और] मन को छोड़कर अवशेष वा बची हुई

इन्द्रियाणाम्[3] व्यञ्जन-अवग्रहः[4]
= [चार स्पर्शन-रसन-घ्राण श्रोत्र] इन्द्रियों का व्यंजनरूप अवग्रह होता है

सर्वेषाम्[1] इन्द्रिय-अनिन्द्रियाणाम्[2]
= सब [स्पर्शन-रसन-घ्राण-नेत्र-श्रोत्र] इन्द्रियों का और मन का

अर्थ-अवग्रहः[3] इति सिद्धम्[4]
= अर्थावग्रहरूप ज्ञान होता है ऐसा सिद्ध होगया है

आह[1] मतिज्ञानम्[2] लक्षणतः च विकल्पतः
= [शिष्य] पूछता है कि मतिज्ञान स्वरूपसे और [= च] भेद से

निर्दिष्टम्[3] तद्-अनन्तरम्[4]
= कहा गया है उस मतिज्ञान के निकट [अर्थात् नवमां सूत्र में]

यत्[1] श्रुतम्[2] उद्दिष्टम्[3] तस्य[4] इदानीम्
= जो [= यत्] श्रुतज्ञान उपदेश्या गया है तिस [श्रुतज्ञान] का अब [= इदानीम्]

लक्षणम्[1] विकल्पः[2] च वक्तव्यः[3] इति अतः आह
= स्वरूप और भेद कहना योग्य है। ऐसा [प्रश्न होने पर] इसलिये कहते हैं कि

(१) यह क्र्यादि नवम गणका आत्मनेपदी और परस्मैपदी धातु है॥ अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद १ सू० १६। यहांपर गृ-इच्चिक्ति कृञ्चति कृ-ति भृञ्जतीनां ङिति, च (= ङिति) से अर्थात् ङित् और कित् प्रत्यय परे हों तो यहि-ज्या-व्यय-व्यधि-वृष्टि-वि अति-वृश्चति पृञ्चति और भृञ्जति धातुओंके य् व् र् ऋ अनुक्रमसे इ उ ऋ ल् हो जावें। इसलिये यहां पर ग्रह् का गृह् हो गया क्योंकि यात् प्रथमपुरुष (वा अन्य पुरुष) एक वचन, परस्मैपद, कर्तरि प्रधान विधिलिङ् क्रियाका ङित् प्रत्यय है। अतः गृह्+यात् ऐसा हुआ नवमे गणका ना विकरण लगता है आ,ई में पलटजाता है (देखो पृ३६७) गृह्+ना+यात् (न् ण् में पलटता है-देखो पृ३५४) गृह्णीयात् बना॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

श्रुतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात्

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

(१) श्रुतम् [1]॥ मति-पूर्वम् [2]॥	= श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक (मतिज्ञान निमित्तक, मतिज्ञान कारणक, मतिज्ञानजन्य है अर्थात् मतिज्ञान है निमित्त वा कारण अथवा उत्पन्न करनेवाला जिसको सो श्रुतज्ञान है भावार्थ श्रुतज्ञान को मतिज्ञान उत्पन्न करता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात होताहै
द्वि-अनेक-द्वादशभेदम् [3]॥	= (वह श्रुतज्ञान) दो (अंग बाह्यरूप और अंगप्रविष्टरूप) है। बहुत और बारह प्रकार है अर्थात् अंगबाह्य और अंगप्रविष्टरूप जो श्रुतज्ञान हैं उनमें से अंगबाह्य अनेक प्रकार हैं। अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णक हैं और आचारांग सूत्र कृतांगादि बारह अंग प्रविष्ट हैं
अंग [1]। श्रुतशब्द [2]। श्रवणम् [3]।	= यहां श्रुत शब्द सुनने को
उपादाय [4] व्युत्पादितः [5]। अपि [6]	= ग्रहण करके उत्पन्न हुआ है तौ भी (= अपि)
रूढि-वशात् [7]।	= रूढ़ि वा प्रसिद्धि के वशसे अथवा बलसे

(१) दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और सो इन्हीं अर्थों का एकसाहै परन्तु अंगबाह्यके जो अनेक भेदहैं उनमें भेदहै

श्वे० सं० के अंगबाह्यों के उदाहरण	दि० आ० के अंगबाह्योंके उदाहरण	जैसे श्वेता०अंग बाह्य के उदाहरण	दिग०अंग बाह्य के उदाहरण
(१) सामायिक	प्रकीर्णक	(३) उत्तर अध्याय	(४) उत्तराध्ययन
(२) चतुर्विंशतिस्तव	प्रकीर्णक	(८) दशा	
(३) स्तोत्र वन्दन	प्रकीर्णक	(९) कल्प (१०) व्यवहार	(९) कल्प व्यवहार
(४) प्रतिक्रमण	प्रकीर्णक	(११) निशीथि इत्यादि	(१४) निषिधिका
(५) कायव्युत्सर्ग	प्रकीर्णक अर्थात् किये हुये पापकी शुद्धता जहां शरीर के त्याग से वर्णन की गई है	ऋषियों से भाषित अनेक	(विनय प्र०) कृतिकर्म प्र०
(६) प्रत्याख्यान	प्रकीर्णक	(१) प्रकारका अंग विधि है देखो	(९) कल्प प्र० महाकल्प प्र०
(७) दशवैकालिक	प्रकीर्णक	सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ२०पुंडरीक प्र० महापुंडरीक प्र०कै	

कस्मिंश्चित् ज्ञानविशेषे वर्तते ॥ यथा कुशलवनकर्मप्रतीत्या व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढिवशात्पर्यवदाते वर्तते ॥ कः पुनरसौ ज्ञानविशेष इति अत आह "श्रुतं मतिपूर्वमिति" श्रुतस्य प्रमाणत्वं पूर्यतेऽनेन पूर्वं निमित्तं कारणमित्यनर्थान्तरम् ॥

कस्मिन्-चित्[१] * ज्ञान-विशेषे[२] वर्तते T

= कोई एक (= कस्मिंश्चित्) ज्ञानके विशेषमें प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके अर्थमें व्याकरणकी रीतिसे आता है तौभी रूढिवशसे एक ज्ञानका नाम है

यथा[३] कुशल-वन-कर्म-प्रतीत्या[४] व्युत्पादितः[५] अपि कुशल-शब्दः[६] रूढि-वशात्[७] पर्यवदाते[८] वर्तते T

= जैसे कुशल दाभ वा कोश(= कुश) काटनेकी क्रियामें निश्चय कर व्युत्पन्न हुआहै = तौभी (= अपि) कुशलशब्द रूढिके वलसे बहुत प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थ में = प्रवर्तता है भावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतिसे दाभके काटनेके अर्थमें आता है तौभी रूढिके वलसे बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है तैसे श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणानुकूल[९] आता है तौभी रूढिकी सामर्थ्यसे एक ज्ञानका नाम है

पुनः[१०] * कः[११] असौ[१२] ज्ञान-विशेषः[१३] इति अतः आह T
श्रुतम्[१४] ॥ मति-पूर्वम्[१५] ॥ इति श्रुतस्य[१६] ॥ प्रमाणत्वम्[१७] ॥

= और यह श्रुत कौनसा (= कः) ज्ञानविशेष है ऐसा(प्रश्नहोने पर)अतः कहते हैं = श्रुत है सो मतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥

पूरयति T इति पूर्वं[१८] ॥ निमित्तम्[१९] ॥ कारणम्[२०] ॥
इति[२१] अनर्थ-अन्तरम्[२२] ॥

= जो पूरेहै उत्पत्ति करे है ऐसा पूर्व होता है निमित्तवै कारणक है
= इसप्रकार (इन तीनों पूर्व-निमित्त-कारण शब्दोंमें) अर्थभेद नहीं है

(१ कस्मिंश्चित्— अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्, छ्, त्, थ्, और ट्, ठ्, आवे तो (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग (:में) पलट जाता है इसलिये 'कस्मिन्+ चित्' = कस्मिः चित यह विसर्ग वर्तमान दशामें व्याकरणके निम्नलिखित नियमानुसार 'श्' में परिवर्तित हो जाता है:— विसर्गके पश्चात् यदि च् छ् हो तो विसर्ग 'श्' में यदि त्, थ् हो तो 'स्' में और यदि ट्, ठ् हो तो 'ष्' में पलट जाता है जैसे हरिः चरति = हरिश्चरति (= हरि जाता है)। रामः तरति = रामस्तरति (राम तरता है पार होता है)। रामः टीकते = रामष्टीकते (राम टिकता है।) इस लिये "कस्मिंश्चित्" वाक्यका "कस्मिं श्चित्" हो गया ॥

(२) श्रुत, आप्तवचन, आगम, उपदेश, ऐतिह्य, आम्नाय, प्रवचन और जिनवचन, ये शब्द एकार्थवाची हैं (समाप्य तत्त्वा० सू० पृष्ठ २६)

मतिर्निर्दिष्टा। मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं मतिकारणमित्यर्थः॥ यदि मतिपूर्वं श्रुतं तदपि मत्यात्मकं प्राप्नोति कारणसदृशं हि लोके कार्यं दृष्टमिति। नैतदेकान्तिकम्। दण्डादिकारणोऽयं घटो न दण्डाद्यात्मकः। अपि च सति तस्मिन् तदभावात् सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसन्निधानेऽपि प्रबलश्रुतावरणोदयस्य श्रुताभावः

मतिः ।॥ निर्दिष्टा ।॥ मतिपूर्वम् ।॥ अस्य ।। मति-पूर्वम् ।॥ मतिकारणम् ।॥ इति ※ अर्थः ।।	= मतिज्ञान [पहिले] कहा गया है। मति है कारण जिसका [= अस्य] सो मति = पूर्व है। मतिकारणक वा मतिनिमित्तक है ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है।
यदि ※ मतिपूर्वम् ।॥ श्रुतम् ।॥ तद् ।॥ अपि ※ मति-आत्मकम् ।॥ प्राप्नोति ⊤ हि ※ लोके ।। कारण-सदृशम् ।॥ कार्यम् ।॥ दृष्टम् ।॥ इति ※	= [प्रश्न] जो [= यदि] मतिज्ञान निमित्तकवा जन्य श्रुतज्ञान है [तो] वह [श्रुतज्ञान] भी = मतिस्वरूप को प्राप्त होता है। क्योंकि [= हि] जगत में कारण के = समान कार्य ऐसा देखा जाता है।
एतद् ।॥ एकान्तिकम् ।॥ न ※	= [उत्तर] यह एकान्त वा अवश्य होनेवाला नियम नहीं है॥ यह भावार्थ है कि यह नियम कि कारण के समान ही कार्य होता है सर्वत्र ठीक नहीं है कहीं कहीं पर कार्य कारण के सदृश नहीं भी होता है जैसे
अयम् ।॥ घटः ।॥ दण्ड-आदि-कारणः ।॥ दण्ड-आदि-आत्मकः ।॥ न ※	= यह घट दण्ड [घाक] आदि निमित्तक है [परन्तु] दंड घाक आदिके = स्वरूप [पूर्वोक्त घट] नहीं है अर्थात् घड़ाके बनानेके लिये दंड घाक आदिक कारण हैं परन्तु यह उत्पन्न हुआ घट दंड घाक आदिके समान नहीहै भिन्नस्वरूपहै
च ※ तस्मिन् ।॥ सति ।॥ अपि ※ तद्-अभावात् ।॥ सति ।॥ अपि ※ मतिज्ञाने ।॥ बाह्य-श्रुतज्ञान-निमित्त-सन्निधाने ।॥ अपि ※ प्रबल-श्रुतावरण-उदयस्य ।॥ श्रुत-अभावः ।॥	= और क्योंकि उस [मतिज्ञान] के अस्तित्वमें वा विद्यमानता में भी उस श्रुतज्ञानका अभाव [रहता] है [अर्थात्] मतिज्ञान होने पर भी बाह्यमें श्रुतज्ञानके [अन्य अन्य] निमित्त निकट होने पर भी [जैसे गुरूपदेशादि] = श्रुतज्ञानावरण कर्मका प्रबल उदय वाले [जीव] के श्रुतज्ञान नहीं होता है

† मूलग्रन्थमें प्रथम संस्करणमें 'तदभावात्' के स्थानमें 'तुआचा' अशुद्ध छप गया है॥

श्रुतावरणक्षयोपशमप्रकर्षे तु सति श्रुतज्ञानमुत्पद्यत इति मतिज्ञानं निमित्तमात्रं ज्ञेयम्॥ आह श्रुतमनादिनिधनमिष्यते। तस्य मतिपूर्वकत्वे तदभावः। आदिमतोऽन्तवत्त्वात्। ततश्च पुरुषकृतत्वादप्रामाण्यमिति, नैष दोषः॥

श्रुत- आवरण- क्षयोपशम- प्रकर्षे ; तु @ सति ; श्रुतज्ञानम् ;॥ उत्पद्यते T इति* मतिज्ञानम् ;॥ निमित्तमात्रम् ;॥ ज्ञेयम् ;॥

= परन्तु श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम के प्रकर्ष होनेपर [= सति]
= श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार मतिज्ञान
= निमित्तमात्र (सहायक निमित्त) जानो॥ भावार्थ ऐसा है कि संभव है कि श्रुतज्ञानके उत्पन्न होने के लिये बाहिरी कारण मतिज्ञानादि वर्तमान भी हों तो भी श्रुतज्ञानावर्णीय कर्मका जीव के ऐसा प्रबल उदय हो कि श्रुतज्ञान न होने दे। जब श्रुतज्ञानावर्णीय कर्म का क्षयोपशम अन्तरंग कारण विद्यमान हो तबही जीव के श्रुतज्ञान होता है इसलिये मतिज्ञान केवल नाममात्र बाह्य कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने को हुआ॥ मुख्य और अंतरंग कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने के लिये श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही है॥

आह T श्रुतम् ;॥ अनादि + अनिधनम् ;॥ इष्यते T तस्य ;॥ मतिपूर्वकत्वे ;॥ तद्- अभावः ;।

= पूंछता है [आह] कि श्रुत आदिरहित अन्तरहित [= अनिधन] माना गया है
= तिस [श्रुतज्ञान] के मतिज्ञान कारण होने में नित्यपने का वा अनादि निधनताका [= तद्] अभाव आता है भरत का तात्पर्य यह है कि श्रुतज्ञान को अनादि निधन माना है और यदि श्रुतज्ञानको मतिज्ञान उत्पन्न करता है तो श्रुतज्ञान नित्यपने का अभाव प्राप्त हुआ[क्यों कि) ४०

आदिमतः ; अन्तवत्त्वात् ;॥

= आदि वाले का अंत होने से अर्थात् जिसका आदि है उसका अंत भी है

अप्रामाण्यम् ;॥ इति @ न @ एषः ;। दोषः ;।

= [पुरुषकृत होने से]अप्रमाण है ऐसा[प्रश्न होने पर उत्तर]है कि यह दोष नहीं है

अनादिनिधन = अनादि (= आदिरहित) + अनिधन = अन्तरहित ॥ निधन = नाश अन्त (देखो परिचय कोश पृ० ४१३)

द्रव्यादिसामान्यार्पणात् श्रुतमनादिनिधनमिष्यते ॥ नहि केनचित्पुरुषेण क्वचित्कदाचित्कथञ्चिदुत्प्रेक्षितमिति। तेषामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते ॥ यथांकुरो बीजपूर्वकः स च सन्तानापेक्षया अनादिनिधन इति ॥ न च पौरुषेयत्वं प्रामाण्यकारणम्। चौर्याद्युपदेशस्यास्मर्यमाणकर्तृकस्य प्रामाण्यप्रसंगात् ॥ अनित्यस्य च प्रत्यक्षादेः प्रामाण्ये को विरोधः

द्रव्यादि-सामान्य-अर्पणात् ; श्रुतम् अनादि निधनम् ॥ = द्रव्यादिक सामान्य की अपेक्षा से श्रुत आदि अंत रहित (= अनादिनिधन)
इष्यते । हि ❀ केनचित् ❀ पुरुषेण ; क्वचित् ❀ = माना गया है। क्योंकि (यह श्रुतज्ञान) किसी मनुष्य करि कहीं वा किसी क्षेत्र में
कदाचित् ❀ कथञ्चित् ❀ = कभी वा किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कथञ्चित्)
न ❀ उत्प्रेक्षितम् ॥ इति। तेषाम् ; एव विशेष-अपेक्षया ;॥ = नवीन नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, की ही भेद विवक्षा से
आदिः ॥ अन्तः ॥ च ❀ सम्भवति । इति ❀ मतिपूर्वम् = आदि अंत भी (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मतिज्ञान जनित वा जन्य (श्रुतज्ञान है)
इति ❀ उच्यते । यथा ❀ अंकुरः ॥ बीजपूर्वकः ॥ = ऐसा कहा गया है। जैसे अंकुरा बीज जनित है
सः ॥ च ❀ सन्तान-अपेक्षया ॥॥ अनादिनिधनः ॥ इति* = सो [अंकुरा] ही [= च] सन्तान की अपेक्षा करि आदि अंतरहित ऐसे [चला आवे है]
न ❀ च ❀ अपौरुषेयत्वम् ॥॥ प्रामाण्यकारणम् ॥॥ = और [= च] अपौरुषेयपना प्रमाणता [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात्
प्रमाणता होने के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह
पुरुषकृत न हो-कोई वस्तु मनुष्य कृत न होने से ही प्रमाण रूप नहीं कही जा सक्ती है

चौर्य-आदि-उपदेशस्य ;। अस्मर्यमाण-कर्तृकस्य ;। = क्यों कि स्तेय वा चोरी आदिक के उपदेशों के जिनके करनेवाले को स्मरण नहीं
[कि कब ऐसे उपदेश करतेवाला हुआ और कब ऐसे उपदेश दिये और
किसने ऐसे उपदेश दिये]

प्रामाण्य-प्रसङ्गात् ;। अनित्यस्य ;॥॥ च ❀ = प्रमाण होने का [= प्रामाण्य] प्रसंग वा सम्बन्ध आता है॥ अनित्य के और [= च]
प्रत्यक्ष-आदेः ; ॥प्रमाण्ये ;॥॥कः ॥ विरोधः ॥ = प्रत्यक्ष आदि के प्रमाणता होने में क्या विरोध [आता] है अर्थात्
संसार में अनित्य प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं ही कुछ विरोध नहीं है

---

(१) अर्पणात्—पञ्चमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिङ्ग है ॥ (२) द्रव्य, आदि (= क्षेत्र, काल, भाव) = द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

सर्वार्थ सिद्धि

आह, प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ युगपज्ज्ञानपरिणामान्मतिपूर्वकत्वं श्रुतस्य नोपपद्यत इति । तदयुक्तं सम्यक्त्वस्य तदपेक्षत्वात् । आत्मलाभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकत्वव्याघाताभावः ॥ आह मतिपूर्वं श्रुतमित्येतल्लक्षणमव्यापि श्रुतपूर्वमपि श्रुतमिष्यते । तद्यथा

४०४

आह ⊤ प्रथमसम्यक्त्व-उत्पत्तौ ॥ युगपद् ❀ ज्ञान- परिणामात् ; । श्रुतस्य ;॥ मतिपूर्वकत्वम् ;॥। न ❀ उपपद्यते ⊤ इति ❀ तद् ;॥ अयुक्तम् ;॥। सम्यक्त्वस्य ॥ तद्-अपेक्षत्वात् ; ।॥

= पूंछता है कि प्रथमसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में एकवार वा एक काल [= युगपत्] = [मतिश्रुत] ज्ञानके उत्पन्न होने से [= परिणामात्] श्रुतज्ञान के मतिनिमित्तपना = उत्पन्न नहीं होता है । [उत्तर] सो [= तद्] [तुम्हारा कथन] ठीक नहीं है = क्योंकि [ज्ञान के] सम्यक्पना उस [सम्यग्दर्शन] के प्रसंग से है अर्थात् सम्यक्त्व के उत्पन्न होते ही कुमतिज्ञान और कुश्रुतज्ञान का परिवर्तन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में हो जाता है ।

तु ⊤ आत्मलाभः ;। क्रमवान् ;।

= परन्तु [पूर्वोक्त परिवर्तन होने पर भी] ज्ञान के स्वरूप की लब्धि क्रमवाली है अर्थात् प्रथम मतिज्ञान होता है उसके पश्चात् श्रुतज्ञान होता है

इति ❀ मति- पूर्वकत्व-व्याघात-अभावः ;।

= इस प्रकार मति निमित्तपने में विरोध नहीं है भावार्थ यह है कि मतिज्ञान प्रथम होता है पश्चात् श्रुतज्ञान होता है । यद्यपि इन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना सम्यक्त्व ही उत्पत्ति होते ही एक साथ वा एक काल में ही होता है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना एक साथ होने के कारण से उन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की क्रमानुसार[एक दूसरे के पश्चात्]उत्पत्ति में कुछ अड़चन नहीं है ।

आह ⊤ मतिपूर्वम् ;॥। श्रुतम् ;॥इति ❀ एतद् ;॥। लक्षणम् ;॥। अव्यापि ;॥

= पूंछता है कि "मतिज्ञान जनित श्रुतज्ञान" ऐसा यह = लक्षण अव्यापक वा असर्वगत है अर्थात् सब श्रुतज्ञान में लागू नहीं है

श्रुतपूर्वम् ;॥। अपि ❀ श्रुतम् ;॥। इष्यते ⊤ तद्यथा ❀

= क्योंकि श्रुतज्ञान निमित्तक भी श्रुतज्ञान माना गया है । जैसे [= तद्यथा]

(१) प्रत्येक जीवके प्रारम्भ में उपशम सम्यक्त्व ही होताहै और प्रथम उपशम सम्यक्त्व होता है । द्वितीय उपशम सातवें गुण स्थानमें होताहै

शब्दपरिणतपुद्गलस्कन्धादाहितवर्णपदवाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयाच्च आद्यश्रुतविषयभावमापन्ना—व्यभिचारिणःकृतसंगीतिर्जनो घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्धन्तरं प्रतिपद्यते धूमादेर्वाग्न्यादिद्रव्य, तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति । नैष दोषः । तस्यापि मतिपूर्वत्वमुपचारतः ॥ श्रुतमपि क्वचिन्मतिपूर्वकत्वान्मतिरित्युपचर्यत इति ॥

शब्दपरिणत- पुद्गलस्कन्धात् ५। आहित- = क्योंकि शब्दरूप परिणये वा शब्दरूप अवस्थाको पहुँचे पुद्गलों के स्कंध स्थापित निर्मित
वर्णपदवाक्यादि* भावात् ५। चक्षुः आदि- विषयात् ५।च = अक्षर पद वचनादिक (रूप) होते हैं और (=च)नेत्रादिक इन्द्रियों के विषय होते हैं
आद्यश्रुतविषयभावम् २। आपन्नात् ५। = (उन अक्षर पदवाक्यों को) प्रथम वा पहिला श्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्तहोनेमें
अव्यभिचारिणः ५। कृतसंगीतिर्जनः १। = (कुछ) व्यभचार वा दोष नहीं है । उन (अक्षर पद वाक्यों) से संकेतित पुरुष
घटात् ५। जल-धारणादि— = (घट शब्द से गोचर होनेवाला) घट (नामा पदार्थ) में पानी रखने आदिक
कार्यसम्बन्धअन्तरम् २।। प्रतिपद्यते T तथा ❀ धूमात् ५। = कार्य रूप अन्यसंयोग को प्राप्त होता है । वैसे ही (तथा) धुवाँ (पदार्थ) से
एव अग्नि- आदि- द्रव्यम् २।। श्रुतात् ५।। श्रुत्— = ही अनल आदिक वस्तुको (प्राप्त होता है जानता है)।। श्रुत ज्ञानसे श्रुतज्ञानकी
प्रतिपत्ति १।। इति ❀ न ❀ एषः १। दोषः १। = प्राप्ति (मति पत्ति) इस प्रकार है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तस्य १।। अपि ❀ मति- पूर्वकत्वम् १।।उपचारतः * = तिस (श्रुतज्ञान) का भी मतिज्ञान पूर्वक होना उपचार से है वा मानलेने से है
अर्थात् श्रुतज्ञान से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ है उस श्रुत ज्ञान के उत्पन्न
होने को भी उपचार से मतिज्ञान ही कारण है
श्रुतम् १।। अपि * क्वचित् * मतिः १।। इति * = श्रुतज्ञान के भी कहीं वा किसी स्थान में (=क्वचित्) मति ही का
उच्यतेT इति * । मति पूर्वकत्वात् ५।। = उपचार कीजिये क्योंकि मति पूर्वक है सोही पूर्वोक्त श्रुतज्ञान भया है सरांशहै कि

श्रुतज्ञान को मति निमित्तक कहा है उसपर प्रश्न है कि जब श्रुतज्ञान से भी श्रुतज्ञान होता है तब मतिजन्य श्रुतज्ञान कैसे रहा जैसे पहिले घट शब्द को श्रोत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से सुनकर अथवा उसके रूप को नेत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से देख कर घट को जानता है यह प्रथम श्रुतज्ञान है फिर उस ही नियत संबंधवाले घट से दूसरे संबंधी जल धारण आदि का ज्ञान होता है सो श्रुतज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान हुआ—फिर मतिपूर्वक श्रुतज्ञान कैसे ? (उत्तर) उपयुक्त उदाहरण में प्रथम

भेदशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति॥ द्विभेदं तावत्—अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टमिति। अङ्गबाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानजन्य है दूसरा श्रुतज्ञान प्रथम श्रुतज्ञान से हुआ है तौ भी मतिज्ञान पूर्वक उपचार से श्रुतज्ञान हुआ है ऐसा कहने में दोष नहीं क्योंकि श्रुतज्ञान कहीं साक्षात् मतिपूर्वक है कहीं परंपरा मतिपूर्वक है अतः "श्रुतं मति पूर्वं" ऐसा कहा है॥

भेदशब्दः । प्रत्येकम् । परिसमाप्यते । द्वि-भेदम् । = (इस सूत्र में) भेदशब्द प्रत्येक पर लगाया गया है। (श्रुतज्ञानके) दो भेद हैं
अनेक-भेदं । द्वादश-भेदं । इति । तावत् । = अनेक भेद हैं। बारह भेद हैं। प्रथम
द्वि-भेदं । अङ्ग-बाह्यम् । अङ्गप्रविष्टम् । इति । = दो भेद अङ्गबाह्य (और) अङ्ग प्रविष्ट इस प्रकार हैं
अङ्ग-बाह्यं । अनेक-विधम् । दशवैकालिक- = अङ्गबाह्य अनेक प्रकार वा बहुतभेद रूप है। दशवैकालिक (सातवां प्रकीर्णक)
उत्तरा-ध्ययन-आदि । = उत्तराध्ययन (आठवां प्रकीर्णक) (१) आदिक (बारह प्रकीर्णक और हैं)
अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में बारहअङ्ग और चौदह प्रकीर्णक-संमिलित हैं।

§§"आदि" शब्द से (१) सामायिक प्रकीर्णक (२) चतुर्विंशतिस्तव प्र० (३) वन्दना प्र० (४) प्रतिक्रमण प्र० (५) विनय प्र० (६) कृतिकर्म प्र० (७) दशवैकालिक प्र० (८) उत्तराध्ययन प्र० (९) कल्पव्यवहार प्र० (१०) कल्पाकल्प प्र० (११) महाकल्प प्र० (१२) पुण्डरीक प्र० (१३) महापुण्डरीक प्र० (१४) निषिद्धिका प्रकीर्णक निवेशित हैं अर्थात् (क) सामायिक प्रकीर्णक=जिसमें नाम स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकरि षट् प्रकार सामायिक का वर्णन हो।

(ख) चतुर्विंशतिस्तवनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें तीर्थंकरों के पंचकल्याण चौंतिस अतिशय अष्ट प्रातिहार्य परमौदारिक दिव्यदेह समवसरण धर्मोपदेशादिक और तीर्थंकरों के महात्म्य का प्रकट करनेवाला स्तवन का वर्णन हो॥

(ग) वंदनानाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक ही तीर्थंकरके आश्रय के अर्थ प्रतिमा चैत्यालयादिके स्तवन का व्याख्यान हो॥

(घ) प्रतिक्रमणनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक दिन सम्बन्धी दोष के निराकरण के लिये दैवसिक प्रतिक्रमण तैसे ही रात्रिक पाक्षिक चतुर्मासिक सांवत्सरिक ऐर्यापथिक और सन्यास मरण के अवसर में संपूर्ण पर्यायों में उपजे दोषों के निराकरण के लिये प्रतिक्रमणका कथन हो

(ङ) विनयनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार इन पञ्चप्रकार की विनय का कथन हो॥

(च) कृतिकर्मनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें जिन पूजनादिक क्रिया के करने के विधान का वर्णन वा पञ्चपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिन वचन, जिनमंदिर के वन्दना के लिये तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोनति बारह आवर्त इत्यादि और नित्यनैमित्तिक क्रिया का प्ररूपण हो

(छ) दशवैकालिकनाम प्रकीर्णक वो है जिस में साधुओंके आचारके गोचर आहार की शुद्धि का व्याख्यान हो
(ज) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक वह है जिसमें चार प्रकार के उपसर्ग और द्वाविंशति परिषह सहने के विधान तथा इनके फलका वर्णन हो ॥
(झ) कल्पव्यवहारनाम प्रकीर्णक वोहै जिसमें साधुओं के योग्य आचरण का विधान और अयोग्य सेवन होते प्रायश्चितका वर्णन हो
(ञ) कल्पाकल्पनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल.भाव को आश्रयकरि साधु के यह योग्य है यह अयोग्य हैऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के अनुकूल कथन हो ॥
(ट) महाकल्पसंज्ञक प्रकीर्णक वह है जिसमें उत्कृष्ट संहननादि सहित जिन कल्पी साधुओं के द्रव्य क्षेत्र काल भाव के योग्य त्रिकाल योगादिकनि का आचरण का वर्णन और स्थविर कल्पी साधुओं का दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्ट आराधना का वर्णन हो ॥
(ठ) पुंडरीकनाम प्र० = जिसमें चार प्रकार के देवों के उपजने का कारण दान, पूजा, तपश्चरण अकाम निर्जरा सम्यक्त्व संजमादिक का, देवों के उपपादस्थान के विभवका कथन हो ॥
(ड) महा पुंडरीक संज्ञक प्रकीर्णक वह है जिसमें इन्द्र प्रतिइन्द्रादिकों में उत्पत्ति का कारण तपश्चरणादिक का वर्णन हो ॥
(ढ) निषिधिका नाम प्रकीर्णक वो है जिसमें प्रमाद जनितदोष दूर करने के लिये बहुत प्रकार प्रायश्चित्तादिक का कथन हो

इनकी उत्पत्तिका का विशेष कथन ऐसे है कि संस्कृत वर्णमाला में नीचे के ६३ वर्ण हैं परन्तु प्राकृति भाषा में और देशांतर भाषा में ए, ऐ ओ औ ह्रस्व भी होते हैं और एक दीर्घ लृकार संस्कृत में नहीं है अनुकरण विषै देशांतर की भाषा में दीर्घ लृकार होता है ऽ ह्रस्व ॅ दीर्घ ँ अनुनासिक चिन्ह, ह् यह अक्षर ये चार वर्ण नहीं है

ह्रस्व	दीर्घ	ओरडा स्वर हैं	६२ व्यंजन	प्रयोग चाहे रूप ये ६३ संस्कृत में हैं		ह्रस्व स्वर	दीर्घ स्वर	प्लुत स्वर	व्यंजन ६४ मूल अक्षर हैं	सूचना
अ	आ	अ ३	कवर्ग-क् ख् ग् घ् ङ्	ः विसर्जनीय	ऽ ह्रस्व	अ	आ	अ ३	कवर्ग-क् ख् ग् घ् ङ्	
इ	ई	इ ३	चवर्ग-च् छ् ज् झ् ञ्	॑ जिह्वामूलीय	ॅ दीर्घ	इ	ई	इ ३	चवर्ग-च् छ् ज् झ् ञ्	
उ	ऊ	उ ३	टवर्ग-ट् ठ् ड् ढ् ण्	॑ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिन्ह	उ	ऊ	उ ३	टवर्ग-ट् ठ् ड् ढ् ण्	
ऋ	ॠ	ऋ ३	तवर्ग-त् थ् द् ध् न्	• अनुस्वार	और ं यह	ऋ	ॠ	ऋ ३	तवर्ग-त् थ् द् ध् न्	
ऌ	०	ऌ ३	पवर्ग-प् फ् ब् भ् म्		सत्तर ६३ को	ऌ	ॡ	ऌ ३	पवर्ग-प् फ् ब् भ् म्	
०	ए	ए ३	अन्तस्थ य् र् ल् व्		चार प्रकार	ए १	ए २	ए ३	य् र् ल् व्	
०	ऐ	ऐ ३	ऊष्म-श् ष् स् ह्		कहते हैं।	ऐ १	ऐ २	ऐ ३	श् ष् स् ह्	
०	ओ	ओ ३				ओ १	ओ २	ओ ३	योगवाह अं अः ँ क ँ प अनुस्वार, विसर्ग	
०	औ	औ ३				औ १	औ २	औ ३	जिह्वामूलीयउपध्मानीय चार हैं ।	

४०७

टिप्पणी—ये चौंसठि मूल अक्षर अनादि निधन परमागम में "सिद्धोवर्णः समाम्नायः" सूत्र से प्रसिद्ध हैं । आधा मात्रा जिसके बोलने के कालविषैं होय तिसको व्यंजन कहे हैं । जिसको एक मात्रा हो उसको ह्रस्व दो मात्राहो उसको दीर्घ तीनमात्रा हो उसको प्लुत कहते हैं ह्रस्व- दीर्घ-प्लुत स्वरही होते हैं । श्रुतज्ञान के दो भेद हैं (१) अक्षरात्मक वा शब्दज अथवा शब्दजन्य श्रुतज्ञान (२) अनक्षरात्मक, लिङ्गज वा लिंगजन्य श्रुतज्ञान ।

(ख) अनन्तभागवृद्धि,असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि इन षट्स्थानपतित वृद्धिकी अपेक्षा से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सब सेजघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं । अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात भेद हैं । "लिंग जो चिन्ह तातैं उत्पन्न भया ऐसा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेंद्रियतैं लगाइ पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवनिके है तथापि याते किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं" तातैंप्रधान नाहीं गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५"जैसैं शीतल पवन का स्पर्श भया तहां शीतल पवन का जानना तो मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायु की प्रकृति वाले को यह शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । अक्षर के निमित्ततैं भया नाहीं । ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५ ॥

(क) "शब्दज कहिए अक्षररूप छंदादिरूप शब्दतैं उत्पन्न भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य है प्रधान है जातैं देना लेना शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है" पृष्ठ ६७४ ॥

"तहां 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कहा तहां कर्णरूप इन्द्रिय मतिज्ञानकरि जीवः अस्ति ऐसे शब्दकौं ग्रहा । बहुरि तीहि ज्ञानकरि 'जीवनामा पदार्थ है' ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है । शब्द और अर्थ के वाच्य वाचक संबंध है । अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है अर्थ है सो उस शब्दकरि कहने योग्य है शब्द उस अर्थ का कहन हारा है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है । सो इहां जीवः अस्ति' ऐसे शब्दका जानना तो मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीवनामा पदार्थ का अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है । ऐसे ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना । अक्षरात्मक जो शब्द तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कहा । इहां कार्यविषैं कारण का उच्चार किया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षर रूप है नाहीं ॥ पृष्ठ ६७५ ॥ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का एक और अच्छा उदाहरण जैसे जब कोई मनुष्य 'नौका' और

आत्मा शब्दों को कानों द्वारा सुनता है तो इस प्रकार का सुनना मतिज्ञान है। सुनने के पश्चात् नौका औ. आत्मा के गुणों का हृदय में आना श्रुतज्ञान है इसको अक्षरात्मक इसलिये कहते हैं कि हमको इस का ज्ञान शब्द द्वारा होता है जो शब्द अक्षरों से बने अथवा रचे गये हैं॥ दूसरी भांति से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद पर्यायज्ञान और पर्याय समास ज्ञान हैं। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्याप्तक = लब्धि अपर्याप्तक) जीवके उत्पन्न होने के प्रथम समय में सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान जीव के सदैव निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है इसमें विशेषता केवल यही है कि इस के आवरन करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्याय ज्ञान में नहींहोता किन्तु इसके अनन्तर ज्ञान (पर्याय समास) के प्रथम भेद में होता है। भावार्थ यदि पर्यायावरण कर्म के उदयका फल पर्यायज्ञान में होजाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीवका भी अभाव होजाय इसलिये पर्यायवरण कर्मका फल उसके आगे के ज्ञानके प्रथम भेद में ही होता है। इसीलिये न्यून से न्यून पर्यायरूप ज्ञान जीवके अवश्य पाया जाता है॥ "असंख्यात लोक प्रमाण पर्याय समास ज्ञानके भेद हैं" पृष्ठ ३२६

दूसरे प्रकार से अक्षरात्मक-श्रुतज्ञान के अठारह भेद अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग प्राभृतप्राभृत, प्राभृत, वस्तु पूर्व ये नव भेद और क्रमसे एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सर्व मिल अठारह भेद

अर्थाक्षर, अर्थाक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघात समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोग समास, प्राभृतप्राभृत प्राभृतप्राभृत समास, प्राभृत, प्राभृत समास, वस्तु, वस्तु समास, पूर्व, पूर्वसमास। अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के हैं। और ज्ञानकी अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतनिके सुनने से जो ज्ञान भया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद (भाव श्रुतज्ञान) कहिये। यदि ग्रन्थ (शास्त्र) रूपकी विवक्षा कीजाय तो "गंथे बारसअंगे चोद्दसपुव्वे (= ग्रन्थे द्वादशांगे च चतुर्दशके) (नेमिचंद जी० का० गाथा ३६६ के अनुसार आचारांगादि द्वादशअंग और उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और चकार से (?) विरुद्ध चतुर्दश प्रकीर्णकादिक स्वरूप द्रव्यश्रुतज्ञान जानना तिनके सुनने से जो ज्ञान हुआ सो भाव श्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यरूप (?), अक्षर पदादिक मय जो द्रव्यश्रुत है तिसके सुनने से जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान हुआ सो भाव श्रुत। आचारांग कर ज्ञान होगा कि चौदह पूर्व दृष्टिवाद बारहवे अङ्ग में गर्भित हैं ऐसे द्वादश अङ्गको अंगप्रविष्ट कहते हैं और चौदह प्रकीर्णकों अंगबाह्य कहते हैं। आगे इस बातको दिखलाते हैं कि यह अंगबाह्य और अंग प्रविष्टरूप द्रव्य श्रुतज्ञानको

उत्पत्ति कैसे है और जितवाक्षी कितने अक्षर प्रमाण हैं और क्योंकर इतने ही अक्षर होते हैं न्यूनाधिक क्यों नहीं होते और किस प्रकार होते हैं।

उक्त अनादिनिधन ये चौंसठि एक अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी पंचसंयोगी आदि चौंसठि संयोगी पर्यन्त जानना इस संकेतित वर्ण वा संज्ञाओं की उत्पत्ति का अनुक्रम मूलवर्णी चौंसठि अक्षरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित चित्रमें दिखाते हैं—

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१ जोड़	१	२	३	४	५	६	७	८	९
	२ जोड़	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६
		३ जोड़	१	४	१०	२०	३५	५६	८४
			४ जोड़	१	५	१५	३५	७०	१२६
				५ जोड़	१	६	२१	५६	१२६
					६ जोड़	१	७	२८	८४
						७ जोड़	१	८	३६
							८ जोड़	१	९
								९ जोड़	१
									१० जोड़

६४ अक्षर पर्यन्त प्रत्येक भङ्ग ॥ द्विसंयोगी भंङ्ग ॥ त्रि „ „ „ चतुः „ „ „ पंच „ „ „ षट् „ „ „ सप्त „ „ „ अष्ट „ „ „ नव „ „ „ दश „ „ „ ... ...

१० योग	१
४५ योग	१
१२० योग	१
२५६ योग	१
५१२ योग	...

यहां केवल क वर्णमें तो एक प्रत्येक भंग (क) ही है इस क वर्णमें द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदिक भङ्ग नहीं है। ख वर्ण सहित विषै अर्थात् क् ख् को अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ख् एक और द्विसंयोगी भंग क् ख् एक ऐसे दो भङ्ग हैं। और ग वर्ण सहित विषै अर्थात् क्ख्ग्को अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ग् एक, द्विसंयोगी भङ्ग क्ग्-ख् ग् दो त्रिसंयोगी भङ्ग क् ख् ग एक ऐसे चार भङ्ग हैं। घ वर्ण सहित विषै अर्थात् क्ख्ग्घ को विवक्षा से प्रत्येक भंग घ् एक है, द्विसंयोगी भङ्ग क्घ्-ख्घ्-ग्घ् ये तीन त्रिसंयोगी भंग क्ख्ग्-क्ग्घ्-ख्ग्घ् ये तीन हैं, चतुःसंयोगी भङ्ग क् ख् ग् घ् एक है ऐसे आठ हैं और ङ वर्ण सहित विषै अर्थात् क ख ग् घ् ङ् का अर्थ में पूर्वोक्त रीति से भंग निकालने पर प्रत्येक भंग ङ् एक होगा. द्विसंयोगी

भंग चार त्रिसंयोगी भंग छह, चतुःसंयोगी भंग चार पञ्चसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ्) एक ऐसे सोलह भंग हैं। च वर्ण सहित विर्ये अर्थात् क वर्ण से च वर्ण को अपेक्षा से प्रत्येक भंग (च्) एक है द्विसंयोगी पांच भंग हैं त्रिसंयोगी दश भंग हैं, चतुःसंयोगी दश भंग हैं पंच संयोगी भंग पांच और षटसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च्) एक है। ऐसे भंग बत्तीस हैं। छ वर्ण सहित विर्ये अर्थात् क वर्ग से छ वर्ण तक इन सात अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (छ) एक है द्विसंयोगी भंग छह हैं। त्रिसंयोगी भंग पन्द्रह हैं चतुःसंयोगी भंग बीस हैं पञ्चसंयोगी भंग पन्द्रह हैं षट् सयोगी भंग छह हैं और सप्त संयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ्) एक है इस प्रकार चौंसठि हैं। ज् वर्ण सहित विर्ये अर्थात् कवर्ण से जवर्ण तक इन आठ अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ज्) एक है द्विसंयोगी भंग सात हैं त्रिसंयोगी भंग इक्कीस हैं चतुःसंयोगी भंग पैंतीस हैं; पंचसंयोगी भंग पैंतीस हैं षट् संयोगी भंग इक्कीस हैं, सप्तसंयोगी भंग सात हैं अष्ट संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज्) एक है ऐसे एकसौ अट्ठाईस हैं। झ् वर्ण सहित विर्ये अर्थात् कवर्ण से झ वर्ण तक में प्रत्येक भंग एक (झ्) है, द्विसंयोगी भंग आठ हैं त्रिसंयोगी भंग २८ अट्ठाईस हैं। चतुःसंयोगी भंग छप्पन हैं, पंच संयोगी भंग सत्तर हैं। षट्संयोगी सत्र छप्पन हैं। सप्त संयोगी भग अट्ठाईस हैं। अष्टसंयोगी भंग आठ हैं नवसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ्) एक है ऐसे कवर्ण से झ तक दोसौछप्पन भंग हैं। और कवर्ण से ञ वर्ण पर्यन्त इन दश अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ञ्) एक है। द्विसंयोगी भंग नौ हैं। त्रिसंयोगी भंग छत्तीस हैं, चतुःसंयोगी भंग चौरासी हैं पँचसंयोगी एकसौछब्बीस हैं। षट्संयोगी भंग भी एकसौ छब्बीस हैं। सप्तसंयोगी भंग चौरासी हैं अष्टसंयोगी भंग छत्तीस हैं नव संयोगी भग नव हैं दश संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ्) एक है ऐसे ये ५१२ भग हैं। ये सर्व भग एक सहस्र नैईस जोड़ने पर होते हैं ये सब पृथक् पृथक् लिखे जासकते हैं विस्तार भय से नहीं लिखे लिखने की रीति ऊपर बता चुके हैं। स्मरण रहे कि ये भंग अपुनरुक्त अक्षरों द्वारा बने हुये हैं अर्थात् एक भंग में उलटफेर कर वही अक्षर नहीं आसकते हैं जैसे क्खग् और ख्गक् वा गक्ख् यह तीनों अपुनरुक्त भंग की अपेक्षा से एक ही भंग हैं। इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक भंग, द्विसंयोगी भंग, त्रिसंयोगी भंग, चतुः संयोगी भंग इत्यादिक भंग पूर्व पूर्व स्थानों के भंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले अगले स्थानों से दूने दूने होते जाते हैं। जैसे—

स्थान	सर्वप्रकार के भंगोंका योग	स्थान	सब भांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सबभांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सब भांति के भंगोंका जोड़
पहिला	१	सत्रहवां	६५५३६	तेंतीसवां	४२६४६६७२६६	उनचासवां	२८१४७४६७६७१०६५६
दूसरा	२	अठारहवां	१३१०७२	चौंतीसवां	८५८६६३४५६२	पचासवां	५६२६४६६५३४२१३१२
तीसरा	४	उन्नीसवां	२६२१४४	पैंतीसवां	१७१७६८६६१८४	इक्यावनवां	११२५८६६६०६८४२६२४
चौथा	८	बीसवां	५२४२८८	छत्तीसवां	३४३५६७३८३६८	बावनवां	२२५१७६६८१३६८५२४८
पांचवां	१६	इक्कीसवां	१०४८५७६	सैंतीसवां	६८७१६४७६७३६६	त्रेपनवां	४४०३५६६२७३७०४६६
छठवां	३२	बाईसवां	२०९७१५२	अढतीसवां	१३७४३८६५३४७२	चौवनवां	९००७१६६२५४७५०६६२
सातवां	६४	तेईसवां	४१९४२५४	उनचालीसवां	२५४८७७६०६६४४	पचपनवां	१८०१४३६८५०६४८१६८४
आठवां	१२८	चौबीसवां	८३८८६०८	चालीसवां	५४८७५५८१३८८८	छप्पनवां	३६०२८७६७०१८६६३६६८
नववां	२५६	पच्चीसवां	१६७७७२१६	इकतालीसवां	१०९९५१६२७७७६	सतावनवां	७२०५७५६४०३७६२७६२६
दशवां	५१२	छब्बीसवां	३३५४४४३२	बियालीसवां	२१६६०२३२५५५२	अट्ठावनवां	१४४११५१८८०७८५५८७२
ग्यारवां	१०२४	सत्ताईसवां	६७१०८८६४	तेतालीसवां	४३६८०४६५१११०४	उनसठवां	२८८२३०३७६१५१७११७४४
बारहवां	२०४८	अट्ठाईसवां	१३४२१७७२८	चवालीसवां	८७६६०६३०२२२०८	साठवां	५७६४६०७५२३०३४२३४८८
तेरहवां	४०९६	उन्तीसवां	२६८४३५४५६	पैंतालीसवां	१७५६२१८६०४४४१६	इकसठवां	११५२६·१५०४६०६८४६६७६
चौदहवां	८१९२	तीसवां	५३६८७०१२	छयालीसवां	३५१८४३७२०८८८३२	बासठवां	२३०५८४३००६२१३६६३६५२
पन्द्रहवां	१६३८४	इकतीसवां	१०७३७४१८२४	सैंतालीसवां	७०३६८७४४२७७६१३	त्रेसठवां	४६११६८६०१८४२७२८७६०४
सोलहवां	३२७६८	बत्तीसवां	२१४७४८३६४८	अड़तालीसवां	१४०७३७४८४३५३२८	चौंसठवां	९२२३७२०३६८१४७५७८०८

इन सब प्रत्येक भंगों को, द्विसंयोगी भंगों को, त्रिसंयोगी इत्यादि चौंसठि मूलवर्ण के भंगों का योग १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ है येही सर्वद्रव्य श्रुतज्ञान के एक वाटि एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं अर्थात् एक नौ चौरासी शंख छयालासपदम, चौहत्तरि नील चालीस खरब तेहत्तरि अरब सतरि करोड पचानवे लाख इक्यावन सहस्र छसौ पन्द्रह इतने अक्षर भिन्न भिन्न अर्थात् अपुनरुक्तअक्षर द्रव्य श्रुतज्ञान के हुये "जातैं जो वस्तु का अर्थ को प्रतीति के निमित उनही कहे अक्षरनिकों वारंवार कहे तो उनका किछू संख्या का नियम है नाहीं" गोम्मटसार पृष्ठ ७५१

( ) दूसरे प्रकार से उक्त षोस अक्षर प्रमाण द्रव्यश्रुतज्ञान ऐसे निकालते हैं कि उक्त चौंसठ अक्षरों को विरलन करके अर्थात् बराबरि पंक्तिरूप एक एक को पृथक् पृथक् चौंसठि स्थानों में मांडिए। प्रत्येक चौंसठ अक्षरों के ऊपर दो दो का अङ्क देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अङ्कों को निम्नरीति से गुणा करके जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुतज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर रहने हैं क^{१} – ख^{१} – ग^{१} – घ^{१} – ङ^{१} इत्यादि चौंसठ स्थानों पर्यन्त रखिये चूंकि ज्ञेय ज्ञेय के अङ्कों का ही परस्पर गुणन करते हैं । दो के नीचले मूल चौंसठ अक्षर विकार को प्राप्त नहीं होते हैं, अतः प्रत्येक चौंसठ मूल अक्षर के स्थान में एक का अङ्क लिखकर अथवा □ ऐसे चिन्ह चौंसठ लिखकर उन प्रत्येक के ऊपर दो दो का अङ्क लिखें पुन सब दो दो के अङ्कों को परस्पर गुणा करदें तो भी वही (परिमाण) होगा जैसे $\square^{१}$

$\square^{१}$

$= २\times२\times२\times२

६५५३६
६५५३६
६५५३६
३९३२१६
१९६६०८
३२७६८०
३२७६८०
३९३२१६
४२९४९६७२९६ अब ४२९४९६७२९६ का मा रूप में गुणा करने पर जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटाने पर शेष इष्ट राशि है

अर्थात्
४२९४९६७२९६
४२९४९६७२९६
२५७६९८०३७७६
३८६५३७०५६६४
८५८९९३४२९२
३००६५७३७०३२
२५७६९८०३७७६
३८६५३७०५६६४
८५८९९३२५४९२
१७१७९८६९१८४
१
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ से एकादि एक ही प्रमाण द्रव्यश्रुतज्ञानके अपुनरुक्त अक्षर हैं

इस भेद को इस रूप [२^६४ − १] में भी रख सकते हैं अर्थात् दो को चौंसठ ठौरों में गुणा करके एक घटादो ॥

( ) इसी भेद को तीसरे प्रकार से ऐसे भी प्रकाश करसकते हैं कि द्विरूपवर्गधारा (अथवा दोके वर्ग धारा में) छठवां वर्गस्थान जिस की गणना एकट्ठी संख्याके बराबर है । इस एकट्ठी प्रमाण संख्यामें से एक घटादेने से जो शेष रहे उतने ही आदिसे अंत पर्यन्त अपुनरुक्त अक्षर रूप अंकस्थानके हैं अर्थात् दोके ऊपरें २ वर्ग रखकर जब छठवां वर्गका स्थान आवे (२) इस गुणनफलमें से एक घटादेने पर जो शेष रहे उतने अपुनरुक्त अक्षरहैं

जैसे दो का एक वर्गस्थान $२^{२} = ४$ दोका दूसरा वर्गस्थान $\boxed{२^{२}}^{२} = \boxed{४}^{२} = १६$

दोका तीसरा वर्ग स्थान $\boxed{\boxed{२^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{४}^{२}}^{२} = \boxed{१६}^{२} = २५६$ दोका चौथावर्ग स्थान $= \boxed{\boxed{\boxed{२^{२}}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{४}^{२}}^{२} = \boxed{१६}^{२} = \boxed{२५६}^{२} = ६५५३६$

दोका पांचवां वर्गस्थान $\boxed{\boxed{\boxed{\boxed{२^{२}}^{२}}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{\boxed{४}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{१६}^{२}}^{२} = \boxed{२५६}^{२} = \boxed{६५५३६}^{२} = ४२९४९६७२९६$

दोका छटा वर्गस्थान $\boxed{\boxed{\boxed{\boxed{\boxed{२^{२}}^{२}}^{२}}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{\boxed{\boxed{४}^{२}}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{\boxed{१६}^{२}}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{२५६}^{२}}^{२} = \boxed{\boxed{६५५३६}^{२}}^{२} = \boxed{४२९४९६७२९६}^{२}$

$= ४२९४९६७२९६ \times ४२९४९६७२९६$

$= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६$ इससे एक घटादेने पर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ शेष रहे येही अपुनरुक्त अङ्क द्रव्य श्रुतज्ञान के हैं

आ अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य का ऊपर लिखते हैं। एक अक्षर से ज्ञान हुआ जो ज्ञान तिसके ऊपर क्रमसे एक एक अक्षर की वृद्धि होते हो। जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि होजाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं (वे ज्ञान के भेद संख्या में पद के अक्षरों से दो न्यून होते हैं) वे सब अक्षर समासज्ञान के भेद हैं। (जी० को० गो० ३३५ गाथा) स्मरण रहै कि यहाँ पद पद से अभिप्राय मध्यमपद से है क्योंकि पद तीन प्रकार के हैं (१) अर्थपद (फ) प्रमाण पद (ब) मध्यम पद। तहाँ जितने अक्षरों के समूहद्वारा वांछित अर्थ जाना जाता है उसको 'अर्थपद' कहते हैं अर्थात् विवक्षित अर्थ के कर्ता, एक दो आदि अक्षरनिका समूह ताको अर्थपद कहिये" जैसे 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' वाक्य में गाम अभ्याज शुक्लां दंडेन (= श्वेत गाय को दंडेके बल) से बन्द करदो। गाम्-अभ्याज शुक्ला-दंडेन चार अर्थ पद हुये। वैसे ही 'अग्निमानय' वाक्य में अग्निम्-आनय (= अग्नि को ला) दो अर्थ पद हुये। और दंडेन शालिभ्यो गां निवारय' वाक्य में दंडेन – शालिभ्यः – गां – निवारय (= दंडेसे धान्यों में से गाय को निकाल दो) ये चार अर्थ पद हुये। इन उदाहरणों से प्रकट है कि अर्थ पद में प्रत्येक पद के अक्षर बराबर नहीं होते न्यून हों अधिक हों कमी बेशी बराबर भी हों प्रमाणेन अष्टाक्षरादि संख्या निष्पन्नः अक्षरसमूहः प्रमाण पदं ॥ तद्यथा नमः श्रीवर्द्धमानाय। नियमित संख्या को लिये हुये आठ अक्षर आदि गणना करि उत्पन्न हुआ अक्षरोंका समूह सो प्रमाण पद है जैसे श्री वर्द्धमान (भगवान्) को नमस्कार हो अन्य उदाहरण प्रमाणपदके भक्तामरप्रणतमौलि माणि प्रभाणाम् त्रैकाल्यं द्रव्यषट्क नव पद सहितं जीव षट्कायलेश्याः। इत्यादि इन तीन प्रमाणपद के उदाहरणों से प्रगट है इनके अक्षरों की संख्या हीन अधिक है परन्तु प्रत्येक छन्द अवशेष तीन प्रमाणपदों के अक्षरों का प्रमाण बराबर होगा। उक्त सब उदाहरणों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अर्थपद और प्रमाणपद के अक्षरों की कोई गणना नियत नहीं है ॥

आठ और सोलासै चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषै (= परमागम) कहैं अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इन विषै अर्थपद अर प्रमाणपद तौ हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणकौं लिए लोकव्यवहार करिग्रहण प्रमाणपद का काम है तातैं लोकोत्तर परमागमविषै गाथाविष कही जो संख्या तोहू विषै वर्तमान जो मध्यम पद ताही का ग्रहण जानना" सारांश, अर्थपद और प्र अक्षरों न्यूनाधिकप्र माण होने से लोकव्यवहार में ग्रहण है तिससे लोकोत्तर गाथा विषै [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाण १६३४८३०७८८८ सर्वदा के लिये निश्चित है। इस ही को मध्यम पद कहते हैं ॥

४१६

अंगप्रविष्टं द्वादशविधम् ॥ तद्यथा—

अङ्गप्रविष्टम्[1]॥ द्वादशविध[2]॥ तद्यथा ॐ	= अंगप्रविष्ट बारह प्रकार है जैसे (सो = तद्. ज्यों हैं = यथा ऐसा शब्दार्थ है)

हमको ज्ञान है कि समस्त जिनवाणी (अर्थात् द्रव्यश्रुतज्ञान) कुल १८४४६७४४०७३७०८५५१६१५ अपुनरुक्त अक्षर प्रमाण है इन बीस अंकों में १६३४८३०७८८८ अंकों का भाग देने से द्रव्यश्रुतज्ञान के मध्यम पदों की संख्या इसभांति निकलती है कि

१६३४८३०७८८८) १८४४६७४४०७३७०८५५१६१५ (११२८३५८००२।

१६३४८३०७८८८

२०९ ४३६१८२७

१६३४८३०७८८८

४६३६०४३८६६०

३२६८६६१४७३६

१:६६३६२३६१४६

१३०७८६४६३१०५

५८२२७७६०४२२

४६०४४८३३६६५

६४८२८३६७६१५

८१७४२४३६४४०

१३०८६८२८४७५१

१३०७८६४६३१०४

८१८२१६४७६१४

८१७४१४३८५४०

८०१०८१७४

सिद्धि

४१७

आचारः ;। =आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो । अठारह सहस्र जिसके पद हैं ।

सूत्रकृतम् ;॥। =सूत्रकृतांग अर्थात् वह है । जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा क्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छतीस सहस्र ३६००० पद हैं ।

स्थानम् ;॥॥ =स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्योंके एकसे लेकर कितने विकल्प होसकते हैं और उन विकल्पों का वर्णन किया है जैसे समान्यकी अपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारी और मुक्त की अपेक्षा से दो भेद हैं, उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं । चार गतियों की अपेक्षासे चार भेद हैं, इत्यादि । इसी प्रकार पुद्गल आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना । इस में बियालीस सहस्र ४२००० पद हैं ।

समवायः ;। =समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है । सारांश सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है । जैसे द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान है । क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकबिल, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक विमान समान है । कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं । भावकरि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान हैं । इसके एक लाख चौंसठ सहस्र १६४००० पद हैं ।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः ;॥ =व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तिनास्ति, वक्तव्य अवक्तव्य, नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निकट किये सो कथन है । दोलाखअट्ठाईस सहस्र पद हैं ।

ज्ञातृधर्मकथ;॥ =ज्ञातृ धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव तीर्थंकरोंका महात्मय, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका समय तथा महात्म्य, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म सम्यक्दर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचलाख छप्पनसहस्र पद हैं ।

उपासकाध्ययनम् ;॥। =उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासकोंकी (श्रावकोंकी) सम्यक्दर्शनादि ग्यारह प्रतिमा संबंधी व्रत गुण शील आचार तथा दूसरे क्रिया कांड और उनके मंत्रादिकों का विस्तार वर्णन है । ग्यारहलाख सत्तर सहस्र पद हैं,

अन्तकृद्दशम् । अनुत्तरोपपादिकदशम् । प्रश्नव्याकरणम् । विपाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवादः पञ्चविधः—

अन्तकृद्दशम् ;॥॥ = अन्तकृद्दशांग जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें (= एक तीर्थके पीछे जबतक दूसरा तीर्थंकर हो वो काल) जो दश दश मुनि घोर प्रकार का तीव्र उपसर्ग सहन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके तेईस लाख अट्ठाईस सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुत्तरोपपादिकदशम् ;॥॥ = अनुत्तरोपपादिक दशांग वह है जिसमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए। इसमें बानवें लाख चवालीस सहस्र ९२४४००० पद हैं ।

प्रश्न व्याकरणम् ;॥॥ = प्रश्न व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रश्न करै तिसके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेजिनी निर्वेजनी इन चार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवें लाख सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं ।

विपाकसूत्रम् ; ॥ = विपाकसूत्राङ्ग वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों की तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभाग-शक्तिके फल देने रूप विपाकका वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासीलाख पद हैं

दृष्टिवादः ;। = दृष्टिवादाङ्ग वह अङ्ग है जिसमें तीनसौ त्रिरेसठ मिथ्या मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड अडसठलाख छप्पन सहस्र पांच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवादः ;। पञ्चविधः ;। = दृष्टिवादः (बारहवां अङ्ग) पांच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ठ ४२० देखो)

परिकर्म । सूत्रम् । प्रथमानुयोगः ।

(१) परिकर्म ३॥। = (प्रथम भेद दृष्टिवाद अंग का) परिकर्म१ वह है जिसमें गणित के करण सूत्रों का वर्णन है

सूत्रम् ३॥। = (द्वितीय भेद दृष्टिवाद अंगका) सूत्र वह है जिसमें तीनसौत्रेसठ मिथ्यादृष्टियों का पूर्वपक्षपूर्वक निराकरण है अर्थात् जिसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौत्रेसठ कुवाद हैं तिनका पूर्वपक्ष लेकर जीवादिक पदार्थों ऊपर लगावनेका वर्णन है। तिन मिथ्यादृष्टियों के ग्रन्थों में जीव अबंधकही है, अकर्ता ही है निर्गुण ही है। अभोक्ता ही है। स्वप्रकाशक ही है। पर प्रकाशक हो है। अस्तिरूप ही है। नास्तिरूप हो है इत्यादि एकांत पक्षपात को दूर कर यथार्थस्वरूप का वर्णन है। इसमें अठासीलाख पद हैं।

प्रथमानुयोगः ३। (तृतीय भेद दृष्टिवाद अंगका) प्रथमानुयोग वह है जिसमें चतुर्विंशति तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाका (=उत्तम) पुरुषोंका वर्णन है। इसमें पांच सहस्र पद हैं।

---

(१) इस (परिकर्म) के पांच भेद (क) चन्द्र प्रज्ञप्ति (ख) सूर्य प्रज्ञप्ति (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (ङ) व्याख्या प्रज्ञप्ति

(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्रमा सम्बन्धी विमान आयु परिवार वृद्धि गमन हानि वृद्धि पूर्ण ग्रहण अर्धग्रहण चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन है इसमें छत्तीसलाख पांच सहस्र ३६०५०००) पद है

(ख) सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य संबंधी आयु परिवार गमन ग्रहण ऋद्धि विषयका वर्णन है इसमें पांचलाख तीन सहस्र पद है। (५०३०००)

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप संबंधी मेरु कुलाचल ह्रद (सरोवर) क्षेत्र कुंड वेदिका व व्यन्तरों के आवास महानदी आदिका वर्णन है इसमें तीन लाख पचीस सहस्र ३२५००० पद हैं

(घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप और समुद्रों का स्वरूप तथा वहां मिलने वाले भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्कनि के आवासका वर्णन और वहा पर होने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन है इसमें बावन लाख छत्तीस सहस्र (५२३६००० पद) हैं

(ङ) व्याख्याप्रज्ञप्ति में भव्य अभव्य- भेद प्रमाण लक्षण रूपी अरूपी अजीव द्रव्यों का और अनन्तरसिद्ध परंपरा सिद्धोंका तथा दूसरा वस्तुओं का भी वर्णन है। इसमें चौरासी लाख छत्तीस सहस्र (८४३६०००) पद हैं

पूर्वगतम्। चूलिका चेति ॥ तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम्। अग्रायणीयम्।

पूर्वगतम् ॥॥ = [चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं। जिसमें पचानवे करोड़ उनंचास लाख निन्यानवें सहस्र नौ सौ निन्यानवें [९५४९९९९९९] पद हैं। (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)

च* (१) चूलिका ॥॥ इति ∞ = और (१) च) चूलिका (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है। (जिसके पांच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र • पूर्वगतम् ॥॥ = तहां (= तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद)

चतुर्दशविधम् ॥॥ = चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

उत्पादपूर्वम् ॥॥ = वह है जिसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसके एक करोड़ पद हैं

अग्रायणीयम् ॥॥ = वह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनय और दुर्नय पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्त्व नव पदार्थ आदिका वर्णन है इसमें छियानवें लाख ९६००००० पद हैं

(१) [क] जलगता चूलिका [ख] स्थलगता चूलिका [ग] मायागता चूलिका [घ] रूपगता चूलिका [ङ] आकाशगता चूलिका ये पांच भेद हैं

[क] जलगता चूलिका वह है जिसमें जलगमन के, जलस्तम्भन के, अग्नि के आसन के, अग्नि के भक्षण के, अग्नि के प्रवेश के, अग्नि के स्तम्भन आदि के मंत्र तंत्र तपश्चर्यादिक का कथन है। इन प्रत्येक के दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ख] स्थलगता चूलिका वह है जिसमें मेरुकुलाचल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मंत्र तंत्रादिक का परूपण है। इसके भी दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ग] मायागता चूलिका वह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विक्रिया के कारण मन्त्र तंत्र आचरणादि का कथन है २०९८९२०० पद हैं।

[घ] रूपगता चूलिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा बैल हिरण इत्यादिक रूपके पलटने के कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्रकपण है तथा चित्राय काष्ठलेपादिक का वर्णन है। तथा धातु रस रसायन का निरूपण है २०९८९२०० पद हैं

[ङ] आकाशगता चूलिका वह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का वर्णन है। इसके भी दो करोड़ नव लाख नवासी सहस्र दो शत् (२०९८९२००) पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम्॥ ज्ञानप्रवादम्। सत्यप्रवादम्। आत्मप्रवादम्। कर्मप्रवादम् प्रत्याख्याननामधेयम्।

वीर्यानुवादम् ॥॥ = (३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७००००००पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥॥॥ = (४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ॥॥ = (५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं ।

सत्यप्रवादम् ॥॥ = (६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ॥॥॥ = (७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है । इसमें छब्बीस करोड़ (२६००००००० पद हैं। ४२२

कर्मप्रवादम् ॥॥॥ = (८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भेदलिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांक्षित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८००००० पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ॥॥ = (९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावको आश्रयकरि पुरुषों के

विद्यानुप्रवादम् । कल्याणनामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकबिन्दुसारमिति ॥

संहनन बलादिक के अनुसारकरि प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक कालकरि त्यागकरना तथा सावद्य वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीनि गुप्ति आदिका वर्णन है । इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं ।

विद्यानुप्रवादम् ॥१०॥ = (१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व वह है जिसमें अंगुष्ठप्रसेना आदि सातसौ अल्पविद्या तथा रोहिणी आदि पांचसौ महा विद्याओंका स्वरूप सामर्थ्य मंत्र तंत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध भई विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यञ्जन छिन्न इन अष्टांग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११००००००० पद हैं।

कल्याणनामधेयम् ॥११॥ = (११) कल्याणनामधेय पूर्व वह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणकोंके महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) षोडशकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शकुनादिकों के फल वर्णन हैं इसके छब्बीस करोड २६००००००० पद हैं ।

प्राणावायम् ॥१२॥ = (१२) प्राणावाद पूर्व वह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इडा (= पृथिवी) पिङ्गला (= अग्नि) आदिका दशप्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियों के अनुसार वर्णन है ।
इस में तेरह करोड १३००००००० पद हैं ।

क्रियाविशालम् ॥१३॥ = (१३) क्रियाविशाल वह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी बहत्तर कला स्त्रीके चौंसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिल्पादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है । इसमें नौ करोड़ पद हैं ।

लोकबिन्दुसारम्-इति ॥१४॥ = (१४) लोकबिन्दुसार पूर्व वह है जिसमें तीन लोकका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितादिक मोक्ष का स्वरूप, उसके गमन का कारण, क्रिया, मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है । इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं ।

तदेतत् श्रुतं द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् ;॥। एतद् ;॥। श्रुतम् ;॥। द्वि-भेदम् ; ॥।	=पूर्वोक्त (=तद्) यह (=एतद्) (श्रुतज्ञान अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् ;॥। द्वादशभेदम् ;॥। इति*	=(इनमें से अङ्गबाह्य) अनेक भेदरूप (अङ्गप्रविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१ मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः ;। कः ;। प्रतिविशेषः ;। इति* = मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या भेद(=प्रति विशेष)है ऐसा (प्रश्न होने पर)

अत्र उच्यते T उत्पन्न-अविनष्ट-अर्थ- = यहां कहा जाता है कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुवा है ऐसे पदार्थ (=अर्थ) के

साम्प्रतकाल-विषयं ;॥। ग्राहकं ;॥। मतिज्ञानम् ;॥। = वर्तमान (=साम्प्रतम्) काल के विषय को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान है

श्रुतज्ञानं ;॥। तु ❀ त्रिकाल-विषयं ;॥। उत्पन्न- = और (=तु) त्रिकाल विषयक श्रुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पन्न पदार्थ का (और)

विनिष्ट-अनुत्पन्न- =(उत्पन्न होकर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पन्न (जो भविष्यमें उत्पन्न होगा उस)

अर्थ-ग्राहकम् ;॥। =पदार्थ का (श्रुतज्ञान) ग्रहण करने वाला है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २०)

च * विशुद्धतरं ;॥। इति * =और(=च) अधिक विशुद्ध (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान) है

किं ;॥। च * अन्यत् * मतिज्ञानम् ;॥। इन्द्रिय- = कुछ और भी (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान में विशेष) है। मतिज्ञान है सो इन्द्रिय और

अनिन्द्रिय-निमित्तम् ;॥। आत्मनः ;। ह-स्वभावात् ;। = अनिन्द्रय जो मन (लिङ्ग) निमित्तक आत्माके ह-स्वभाव (=जाननेके स्वभाव)से होताहै

पारिणामिकम् ;॥। श्रुतज्ञानं ;॥। तु* तत्- = (अक्षर)पारिणामिक है। परन्तु (=तु) श्रुतज्ञान उस (मतिज्ञान)

पूर्वकम् ;॥। श्रुत-उपदेशात् ;। भवति T इति * = जन्य(=पूर्वक) श्रुतके उपदेशसे (उत्पन्न) होता है। ऐसा (प्रतिविशेष भी)है सभाष्य०२०

(२) श्रुतज्ञान और केवल ज्ञान में अंतर या भेद यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है यद्यपि ज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं भावार्थ- जिस प्रकार श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी पर्यायों को जानता है उस ही प्रकार केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है। विशेषता इतनी ही है कि श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायता से होता है इसलिये इसकी अमूर्त पदार्थों में और उनकी अर्थ पर्याय तथा दूसरे सूक्ष्म अंशों में स्पष्टरूप से प्रवृत्ति नहीं होता। किन्तु केवल ज्ञान निरावरण होने के कारण समस्त पदार्थोंको स्पष्ट रूप से विषय करता है ॥

टिप्पणी—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदों की संख्या—

(१) आचारांग	अठारहसहस्र	१८०००
(२) सूत्रकृतांग	छत्तीससहस्र	३६०००
(३) स्थानांग	बियालीससहस्र	४२०००
(४) समवायांग		१६४०००
(५) व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग		२२८०००
(६) ज्ञातृधर्मकथांग		५५६०००
(७) उपासकाध्ययनांग		११७००००८
(८) अन्तकृद्दशांग		२३२८०००
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग		९२४४०००
(१०) प्रश्नव्याकरणांग		९३१६०००
(११) विपाक सूत्रांग		१८४०००००
(१२) दृष्टिवादांग		१०८६८५६००५
द्वादशांग के सर्वपदोंका योग		११२८३५८००५

दृष्टिवाद अंग के पांच भेद हैं उनमें से प्रथम भेद परिकर्म के पांच प्रभेद हैं और चतुर्थभेद पूर्वगत के चौदह प्रभेद हैं और पांचवां भेद चूलिकाके भी पांच प्रभेद हैं "सूत्र" दूसरे भेद और 'प्रथमानुयोग' तीसरे भेद का कोई प्रभेद नहीं हैं इन सबके १०८६८५६००५ मध्यम पद हैं। इन प्रभेदों की पृथक २ संख्या और प्रत्येक प्रभेद के पदों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे स्तम्भ या धारा में लिखते हैं।

१-चन्द्रप्रज्ञप्ति (परिकर्म)	३६०५००	(ठ) प्राणावाद पूर्व १३०००००००
२-सूर्यप्रज्ञप्ति ,,	५०३०००	(ड) क्रियाविशालपूर्व ९०००००००
३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ,,	३२५०००	
४-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ,,	५२३६०००	(ढ) लोकबिंदुसारपूर्व १२५०००००
५-व्याख्याप्रज्ञप्ति ,,	८४३६०००	(१) जलगताचूलिका २०९८९२००
६-सूत्र (दूसरा भेद)	८८०००००	
७) प्रथमानुयोग (तीसरा भेद)	५०००	(२) स्थलगताचूलिका २०९८९२००
(क) उत्पादपूर्व (चौथा भेद)	१०००००००	(३) रूपगताचूलिका २०९८९२००
(ख) अग्रायणीयपूर्व	९६०००००	
(ग) वीर्यानुवादपूर्व	७०००००	(४) मायागताचूलिका २०९८९२००
(घ) अस्तिनास्तिप्रवादपू.	६०००००	(५) आकाशगता ,, २०९८९२००
(ङ) ज्ञानप्रवादपूर्व	९९९९९९९	
(च) सत्यप्रवादपूर्व	१००००००६	१०८६८५६००५
(छ) आत्मप्रवादपूर्व	२६०००००००	
(ज) कर्मप्रवादपूर्व	१८०००००	
(झ) प्रत्याख्यान नाम धेय पूर्व	८४०००००	
(ञ) विद्यानुप्रवादपूर्व	११०००००	
(ट) कल्याणनाम-धेय पूर्व	२६०००००००	

दृष्टि वाद अंग के छब्बीस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अडसठ लाख छप्पन सहस्र पांच पद हुये ॥

टिप्पणी :-

द्रव्य श्रुतज्ञानका मानचित्र

- अंगप्रविष्ट
  - (१२) दृष्टिवादांग
    - परिकर्म (क)
      - १-चन्द्रप्रज्ञप्ति
      - २-सूर्यप्रज्ञप्ति
      - ३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
      - ४-द्वीपसागर प्रज्ञप्ति
      - ५-व्याख्याप्रज्ञप्ति
    - सूत्र (ख)
      - १-ऋषभसेनादिपूर्व
      - २-अग्रायणीपूर्व
      - ३-वीर्यानुप्रवादपूर्व
      - ४-अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
      - ५-ज्ञानप्रवादपूर्व
      - ६-सत्यप्रवादपूर्व
      - ७-आत्मप्रवादपूर्व
      - ८-कर्मप्रवादपूर्व
      - ९-प्रत्याख्याननामधेयपूर्व
      - १०-विद्यानुप्रवादपूर्व
      - ११-कल्याणनामधेयपूर्व
      - १२-प्राणावायु वा प्राणावादपूर्व
      - १३-क्रियाविशालपूर्व
      - १४-लोकबिन्दुसारपूर्व
    - प्रथमानुयोग (ग)
      - १-जलगता चूलिका
      - २-स्थलगता चूलिका
      - ३-मायागता चूलिका
      - ४-आकाशगता चूलिका
      - ५-रूपगता चूलिका
    - पूर्वगत (घ)
      - १-उत्पादपूर्व
      - २-अग्रायणीपूर्व
      - ३-वीर्यानुप्रवादपूर्व
      - ४-अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
      - ५-ज्ञानप्रवादपूर्व
      - ६-सत्यप्रवादपूर्व
      - ७-आत्मप्रवादपूर्व
      - ८-कर्मप्रवादपूर्व
      - ९-प्रत्याख्याननामधेयपूर्व
      - १०-विद्यानुप्रवादपूर्व
      - ११-कल्याणनामधेयपूर्व
      - १२-प्राणावायु वा प्राणावादपूर्व
      - १३-क्रियाविशालपूर्व
      - १४-लोकबिन्दुसारपूर्व
    - चूलिका (ङ)
      - (१) जलगता चूलिका
      - (२) स्थलगता चूलिका
      - (३) मायागता चूलिका
      - (४) आकाशगता चूलिका
      - (५) रूपगता चूलिका
  - अंगबाह्य (ये चौदह प्रकीर्णक हैं)
    - (१) सामायिकप्रकीर्णक
    - (२) चतुर्विंशतिस्तवप्रकीर्णक
    - (३) वंदनाप्रकीर्णक
    - (४) प्रतिक्रमण पूर्वकीर्णक
    - (५) वैनयिक पूर्वकीर्णक
    - (६) कृतिकर्म पूर्वकीर्णक
    - (७) दशवैकालिक पूर्वकीर्णक
    - (८) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक
    - (९) कल्पव्यवहार प्रकीर्णक
    - (१०) कल्पाकल्प प्रकीर्णक
    - (११) महाकल्प प्रकीर्णक
    - (१२) पुण्डरीक प्रकीर्णक
    - (१३) महापुण्डरीक पूर्वकीर्णक
    - (१४) निषिधिका प्रकीर्णक

किंकृतोऽयं विशेषः ? । वक्तृविशेषकृतः ॥ त्रयो वक्तारः । सर्वज्ञतीर्थकरः । इतरो वा श्रुतकेवली ॥

किम्[*] कृतः $\frac{3}{1}$ अयम् $\frac{1}{1}$ विशेषः $\frac{1}{1}$?	= यह प्रभेद (= विशेष) क्योंकर किया गया है ? अर्थात् यह श्रुत ज्ञान दो भेदरूप, अनेक भेदरूप और बारह भेदरूप है सो क्योंकर है ।
वक्तृविशेष-कृतः $\frac{3}{1}$	= (यह विशेष) वक्ता के विशेष वा भेद [होने के कारण] से किया गया है ।
त्रयः $\frac{1}{1}$ वक्तारः $\frac{1}{2}$	= तीन [प्रकार के] वक्ता हैं अर्थात् शास्त्र वा आगम के कहने वालों के तीन भेद हैं ।
सर्वज्ञ-तीर्थकरः $\frac{1}{1}$	= सर्वज्ञतीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर होकर पश्चात् सर्वज्ञता को प्राप्त करनेवाला
इतरः $\frac{1}{1}$ वा[*]	= अथवा (= वा) दूसरे [प्रकारके सर्वज्ञ] अर्थात् तीर्थंकर केवलीके अतिरिक्त भिन्न = श्रेष्ठ मनुष्य जिसने तपश्चरणके द्वारा सर्वज्ञता प्राप्त की है
श्रुतकेवली $\frac{1}{1}$	= श्रुतकेवली अर्थात् वह श्रेष्ठ पुरुष जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता है ।

१—(क) ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व के पाठी (ख) "द्वादशांगके पाठी" (ग) श्रुत केवली (घ) "पूर्वविदः" इन चारों वाक्यों के भावार्थ लिखते हैं

(क) मानचित्र पृष्ठ ४२६ से ज्ञात है कि दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग का चौथा भेद 'पूर्वगत' है और जिस क्रम से हमने मान चित्रमें दृष्टिवाद अङ्ग के भेद दिये हैं उसही क्रमसे जीवकांड गोम्मटसारगाथा ३६१, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५४, सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १६० में इसी दृष्टिवाद अंग के भेद दिये गये हैं इससे यह बात झलकती है वह जो ग्यारह अंग और पूर्वगत के भेद तक का पाठी हो अर्थात् ग्यारह अङ्ग पांचपरिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चौदह पूर्वोंका ज्ञाता हो इसको ग्यारहअंग चौदह पूर्वका पाठी कहेंगे नकि उसको जो केवल ग्यारहअङ्ग और चौदह पूर्वका पाठी परिकर्म-सूत्र प्रथमानुयोग को छोड़कर हो । बारह अङ्गोंके पठनमें से केवल चूलिका पांच रहजाती हैं ।

(ख) "द्वादशांग के पाठी" उनको कहेंगे जो बारह अङ्ग के पाठी हों अर्थात् चौदह प्रकीर्णकों को छोड़कर शेष सब श्रुतज्ञान के पाठी हों ॥

(ग) श्रुतकेवली वो है जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता हों । अर्थात् समस्त द्रव्य श्रुत ज्ञात को जानते हों ॥

(घ) "पूर्वविदः" यह वाक्य नवमें अध्याय के सैंतीसवां सूत्र "शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः" में आया है और इसका अर्थ सर्वार्थसिद्धि संस्कृतवृत्ति (पृष्ठ ४५२) तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृष्ठ ३५४) और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (पृष्ठ ५८४) और जहांतक हमने अवलोकन किया है सब भाषा टीकाकारों ने जैसे प० जयचन्द्रजी, सदासुखजी, पन्नालालजी, नाथूरामजी इत्यादिकों ने "श्रुतकेवली" किया है अब प्रश्न यह है कि "पूर्वविदः" वाक्य का अर्थ श्रुतकेवली कैसे हुआ क्योंकि व्याकरण में "पूर्वविदः" का अर्थ पूर्व के जानने वाले ऐसा ही होता है अर्थात् पूर्व तक जानने वाले भावार्थ उक्त "ग्यारहअङ्ग चौदह पूर्व तक के पाठी हों ॥

आरातीयश्चेति ॥ तत्र सर्वज्ञेनपरमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्टः ॥ तस्य

च* आरातीयः $\frac{1}{1}$ इति* = इस दूसरी गणना में गणधर जो चार ज्ञान के धारक होते हैं सम्मिलित हैं और (=च) आरातीय अर्थात् केवलज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों को छोड़कर अन्य आचार्य, सूत्रकार टीकाकार और ग्रन्थकार ऐसे हैं।

तत्र* सर्वज्ञेन $\frac{3}{1}$ परमर्षिणा $\frac{3}{1}$ परम-अचिन्त्य-केवलज्ञान-विभूति-विशेषेण $\frac{9}{1}$। = तहाँ सर्वज्ञकरि (जो) उत्कृष्ट ऋद्धि है (और) जो उत्कर्ष वा प्रधान अचिन्त्य = केवलज्ञान ऐश्वर्य के विशेष सहित है।

अर्थतः * आगमः $\frac{1}{1}$ उद्दिष्टः $\frac{1}{1}$ = अर्थतैं, आगम वा शास्त्र उपदेशागया है अर्थात् अर्थको आश्रयकरि अभिप्राय को प्रगट करते हुए वा तात्पर्य को लिये हुये उक्तसम्बन्धने आगम को कहा है

तस्य $\frac{6}{1}$ प्रामाण्यम् $\frac{1}{1}$ = तिस (आगम) का प्रमाणपना वा विश्वसनीयता (=प्रामाण्यम्) विश्वास्यता

(उत्तर) टिप्पणी पृष्ठ ४०६ से विदित है कि अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके अठारह भेद अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतप्राभृत प्राभृत, वस्तु, पूर्व ये नव भेद और क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सर्व मिलि अठारह भेद हुए अर्थात् सत्रहवां भेद "पूर्व" है और अठारहवां भेद "पूर्वसमास" है॥ "पूर्व" अन्तका भेद नौ भेदों में से उत्कृष्ट है। मेरी समझ में "पूर्वविदः" वाक्यसे "पूर्वसमासविदः" प्रयोजन है अर्थात् श्रुतज्ञान का यह सर्व से उत्कृष्ठ भेद है कि जिसके ऊपर अब किसी अक्षर की क्रम से वृद्धि नहीं हो सकती है॥ द्रव्य श्रुतज्ञान के सबसे उत्कृष्ट भेद तक के जानने वाले सो पूर्वसमासविदः हैं बोलते बोलते व्यवहार में समास शब्दको छोड़ दिया और पूर्व समासविदः के स्थान में पूर्व विदः कहने लगे। अब श्रुतज्ञानके सबसे उत्कृष्ट भेद के ज्ञाता हुये और श्रुतज्ञान का इस भेद से ऊपर कोई भेद है ही नहीं पूर्वसमास श्रुतज्ञान के ऊपर कोई अक्षर श्रुतज्ञान का अवशेष रहता ही नहीं कि कोई अन्य भेद किया जाय और श्रुतकेवली वही है जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान को जानता है— इसलिये पूर्वविदः (=पूर्वसमासविदः) का अर्थ सर्व द्रव्य श्रुतज्ञानयुक्त बीस अक्षर के प्रमाण ज्ञाता हुआ अर्थात् श्रुतकेवली हुआ। यह अर्थ समझ के अनुकूल लिखा, विशेष अर्थ पाठकगण विचार लें॥

(१) प्रामाण्य शब्द के दो अर्थ एक प्रमाणपना दूसरा विश्वसनीयता वा विश्वस्यता है (देखो वैद्य कोश पृष्ठ ४६० और आप्टेकोश पृष्ठ ७६)

प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृतग्रन्थरचनमङ्गपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं तत्प्रामाण्यात् ॥ आरातीयैःपुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धं,तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति॥क्षीरार्णवजलंघटगृहीतमिव।

प्रत्यक्षदर्शित्वात् ५ ॥ प्रक्षीण—दोषत्वात् ५ ॥ च* = (सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और = च) उत्कृष्ट निर्दोषपना से है
तस्य ६ । साक्षात् * शिष्यैः ३ । बुद्धि—अतिशय— = तिस (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अतिशय और
ऋद्धियुक्तैः ३ । गणधरैः ३ । श्रुतकेवलिभिः ३ । = ऋद्धि करि सहित जे गणधरद्वारा और श्रुतकेवलियों करि
अनुस्मृत—ग्रन्थरचनम् १ ॥ = (उन गणधरों और श्रुतकेवलियों के) स्मरण के अनुसार ग्रन्थ रचना है
अङ्ग — पूर्व लक्षणम् १ ॥ = जो अंगों और पुर्वों का हेतु वा अवसर (= लक्षण—देखो वैद्यजी रचित कोष पृष्ठ ३१७)

तत्प्रमाणं १ ॥ तत्—प्रामाण्यात् ५ ॥ = उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
आरातीयैः ३ । पुनर् * आचार्यैः ३ । = और आरातियों करि [अर्थात्] पिछले आचार्यों करि भावार्थ केवल ज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों के अतिरिक्त जे पिछले आचार्यों करि

कालदोषात् ५ । संक्षिप्त—आयुस्-मति-बल-शिष्यअनुग्रह- = कालके दोष से थोड़ी अथवा अल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के(धारक) शिष्यों के उपकारके
अर्थम् १ ॥ दशवैकालिक—आदि - उपनिबद्धम् १ ॥ = लिये दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
तत् प्रमाणम्—१ ॥ अर्थतः * = उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से (जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है।

तत् १ ॥ [तद् १ ॥] एव * इदम् १ ॥ इति * = सो (तद्) ही (एव) यह (= इदम्, ऐसे है (इति)
घट-गृहीतम् १ ॥ क्षीर-अर्णव-जलम् १ ॥ इव * = मानो (= इव) घड़ामें ग्रहण किया गया वा भराभया क्षीर समुद्र का जलहै अर्थात् जैसे क्षीर समुद्र का थोड़ा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि घड़े का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसेहा ये दशवैकालिक सर्वज्ञ की परम्परायसे उसी अर्थ को लेकर आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल कहे हैं वोही हैं वास्तव में सर्वज्ञकथितपदार्थ ही इनमें कहा गया है अतः यह प्रमाणभूत है।

व्याख्यातं परोक्षम् । प्रत्यक्षमिदानीं वक्तव्यम् । तत् द्वेधा-देशप्रत्यक्षं सकलप्रत्यक्षं च ॥ देशप्रत्यक्षमवधिमनःपर्ययज्ञाने। सर्वप्रत्यक्षं केवलम् ॥ यद्येवमिदमेव तावदवधिज्ञानं त्रिप्रकारस्य प्रत्यक्षस्याद्यं व्याक्रियतामित्यलोच्यते ॥ द्विविधोऽवधिः । भवप्रत्ययः क्षयोपशमनिमित्तश्चेति ॥ तत्र भवप्रत्यय उच्यते-

परोक्षम् ।॥ व्याख्यातम् ।॥ प्रत्यक्षम् ।॥ = परोक्ष (प्रमाण मति-श्रुत) कहेगये हैं प्रत्यक्ष(प्रमाण अवधि, मनः पर्यय केवल ज्ञान
इदानीम् * वक्तव्यम् ।॥। तत् ।॥। द्वेधा । देश-प्रत्यक्षम् ।॥। = अब(= इदानीम्) कहने योग्य हैं । वह (प्रत्यक्ष ज्ञान) दो प्रकारहैं । देश प्रत्यक्ष
च * सकल- प्रत्यक्षम् ।॥। देश-प्रत्यक्षम् ।॥। = और (= च) सकल प्रत्यक्ष । देश प्रत्यक्ष
अवधि-मनः पर्ययज्ञाने ।॥। सर्व-प्रत्यक्षम् ।॥। केवलम् ।॥। = अवधि मनः पर्यय ज्ञान हैं । सकल प्रत्यक्ष केवल ज्ञान है
यदि * एवम् । तावत् * इदम् ।॥। एव * = जो (= यदि) इस प्रकार (= एवम्) है तो (= तावत्) यहही
अवधिज्ञानम् ।॥। त्रिप्रकारस्य ।॥। प्रत्यक्षस्य ।॥। आद्यम् ।॥। = अवधि ज्ञान जो तीन प्रकार के प्रत्यक्ष (ज्ञानों) के पहिले है
व्याक्रियताम् । इति * अत्र * उच्यते । = (वह अवधि ज्ञान) वर्णन किया जाय । ऐसा (पूंछने पर) यहां कहा जाय है
द्वि-विधः ।॥। अवधिः ।॥। भवप्रत्ययः ।॥। = अवधि (ज्ञान) दो प्रकार है । भवप्रत्यय (जो पर्यायरूप कारण से उत्पन्न हो)
च * क्षयोपशम निमित्तः ।॥। इति * = और (= च) क्षयोपशम निमित्तक वा क्षयोपशम जन्य वा गुण प्रत्यय अर्थात् अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला
तत्र * भवप्रत्ययः ।॥। उच्यते । = वहां भवप्रत्यय (अवधि ज्ञान निम्न लिखित इक्कीसवां सूत्र में] कहा जाता है

(१) "त्रिः प्रकारस्य" इस वाक्य में त्रि और प्रकार इन शब्दों के बीच में त्रिशूल (:) भूत से मुद्रित होगये हैं क्योंकि त्रि शब्द के प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग-स्त्रीलिंग-नपुंसकलिंग यथासंख्य त्रयः त्रिस्रः त्रीणि हैं और क्योंकि त्रिः का अर्थ तीनवार का है जैसे त्रिःसप्तकृत्वः परशुरामः पृथिवीम् अक्षत्रियाम् अकरोत्=तीनवार (=त्रिः) गुणित सातवार (अर्थात् इक्कीसवार) परशुराम ने पृथिवी को क्षत्रियरहित किया यहां पर तीन वार का अर्थ लगता नहीं है (२) व्याक्रियताम् :-यह वाक्य "कृ"(=करना वर्णन करना अर्थ में) धातुमें वि और आ' उपसर्गों के लगाने से कर्मणि प्रधान में लोट् वा आज्ञार्थ क्रिया का प्रथम पुरुष ताम् प्रत्यय लगाने से निम्नलिखित नियमों से बना है। (क) धातु में 'य'लगा कर आत्मनेपद प्रत्यय जोड़ने से कर्मणि प्रधान प्रयोग बनजाता है। (ख) यदि धातुके अन्तमें जो ऋ हो और उसके पूर्व कोई संयोग अक्षर न हो तो कर्मणि प्रयोगके य के पहिले ऋ के स्थानमें रि कर देते हैं जैसे कृ का कि होगया। (ग) कर्मणि प्रयोगों में धातुओं के गणों के भेदों का विचार नहीं किया जाता है सर्व प्रकार के धातुओं से वे एक ही प्रकार से बनाये जाते हैं ॥ धातुओं के रूप में क्वचित् कहीं परिवर्तन होजाता है। यहांपर वि+आ+कि+य=व्याकिय हुआ ताम् प्रत्यय लगाने से व्याकियताम् होगया।

सर्वार्थ

॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भव इत्युच्यते । को भवः ? । आयुर्नामकर्मोदयनिमित्त आत्मनः पर्यायो भवः । प्रत्ययः कारणं नि-
मित्तमित्यनर्थांतरम् ॥ भवःप्रत्ययोऽस्य भवप्रत्ययोऽवधिः। देवनारकाणां वेदितव्यः ॥ यद्येवं

सूत्रम् [१]भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—भव प्रत्ययः। अवधिः। देवनारकाणाम्। = देव और नारकी (जीव) नि के अवधिज्ञान जन्म निमित्तक है

अर्थात् नारकी जीव और देवों के अवधि ज्ञान होने में नरक योनि तथा देव योनि में उत्पत्ति होना एक मुख्य कारण है । भावार्थ जैसे पक्षियों में जन्म होना ही आकाश में गमन करने का निमित्त है न कि शिक्षा, जप, तप, आदिक वैसे ही नारकी और देवों की पर्यायों में उत्पत्ति मात्र से ही अवधिज्ञान प्राप्त होता है ॥
तीर्थंकरों के भी भवप्रत्ययः अवधिज्ञान होता है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इक्कीसवां सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्ति का शब्दशः हिंदी अनुवाद

भवः। इति* उच्यते । कः। भवः। आयुर्नाम-	= भव ऐसा (इस सूत्र में) कहा गया है (सो) भव क्या है ? आयुष्नामा
कर्म-उदय-निमित्तः। आत्मनः। पर्यायः। भवः।	= कर्म का उदय है कारण जिसको ऐसा आत्मा का पर्याय सा भव है ।
प्रत्ययः। कारणम्।। निमित्तम्।।इति अनर्थान्तरम्।।।	= प्रत्यय कारण निमित्त ऐसे (ये तीन शब्द) सामान्य अर्थ वाचक हैं
भवः। प्रत्ययः। अस्य। भवप्रत्ययः। अवधिः।	= भव पर्याय वा जन्म है कारण जिसका (सो) भवप्रत्ययअवधिज्ञान
देवनारकाणाम्। वेदितव्यः। यदि*एवम् *	= देव और नारकी जीवों के जानना योग्य है । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो)

१) इस सूत्र का पाठ दिगम्बर आम्नायमें एक है। श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्र के प्रथम २१ वां सूत्र "के विधोऽवधिः" = दो प्रकार (भवप्रत्यय और क्षयोपशम निमित्त) अवधि (ज्ञान) है। द्विविधो अवधिः "के पदछे "भवप्रत्ययो नारक देवानाम्" बाईसवां सूत्र है जिसमें अवधि शब्द की अनुवृत्ति " द्विविधोऽवधिः" से ली है तब बाईसवां सूत्र- भवप्रत्ययोऽवधि नारक देवानाम ऐसा बन जाता है । अब हमारे यहांके इक्कीसवांसूत्र का पाठ यदि सभाष्य० के बाईसवांसूत्र को अनुवृत्ति सहितमिलाया जायतो दोनों एक होजाते । केवल इतना रहताहै किहमारेयहां केपाठमें देवशब्द प्रथम हैं उनके यहां नारकशब्द प्रथमहै. अर्थपैप्रभाव नहीं पडता

तत्र क्षयोपशम निमित्तत्वं प्राप्नोति। नैष दोषः। तदाश्रयात्तत्सिद्धेः॥ भवं प्रतीत्य क्षयोपशम :सञ्जायत इति कृत्वाभव: प्रधानकारणमित्युपदिश्यते॥

तत्[1] क्षयोपशम-निमित्तत्वम्[2]॥ (१)प्राप्नोति;न एषःदोषः = वहां क्षयोपशम का निमित्तपना नहीं प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तद्—आश्रयात्[3]। ( ) = क्योंकि उस(देव-नारकियों के भव)के आश्रय से उस (क्षयोपशम निमित्त पना) की
तत्—सिद्धेः[4]॥ ; भवम्[5] प्रतीत्य ÷ = सिद्धि होती है।भव को समर्थन करि वा प्रतिपादनकरि वा निर्णीतकरि (= प्रतीत्य)
क्षयोपशमः[6]। सञ्जायते(+)[7] इति * कृत्वा ⁂ = क्षयोपशम साथ साथ अवधिज्ञान के उत्पन्न होता है। ऐसा करके
भवः[8]। प्रधान-कारणम्[9] ॥॥ = (देव नारकियों का)[10](भव) उक्त अवधिज्ञान का मुख्य निमित्त है
(और अवधि ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम तौ भव के हेतु से होता ही है)
इति ⁂ उपदिश्यते[11]। = ऐसा उपदेश किया गया है। इस प्रश्न और उत्तर का स्पष्ट सारांश यह है कि सिद्धान्त के अनुकूल किसी प्रकार का अवधिज्ञान कहीं और कभी भी अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के विना नहीं होता है इसी आगम के सिद्धान्त को शिष्य ने चित्त में राखकर प्रश्न कर दिया कि यदि देव और नारकियों की पर्यायवा भव ही अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है तो यह अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की कुछ भी अपेक्षा न ठहरी (उत्तर) अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम तौ अंतरंग कारण है ही। सो दोऊ प्रकार की अवधि में पाईये है या बिना तो अवधिज्ञान उपजै नाहीं। तातैं यहां बाह्य निमित्त की अपेक्षासे कथन है। तब भव प्रत्ययअवधि कू तौ प्रधान कारण भव ही है॥

(१) "प्राप्नोति" के लिये देखो पृ. २६१ (२) प्रतीत्य और कृत्वा दोनों संबंधसूचकभूत कृदन्त हैं।

(३) सम् + जायते = सञ् + जायते॥ किसी शब्द अथवा प्रत्यय के अन्त में 'म्' हो, और इस म् के पश्चात् कोई व्यञ्जन आवै तो म् प्रायः लेखक की इच्छानुसार अनुस्वार में परिवर्तित हो जाता है और उक्त म् अदृश्य हो अनुस्वार में पलट जाता है यदि म् के पीछे श्-ष्-स्-ह् अथवा ह् आवै। यदि हम पहिले नियम में अनुस्वार में म् को न पलटें तौ वह म् उसवर्ग के पांचवें अक्षर में परिवर्तित हो जाता है जिस वर्ग का अक्षर उस म के पीछे आवै अतः यहां सम् का सञ् होकर सञ्जायते होगया॥

यथा पतत्त्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिक्षागुणविशेषः, तथा देवनारकाणां व्रतनियमाद्यभावेऽपि जायत इति भवप्रत्यय इत्युच्यते । इतरथा हि भवः साधारण इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात् इष्यते च तत्रावधेः प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिः ।

सर्वार्थ

यथा* पतत्त्रिणः[1] गमनम्[1]॥ आकाशे[1] भवनिमित्तम्[1]॥ न* शिक्षागुणविशेषः[1] तथा* देव-नारकाणाम्[1] व्रत-नियमादि-अभावे[1] अपि* जायते T इति* भव-प्रत्ययः[1] इति* उच्यते T इतरथा* हि*

भवः[1] साधारणः[1] इति* कृत्वा* सर्वेषाम्[1] अविशेषः[1] स्यात् T च* तत्र* अवधेः[1] प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः[1]॥ इष्यते T

= जैसे पक्षी का आकाश में गमन [करने को] भव का पर्याय
= कारण है न कि शिक्षा का गुण विशेष तैसे
= देव और नारकियों के व्रत नियम आदि के न होने पर भी
= (अवधिज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार भव निमित्तक है ऐसे कहा गया है
= अन्यथा (= इतरथा) तो (= हि) अर्थात्
यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञान के होनेका कारण देव और नारकियोंका केवल भवही होतो
= भव (सब देवनारकियों के) समान है ऐसा मानकर समस्त (देवनारकियों) के
= (भव प्रत्यय अवधिज्ञान) विशेष रहित वा एकसा होना चाहिये
= और वहां (देवनारकियोंमें) अवधि कीप्रवृत्ति वा स्थिति (= वृत्तिः) हीनाधिक
= मानी गई है अंगीकार कीगई है वहां क्षयोपशम का विशेष है । यहां सार यह है कि सर्व प्रकार के अवधिज्ञानों में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो अन्तरङ्गकारण जीवके अवश्य ही है बिना इस अंतरङ्ग कारण के अवधिज्ञान कभी किसी भी जीव के नहीं होसकता है देवनारकियोंमें भी अवधिज्ञान घाटि वाढि है सो हीनाधिक क्षयोपशमके हेतुसेहै परन्तु क्षयोपशमका अस्तित्व सबकेहै।

४२३

(१) आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) जन् (= उत्पन्नहोना) दिवादि चतुर्गण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है। प्रयोग अथवा व्यवहार में जन् का जा आदेश होजाता है। य चतुर्गण का विकरण है। ते अन्यपुरुष (= प्रथमपुरुष) एक वचन वर्तमान कालका आत्मनेपदी प्रत्ययहै ॥ अतः जन् + य + ते = जा + य + ते = जायते, उत्पन्न होता है ॥

देवनारकाणामित्यविशेषाभिधानेऽपि सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणंकुतः ? अवधि ग्रहणात् मिथ्यादृष्टीनां च विभंग इत्युच्यते ॥ प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तेश्च आगमतो विज्ञेया

देवनारकाणाम् ६। इति ##	= (भव प्रत्यय अवधिज्ञान का होना) " देवनारकाणाम् " ऐसा (इस सूत्र में)
अविशेष-अभिधाने ७। अपि ##	= विशेष रहित वा भेद रहित (= अविशेष) कहने पर भी (= अभिधाने अपि)
सम्यग्दृष्टीनाम् ६। एव ## ग्रहणम् १।॥ कुतः ? *	= केवल (= एव)सम्यग्दर्शनधारकनि(देव नारकियों) का ग्रहण कैसे(कुतः) हुआ ? प्रश्न का तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान सदैव सम्यग्दृष्टियों के होताहै और चौथे गुणस्थान से बारह गुणस्थान तक इसका अस्तित्व है आपने 'देवनारकियों के' अभेदरूप से सूत्र में भवप्रत्ययअवधिज्ञान का होना कैसे कह दिया क्योंकि सब देवनारकी सम्यग्दृष्टी नहीं हैं इस सूत्र से अवधिज्ञान का होना केवल सम्यग्दृष्टी देवनारकियों के कैसे निकलता है सो कहिये
अवधि-ग्रहणात् ५।॥	= (उत्तर) (सूत्र में) अवधि(शब्द)के लाने से (स्पष्ट है कि सम्यग्दृष्टी देवनारकियों से प्रयोजन है)
च ## मिथ्यादृष्टीनाम् ६। विभङ्गः १।	= और(= च) मिथ्यादृष्टी (देव-नारकी-मनुष्य-तिर्यंच) निकेविभंग अवधिज्ञान है
इति ## उच्यते T	= ऐसा(इस अध्याय का इकतीसवां सूत्र) कहा गया है मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च = [मतिश्रुतअवधि- येतीन ज्ञान-विपर्य भी होतेहै अर्थात् मिथ्याज्ञान भीहैं]
च ## प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः १।॥	= और (देव नारकियोंके) हीनाधिक अवधिकी स्थिति (वृत्तिः)वा विद्यमानता (= वृत्तिः)
आगमतः ## विज्ञेया १।॥	= (अन्य) शास्त्रसे जानो वा जाननायोग्य है। [इस पृष्ठ, की पृष्ठ ४३५की टिप्पणी देखो]

(१) द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा से जिसके विषय की सीमा हो उसको अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। देवके नारक के, और तीर्थंकरके भवों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होकर जो अवधिज्ञान हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं।

यदि भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।

सर्वार्थ

यदि* भव-प्रत्ययः‡। अवधिः‡। देवनारकाणाम्‡। = जो भवनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है तो

भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी तथा तीर्थंकरों के होता है और यह (भवप्रत्यय अवधिज्ञान) संपूर्ण अंग से उत्पन्न होता है अर्थात् समस्त आत्मप्रदेशों से उत्पन्न होता है। और गुणप्रत्यय वा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिक कलश सांथिया, मछली आदिक शुभ चिन्हों से होता है। उक्त जगह के आत्म प्रदेशों में होने वाले, अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उक्त क्षयोपशम ज्ञान होता है।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान नियम से देशावधि ही होता है। (गोम्मट०गाथा ३७०,३७१.३७३ निरूपणमें अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण यह है कि सातवीं भूमि में अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण एक कोस है। छठवीं भूमिमें डेढ़कोस, पाँचवीं में दो कोस, चौथी में अढ़ाई कोस; तीसरी में तीन कोस; दूसरी में साढ़े तीन कोस, प्रथम पृथिवी में चार कोस (अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण) है॥

भवनवासी और व्यन्तरों को अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण पच्चीस योजन और जघन्य काल कुछ हीन एक दिन है। और ज्योतिषी देवों को अवधि का (जघन्य क्षेत्र इस (पचीस योजन) से संख्यात गुणाहै और (जघन्य) काल इस (कुछ हीन एक दिन) से बहुत अधिक है

असुरकुमारोंको अवधिका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है (=असुराणमसंखेज्जा कोडीओ=असुराणाम् असंख्येयाःकोट्यः) गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४२७ मुद्रित पृष्ठ ८५०॥ इसी पर जीवतत्व प्रदीपिका टीका "असुराणां उत्कृष्ट विषय क्षेत्रं असंख्यात कोटि योजन मात्रं=असुरों का उत्कृष्ट (अवधिज्ञानका) विषय भूतक्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन मात्र है परंतु तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार अवधि "उत्कृष्ट अधोभागमें तो असुरकुमार निमें असंख्यात योजन कोटा कोटि पर्यंत है"(="उत्कृष्टोऽसुराणामसंख्याता योजन कोटि कोट्योधः" पन्नालाल जी दूनी अनुवादित राजवार्तिक सूत्र २१ और संस्कृत तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ८५॥ शेष नौ प्रकारके भवनवासी देव तथा व्यंतर और ज्योतिषी देवोंकी अवधिका उत्कृष्ट विषय क्षेत्र 'असंख्यात सहस्र योजन है। देखो जी०का गोम्मट०गाथा४२७॥ ज्योतिषियों देवों की अवधि "ऊर्ध्वभाग में अपने विमान के उपरि भाग पर्यंत है अर तिर्यग् असंख्यात कोटा कोटीयोजन प्रमाण है' पन्नालाल जी दूनी का अनुवाद सूत्र२१ "ज्योतिषां.....ऊर्ध्वम् आत्मीय विमानस्य-उपरि पर्यंतः-तिर्यग्-असंख्याता योजन कोटी कोट्यः")

असुरकुमारों की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असंख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी व्यंतर ज्योतिषीयों की अवधिके उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से संख्यात में भागमात्र है॥

अथ क्षयोपशमहेतुः केषाम्

अथ = क्षयोपशम-हेतुः[1]। केषाम्[2]। = अब (अथ—अवधि ज्ञान के उत्पत्ति का) क्षयोपशमनिमित्त किनके हैं

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनकी अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे न्यून होता है और तिर्यग्रूप से (अर्थात् इधर उधर तिरछे रूप से) अधिकहोता है तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित (घानियत) स्थान से सुरगिर के (मेरु के) शिखर पर्यंत अवधि द्वारा देखते हैं

वैमानिक देवो में सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों के जघन्य अवधिज्ञान ज्योतिषी देवों के उत्कृष्ट है सो है अर्थात् असंख्यात सहस्र योजन है। और उत्कृष्ट रत्नप्रभा का वा प्रथम भूमि का अन्त पर्यंत है जो नीचेका सौधर्म ईशान स्वर्ग से डेढ़ राजू है। 'सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान तो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) का अन्त तक है अर उत्कृष्ट अधोभाग में शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) पर्यंत जो सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्गों से नीचे को चार राजू है होता है ॥ ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) के अंत लग है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से शर्करा प्रभा नीचे को साढ़े चार राजू है और लांतव काषिष्ठ स्वर्गों से शर्करा प्रभा [दूसरी पृथिवी] पांच राजू है ॥ और उक्त चार स्वर्ग निवासियों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में बालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से बालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है और लांतव कापिष्ट स्वर्गों से अधोभाग में उक्त तीसरी पृथिवी छह राजू है ॥

शुक्रमहाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्ग निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान बालुका प्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत लग है शुक्र महाशुक्र स्वर्ग से बालुका प्रभा साढ़े छह राजू नीचे को है और शतार सहस्रार स्वर्गों से उक्त तीसरी पृथिवी नीचे को सात राजू है उत्कृष्ट अवधिज्ञान शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्गों के देवों के अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) का अंत पर्यंत है ॥ शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से नीचे को पंकप्रभा साढ़े सात राजू है और शतार सहस्रार से उक्त चौथी पृथिवी अधोभाग में आठ राजू है ॥ आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी भूमि) के अन्त पर्यंत है आनत प्राणत स्वर्गों से पंकप्रभा (चौथा पृथिवी) नीचे का साढ़ेआठ राजू है और आरण अच्युत स्वर्गोंसे पंकप्रभा नौ राजू अधोभाग में है। और उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का धूमप्रभा (पांचवी पृथिवी) के अन्त तक है आनत प्राणत स्वर्गोंसे धूमप्रभा साढ़े नौ राजू नीचे को है और आरण अच्युत से धूमप्रभा पृथिवी दशराजू अधोभाग में है ॥

इत्यत आह ॥

इति॑ अतः* आह ।

= ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान धूम प्रभा (पांचवीं पृथिवी)के अंत पर्यंत है। जो दश राजू से अधोभाग में अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो माप में अधोभाग को ओर ग्यारह राजू है ॥ सौधर्मादिदेवाः उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यंति गोम्मटसार पृष्ठ ८५३ = सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्गका विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

"नव अनुदिशविमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सर्वलोकनाली जो त्रसनाली ताकों देखे हैं ... बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यन्त अर नीचैं को वाह्य तनुवात पर्यन्त सर्व त्रसनाली कों देखे हैं सो अनुदिश विमानवाले तौ कछू एकअधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले चारिसे पचास धनुष आटि इकवांस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौड़ा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कों देखे हैं" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवांस योजन और चारसौ पचास धनुष घटाइये जो क्षेत्र शेष रहै सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई में अर एक राजू चौड़ाई मे अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्वायतां च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्ति" इस संस्कृत वाक्य का ज्ञात होता है ॥अनुदिश विमान वाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौड़ा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपर्युक्त जो क्षेत्रों का "परिमाण कोया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लोयं नियम रूप न जानना। जातैं अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र कौं जांइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाहीं जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढ़ राजू नीचैं और जानैं। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्र ही कों जानै ऐसैं सर्वत्र जानना" ॥ जो० कां० गोम्मट मुद्रित पृष्ठ ८५३, ८५४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों की अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नहीं है। कल्पवासी देवों की अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकोर) किन्तु लम्बाई में अधिक और चौड़ाई में थोड़ा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनको अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म - ईशान स्वर्गों के देवों की अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पवाले देवों की अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग है। इसके ऊपर लांतव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवों की अवधिकाकाल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है ॥

॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

= क्षयोपशमनिमित्तः (अवधिः) षड्विकल्पः शेषाणाम् (जीवानाम् भवति)

सूत्रार्थः—क्षयोपशमनिमित्तः[1]।
= [अवधिज्ञानावरणीय कर्म के] क्षयोपशम निमित्त [से उत्पन्न होने] वाला

अवधिः[1]।
= अवधि जिसके [अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित]

षड्विकल्पः[1]। शेषाणाम्[2]। जीवानाम्[3]। भवति[T]
= छह भेद हैं सो शेष जीव [जे पर्याप्त संज्ञी सम्यग्दृष्टी मनुष्य तिर्यंच] निके होता है

सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे क्षयोपशम होता है इससे इसको गुणप्रत्यय अवधिभी कहते हैं॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्र का संख्या तेईसवीं है "यथोक्त निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२३॥ ऐसा पाठ है समाप्यतत्त्वार्था धिगमसूत्र पृष्ठ २२ में "यथोक्त निमित्तः क्षयोपशमनिमित्तः इत्यर्थः" अतः दोनों आम्नायों में इस सूत्र का अर्थ एकसा होजाता है ॥

(२) शेषाणाम् :—निम्नलिखित ग्यारह सूत्रों के पाठ इस अध्याय में इस प्रकार हैं कि तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् —तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥२॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ॥ सूत्र ४॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥सूत्र ४॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ६ ॥ मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ६ ॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥ आद्ये परोक्षं ॥ ११ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधः इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधइत्यनर्थान्तर अध्याय १ सूत्र १३ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त ॥ अध्याय १ सूत्र १४ ॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ सूत्र १६॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणांसेतराणाम् ॥ १६ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यां ॥ १९ ॥ श्रुतमतिपूर्वंद्व्यनेकद्वादश भेदम् ॥ २० ॥ श्रुतमतिपूर्वंद्व्यनेकद्वादश भेदं ॥ भवप्रत्योऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ सूत्र २१ ॥ भवप्रत्योऽवधिर्देवनारकाणां ॥ अध्याय १ सूत्र २१॥ क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २२ ॥ क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २२ ॥

इन प्रत्येक सूत्र के प्रथम पाठ के अंत में 'म्' हैं और प्रत्येक सूत्रके द्वितीय पाठ में अनुस्वार है ॥ 'म्' के स्थान में जो म् पद के अंतका हो अनुस्वार हो जाता है यदि उसम् के पीछे कोई व्यंजन आवे किसी भी पाठ के पश्चात् कोई व्यंजन नहीं आया इसलिये म् के स्थान में अनुस्वार नहीं हो सका है -- अर्थात्

अवधिज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभावः क्षयः । तेषामेवानुदयप्राप्तानां सदवस्था उपशमः । तौ निमित्तमस्येति क्षयोपशमनिमित्तः । सः शेषाणां वेदितव्यः ॥ के पुनः शेषाः ? । मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च । तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति तत्रैव वेदितव्यः । नह्यसंज्ञिनामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति ॥ संज्ञिनां पर्याप्तकानां च न सर्वेषाम् ॥ केषांतर्हि

अवधिज्ञान-आवरणस्य १॥ देशघाति-स्पर्द्धकानाम्१। = अवधिज्ञानावरणीय कर्मके देशघाति स्पर्द्धकोंके (स्पर्द्धक पुल्लिंग पुंसक दोनों है)
उदये १ सति १। सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् १। उदय— = उदय होने पर (=सति) और सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदय में (आकर फल न दे)
अभावः१। क्षयः१। तेषाम्१। एव * = अभाव रूप (सो)क्षय है (और) तिन (सर्वघाति स्पर्द्धकों) के ही
जो आगे उदयमें आवेंगे वर्तमान में
अन्-उदयप्राप्तानाम्१। सत्-अवस्था१॥ उपशमः१। = उदय रहित प्राप्त जो सत्ता रूप अवस्था सो उपशम है
तौ १। निमित्तम्१॥ अस्य १। इति * क्षयोपशमनिमित्तः१। ते दोनों (उपर्युक्त क्षय और उपशम) हैं कारण जिसके ऐसा क्षयोपशमहेतु है
सः१। शेषाणाम्१। वेदितव्यः१। के ३। पुनर् शेषाः ३। ? = वह [क्षयोपशम निमित्त] शेष [जीव] तिनिकें जानों । पुनि कौनअवशेष हैं ?
मनुष्याः३। तिर्यञ्च ३। च * = [उत्तर] मनुष्यऔरतिर्यंच हैं अर्थात् देव और नारकी पूर्व इक्कीसवें सूत्र में कहे
अतः मनुष्य और तिर्यंच शेष रह गये सो इस सूत्र में कह दिये
तेषु ३। अपि * यत्र * सामर्थ्यम्१॥ अस्ति T तत्र * = तिन [मनुष्य और तिर्यंचों] में भी जहां योग्यता [=सामर्थ्य] है तहां
एव वेदितव्यः३। नहि * अस्ति असंज्ञिनाम्३। च * = ही जानना योग्यहै॥ नहीं हैं असंज्ञियों के और [=च]
अपर्याप्तकानाम्३। तत्सामर्थ्यम्१॥ = अपर्याप्तकों के उस क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान होने की योग्यता
संज्ञिनाम् १। पर्याप्तकानाम्३। च * तत्* सर्वेषाम्१। = तैसा पर्याप्तकों के भी [=च] सबके [अवधिज्ञान] नहीं होता है ॥ [प्रश्न]
केषाम्३। तर्हि * = तौ [=तर्हि] किन [मनुष्य और तिर्यंचों] के (अवधिज्ञान) होता है ?

प्रत्येक सूत्र का द्वितीय पाठ जिनमें अनुस्वार म् के स्थान में पाया गया है जैनेन्द्रव्याकरण, जैनेन्द्रप्रक्रिया, शब्दार्णव चन्द्रिका पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी, शाकटायन व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं परन्तु कातन्त्र रूप माला के "विरामे वा" (=वामकारस्य पदान्तस्य अनुस्वारं भवति विरामे) म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि (हमारी इच्छानुसार) अनुस्वार होजाता है यदि म् के पश्चात् में विराम हो जो म के पीछे कोई व्यञ्जन न आवे तौ भा इस बानवे सूत्र के अनुकूल शुद्ध हैं (अवश्य देखो टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, ५४०, ५४१ ॥) सर्वार्थसिद्धि-श्लोक वार्तिक मुद्रित-इत्यादि में म् है परन्तु राजवार्तिक मुद्रित में और किसी किसी अन्य पुस्तक के पाठ में अनुस्वार भी है ॥

यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसन्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्योपलब्धिर्भवति । सर्वस्य क्षयोपशमनिमित्तत्वे क्षयोपशमग्रहणं नियमार्थं क्षयोपशम एव निमित्तं न भव इति ॥

यथोक्त-सम्यग्दर्शनादि-निमित्त-सन्निधाने ॥॥
सति ॥॥ शान्त-क्षीण-कर्मणाम् ॥
तस्य ॥॥ उपलब्धिः ॥॥ भवति ।

= जैसाकि ऊपर कहा गया है (= यथा उक्त) कि सम्यग्दर्शनादिक कारणों के निकट
= होने पर (= सति) कर्मों का उपशम (= शान्त) और अभाव (= क्षीण = क्षय)
होनेवालेकेअर्थात् अवधिज्ञाना वरणीय कर्मका क्षयोपशम हुआहै जिसके उस(जीव)के
= तिस (गुण प्रत्यय अवधिज्ञान) की प्राप्ति होती है
(जब सर्व प्रकार के अवधिज्ञान के उत्पन्न होने का हेतु किसी भी जीव के कोई भी अवधिज्ञान हो (अवधिज्ञानावरणीय कर्म का) क्षयोपशम निमित्त है तो इस सूत्र में "क्षयोपशम निमित्तः" वाक्य का व्यर्थ क्यों प्रयोग किया ?)

सर्वस्य ॥ क्षयोपशम-निमित्तत्वे ॥॥
क्षयोपशम-ग्रहणं ॥॥ नियम-अर्थम् ॥॥
क्षयोपशमः ॥ एव निमित्तम् ॥॥ न भवः ॥ इति

= (उत्तर) सब (जीवों) के अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमकारण होनेपर
(अवधिज्ञान होता है तो भी सूत्र में) 'क्षयोपशम' का प्रयोग मर्यादाके लिये है
= (क्योंकि) क्षयोपशम ही (मनुष्य तिर्यंचों के अवधि ज्ञान होने का) कारण
होता है न कि भव

(१) तीर्थकृतां भवप्रत्ययोऽपि अवधिर्भवति = तीर्थंकरों के (तीर्थकृताम् ॥) भव प्रत्यय भी (= भवप्रत्ययः ॥ अपि) अवधि होती है।

(२) नारक देव तीर्थंकरों के भवों की अपेक्षा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर जो अवधि हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं। गुण जो सम्यग्दर्शनादि कारणों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान होता है उसको गुण प्रत्यय अवधिज्ञान अथवा क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कहते हैं ॥ "भव प्रत्यय अवधिज्ञान में भी सम्यग्दर्शनादि गुण का सद्भाव है तथापि उन गुणों को अपेक्षा न करते हुये भव प्रत्यय कहा"। भव प्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी और तीर्थंकर की पर्याय पाते ही उत्पन्न होता है और उक्त भवों के साथ ही साथ अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम भी हो ही जाता है अर्थात् जैसे दीपक की ज्योति, प्रकाश और अंधकार का नाश एक साथ ही होते हैं तैसे ही देव नारकी वा तीर्थंकर का भव, भव प्रत्यय अवधि, अवधिज्ञानावरणीय

सर्वार्थ

स एषोऽवधिः षड्विकल्पः । कुतः ? अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात् ॥ कश्चिदवधेर्भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति ॥ कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति उन्मुग्धप्रश्नादेशिपुरुषवचनवत् ॥

सिद्धि

४४१

सः[1] । एषः[1] । अवधिः[1] ।	= सो यह (क्षयोपशमनिमित्तक, वा गुणनिमित्तक, गुणप्रत्ययक, गुणहेतुक)अवधिज्ञान
षड्विकल्पः[1] । कुतः ?* अनुगामिभेदात्[5] ।	= छह भेदरूप (छह भेदवाला) है। (प्रश्न) कैसे? (उत्तर) अनुगामि (आनुगामिक) भेदसे
अननुगामिभेदात्[5]। वर्द्धमानभेदात्[5]। हीयमानभेदात्[5]।	= अननुगामि (अनानुगामिक) भेद से वर्द्धमान भेद से हीयमान भेद से
अवस्थितभेदात्[5] । अनवस्थितभेदात्[5] ।	= अवस्थित भेद से अनवस्थित भेद से (क्षयोपशमप्रत्यय-अवधिज्ञान) है
कश्चित्* अवधिः[1]। भास्करप्रकाशवत्* गच्छन्तम्[2]।	= जो कोई अवधिज्ञान सूर्यके उजाले सदृश गमन करनेवाले (जीव) को (गच्छन्तम्)
अनुगच्छति T	= नहीं छोड़ता है अर्थात् जीवके साथ२ जाता है। (सो 'अनुगामि वा अनुगामिक है)
कश्चित्* न*अनुगच्छतिT तत्र* एव*	= जो कोई (अवधि गमन करने वाले जीव को) छोड़ देता है (न-अनुगच्छति) तहांही
उन्मुग्धप्रश्न-आदेशिपुरुषवचनवत्* अतिपततिT	= मूर्ख प्रश्न करनेवाले मनुष्य के वचन सदृश गिर जाता है (= रह जाता है)

कर्मका क्षयोपशम ये दोनों साथ साथही तत्क्षण ही उत्पन्न होते हैं ॥ और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञानमें भी मनुष्य तिर्यंच भवोंका सद्भाव वा अस्तित्व है तथापि उन पर्यायों को अपेक्षा नहीं करने से गुण प्रत्यय कहा है ॥ "क्षेत्र० गोम्मट सुद्रित पृष्ठ ७६८, ७६९ ॥

भवप्रत्यय अवधिज्ञान सम्पूर्ण अङ्ग से उत्पन्न होता है (= सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों से होता है) ॥ नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिककलश मछली आदि जो शुभ चिह्न होते हैं उस स्थानके आत्म प्रदेशोंमें होनेवाले अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है

(१) अनुगामी अवधिज्ञान के तीन क्षेत्रानुगामी भवानुगामी उभयानुगामी भेद हैं। जो दूसरे क्षेत्रमें अपने स्वामी के साथ जावे सो क्षेत्रानुगामी है। दूसरे भव में अपने स्वामी के साथ जाय सो भवानुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे क्षेत्र और भव दोनों में अपने स्वामी के साथ जाय सो उभयानुगामी अवधिज्ञान है।

अननुगामी अवधिज्ञानके भी तीन क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी भेद हैं। जो अपने स्वामीके साथ दूसरे क्षेत्र में न जावे सो क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान है। जो अपने स्वामी के साथ दूसरे भवमें न जाय सो भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे भव और क्षेत्र दोनों में साथ न जाय सो उभयाननुगामी अवधिज्ञान है ॥

अपरोऽवधिः अरणिनिर्मथनोत्पन्नशुष्कपलोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते असंख्येयलोकेभ्यः ॥ अपरोऽवधिः अन्तरितपरिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसंक्लेशपरिणामवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो हीयते । आ अंगुलस्यासंख्येयभागात् ॥ इतरोऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यपरिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्द्धते लिंगवत् । आ भवक्षयाद्वा केवलज्ञानोत्पत्तेर्वा ॥

अपरः । अवधिः । अरणि-निर्मथन-उत्पन्न-	= अन्य अवधि (अर्थात् वर्द्धमान अवधिज्ञान) वो है जो अरणि के मथन से उपजी
शुष्क पत्र-उपचीयमान-इन्धन निचय- समिद्ध-	= तथा सूखे पत्तों के संचय हुये ईंधन के समूह पर (फैंकी हुई) वर्द्धमान = (समिद्ध)
पावकवत् ❀ सम्यग्दर्शन-आदिगुणविशुद्धपरिणाम-	= अग्नि के सदृश सम्यग्दर्शनादि गुणों से निर्मल परिमाणों की
सन्निधानात् ।। यत्परिमाणः । उत्पन्नः । ततः ❀	= सामीप्यता से जो परिमाण व माप प्रमाण उत्पन्न हुआ था तिससे
वर्द्धते आ ❀ असंख्यातलोकेभ्यः ।	= असंख्यात लोक पर्यंत (= आ) बढ़ता जाय है
अपरः । अवधिः । अन्तरित-	= दूसरा अवधि (अर्थात् हीयमान अवधिज्ञान) वह है जो तिरस्कृत (= अन्तरित) और
परिच्छिन्न-उपादान-सन्तति-	= परिमित (परिच्छिन्न) उपादान कारण वाले) (= उपादान सन्तति) अर्थात् इन्धनवाले
अग्निशिखावत् ❀ सम्यग्दर्शनादि-गुणहानि-संक्लेश-	= अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि रूप संक्लेश
परिणाम- विवृद्धि-योगात् । यत्परिमाणः । उत्पन्नः ।	= परिणामों के बहुत बढ़े योग से जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः ❀आ❀ अंगुलस्य । असंख्येय-भागात् । हीयते ।	= तिस (परिमाण) से अंगुल के असंख्यातवां अंश तक (= आ) घटता जाय है
इतरः । अवधिः । सम्यग्दर्शन-आदि-गुण—	= दूसरा अवधि (अर्थात् अवस्थित अवधिज्ञान) वह है जो सम्यग्दर्शनादि गुणों की
अवस्थानात् ।। यत्-परिमाणः । उत्पन्नः ।	= स्थिति से जो परिमाण (प्रमाण) उत्पन्न हुआ था
तत्-परिमाणः । एव ❀ अवतिष्ठते लिङ्गवत् ❀ न ❀ हीयते ।	= वह परिमाण ही स्थिर रहता है (शरीर के तिल मस्सा आदि) चिह्न के सदृश न घटता है
न ❀ अपि वर्द्धते । आ ❀ भवक्षयात् । वा आ ❀ केवलज्ञान उत्पत्तेः ।।	= बढ़ताभी पर्यायकेक्षय वा भवकेक्षय (तक) वा केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत नहीं है

(१) अरणिः—काष्ठ रचित पात्र विशेष । यज्ञमें आग निकालने को अथवा अग्नि को बढ़ाने का दो लक (यज्ञ मंडपों में आग निकाली जाती थी)

अन्योऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणहानिवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते यावदनेन वर्धितव्यं, हीयते च यावदनेन हातव्यं वायुवेगप्रेरितजलोर्मिवत् ॥ एवं षड्विकल्पोऽवधिर्भवति ॥

एवं व्याख्यातमवधिज्ञानं तदनन्तरमिदानीं मनःपर्ययज्ञानं वक्तव्यं, तस्य भेदपुरःसरं लक्षणं व्याचिख्यासुरित्याह—

अन्यः ‖। अवधिः ‖। सम्यग्दर्शन-आदि—	= इतर अवधि अर्थात् अनवस्थित अवधिज्ञान वह है जो सम्यग्दर्शनादि
गुण-हानि-वृद्धि-योगात्‌ ‖। यत्-परिमाणः ‖। उत्पन्नः ‖।	= गुणों के घटने बढ़ने के संयोगसे जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः = वर्द्धते T यावत् अनेन ‖। वर्धितव्यम् ‖॥।	= तिससे जहां तक (= यावत्) इसे बढ़ना चाहिये बढ़ता है
च = हीयते T यावत् * अनेन ‖। हातव्यम् ‖॥।	= और (= च) जहां तक इसे घटना चाहिये घटता है
वायुवेगप्रेरित जल-उर्मिवत् *	= जैसे पवन बल से प्रेरा हुआ जलकी लहर (घटती भी है और बढ़ती भी है)
एवम् षड्[1]विकल्पः ‖। अवधिः ‖। भवति T एवम् *	= इस प्रकार छह भेद रूप अवधिज्ञान होता है। इस प्रकार
अवधिज्ञानम् ‖॥। व्याख्यातम् ‖॥। तद्-अनन्तरम् ‖॥।	= अवधिज्ञान वर्णन किया गया है। उस (अवधिज्ञान) के लगता ही
इदानीम् * मनः पर्यय ज्ञानम् ‖॥। वक्तव्यम् ‖॥। तस्य	= अब मनः पर्यय ज्ञान कहना योग्य है ॥ उस (मनः पर्यय ज्ञान) के
भेदपुरः सरं ‖॥।	= भेदों को (उसके लक्षणके कथनकी अपेक्षा) अग्रसर वा अग्रगामी कर (= पुरःसर)
लक्षणं ‖॥। व्याचिख्यासुः ‖। इति * आह T	= (और पीछे उसके) लक्षण को (भी) कहने का इच्छुक (आचार्य) ऐसे कहता है अर्थात् मनः पर्ययज्ञानके भेद पूर्वक लक्षण को कहने के इच्छुक (आचार्य) ऐसे कहते हैं भावार्थ मनःपर्यय ज्ञानके भेद" प्रथम (= अग्रसर) और पीछे उसके लक्षण को कहने के इच्छुक (आचार्य) ऋजुमति और विपुलमति भेद तेईसवां सूत्र में और इन उक्त भेदों के लक्षण पचीसवां सूत्र में ऐसे कहते हैं कि

(१) षड्विकल्पः—"आगम विषै सप्रति पात अप्रतिपात तथा देशावधि परमावधि सर्वावधि ए सर्वानुगामी आदि छह भेद कहे तिन में अन्तर्भूत जानने" जयचंदजी स० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५ १७५ ॥ उक्त पण्डितजीने श्लोक वार्तिककी साक्षी दी है जिसके पृष्ठ२४५में लेख है कि

"अनुगाम्यननुगामी वर्द्धमानो हीयमानोऽवस्थितो	= अनुगामी अननुगामी वर्द्धमान हीयमान अवस्थित
ऽनवस्थित इति षड्विकल्पोऽवधिः संप्रतिपाता-	= अनवस्थित इस प्रकार छह भेदरूप अवधि (ज्ञान) है (क्योंकि) संप्रतिपात
प्रतिपातयोरत्रैवान्तर्भावात् ।	= और अप्रतिपात दोनों का यहीं (वा इस स्थानमें, अन्तर्भाव वा समावेश है
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च परमागम	= और (= च) क्योंकि देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे शास्त्र में
प्रसिद्धानां पूर्वोक्तयुक्त्या सम्भावितानां चात्रोपसंग्रहात्"	= प्रसिद्ध वा सम्भावित (= प्रसिद्ध भये) (ज्ञान) पूर्वोक्त तर्कद्वारा यहीं (इन्हीं छह ज्ञानों में) संग्रह हैं

परन्तु तत्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५६ और गोम्मटसार जीवकांड गाथा ३७२ निम्नलिखित से प्रगट है कि

पुनरपरेऽवधेस्त्रयोभेदादेशावधिःपरमावधिःसर्वावधिश्चेति	= और अन्य अवधि के तीन भेद देशावधि परमावधि और सर्वावधि ऐसे हैं
गुणपच्चयणिमित्तं छद्धा अणुगामिवड्ढिदरभेदा । गुणपच्चयकः । छद्धा । अनुगामवस्थितप्रवर्धमानेतरे ।	= गुणप्रत्यय (= क्षयोपशमनिमित्तक) अवधिज्ञान छह (भेदरूप) है अनुगामी अवस्थित प्रवर्द्धमान विरोधी (= इतर) अननुगामी अनवस्थित, हीयमान हैं
देसोही । परमोही । सव्वोहित्ति*य* तिधा* ओही । देशावधि । परमावधि । सर्वावधि । इतिचत्रिधा*अवधिः	= देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे भी (= च तीन प्रकार अवधि है

इसके विषय को परिमित होने से इस ज्ञान को अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। यद्यपि दूसरे मतिज्ञानादिक के विषय को भी सामान्य से सीमा है, इसलिये दूसरे ज्ञानों को भी अवधिज्ञान कहना चाहिये, तथापि समभिरूढनयकी अपेक्षा से (अर्थात् वह नय जो नाना अर्थ को उल्लंघन करि जो एक ही अर्थ में रूढ (= प्रसिद्ध) हो उसको जानै वा कहै) ज्ञानविशेष को ही अवधिज्ञान कहते हैं।

भवप्रत्यय अवधि नियम से देशावधि ही होता है। और दर्शन विशुद्धि आदि गुणों के निमित्त से होनेवाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि (ऐसे) तीनों प्रकार का होता है ॥

देशावधि और परमावधि अवधिज्ञान के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन तीन भेद होते हैं। सर्वावधि अवधिज्ञान निर्विकल्पपना से एक रूप ही है। सर्वावधि में जघन्य उत्कृष्ट आदि भेद नहीं है। सर्वावधि अवधिज्ञान निर्विकल्प (= भेदरहित) है ॥

जघन्य देशावधि जो है सो उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग मात्र क्षेत्र पर्यन्त है और उत्कृष्ट देशावधि सर्वलोक पर्यन्त है और इन दोनों क्षेत्रों के मध्य में पलटनेवाला अनेक विकल्परूप मध्यम देशावधि है ॥

जघन्य परमावधि एक प्रदेश अधिक लोकक्षेत्र प्रमाण है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकक्षेत्र प्रमाण है और मध्यम का मध्यम क्षेत्र है न जघन्य है न उत्कृष्ट है ॥ सर्वावधि उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाह्य असंख्यात क्षेत्र प्रमाण है ॥

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों अनुगामी, अननुगामी वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित इन छहोंमें अन्तर्भूत हैं देशावधि इन आठ रूप होता है । परमावधि अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, अवस्थित अनवस्थित और अप्रतिपाती छह भेदरूप होता है । सर्वावधि अनुगामी, वर्धमान, अवस्थित और अप्रतिपाती होता है ॥ बिजली के प्रकाश के समान विनाशीक प्रतिपाती है और इससे विपरीत अविनाशी अप्रतिपाती है ।

जघन्य देशावधि ज्ञान संयत तथा असंयत मनुष्य तिर्यंचों में ही होता है देव नारकियों में नहीं होता है । उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान संयमी महाव्रती मनुष्यों में ही होता है क्योंकि अशेष तीन गतियों में महाव्रत का होना सम्भव नहीं है । परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी (उसी भव से मोक्षगामी) महाव्रती के ही होता है "अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकादि के नहीं होई ॥ इनिकै देशावधि ही की योग्यता है" अर्थ प्रकाशिकपृष्ठ ६७ देखो। परमावधि और सर्वावधि वाले जीव नियम से मिथ्यात्व और असंयत अवस्था को प्राप्त नहीं होते । सम्यक्त्व और चारित्र से च्युत होकर मिथ्यात्व असंयमकी प्राप्ति को प्रतिपात कहते हैं । यह प्रतिपात देशावधि वाले का ही होता है, परमावधि सर्वावधि वाले का नहीं होता है ॥

अवधिज्ञान के जघन्य भेद से लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं सो सर्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की अपेक्षा से रूपी (पुद्गल) द्रव्य को ही तथा उस (पुद्गल) के संबंध से संसारी जीव द्रव्य को भी प्रत्यक्ष जानते हैं । बहुरि सर्वावधि ज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है जातैं अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातैं देशावधि परमावधि के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ॥

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

सूत्रम्—ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

= ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः (द्विविकल्पः सन्तः) ॥ विकल्प शब्द की अनुवृत्ति २२वां सूत्रसे ली है

ऋजुविपुलमतीः ।। मनः पर्ययः ।। द्विविकल्पः ।। सन्तः ।। = मनः पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो भेद रूप है अर्थात् मन वचन कायकी सरलता रूप पर के मन में तिष्ठे हुये रूपी पदार्थों को जानै वह ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान है और जो मन वचन कायकी सरलता रूप और मन वचन कायकी वक्रता रूप वा कुटिलता रूप पर के मन में अवस्थित रूपी पदार्थों को जानें सो विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान है ॥

---

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं "मनः पर्यय" पाठ है। और कहीं कहीं "मनःपर्ययय" पाठ है। "अचोरह्याभ्यांढे" (= अचः रहाभ्यांढेवा) अष्टाध्यायी ८।४।४६ सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३२१ में) ॥ मनः पर्यय ही लिखना चाहिये क्योंकि यह सूत्र है और सूत्र का लक्षण यह है कि "अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतो मुखं अस्तोभ मनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः अल्प-अक्षरम् असंदिग्धं सारवत्* विश्वतः* मुखम् = थोड़े अक्षर हो जिनका अर्थ संदेह रहित हो सार वा सत गर्भित हो सर्वतः श्रेष्ठ हो अस्तोभम् अनवद्यं च सूत्रविदः ।। विदुः ।। सूत्रम् = निरर्थक शब्द (= स्तोभ) से रहित (= अ) और दूषण वर्जित हो सूत्रज्ञाता उसको सूत्र समझते हैं श्वेताम्बर आम्नाय में मनः पर्यय के स्थान में "मनःपर्याय" है शेष पाठ एक है। अर्थ भी एक है, हमारी समझ में लघु पाठ ही लेना उचित है। इस सूत्र की संख्या सभाष्य० में २४ है क्योंकि द्विविधोऽवधिः सूत्र बढ़ गया है

(२) जिसका अतीत (भूत) काल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका अनागत (भविष्यत्) काल में चिंतवन किया जायगा अथवा वर्तमानमें जिसका आधा चिंतवन किया है इत्यादि अनेक भेद लिये दूसरे के मनमें स्थित पदार्थ जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानको मनः पर्यय कहते हैं। "परकीय मनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनः पर्यय": पर के मन में तिष्ठना जो पदार्थ सो मनः कहिये जिस (पदार्थ) को ग्रहण करता है (= पर्येति) जिसमें प्रवेश होता है (= गच्छति) जिसको जानता है (= जानाति) ऐसा मनःपर्ययहै। जीव०गोम्मट ४३८

ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमतिः ॥

वृत्त्यनुवादः-निर्वर्तिता ½॥ = उत्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) अथवा निष्पन्न भई है (= निर्वर्तिता)
ऋज्वी ½॥ च ॥ प्रगुणा ½॥ = सरल [= ऋज्वी = ऋजु) और (= च) सीधी (= प्रगुणा) (मति)
कस्मात् ½। निर्वर्तिता ½॥ = किस हेतु से (= कस्मात्) उत्पन्न हुई वा निष्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता)?
वाक्-काय-मनस्-कृत परमनोगतस्य ½। = (उत्तर) वचन-काय-मनकरि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ½। विज्ञानात् ½॥ ; ऋज्वी ½॥ = रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से (= विज्ञानात्)॥ —सरल (= ऋज्वी) है
मतिः ½॥ यस्य ½। सः ½ अयम् ½ ऋजुमतिः ½। = मति (= ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह ऋजुमति है॥ भावार्थ सरल मनसे, सरल वचनसे सरल कायसे किये हुये अन्य जीवके मन में प्राप्त हुये जो रूपी पदार्थ तिसके जानने से (= विज्ञानात्) उत्पन्न हुई (= निर्वर्तिता) जो सरल मति सो ऋजुमति[1]

१) इस व्युत्पत्ति से प्रगट है कि ऋजुमति शब्द पुलिङ्ग है सामान्य की अपेक्षा से मनः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष की विवक्षा से ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनः पर्ययज्ञान ऐसे दो भेद हैं॥ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात् (क) ऋजुमनोगतार्थ विषयक (= ऋजुमनविषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ (= ऋजुमनकृत अर्थ का जाननेवाला) (ख) ऋजुवचनगतार्थ विषयक (= ऋजुवचन विषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (= ऋजुवचनकृत अर्थ को जाननेवाला) (ग) ऋजुकायगतार्थ विषयक (= ऋजुकाय विषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (= ऋजुकाय कृत अर्थ को जाननेवारो)

(२) जैसे किसी मनुष्य ने मन से व्यक्त सरल वा प्रगटरूप पदार्थ का चिन्तवन किया। धार्मिक व लौकिक वचनों को भी भिन्न भिन्न रूप से उच्चारण किया और दोनों लोक के फल की प्राप्ति के लिये अंग और उपांगों का पटकना सकोड़ना और फैलाना रूप कार्य की चेष्टा भी की किंतु उसके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारे हुये वा वचन से कहे हुये अथवा शरीर से किये गये कार्य को भूलजाने के कारण कि मैंने मन वचन काय से क्या किया था इस बात के विचारने के लिये वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन वचन द्वारा किये गये कार्य को चाहे ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहे मत पूछो वह अपने ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट जान लेता है कि उक्त मनुष्य ने मन से वह पदार्थ इस रूप से विचारा था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था॥

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । कस्मादनिर्वर्तिता ? वाङ्मनःकृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात् । विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः ॥

च अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ च ॥	= और (= च) नहीं निष्पन्न हुई अथवा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च)
विपुला ॥	= विस्तीर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
कस्मात् ॥ अनिर्वर्तिता ॥	= किस कारण से नहीं निपजाई वा नहीं निष्पन्न भई (= अनिर्वर्तिता)
वाङ्-काय-मनः-कृत-परकीय-मनः-गतस्य ॥	= (उत्तर) वचन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ ॥ विपुला ॥ ॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तीर्ण-विशाल-नानार्थक है
मतिः ॥ यस्य ॥ सः ॥ अयम् ॥ विपुलमतिः ॥	= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

फिर किस हेतु से उत्पन्न हुई है? (उत्तर) "स्वयमेवही भई है" (जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५)। कैसे ? भविष्यत कालमें कोई जीव रूपी पदार्थ को चितवेगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वहरूपी पदार्थ अब तक नहीं तिष्ठा है आने वाले काल में चिंतवन करेगा इसको भी विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है। इसलिये जो पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है और उसको विपुल मतिमनः पर्यय ज्ञानीने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कह सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा मति जिसकी वरन स्वयमेव ही भई क्योंकि उस समय दूसरेके मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ यथार्थ में विपुल शब्द का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गर्भित हैं।

और जिससे यह भाव झलकता है कि विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले ऋजु-वक्र सरल टेढ़े सर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का

तथा अपने आत्मासे आत्मा को जान कर अपना और परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभ आदिको भी ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञानी जानता है। किंतु यह नियम है कि जो मनुष्य व्यक्तमना है - भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने प्रगट रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर लिया है उन्हीं के द्वारा विचारे गये पदार्थों को ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानी जानता है। परन्तु जो अव्यक्त मना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्हों ने व्यक्त रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके द्वारा मन में विचारे हुये रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी नहीं जानता है ॥ यह द्रव्य और भाव की अपेक्षा से ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। (देखो० राज० सूत्र २३ वार्तिक ६) ॥ ४४८

ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमती॥ एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोगः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले। ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। स एष मनःपर्ययो-

ज्ञान होता है। अपने और परके जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभका भी ज्ञान होता है तथा जिस पदार्थका व्यक्तमनकरि चिंतवन किया गया है वा अव्यक्तमनकरि चिंतवन कियागया है अथवा नहीं चिंतवन कियागया है आगै जाकर चिंतवन होगा उन सब प्रकारके पदार्थोंका विपुल मति मनः पर्यय ज्ञानी जानता है॥ (राज० वा० वार्तिक १०) यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानके विषयका निरूपण है।

(१) (१)
ऋजुमतिः ¦। च* विपुलमतिः ¦। च* ऋजुविपुलमती ¦। =तथा (=च) ऋजुमति और (=च) विपुलमति (मिलानेसे) ऋजुविपुलमती हुआ अर्थात् ऋजुमतिका मतिशब्द लेकर और विपुलमतिका मतिशब्दलेकर दोनों मति शब्दोंको मिलानेसे "मती" ऐसा द्विवचन हुआ और ऋजुशब्दको विपुलशब्दके साथ मिलानेसे ऋजुविपुल हुआ अतः "ऋजुविपुलमती" द्वंद्व समास हुआ

एकस्य ¦। मतिशब्दस्य ¦। गतार्थत्वात् ¦॥ =एक मतिशब्दके अर्थकी प्राप्ति होनेसे (=गतार्थत्वात्) वा तात्पर्यकी लब्धि होनेसे
अ-प्रयोगः ¦। =(सूत्रमें-दूसरे मतिशब्दका) प्रयोग अथवा व्यवहार नहींहै अर्थात् एकही मतिशब्दको दोनों ऋजु और विपुलके साथ लगानेसे अर्थ वा अभिप्रायकीप्राप्ति होजातीहै अतः इस सूत्रमें दूसरा मतिशब्द नहीं लाये हैं।

(२)
अथवा* ऋजुः ¦॥ च* विपुला ¦॥ च* =अथवा (ऐसा भी समास होसक्ता है कि) ऋजु और (=च) विपुला (मिलकर)
ऋजुविपुले ¦॥; ऋजुविपुले ¦॥ मती ¦॥ ययोः ¦॥ =ऋजुविपुले(वाक्य) हुआ। ऋजु और विपुलहैं बुद्धी (=मती) जिनकी (=ययोः)
तौ ¦॥ ऋजुविपुलमती ¦॥ सः ¦॥ एषः ¦॥ मनःपर्ययः ¦॥ =वे ऋजुविपुलमती हैं॥ सो यह मनः पर्यय ज्ञान

(१) सरल वा ऋजु हैमति जिसकी सो ऋजुमतिहै इसलिये मतिशब्द स्त्री लिंग होने पर भी "ऋजुमति" शब्द पुल्लिङ्गहै इसलिये ऊपर पुल्लिङ्गही लिखाहै
(२) यह चकार वाक्य भूषण के लियेहै अर्थात् संस्कृतकी बोलचालमें लाया जाताहै परन्तु इसका अनुवाद हिंदीभाषाकी बोलचालमें नहीं होसकता है॥

द्विविधः ऋजु मतिर्विपुलमतिरिति ॥

(१) (२)
द्वि-विधः ¦। ऋजुमतिः ¦। विपुलमतिः ¦। इति* =दो प्रकार ऋजुमति और विपुलमति इस भांति (=इति) हैं ॥

(१) ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानके तीन भेद ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ, ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ, ऋजुकायकृतार्थज्ञ (इनके लक्षण के लिये देखो पृष्ठ ४५७)

(२) विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान छह प्रकार है। (क) ऋजुमनोगतार्थविषय, ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुमनको प्राप्त हुये अर्थ का जाननेवाला (ख) ऋजुवचनगतार्थ विषय, वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुवचन को प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा (ग) ऋजुकायगतार्थ विषय, ऋजुकायकृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुकाय को प्राप्त हुये अर्थका (=रूपी पदार्थ का) जाननहारा (घ) अनृजुमनोगतार्थ विषय, वक्रमनस्कृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रमनको प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा (ङ) अनृजुवचनगतार्थ विषय, वक्रवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रवचनको प्राप्त हुआ रूपी पदार्थका जानने वाला (च) अनृजुकाय गतार्थ विषय, वक्रकायकृतार्थज्ञ, अर्थात् वक्रकाय को प्राप्तभया रूपी पदार्थ का जाननेवाला ॥

ऋजुमति तथा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान के विषय शब्दगत और अर्थगत दोनों ही प्रकार के होते हैं ॥ कैसे ? सो कहते हैं " कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनिकौं चिंतवत भया वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता तिनकौं कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनकौं करत भया पीछैं भूलि करि कालांतरविषैं स्मरण करनेकौं समर्थ न हुवा अर आयकरि ऋजुमतिमनः पर्यय-
ज्ञानीकौं पूछत भया वा स्मरण करने का अभिप्राय को धारि मौन होतैं खड़ा रहा तहां ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकौं जानै है । तैसे ही सरल वा वक्र मन वचन काय करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल सम्बन्धी पदार्थनिकौं चिंतवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछैं स्मरण करने कौं समर्थ न हुवा आय करि विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी के निकट पूछत भया वा मौन से खड़ा रहा तहां विपुल-
मतिमनः पर्ययज्ञान सर्वकौं जानै" ऐसे इनका स्वरूप जानना ॥

त्रिकाल सम्बन्धी पुद्गल द्रव्य कौं वर्तमान काल विषै कोई जीव चिंतवन करै है तिस पुद्गल द्रव्य कौं ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान जानता है और त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य कौं भूतकाल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका भविष्यत् में चिंतवन किया जायगा यद्वा वर्तमानमें जिसका चिंतवन हो रहा है ऐसे तीनों ही प्रकार के पदार्थ को विपुलमति मनः पर्ययज्ञान जानता है ॥

आह उक्तो भेदः, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमनः पर्ययज्ञानावरण-क्षयोपशमांगोपांगनामलाभावष्टम्भादात्मनः परकीयमनः सम्बधेनलब्ध वृत्तिरुपयोगो मनः पर्ययः॥ मतिज्ञानप्रसंग इति चेदुक्तोत्तरं पुरस्तात् । अपेक्षाकारणं मन इति

आह

=(शिष्य वा अन्यवादी आचार्यसे) प्रश्न करताहै (=आह)वा पूछताहै (=आह) कि

उक्त भेदः ¦। इदानीम्* लक्षणम् ¦॥ वक्तव्यम् ¦॥ इति* अत्र* उच्यते ¦ वीर्यान्तराय-मनः पर्यय—ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अङ्गोपाङ्गनाम-लाभ-अवष्टम्भात् ¦। आत्मनः ¦। परकीय-मनःसम्बन्धेन ¦। लब्धवृत्तिः ¦॥ उपयोगः ¦। मनः-पर्ययः ¦।

(मनः पर्यय ज्ञान के ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
=भेद कहे गये अब (इनके) लक्षण वा स्वरूप कहनो चाहिये ।
=ऐसे (प्रश्न करने पर) यहां कहाजाता है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
=ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमसे और अंगोपांगनामा नामकर्म के (उदयके)
=लाभके अवलम्बनसे वा प्राप्त होनेसे (=अवष्टम्भात्) आत्माके परके (=पराये)
=मनके संयोग करि प्राप्ति हुई है (=लब्ध) जो प्रवृत्ति (ऐसा) ज्ञानोपयोग
=मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् उक्त कर्मों के क्षयोपशम से और उदय के लाभ की प्राप्ति होने से आत्मा ने द्रव्य-क्षेत्र-कालभावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें तिष्ठते हुये रूपी पदार्थ को स्पष्टरूप से जान लिया है सो मनःपर्यय ज्ञान है ॥

मतिज्ञान—प्रसङ्गः ¦। इति* चेत्* पुरस्तात्* उक्त-उत्तरम् ¦॥॥ अपेक्षाकारणम् ¦॥॥ मनः ¦॥॥ इति*

=(यदि मनः पर्ययज्ञान मन के सम्बन्ध से है तो) मतिज्ञान का प्रसंग हुआ ।
=ऐसा संदेह (करने) पर (उत्तर में कहते हैं) कि पहिले (=पुरस्तात्)
=कहा हुआ उत्तरहै (जिसकेलिये देखो पृष्ठ ३२५, ३२६ जिसका संक्षेप नीचे भी है
=(अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानमें) मन अपेक्षामात्र कारणहै (न कि उत्पत्तिका कारण है)

(१) इसका सारांश वा तत्व यह है कि इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान श्रुतज्ञानके होने के लिये कारण है बिना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान कभी भी नहीं होता, मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है अतः मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर कार्यकारण भाव है ॥ क्योंकि मतिज्ञान (इन्द्रियों और) मन के संबध बिना नहीं होता है इसलिये शिष्यको यह प्रश्न करनेका अवसर मिला कि

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्ष्यते।

परकीय–मनसि ¦॥| व्यवस्थितः ¦| अर्थः ¦| अनेन ¦॥| ज्ञायते T इति* एतावत्* अत्र अपेक्ष्यते T	=दूसरे के मन में तिष्ठता हुआ रूपी पदार्थ इस (मनः पर्यय ज्ञान) से =जाना जाता है इस प्रकार इतनी ही (=एतावत्) यहां विवक्षा की गई है।

अब मनः पर्यय ज्ञान में भी मन का सम्बन्ध है और मतिज्ञान में मन का संबंध है तो मनः पर्ययज्ञान में भी मतिज्ञान का प्रसंग आया जैसे मन और स्पर्शन, रसन घ्राण, चक्षुः, श्रोत्र इन्द्रियों के संबंध से स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः श्रोत्ररूप ज्ञान प्रगट होते हैं सो मतिज्ञान है तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान भी मन संबंध से पाई है वृत्ति (प्रवृत्तिः जिसने ऐसा (मनः पर्यय ज्ञान) है इस लिये (मनः पर्यय ज्ञान भी) मतिज्ञान नाम को पाता है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान मन के निमित्तपने से मतिज्ञान को प्राप्त होता है। =मनः पर्ययज्ञानं मनो निमित्तत्वात् मतिज्ञानं प्राप्तम्। भावार्थ मनःपर्ययज्ञान भी मन द्वारा उत्पन्न होता है और मतिज्ञान भी मन द्वारा (और पांच इन्द्रियों द्वारा) उत्पन्न होता है इसलिये मनः पर्ययज्ञानको मतिज्ञान कह सकते हैं क्योंकि ऐसी ही आर्ष वचनकी परिपाटी है (=एवम् हि आर्षी प्रक्रिया) कि अपने मनकरि पराया मनमें ठहरे हुये पदार्थ का चिंतवन करके इत्यादि (=मनसा मनः संपरिचिन्त्य+इति)॥

(उत्तर) अपेक्षामात्रपना से (=अपेक्षामात्रत्वात्) तहां (=तत्र) मनः पर्यय ज्ञान में अपना और पर के मन की अपेक्षा मात्र करिये है (मनः पर्यय ज्ञाने—तत्र स्वपरमनोपेक्षा मात्रं क्रियते)॥ जैसे (कोई कहै) बादल में (=अभ्र) अथवा आकाश में (=अभ्र) चंद्रमा को देखो (=यथा अभ्र चन्द्रमसं पश्य+इति) यहां देखने रूप कार्य चन्द्रमा है और बादल वा आकाश शब्द अपेक्षा मात्र है। तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान में तिष्ठे हुये वा अवस्थित रूपी पदार्थोंका जानना ही कार्य है और स्वपर मनः अपेक्षा मात्र है और जैसे मनका कार्य मतिज्ञान है तैसे मन का कार्य मनः पर्यय ज्ञान नहीं है (न तत्कार्यं मतिज्ञानवत्)॥

क्योंकि इस (मनःपर्यय ज्ञान) का आत्मशुद्धि का निमित्तपना है (=एतस्य आत्मशुद्धिनिमित्तत्वात् इति) देखो राजवार्तिक में वार्तिक ५ सूत्र ६ यह मनः पर्यय ज्ञान तो वीर्यान्तराय कर्म और मनः पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम की शक्ति मात्र से और अंगोपांगनाम नामकर्म के उदय के लाभ से आत्मा के विकसित या प्रकाशित हुआ है॥ (देखो पृष्ठ ३२१ और ३२६)॥ जीवकांड गोम्मटसार में इस संबंध में लिखा है कि "जैसे पूर्व कहा था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंगतै उपजै है अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिन्हनितै उपजै है तैसे मनः पर्यय ज्ञान द्रव्य मनतैं उपजै है नियमतैं और अंगनिके प्रदेशनिविषैं नाहीं उपजै है" गोम्मटसार गाथा ४४२॥

"सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषैं प्रफुल्लित आठ पांखुड़ी का कमल के आकार अंगोपांगनामक नामकर्म के उदय तैं तैसे जानि की पुद्गल वर्गणानि विषैं मनोवर्गणा है तिनि स्कंधनिकरि निपजै है ऐसा नियम है" गोम्मटसार गाथा ४४३॥

एटा निवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र २३

तत्र ऋजुमतिर्मनः पर्ययः कालतो

तत्र॑ ऋजुमतिः॒। मनः पर्ययः॑। कालतः॑ =तहाँ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान काल (की अपेक्षा) से

"तस मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है सो कहिये ईषत् किंचिन्मात्र इन्द्रिय है जैसे स्पर्शनादिक इन्द्रिय प्रकट हैं तैसे मनके प्रकटपना नाहीं तातैं मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मनविषैं मतिज्ञानरूप भावमन भी उपजै है अर मनः पर्यय ज्ञान भी उपजै है ॥गाथा ४४४॥ 'ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो अपने वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इन्द्री अर मन अर मन-वचन काय योग तिनकी सापेक्षतै उपजै है। बहुरि विपुलमतिमनः पर्यय है सो अवधि ज्ञानकी भी नाईं तिनकी अपेक्षा बिनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४६ ॥ "पर जीवके मनविषैं सरलपनैं चिंतवनरूप जो पदार्थ तातैं जो ईहा आदि मतिज्ञानकरि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविषैं कहा है। पाछै ऋजुमति मनः पर्ययज्ञानकरि तिस अर्थकौं प्रत्यक्ष पनैं करि ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी जानै है यह नियम है ॥ गाथा ४४८ ॥" द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति जो विषयकार सहित कहिए चिंतवन कीया हुवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबंध धरैं संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकार ऋजुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४५० ॥

ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान उपजनेकरि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समय प्रबद्ध कौं जानै है। औदारिक शरीरविषैं समय समय निर्जरा हो है सो एक समय विषैं औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है। बहुरि उत्कृष्टपनैं एक इंद्रिय को निर्जरामात्र द्रव्य को जानै है। सो कितना है। औदारिक शरीर का अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिस विषैं डिढ़सोपचयसहित औदारिक शरीर का समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भये भी एक इंद्रिय का अपहार निर्लेप होनेकौं पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिस विषैं कितने परमाणू निर्जरा रूप भये ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणू निका स्कंधकौं उत्कृष्ट ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५१ ॥

ऐसे क्रमकरि मनः पर्यय ज्ञान के मनका स्कंध जानने की मात्र है। न कि शक्ति अपेक्षा से मतिज्ञान में शक्ति अपेक्षा से है ॥ स्मरण रहे कि मतिज्ञान तो मन और इन्द्रिय दोनों की सहायता से ही होता है। और चतुर्थ गुणस्थान से बारह तक होता है। संज्ञी (=समनस्क) पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि जीव के होता है परन्तु ऋजुमति ज्ञान सर्वगतियों में सर्व इन्द्रिय वाले जीवों के होता है संज्ञी (=समनस्क) असंज्ञी अमनस्क जीवों के भी होता है इसलिये केवल इन्द्रियों द्वारा मन की बिना सहायता के भी हो सकता है और इन्द्रियों और मनकरि भी हो सकता है ॥ ४५१ ॥

जघ येन जीवानात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वं(१), उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः॥ द्वितीयकालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन योजन पृथक्त्वं, उत्कर्षेण

जघन्येन[१]। जीवानाम्[२]। आत्मनः[२]। च॥द्वि-त्रीणि[३]॥। भवग्रहणानि[३]॥। उत्कर्षेण[१]।
गति-आगति-आदिभिः[३]। (२)सप्त-अष्टौ[३]। प्ररूपयति[१]

= जघन्य करि (अन्य) जीवों के और (= च) अपने आत्मा के दो तीन
= भवका ग्रहण करनेवाला है ॥ उत्कृष्ट करि (अन्य के तथा अपने)
= पहले अगले आदि से सात आठ (भवों) को जानता है प्ररूपयति अर्थात्
काल करि ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय जघन्यपने अतीत
अनागत रूप दोय तीन भव हैं उत्कृष्टपने सात आठ भव हैं

क्षेत्रतः॥ जघन्येन[१]। (३)गव्यूति-पृथक्त्वं[१]॥।
उत्कर्षेण[१]। योजन-पृथक्त्वस्य[२]। अभ्यन्तरम्[३]॥।
न॥ बहिः॥ द्वितीय-कालतः॥
जघन्येन[१]। सप्त-अष्टौ[३]॥। भवग्रहणानि[३]॥। उत्कर्षेण[१]।
असंख्येयानि[३]॥। गति-आगति-आदिभिः[३]। प्ररूपयति[१]
क्षेत्रतः॥ जघन्येन[१]।
योजन-पृथक्त्वम्[१]॥। उत्कर्षेण[१]।

= क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) कोश है
= उत्कृष्ट करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) योजन के भीतर है
= न कि बाहिर। दूसरा (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान) काल (की अपेक्षा) से
= जघन्य करि सात आठ भव का ग्रहण करनेवाला है। उत्कृष्टकरि
= असंख्याते (भव) पहले अगले आदिकरि कथन करता है
= (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि
= तीन से ऊपर नव से न्यून (= पृथक्त्व) योजन (प्रमाण) है। उत्कृष्टकरि

---

(१) "जघन्येन" वाक्य पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। हमने इन लिंगों का कोई संकेत नियत नहीं किया है, अतः कहीं पुल्लिंग कहीं नपुंसकलिंग लिखा है।
(२) अष्टौ शब्द पुल्लिंग बहु वचन है क्योंकि इसके आगे के शब्द "भव" का अध्याहार किया गया है॥
(३) गव्यूति-गव्यूत-गव्य एकार्थवाची हैं। इसके अर्थ (i) दो मीलकी लम्बाई या एक कोसके हैं (ii) दो कोसकी दूरी (iii) वह भूमि जहां हरी हरी घास होती है। (देखो आप्टे संस्कृत कोश पृष्ठ ४५६, वैयकृत कोश पृष्ठ २३६॥ गोम्मटसार (जी०का० गाथा ४५५) जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७६, पन्नालालजी दूनी इत्यादिने एक कोसके अर्थमें लिखा है इससे हमने भी अनुवादमें एक कोस ही लिखा है॥

मानुषोत्तरशैलास्याभ्यन्तरं न बहिः ॥ उक्तयोरनयोः पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

मानुषोत्तरशैलस्य ।
अभ्यन्तरम् ॥ न (१)बहिः उक्तयोः । अनयोः ।
पुनः अपि विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह[1]

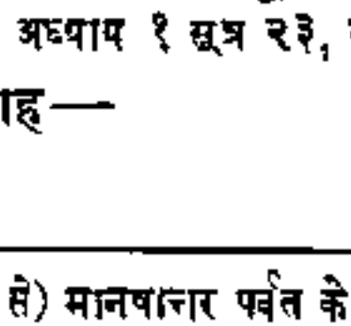
= (विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र की अपेक्षा से) मानषोत्तर पर्वत के
= भीतर (भीतर) है न कि बाहिर ॥ कहे हुये दोनों (भेद मनःपर्यय ज्ञान) में
= फिर भी विशेष की प्राप्ति के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

विशुद्धि-अप्रतिपाताभ्याम् ।
तद्-विशेषः ।

= (भावों वा परिणामोंकी) विशुद्धि और अप्रतिपात (चारित्ररूपी पर्वतसे नहीं गिरने) हेतुओंसे
= उन (ऋजुमति और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञान से विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान विशुद्धतर है वा अधिक विशुद्ध है और ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान बीचमें छूट जाता है परन्तु विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानहोने तक रहता है यही परस्पर दोनों में अन्तर वा भेद है ॥

(१) यह बात प्रसङ्ग है कि मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर मनुष्य नहीं हैं इसलिये नरलोक अर्थात् वह स्थान जहां मनुष्य वास करते हैं उक्त मानुषोत्तर पर्वतके भीतर ही भीतर है ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४४६ में क्षेत्रकी अपेक्षा इस प्रकार कहा है "नरलोक अर्थात् जहां मनुष्य लोकका विष्कंभका जैसा परिमाण है सो लैसा और मनुष्य लोक तो गोल है और यह विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कहा है सो पैंतालीस लाख योजन लम्बा तितना ही चौड़ा और तितना परिमाण जानना। यहां ऊँचाई थोड़ी है तातैं घन प्रतर कहा है जातैं मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य चारों कोणनिविषै स्थित देव तिर्यंच चिंतवे हुए तिनकौं भी उत्कृष्ट विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान जाने है "पृष्ठ ८७०"



(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां भी जहां जहां शुद्ध लिपि है एकसा पाठ मिलता है। श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र (इस ग्रन्थ) में यह २५वां सूत्र है क्योंकि वहां "विविधोऽवधि" सूत्र अधिक है ॥

(३) विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्यां विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तयोर्विशेषस्तद्विशेषः । सूत्रमें रहनेवाले सब पदोंकी यह व्युत्पत्ति है ॥

तदावरणे क्षयोपशमे सति आत्मनः प्रसादो विशुद्धिः। प्रतिपतनं प्रतिपातः न प्रतिपातः अप्रतिपातः। उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्प्रच्युतसंयमशिखरस्य प्रतिपातो भवति। क्षीणकषायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपातः॥

---

(१)पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद।

तद्-आवरण-क्षयोपशमे। सति।	= उस (मनः पर्ययज्ञानावरणीयकर्म) के आवरण के क्षयोपशम होनेपर (= सति)
आत्मनः। प्रसादः। विशुद्धः॥ प्रतिपतनम्॥	= आत्माकी उज्ज्वलता (= प्रसाद) सो विशुद्धि है॥ (संयमसे) गिरना वा च्युत होना
प्रतिपातः। उपशान्तकषायस्य।	= सो प्रतिपात है। उपशान्त मोहवाले (जीव) का अर्थात् ग्यारहवाँगुणस्थानवर्तीका
चारित्रमोह-उद्रेकात्। प्रच्युतसंयमशिखरस्य।	= चारित्रमोहनीय कर्म की उत्कटतासे संयमरूपी शिखरका (से) प्रच्युत होना गिर पड़ना, उलटा आय पड़ना, उलटा आना, भावार्थ संयमपरिणामकी घटवारी
(२)	
प्रतिपातः। भवति। क्षीणकषायस्य।	= सो प्रतिपात है॥ क्षीणकषायवाले के अर्थात् बारहवाँ गुणस्थानवर्तीके
प्रतिपात-कारण-अभावात्। अप्रतिपातः।	= (संयम से) गिर पड़ने के निमित्त के अभाव से अप्रतिपात है

---

(१) स्मरण रहे कि यहां पर भी। जैसा कि पृष्ठ ४५१ में है) वीर्यान्तराय कर्मका और मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे और अंगोपांग-नामानाम कर्मके (उदयके) लाभकी प्राप्ति होनेसे आत्माके परिणामोंकी उज्ज्वलता सो विशुद्ध वा विशुद्धता है॥ यहां संक्षेपार्थ एक कर्मका नाम वृत्तिमें लिया है॥

(२) पहला ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो प्रतिपाती है क्योंकि ऋजुमतिवाला उपशम तथा क्षपक दोनों श्रेणियों पर चढ़ता है उसमें यद्यपि क्षपककी अपेक्षासे ऋजुमतिवालेका पतन नहीं होता तथापि उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे पतन होता है और दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी केवल क्षपकश्रेणी ही माढ़ता है और चढ़ता है उसका पतन कदापि नहीं होता निश्चयसे केवल ज्ञान प्राप्ति करता है॥ दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञान है सो अप्रतिपाती है॥ जिसके विशुद्ध परिणामोंकी घटवारी वा न्यूनता हो सो प्रतिपाती कहलाता है जिसके विशुद्ध भावोंकी न्यूनता न हो उसको अप्रतिपाती कहते हैं। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान तो विशुद्ध है क्यों कि प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमसे निर्मल भया है॥ बहुरि विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान विशुद्धतर है। क्योंकि मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे अतिशयकरि निर्मल हुआ है॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययज्ञानयोः को विशेषः ॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥

विशुद्धिः ;। च* अप्रतिपातः ;। च विशुद्धि-अप्रतिपातौ ;। =बहुरि विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्ध्यप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ
ताभ्याम् ;। (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् ;) =ताभ्याम् (जोड़कर) विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां (यह वाक्य) हुआ
तयोः ;। विशेषः ;। तद्विशेषः ;। =तयोः (तिनमें) विशेष सो तद्विशेष है। यह व्युत्पत्ति इस "विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष" सब सूत्रकी हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि उज्वलता तथा न च्युत होना तिन दो हेतुओंतें तिन (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान, विपुल मतिमनः पर्ययज्ञान)में विशेष अथवा भेद है।

(१) प्रश्न"ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः"इस सूत्रमें ही ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानमें अंतर वा भेद है सो स्पष्ट है फिर 'विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः' इस सूत्रका क्यों आरंभ किया गया है (उत्तर) दूसरा सूत्रमें जो ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमें विशेष बतलाया गया है वह साधारण है ॥ सर्वमनुष्योंका उससे संतोष नहीं हो सक्ता है इसलिये विशेष रूपसे इन दोनों ज्ञानोंमें भेद-अंतर बतलाने के लिये यह २४वां सूत्र कहा है।

(२) प्रश्नः— जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसही भांति उसके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद हैं। यदि यही अभिप्राय है तब तो इस सूत्रमें च शब्दका प्रयोग करना चाहिये ॥ (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मनः पर्ययज्ञानके भेद होते तब तो सूत्रमें च शब्द कहना युक्त होता। सो तो है नहीं किंतु वे (विशुद्धि और अप्रतिपात) ऋजुमति और विपुलमतिके समान भेद नहीं हैं वरन विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोऊ ऋजुमति विपुल मतिका स्वरूप विशेष है। तिससे च शब्दका अप्रयोग है ॥ सारांश इन दोनों ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्ययज्ञानोंमें ऋजुमति विशुद्ध है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान ऋजुमतिकी अपेक्षासे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के विशेष जाननेकरि विशुद्धतर है अथवा अधिक विशुद्ध है। ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है इसलिये स्वरूप विशेष होने से च शब्द सूत्रमें नहीं लाये हैं ॥

तत्र विशुध्या तावत्--ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतरः । कथमिह ? यः कार्मणद्रव्यानन्तभागोऽन्त्यः सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेर्विषयः । तस्य ऋजुमतिविषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागो विपुलमतेर्विषयः । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र* विशुद्ध्या ;॥ तावत्* ऋजुमतेः ;। =तहां विशुद्धताकरि तौ (=तावत्) ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे
विपुलमतिः ;। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः ;। =विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेष जानने) करि
विशुद्धतरः ;। कथम् ? * इह* =अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=इह) कैसे (=कथम्) ?
यः ;। कार्मणद्रव्य-अनन्तभागः ;। अन्त्यः ;। =जो कार्माण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनंतवां भाग
सर्वावधिना ; ज्ञातः ;। तस्य ;। पुनः* =सर्वावधिज्ञान द्वारा जाना गया है तिस (अंतिम अनंतवा भाग) के फिर (=पुनः)
अनन्तभागीकृतस्य ;। अन्त्यः ;। भागः ;। =अनंत भाग किये जायँ (तो यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्यः भागः)
ऋजुमतेः ;। विषयः ;। =ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्माण द्रव्य के अनन्तवें भागके
अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है

तस्य;। ऋजुमतिविषयस्य ;। अनन्तभागीकृतस्य ;। =तिस ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायँ (तो यह)
अन्त्यः ;। भागः ;। विपुलमतेः ;। विषयः ;। =अंत का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् जिस अनंतवें
भागको ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जो कि
दूर व्यवहित (=किया हुआ) और सूक्ष्म है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है

अनन्तस्य ;। अनन्त-भेदत्वात् ;॥। =क्योंकि अनन्त की (गिनती वा गणना के) अनंत भेद होते हैं
(अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तवे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)

द्रव्य-क्षेत्र-कालतः* विशुद्धि-उक्ता ;॥ =द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उज्ज्वलता कही गई अर्थात् द्रव्यकी
अपेक्षासे तो विशुद्धता यहां कही; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ४५३,४५४,४५५

भावतो विशुद्धिः सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः। स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ ऋजुमतिः पुनः प्रतिपाती, स्वामिनां कषायोद्रेका-द्धीयमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मनः पर्ययस्य प्रत्यात्ममयं विशेषः, अथानयोरवधिमनःपर्ययोः कुतो विशेष इत्यत आह--

---

भावतः * विशुद्धिः ;॥ सूक्ष्मतर-द्रव्य-विषयत्वात् ;॥ एव* वेदितव्या ;॥
प्रकृष्ट-क्षयोपशम-विशुद्धि-योगात् ;।

अप्रतिपातेन ; अपि * विपुलमतिः ;। विशिष्टः ;। स्वामिनाम् ;।

प्रवर्द्धमान-चारित्र-उदयत्वात् ;॥।
पुनः * ऋजुमतिः ;। प्रतिपाती ;।
स्वामिनाम् ;।
कषाय-उद्रेकात् ;। हीयमानचारित्र उदयत्वात् ;॥
यदि * अस्य ;। मनः पर्ययस्य ;। प्रत्यात्मम् ;। अयम् विशेष ;। अथ * अनयोः ;। अवधिमनः पर्ययोः ;।
कुतः * विशेषः ;। इति* अतः * आह T

=भाव (की अपेक्षा) से (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमें)
=(परिणामों की) उज्ज्वलता या विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतरः)
=द्रव्यके जानपनेसे ही जानना योग्य है
=क्योंकि (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान से विपुलमति मनः पर्ययज्ञान में) उत्कर्ष
=(मनः पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसंग है अर्थात विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विशुद्धि है॥
=(संयमकी) घट वारी न होने की अपेक्षा से भी (ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)
=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विशेषयुक्त या श्रेष्ठ है क्योंकि (इसके) स्वामियों के अर्थात् विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके या विपुल मतिज्ञान धारकोंके
=बढ़ेहुये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताई जाता है जबतक केवली न हो)
=और (=पुनः) ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाती है अर्थात् चारित्र छूटभी जाताहै
=क्योंकि (=इसके) अधिपतियों के अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके
=कषायकी उत्कटतासे हीयमान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है
=जो इस मनः पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह
=विशेष है तो अब (अथ) इनदोनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में
=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्याययोः ॥ सूत्र २५ ॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्याययोः २५

=विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्याययोः (विशेषः भवति)

विशुद्धि-क्षेत्र- =विशुद्धता उज्ज्वलता वा निर्मलता, जहां तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

स्वामिन्-विषयेभ्यः ५। =स्वामी वा ज्ञानोंका प्रयोग करने वाला और ज्ञेय वस्तुओंके हेतुसे अर्थात इन चारोंकी अपेक्षासे वा विलक्षणतासे

अवधिमनपर्याययोः ७। =अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानोंमें

विशेषः १। भवति T =विशेष, भेद वा अंतर होता है भावार्थ अवधिज्ञानकी अपेक्षासे मनः पर्यय ज्ञान अधिकतर विशुद्ध है (जितने रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान वाला जानता है उनको मनः पर्ययज्ञानी मनोगत होने पर भी अधिकतर शुद्धता से जान लेता है अवधिज्ञानीसे मनः पर्ययज्ञानीके परिणामोंमें अधिकतर विशुद्धता है) ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञान थोडे क्षेत्रवाला है । अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है और विषयका क्षेत्र सर्व लोक है । मनः पर्ययज्ञान मनुष्य लोकमेंही उत्पन्न होता है और मनुष्य लोकका विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजन चौडा और पैंतालीस लाख योजन लंबा समान चौकोर घनरूप प्रतर क्षेत्र (यहां ऊंचाई थोडी है इससे घन प्रतर कहा है) इसका विषय है क्योंकि मानषोत्तर पर्वतके बाहिर चारों कोनों में तिष्ठते देव और तिर्यंच द्वारा चिंतित और स्थित पदार्थोंको भी विपुल मति मनः पर्यय ज्ञान जानता है ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनः पर्ययज्ञानके स्वामी वा ज्ञानोंके प्रयोग करने वाले थोडे हैं संख्यामें न्यून हैं क्योंकि अवधिज्ञान चारों गतिके सैनी पंचेंद्रिय जीवोंके होता है और मनः पर्ययज्ञान गर्भज मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्तनिकेही प्रमत्त छठवें गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान तक उपजे है इत्यादि देखो पृष्ठ ४६४ से ४६६ तक ॥

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें 'मनः पर्यय' शब्दके स्थानमें 'मनःपर्याय' है शेष पाठ दोनों संप्रदायोंमें एक है । मनः पर्यय और मनःपर्याय दोनों एकार्थवाची है । हमारी समझमें मनःपर्यय लिखना ठीक है क्योंकि सूत्रका पाठ लघु होजाता है ॥ दोनों सम्प्रदायमें इस सूत्रका अर्थ भी एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें "द्विविधोऽवधिः" २१ सूत्रके अधिक होनेसे इस सूत्रकी गणना २६वां है हमारे यहां पचीसवां है ॥

विशुद्धिः प्रसादः । क्षेत्रं यत्रस्थान्भावान्प्रतिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञेयः ॥ तत्रावधेः

(१) अवधिज्ञानसे मनः पर्यय ज्ञानका विषय सूक्ष्म है । कार्माण द्रव्य के जिस अंतिम अनंतवें भागको सर्वावधि ज्ञानने विषय कर रक्खा है उस अनंतवें भागका भी अनंतवां भाग ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है और जिस अनंतवें भागको ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जोकि दूर व्यवहित और सूक्ष्म है वह विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय है (देखो सूत्र२७,२८) क्योंकि अनंतके अनंतभेद माने हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित पच्चीसवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

विशुद्धिः १।॥ प्रसादः १।। क्षेत्रम् १।॥ यत्र * =उज्ज्वलता, निर्मलता है वह विशुद्धि वा प्रसाद है ।। क्षेत्र वह है जहां तकके
स्थान् २।। भावान् २।। प्रतिपद्यते T =तिष्ठहुये भावनिकों वा रूपी पदार्थों को प्राप्त होता है अथवा जानता है
प्रयोक्ता १।। स्वामी १।। विषयः १।। ज्ञेयः १।। तत्र अवधेः ६।=(ज्ञानोंके) प्रयोग करनेवाला स्वामी है ।। ज्ञेयवस्तु सो विषय है । तहां अवधि ज्ञानसे

[१] प्रश्नः—शास्त्रों में मनः पर्यय ज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य बतलाया गया है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अल्प द्रव्य कहाहै क्योंकि सर्वावधिके विषयभूत रूपीद्रव्य का अनंतवां भाग मनः पर्यय ज्ञानका द्रव्य वा विषय है (सूत्र२८) और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसका विषय अधिक द्रव्य होता है वह अधिक विशुद्ध और जिसका विषय न्यून वा अल्प द्रव्य होता है वह अल्प विशुद्ध कहा जाता है अतः अधिक द्रव्यको विषय करने के हेतु मनः पर्यय ज्ञान की अपेक्षासे अवधिज्ञान अधिक विशुद्ध है और अल्प द्रव्यको विषय करनेके कारण मनः पर्यय ज्ञान अल्प विशुद्ध है ॥ (उत्तर) संसारमें एक मनुष्य तो ऐसा है जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान तो कररहा है परन्तु उनका एक देश रूपसेही व्याख्यान करता है, कहां क्या लिखा है, किस रूपसे लिखा है इस प्रकार समस्त रूपसे उनके अर्थका व्याख्यान नहीं करसकता-वैसा करनेमें असमर्थ है । दूसरा मनुष्य ऐसा है कि केवल एकही शास्त्रका व्याख्यान कररहा है परन्तु प्रत्येक अर्थ को भिन्न भिन्न दर्शा कर समस्त रूपसे अर्थ के कहनेमें समर्थ है । इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें पीछे का मनुष्य विशेष विशुद्ध ज्ञान का धारक समझा जाता है उसी प्रकार यद्यपि मनः पर्यय ज्ञानकी अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य है परन्तु वह उसे एक देश स्थूल रूपसे जानता है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अवधिज्ञान के विषय का अनंतवां भाग है तौ भी वह बहुत से रूप आदि पर्यायों के साथ समस्त रूपसे जानता है इसलिये अवधिज्ञान की अपेक्षा मनः पर्ययज्ञान ही अधिक विशुद्ध है ॥

मनःपर्ययो विशुद्धतरः । कुतः । सूक्ष्मविषयत्वात् ॥ क्षेत्रमुक्तं विशेषो वक्ष्यते ॥ स्वामित्वं प्रत्युच्यते ।

मनः पर्ययः ;। विशुद्धतरः ;। कुतः*
सूक्ष्म-विषयत्वात् ;॥
क्षेत्रम्-;।। उक्तम् ;।।

=मनः पर्ययज्ञान अतिशय वा अधिकतर विशुद्ध है । क्योंकर (विशुद्धतर है)
=क्योंकि (मनः पर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे) विषय वा जानपना सूक्ष्म है
=क्षेत्र (अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानका) (पहिले) कहा गया है अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौ से नीचे कोश है । उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे नीचे (=पृथक्त्व) योजनके भीतर है न कि बाहिर । (विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्यकरि तीनसे ऊपर नवसे न्यून (=पृथक्त्व) योजन प्रमाण है । उत्कृष्टकरि (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे) मानषोत्तर पर्वतके भीतर भीतर है नकि बाहिर (देखो पृष्ठ ४५४–४५५–टिप्पणी (१) पृष्ठ ४५५की अवश्य देखो) बहुरि "अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है अर विषयका क्षेत्र सर्वलोक है" अर्थप्रकाशिका सूत्र २५ चारों गतियोंकी अपेक्षासे अवधिज्ञानके क्षेत्रके संबन्धमें (पृष्ठ ४३५, ४३६, ४३७ अवश्य देखो)

विषयः ;।
वक्ष्यतेT

=विषय (अर्थात् अवधि मनः पर्ययज्ञानके जानपने का भेद सूत्र २७, २८)में
=कहा जायगा भावार्थ अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को विषय करते हैं सर्वावधि ज्ञानके विषयसे अनंतवां भाग सूक्ष्म मनःपर्यय ज्ञानका विषय होता है (तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य सूत्र २८) ॥

स्वामित्वम् ;०।
प्रत्युच्यतेT

=(अवधिज्ञान और मनःपर्यंयज्ञानमें) स्वामीपन वा अधिपतिपन (का भेद)
=कहा जाता है ।

प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्ततेऽप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु । तत्र चोत्पद्यमानः प्रवर्द्धमानचारित्रेषु न हीयमानचारित्रेषु ।

प्रकृष्ट-चारित्रगुण-उपेतेषु ‡। प्रमत्त-आदि-क्षीणकषाय-अन्तेषु ‡। वर्तते T

तत्र* च* उत्पद्यमानः ;।
प्रवर्द्धमान-चारित्रेषु‡। न* हीयमान-चारित्रेषु‡।

=उत्तम चारित्र गुणको प्राप्त होने पर प्रमत्त (छठे गुणस्थान) से
=क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) पर्यन्तमें (मनः पर्ययज्ञान) होता है अर्थात् प्रमत्तसंयमी मुनिसे लेकर क्षीणकषाय संयमी मुनियों तकके उक्त ज्ञान होता है
=तहां (छठे गुणस्थान से बारहवें तक) भी (=च) उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्यय)
=बढते हुये वा वृद्धिशील चारित्रों वालोंमें है न कि घटते हुये चारित्रों वालोंमें भावार्थ छठे गुणस्थान वर्तीनि से बारहवां गुणस्थान वर्तीनि में भी सब के मनः पर्ययज्ञान नहीं होता है वरन कषायोंकी दिनोंदिन मंदतासे बढते हुये चारित्र के ही धारक मुनियोंकेही होता है और कषायोंकी उत्कटतासे घटते हुये चारित्रवाले मुनियोंके कदापि उक्तज्ञान नहीं होता है

(१) अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानके स्वामित्वके अंतर दिखानेमें यह भेद लिख देना भी उचित है कि अवधिज्ञानका स्वामी अपर्याप्त अवस्था वाला जीव होसक्ता है परंतु अपर्याप्त अवस्था वाला जीव मनः पर्ययज्ञानका स्वामी नहीं होसक्ता अर्थात् जीवके अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें हो सक्ता है मनःपर्ययज्ञान नहीं होसक्ता है (सामान्यसे अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि तीन भेद होते हैं। भवप्रत्ययअवधि नियमसे देशावधि ही होता है। और दर्शनविशुद्धि आदि गुणोंके निमित्तसे होने वाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे तीनों प्रकारका होता है। जघन्य देशावधिज्ञान संयत तथा असंयत दोनोंही प्रकारके मनुष्य तथा तिर्यंचोंके होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवोंके ही होताहै किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी और महाव्रतीकेही होता है। देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है (=सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयमकी प्राप्ति) और परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं। देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवे हैं किन्तु सर्वावधिज्ञानमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं है – वह निर्विकल्प है ॥

"भवानुगामी अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें व्यक्तिरूपसे रहता है जैसेकि तीर्थंकरोंके पूर्ण श्रुतज्ञान जन्म समयमें भी होता है। किन्तु द्रव्य क्षेत्रकी सामग्रीके न मिलनेसे अपर्याप्त अवस्थामें स्फूर्ति अल्प होती है अविभाग प्रतिच्छेद भी श्रुतकेवलीके श्रुतज्ञानसे कम होते हैं तद्वत् सम्यग्दृष्टि देव नारकियों के अपर्याप्त अवस्थामें भी अवधिज्ञान होता है और वह व्यक्त है" विद्वद्वर्य पं० माणिकचंद सोरना से प्राप्त ॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमानः सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेष्वुपजायते नेतरेषु । ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति ॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु ३। च* उत्पद्यमानः १।	=बढ़ते हुये चारित्र (वाले) मिमें भी उपजने वाला वा उपजाऊ (मनः पर्ययज्ञान)
सप्तविध-अन्यतम-ऋद्धि-	=सात प्रकारकी (=विध) ऋद्धियोंमें से कोई एक (=अन्यतम ऋद्धि)
प्राप्तेषु ३। उपजायते[1] न* इतरेषु ३।	=प्राप्त होने (वालों) में उपजता है नकि अन्योंमें (=बिना ऋद्धि प्राप्त वालोंमें)
ऋद्धि-प्राप्तेषु ३। केषुचित* न* सर्वेषु ३। इति*	=ऋद्धप्राप्त वालोंमें केईकनि में (मनः पर्ययज्ञान) होय नकि सबमें ॥

(२) अन्यतमर्द्धि = अन्यतम + ऋद्धि [देखो टिप्पणी (२) पृष्ठ ७४] (३) उपजायते:— इस शब्दमें 'जन्' धातु दिवादि गणका, आत्मने पदी धातुहै चतुर्थगणका 'य' विकरण (अर्थात यह अक्षर है जो रूप बनाने से प्रथम धातुमें जोड़ा जाता) है। 'जन्' का बिना किसी विभक्तिके रूपोंके बनानेमें 'जा' होजाता है इस जा में य लगानेसे 'जाय' होजाता है। पश्चात एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमान कालका द्योतक 'ते' प्रत्यय लगानेसे जायते बनजाता है अर्थ "होता है" ऐसाहै (वृहद संस्कृत कोश पृष्ठ २८३) 'उप' उपसर्गके जोड़ने से 'उपजायते' (=उपजताहै) बनता है ॥ स्मरण रहे कि 'जन' धातुके जन्यते, जायते दो रूप कर्मणि प्रयोगमें बनते हैं ॥ ऐसेकि जन-जा में कर्मणि प्रयोगका 'य' जोड़ने से और पश्चात उक्त, 'ते' आत्मनेपदी एक वचन वर्तमानकाल अन्य पुरुषका प्रत्यय लगाकर 'जा + य + ते' जायते जन् + य + ते = जन्यते बनजाते हैं ॥ अर्थ उत्पन्न किया जाता है ऐसा है ॥

(१) जहाँ पर विशिष्ट वा प्रवर्द्धमान संयम होगा वहीं मनःपर्ययज्ञान होगा अन्यत्र नहीं। इसकी विशेष व्याख्या इस प्रकार है कि मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्योंके ही होती है देव नारकी और तिर्यंचोंमें नहीं होती। मनुष्योंमें भी गर्भज मनुष्योंमें ही होती है संमूर्छनज मनुष्यों में नहीं होती। (राजवार्तिक पृष्ठ ५९)

गर्भज मनुष्योंमें भी कर्म भूमिके मनुष्योंके ही होती है भोगभूमिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती। कर्म भूमिके मनुष्योंमें भी छहों पर्याप्ति पूर्ण होने से जो पर्याप्तक हैं उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं। पर्याप्तकोंमें भी सम्यग्दृष्टियोंके ही वह उत्पन्न होताहै, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों के नहीं। सम्यग्दृष्टियों में भी जो मनुष्य संयमी हैं उन्हीं के होता है असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्तियों और संयतासंयत पांचवें गुणस्थानवर्तियोंके नहीं। संयमियों में भी छठे गुणस्थान प्रमत्तसे बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत संयमियोंके ही होता है। बारहवें गुणस्थानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं। छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानतक होनेपरभी जिनका चारित्र कषायोंकी दिनों दिन मंदतासे दिनोंदिन वर्धमान है उन्हींके होता है किन्तु कषायोंकी उत्कटतासे जिनका चारित्र हीयमान है मंद होता चला जाता है।

अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् ॥

अस्य ॥ स्वामिविशेष-विशिष्टसंयम-	=इस (मनः पर्यय) के (अवधि से) स्वामीके भेदमें विशिष्ट संयम (=विलक्षण चारित्र) का
ग्रहणं ॥ वाक्ये ॥ कृतम् ॥	=ग्रहण वाक्य ('प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते' इस वाक्य) में किया है (नकि सूत्रमें)
	भावार्थ मनः पर्ययज्ञान की उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान हेतु है

उनके नहीं होता। प्रवर्धमान चारित्रवालोंमें भी सात प्रकारकी (बुद्धि-तप-वैक्रियिक-औषध-रस-बल-अक्षीण) की ऋद्धियोंमें जिनके कोई एक ऋद्धि होगी उन्हींके होता है किंतु जिनके कोई प्रकारकी ऋद्धि नहीं है उनके नहीं होता है। तथा ऋद्धि धारक पुरुषोंमें भी किन्हीं किन्हींके होता है सबोंके नहीं होता। इस प्रकार मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान कारण बतलाया है। परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियोंके जीवोंके होता है इस रूपसे अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है॥

(१) अस्त्यायं स्वामिविशेषः विशिष्टं संयमग्रहणं वा प्राक्कृतम् ॥ इत्येकः पाठः ॥ अस्त्यायं स्वामिविशेषः विशिष्ट संयतग्रहणं वा कृतं न सूत्रे ॥ इत्यप्यन्यः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते ॥

अस्य ॥ अयम् ॥ स्वामी विशेषः ॥ विशिष्ट ॥ वा संयम	=इस (मनः पर्ययज्ञान) के यह स्वामीका विशेष अथवा विशिष्ट संयमका
ग्रहणं ॥ प्राक्-कृतम् ॥	=ग्रहण पहिले (अर्थात् सर्वार्थ सिद्धिकी वृत्ति"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु"में) किया है
इति॰ एकः ॥ पाठः ॥ अस्य ॥ अयम् ॥ स्वामिविशेषः ॥	=ऐसा एक पाठ है। इस मनः पर्ययज्ञानके यह स्वामीका विशेष वा भेद
वा॰ विशिष्ट-संयतग्रहणं ॥ कृतम् ॥ न॰ सूत्रे ॥	=वा विशिष्ट संयमका ग्रहण(तत्त्वार्थ)सूत्रमें नहीं किया है (वाक्य वा वृत्तिमें किया है)
इति॰ अपि॰ अन्यः ॥ पाठः ॥ पुस्तक-अन्तरे विद्यते ॥	=ऐसे भी दूसरा पाठ अन्य पुस्तक (सर्वार्थसिद्धिकी दूसरी प्रति) में विद्यमान है

इन तीनों वाक्योंके हिंदी अनुवादसे प्रगट है कि संस्कृतके ऊपरके वाक्य और टिप्पणीके दो वाक्योंका आशय एकसा है॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस १५वां सू-की "विशिष्टसंयमगुणैकार्थसमवायी मनः पर्ययः दूसरी वार्तिक है॥ अर्थ—विशेष रूप संयम गुणकरि एकार्थ समवायी मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् मनःपर्ययज्ञानका अविनाभाव विशिष्ट संयम गुणके साथ है। इसकी वृत्ति 'विशिष्टः संयम गुणो यत्रविद्यते तत्रैव वर्तते मनः पर्ययः' है अर्थात् विशुद्ध संयम हो तहां ही मनः पर्ययज्ञान प्रवर्तें है (अन्यत्र नहीं)॥ इसी वृत्तिमें 'विशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम्' का अर्थ पन्नालाल बूजी ने "यातें विशिष्ट संयम पदका ग्रहण वाक्यमें है" यहां वाक्यका अर्थ 'वार्तिकमें है' अथवा 'वृत्तिमें है' होना क्योंकि विशिष्टसंयम पद वृत्ति वार्तिक दोनोंमें आया है विशिष्टसंयम, प्रकृष्ट चारित्र, विशुद्धसंयम वा विशुद्ध चारित्र एकार्थवाची है॥ हमारी समझमें जैसा अर्थ आया वही लिखा

अवधिः पुनश्चातुर्गतिकेष्विति स्वामिभेदादप्यनयोर्विशेषः ॥ इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधानं प्राप्तकालं तदुल्लंघ्य ज्ञानानां विषयनिबन्धः परीक्ष्यते ॥ कुतः । तस्य मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमित्यत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥ यद्येवमाद्ययोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषयनिबन्ध उच्यतामित्यत आह-

---

पुनः* अवधिः ;। चातुर्गतिकेषु ;। इति*
स्वामिभेदात् ;। अपि* अनयोः ;॥। विशेषः ;।

=परंतु (=पुनः) अवधिज्ञान चारों गतिवालोंमें है इस प्रकार
=स्वामी विशेषसे भी दोनों (अवधिज्ञान तथा मनः पर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान तो केवल विशिष्ट संयम धारक मुनियों के ही होता है परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियों के जीवों के होता है इस प्रकार अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है

इदानीं* केवलज्ञान-लक्षण-अभिधानं ;॥। प्राप्तकालं ;॥।
तद्-उल्लंघ्य ÷ ज्ञानानां ;॥। विषयनिबन्धः ;। परीक्ष्यते T
कुतः *
तस्य ;॥ मोह-
क्षयात् ;। च* ज्ञानदर्शन-आवरण-
अन्तराय-क्षयात् ;। केवलम् ;॥ इति*
अत्र* वक्ष्यमाणत्वात् ;॥।
"यदि* एवम्* आद्ययोः ;॥। एव* तावत*
मतिश्रुतयोः ;॥। विषय-निबन्धः ;। उच्यताम् T इति
अतः* आह T

=अब (=इदानीम्) केवलज्ञानके स्वरूपके कथनका अवसर प्राप्त है
=उसको छोड़कर (=उल्लंघ्य) ज्ञानोंके विषयोंकी सीमा या नियम परखा जाय है
=(केवल ज्ञानके स्वरूपके कथनको छोड़कर ज्ञानोंके विषय नियम) क्यों (कहते हैं)
=(उत्तर) क्योंकि तिस (केवलज्ञान) के (लक्षण अभिधानको) मोहनीय कर्मके
=नाश होने (के हेतु) से और (=च) उसके पश्चात् ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय
=अन्तराय कर्मोंके क्षय होने (के निमित्त) से केवलज्ञान होता है इस प्रकार
=यहां (अर्थात् दशवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें) कहा जायगा
=जो ऐसे है तो (=तावत्) आदिके दोही (=एव)
=मतिज्ञान, श्रुतज्ञानके विषयका नियम (=निबन्ध) कहा जाना चाहिये
=इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

---

(१) पुनः = परंतु – किंतु (" पुनरप्रथमे भेदे तथा पक्षांतरेऽपिचं " इत्यमरः सारः । पुनर् अप्रथमे भेदे पक्षांतरे अपि च ॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

सूत्रम्— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु	=मतिश्रुतयोः विषयस्यनिबन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति
सूत्रार्थः मतिश्रुतयोः॥ विषयस्य॥ निबन्धः॥	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका सम्बन्ध वा नियम (=निबन्ध)
द्रव्येषु ॥॥	=द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) निकेविषैं
असर्व-पर्यायेषु ॥॥ भवति T	=कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सब) पर्यायोंमें होता है अर्थात मतिज्ञान और श्रुत ज्ञानके जानने (=विषय) का संबन्ध सब (छहो) द्रव्योंके कुछ पर्यायों में होता है—छहो द्रव्यों को तो जानते हैं परंतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सकते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है । शेष पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु लिया है ॥ उक्त सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या सत्ताईसवीं है क्योंकि हमारे यहांके इक्कीसवां सूत्रके सभाष्य०में दो सूत्र कर दिये हैं ॥

(२) हमारे यहांकी बहुधा पुस्तकोंमें 'निबन्ध' शब्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निबंध' है । अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निबंध भी ठीक है ॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ२१४में "निबन्ध, (पु०) नि+बन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अब प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ ॥

अपदान्त म्-न् ॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवां अध्यायका तीसरे पादका चौबीसवां सूत्र है । इस सूत्रसे पहिलेका सूत्र "मोऽनुस्वारः" तेईसवां है । इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रमें आती है । तब चौबीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपादन्तस्य झलि (अनुस्वारः) । च से तेईसवां सूत्रके मो (=मः) का आकर्षण होता है । इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः, मः ; अपादन्तस्य ; झलि, अनुस्वारः) झलि प्रत्याहार है और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सब आजाते हैं । अर्थात् क् ख् ग् घ् । च् छ् ज् झ् । ट् ठ् ड् ढ् । त् थ् द् ध् । प् फ् ब् भ् । श् ष् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौबीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपादन्त=विभक्ति वा कारक जिसके अंतमें नहो । सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि म अथवा न पूर्वोक्त चौबीस अक्षरोंमेंसे किसी अक्षरके पहिले हो । इसलिये निबन्धके न् का अनुस्वार होकर 'निबंध' होगया क्योंकि न् के पीछे ध् है ॥ अन्य उदाहरण, जैसे यशांसि+इ यशांसि, यह यशांसि, यश नपुंसक लिंगीका बहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, यशांसि का अर्थ है बहुत यश ॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पकड़ेगा विजय, करेगा, जीतेगा) होगया ॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

निबन्धनं निबन्धः। कस्य विषयस्य। तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्॥ प्रकृतं विषयग्रहणं। क प्रकृतं? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिसम्बध्यते॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देशः सर्वेषां जीवधर्माधर्माकाशपुद्गलानां संग्रहार्थः। तद्विशेषणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

निबन्धनम् ;॥ निबन्धः ;।	=लगाव (=निबन्धन, जो) है सो निबन्ध है अर्थात् विषयभूत सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निबन्ध शब्द है उसका अर्थ संबन्ध है और 'निबन्धनं निबन्ध' उस निबन्ध शब्दकी व्युतपत्ति वा व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है वा निकास है।
कस्य ;। विषयस्य ;।	=(प्रश्न) किसका (निबन्ध) (उत्तर) विषयका (निबन्ध)॥ (प्रश्न) उस
विषय-ग्रहणं ;॥ कर्तव्यम् ;॥ तद्- न* कर्तव्यम् ;॥	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था। (उत्तर) नहीं करना योग्य था
विषय-ग्रहणं ;॥ प्रकृतं ;॥	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृतं) है
प्रकृतं ;॥ क ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः ;।	=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहां है। (उत्तर) 'विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः'
इति* अतः* तस्य ;।	=ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है। इस लिये तिस (विषय शब्द) के
अर्थ-वशात् ;।	=आशय वा तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहां जैसा अर्थ लिया जाता है वहां वैसाही)
विभक्तिपरिणामः ;। भवति T इति*	=विभक्तिका परिवर्तन वा विपरिणाम वा परिणमन होजाता है। ऐसे
विषयस्य ;।	=(इस सूत्रके मतिश्रुतयोः और निबन्ध शब्दोंके बीचमें) विषयस्य
इति* अभिसम्बध्यते T द्रव्येषु ;॥ इति*	=ऐसा (पद) लगाया गया है वा जोड़ा गया है। द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषै) ऐसा
बहुवचन-निर्देशः ;। सर्वेषाम् ;।	=बहुवचनका जतलाने वाला वा बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सब
जीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलानाम् ;। संग्रह-	=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलोंके समुच्चयके
अर्थः ;। तद्- विशेषण-अर्थम् ;॥ असर्वपर्याय—	=अर्थ है। उन (द्रव्यों) के विशेषणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह-धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते। अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोषः। अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धि-पूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूपः प्रागेव-

---

ग्रहणम् ;0।
=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है

तानि;॥ द्रव्याणि;॥ मतिश्रुतयोः;॥ विषयभावम्;।
=ते द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको

आपद्यमानानि ;॥ कतिपयैः ;। एव* पर्यायैः ;।
=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेकही पर्यायोंकरि

विषयभावम् ;। आस्कन्दन्ति T न*
=विषयभावकों प्राप्त होते हैं न कि

सर्वपर्यायैः ;। अनन्तैः ;। अपि* इति*
=अनन्त सब पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)

सारांश—मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व वा अनंत पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥

अत्र* आह T धर्मास्तिकायादीनि ;0।
=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)

अतीन्द्रियाणि ;॥।
=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं

तेषु ;॥ मतिज्ञानम् ;0। न* प्रवर्तते T
=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है

अतः* सर्वद्रव्येषु ;॥ मतिज्ञानम् ;॥ वर्तते T
=इसलिये सब (छहो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्तता है

इति* अयुक्तम् ;॥ न* एषः ;। दोषः ;। अनिन्द्रिय-
=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)

आख्यम् ;।। करणम् ;॥ अस्ति T तद्-
=नामा (=आख्यं) (अंतरंग) करण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के

आलम्बनः ;।
=निमित्तक वा कारणक (तद्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)

नो-इन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम-लब्धि-पूर्वकः ;।
=श्रुत(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)

उपयोगः ;। अवग्रह-आदिरूपः ;। प्राक्* एव*
=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह--

उपजायते T ततस* तत्- =उपजता है। पश्चात् (ततःदेखो वैद्य कोश पृष्ठ ३००) उस (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के

पूर्वम् ;॥॥ =निमित्तक (अर्थात् अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)

श्रुतज्ञानम् ;॥॥ स्वयोग्येषु ;। तद्- =श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों) के

विषयेषु ;। व्याप्रियते T =विषयोंमें (अर्थात ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यहहै :— प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रयोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानको उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहतेहैं कि धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥

अथ* मतिश्रुतयोः ;॥॥ अनन्तर- =अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगताहीं

निर्देश-अर्हस्य ;। अवधेः ;। कः ;। =निरूपण वा कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या

विषयनिबन्धः ;। इति* अतः* आह T =विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

---

(१) "तत्पूर्वं" वाक्यमें 'पूर्व'शब्दका प्रयोग उसही भांति है जैसेकि 'श्रुतमति पूर्वं द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् =पूर्वकम्

(२) व्याप्रियते– पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ वहुधा वि, आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रिय् हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोड़नेसे 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तरिप्रयोगमें "व्याप्रियते" बनता है। कर्मणिप्रयोग में 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो, व्या+प्रिय, पीछे उक्त 'ते' जोड़ो, व्याप्रियते हो जाता है ॥ यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग में इस शब्द को लाये हैं।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते ।

रूपिष्ववधेः

रूपिषु ः। असर्व-पर्यायेषु ः।
अवधेः ः। विषय-निबन्धः ः। भवति T

=रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवधेः (विषय-निबन्ध भवति)

=मूर्तीक (पदार्थ) निके (विषै) कितनेक वा थोड़े (नकि सब) पर्यायों में

=अवधि ज्ञानके विषयका सम्बन्ध होता है - सारांश यहहै कि पुद्गल द्रव्यके अनंते पर्याय अवधिज्ञानके विषयभूत नहींहैं किन्तु उसके कतिपय पर्यायोंको और जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामोंको ही (अवधिज्ञान) विषय करताहै क्योंकि रूप रस गंध स्पर्श विशिष्टही पदार्थ अवधिज्ञानके विषय होते हैं अतः जीवके क्षायिक और पारिणामिक भाव तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अरूपीपदार्थ होनेके निमित्त अवधिज्ञान के विषयभूत नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सत्ताईसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंन्दी अनुवाद

विषयनिबन्धः ः। इति* अनुवर्तते T

=विषयका निबन्ध ऐसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पच्चीसवां और छबीसवां सूत्रसे यथासंख्य आतीहै तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विषयनिबन्धेः" ऐसा हुआ

(१) रूपमें रूप रस गंध स्पर्शका ग्रहण समझना चारोंही अविनाभावी हैं । अतः एकके ग्रहणसे चारोंका ग्रहण होताहै। तत-वितत के भांति शब्दहैं ।
(२) इस सूत्रका का पाठ हमारे यहां सर्वत्र और श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य तत्त्वार्थअधिगमसूत्रमें एकहैं और अर्थभी दोनों सम्प्रदायमें एकसा है।
(३) "रूपिष्ववधे": सूत्रमें रूपशब्द उपलक्षण है । इसलिये रूप शब्दके कहनेसे उसके अविनाभावी (=छुटे न रह सकने वाले) रस गंध स्पर्शका भी ग्रहण है ॥ "अजहत्स्वार्थलक्षणयाऽन्यग्राहकम्", उपलक्षणम् । अजहत्स्वार्थलक्षणया (=अपने अर्थको न छोड़कर) जो दूसरे पदार्थों का ग्रहण करनाहै उसका नाम उपलक्षणहै जिस प्रकार 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां' कौओंसे दहीकी रक्षा करो । यहां पर काक शब्द उपलक्षण है इसलिये जितने भी जीव दहीके विघातक हैं उन सबका काक शब्दसे ग्रहण है उसी प्रकार प्रकृतमें रूप शब्दको उपलक्षण माननेसे जितने उस रूपके अविनाभावी रस गंध स्पर्श गुणहैं उन सबका रूप शब्दसे ग्रहण है ॥

रूपिष्वित्यनेन पुद्गलाः पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते । रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते ॥

अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

रूपिषु ;। इति* अनेन ;। पुद्गलाः ;। च* पुद्गलद्रव्य-
सम्बन्धाः ;। जीवाः ;। परिगृह्यन्ते T रूपिषु ;। एव*
अवधेः ;। विषयनिबन्धः ;। न* अरूपिषु ;।
इति* नियमः ;। क्रियते T रूपिषु ;। अपि* भवत्;।
न* सर्वपर्यायेषु ;। स्वयोग्येषु ;। एव*

=रूपी (पदार्थ) निमें ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके
=संयोगी जीव लिये गये हैं वा ग्रहण किये गये हैं । रूपी (पदार्थ) निमें ही
=अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
=ऐसा नियम कियागया है। रूपी (पदार्थ) निमेंभी (अवधिज्ञानका विषय) होता हुआ
=असमस्त (कितनेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कतेकपर्यायों
में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामों को
ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)

इति* अवधारण-अर्थम् ;।। असर्वपर्यायेषु ;।
इति* अभिसम्बन्ध्यते T

=ऐसा निश्चय करने के लिये (=अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
=ऐसा (वाक्य सूत्रमें) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां
और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे
लीगई तब सूत्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषुरूपिष्ववधेः विषयस्यनिबन्धः'

अथ* तद्-अनन्तर निर्देशभाजः ;।
मनः पर्ययस्य ;। विषयनिबन्धः ;। कः ;। इति अतः आह

=अब उस (अवधिज्ञान) के लगता ही (=अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशभाजः)
=मनः पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'भवत्'-'भू' धातुका वर्तमान कृदन्त है। बहुधा वर्तमान कृदन्त ऐसे बनाये जाते हैं कि धातुका वह रूप लेलो जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान कालके प्रत्यय लगाने से पहिले बन जाता है । इसके पश्चात् वर्तमान कृदन्तका अत् यदि धातु परस्मैपदमें हो और (वर्तमान कृदन्तका) मान प्रत्यय यदि धातु आत्मने पदमें हो, जोड़ा जाय । अब भू को गुणसंज्ञा भो हुआ, भव्…हुआ प्रथम गणका अ विकरण लगाने से भव हुआ, अत् जोड़ने से भव + अत् हुआ, यदि प्रत्यय के आरम्भमें अ हो तो उससे पहला 'अ' गिरा देते हैं अतः भवत् हुआ ॥

तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य ॥ २८ ॥

* यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनः पर्ययः प्रवर्तते ॥ *

अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्—तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य =तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद्-अनन्तभागे ;। मनःपर्ययस्य ;। =उस (सर्वावधिज्ञेय) के अनंतवां अंश (सूक्ष्मतर) में मनः पर्यय ज्ञानके
विषयस्य ;। निबन्धः ;। भवति T =विषयका सम्बन्ध है भावार्थ जो परमावधि ज्ञानके विषयभूत पुद्गल स्कन्धमें अनन्तका भाग दीजिये तो एक परमाणु मात्र सर्वावधिका विषय होय है बहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीजिये तब ऋजुमति मनः पर्ययज्ञानका विषय होताहै तिसमेंभी अनन्तका भाग दें तब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका विषय होता है (पं० जयचंद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

(२)यद्;॥। एतद्;॥। रूपि द्रव्यम् सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन;॥। =जो यह रूपी पदार्थ सर्वावधिज्ञानका विषय होने से
समर्थितम् ;॥। तस्य ;॥। =समर्थन किया है वा सिद्ध किया है । तिस (सर्वावधिके विषयभूतरूपी पदार्थ) के
अनन्तभागीकृतस्य ;॥। एकस्मिन् ;। भागे ;। =अनन्त भाग किये जावें तो उसके एक अंश में
मनः पर्ययः ;। प्रवर्तते T ॥ अथ* अन्ते ;। =मनः पर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है । अब अन्त में
यत् ;॥। निर्दिष्टम् ;॥। केवलज्ञानम् ;॥। तस्य ;॥। =कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के
विषय-निबन्धः ;। कः ;। इति* अतः* आह T =विषयका नियम क्या है । इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाधन्थमें 'मनःपर्यवस्य'के स्थानमें 'मनःपर्यायस्य' है । शेष पाठ और अर्थभी दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ मनःपर्ययस्य ;।

(२) अवधेर्मनः पर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम् । यतो मनः पर्ययस्यावधिविषयानन्तभागेऽन्यत्रापि दर्शितावृत्तिः प्रवर्तते इति पाठान्तरस्य ॥ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिमें "इति पाठान्तरम्" के स्थानमें "इत्यप्यधिकः पाठः" ऐसा वाक्य है ॥ ऐसा अधिक पाठ भी है ॥

अवधेः ;। मनः पर्ययस्य ;। सूक्ष्मविषयत्व-दर्शन- =अवधि (ज्ञान) से मनः पर्यय (ज्ञान) का सूक्ष्म विषयताके समझानेके वा बताने के
अर्थम्;॥। सूत्रम् ॥। इदम्;॥। न* तु* विषयनिबन्ध-अर्थम्;॥। =लिये (अर्थम्) यह सूत्र है किन्तु (=तु) विषयकी इयत्ता वा सीमाके लिये नहीं है

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ २९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्-सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य

सर्वद्रव्यपर्यायेषु ‡। केवलस्य ‡॥। विषयस्य ‡।
निबन्धः ‡। भवति T

=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका
=नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः अनुवाद

द्रव्याणि‡॥ च* पर्यायाः‡। च* द्रव्यपर्यायाः‡। इति* इतरेतरयोगलक्षणः‡। द्वन्द्वः ‡।
तद्-विशेषणम् ‡॥। सर्वग्रहणम् ‡॥।
प्रत्येकम्* अभिसम्बध्यते T

=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य
=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला वा अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः* मनः पर्ययस्य‡। अवधि-विषय-अनन्त-भागे‡। अन्यत्र* अपि* दर्शिता‡॥ वृत्ति‡॥ प्रवर्तते T इति* पाठ-अन्तरम्‡॥॥इत्यप्यधिकः पाठः

=क्योंकि (=यतः) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां
=भागमें है। दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में
=प्रवर्तता है वा विद्यमान है (देखो पृष्ठ४५८में वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है॥
(अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनंतवां भागमें तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमें भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है (=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी व्यवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति गूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो वा तिन (पर्यायों)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है॥ द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु=द्रो=द्रव्) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनावें उस शब्दको समास कहते हैं। "और" से जो पहले हो वह समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कहाता है जो समुच्चित तथा समुच्चेय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते हैं॥

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति* सर्वेषु ;॥। द्रव्येषु;॥। सर्वेषु ;। पर्यायेषु ;। =इस प्रकार समस्त द्रव्यों की [illegible] पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत* जीव द्रव्याणि ;॥। अनन्तानन्तानि ;* च* =प्रथम (=तावत्) जीवद्रव्य [illegible] अनन्तानन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि ;॥। ततः * अपि * अनन्तानन्तानि;॥। =पुद्गलद्रव्य उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे
अणुस्कन्धभेदेन ;। भिन्नानि ;॥। धर्म-अधर्म- =अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि;॥। त्रीणि;॥। च* कालः;। असंख्येयः;। =और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं
अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केके जे ट्ठिया हु एक्केका ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपिखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास-पदेसे ;। एक्केके ;। जे ;। (=लोकाकाश-प्रदेशे;। एकैकस्मिन्;। ये;।) =लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ट्ठिया ;। हु* एक्केका ;। रयणाणं ;॥। (स्थिताः ;। हि* एकैकाः ;। रत्नानाम् ;॥।) =एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं। रत्नोंकी
रासी ;। इव* (राशिः ;। इव*) =राशि वा समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा (ते ;। काल-अणवः ;। मन्तव्याः ;।) =वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य हैं
इति* गाथा–उक्त-प्रकारेण ;। कालद्रव्यस्य ;॥। अणुरूपत्वात् ;॥। =ऐसे गाथा में कहे हुऐ भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
नानात्वम् ;॥। धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ;। अनेक-प्रदेशत्वे ;॥। =अनेकता है। (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि खण्डात्मक-अभावात् ;। एकैकत्वम् ;॥। अवबोद्धव्यम् ;॥ =भी खंडरूप नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् एक जानना चाहिये।

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाहै वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसें मिले हुये हैं कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते हैं इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही हैं। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तेल की भांति व्याप्तहै और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित हैं उनहीं प्रदेशोमें स्थितरहते हैं इनके प्रदेश अकम्प हैं॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिः अध्याय ५ सूत्र ३९ पर

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमाहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते-

---

च* तेषाम् ;॥। त्रिकालभुवः ;। =और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले

प्रत्येकम्[१]* अनन्तानन्ताः ;। पर्यायाः ;। तेषु ;॥ =प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं। उन (द्रव्यों) में

वा द्रव्यं पर्यायजातं ;॥। केवल ज्ञानस्य ;॥ विषय-भावम् ;। =वा द्रव्य पर्यायों का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को

अतिक्रान्तम् ;। न* किञ्चित्* अस्ति T हि* तद् ;॥। =उल्लंघन करनेको किंचित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तद्) केवलज्ञान

अपरिमित-माहात्म्यं ;॥। इति* ज्ञापन-अर्थम् ;॥। =अपरिच्छिन्न वा असीम महत्वरूप है। ऐसा (=इति) जनावने के लिये

सर्वद्रव्यपर्यायेषु ;। इति* उच्यते T =समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है

आह T विषयनिबंधः[२];। अवधृतः[२];। मतिआदीनाम्[३] ;॥। =शिष्य-अब) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहेगये

इदम् ;॥। तु* न* निर्ज्ञातम् ;॥। एकस्मिन् ;। =परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक

आत्मनि ;। स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि ;॥। =जीवमें अपने अपने कारणों के निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले

ज्ञानानि ;॥। यौगपद्येन[४] ;॥। कति[५] ;। भवन्ति T इति* =ज्ञान एक काल अथवा एक वार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)

अतः* उच्यते T =इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

---

१ प्रत्येकम् - यह वैद्य संस्कृत-अङ्गलभाषा कोष पृष्ट ४६२ में अव्यय लिखा है। इसलिये हमने भी इसको अव्यय लिखा है॥

२ अवधृतः :— विवृतः ;। इति* अपि* पाठान्तरम् ;॥। = विवृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है

३ मति + आदीनाम् = मत्यादीनाम्-आदि समासोंके अंतिम अवयववत् 'इस सदृश' 'और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है। भ्वादयः धातवः यहां पर आद्यः शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् को षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें लिखा है (देखो उक्त कोश पृष्ट ९९)

४ यौगपद्य वा यौगपद-नपुंसक लिंग है (वैद्य कोश पृष्ठ ६०१) दोनों समकालता, एककालता अर्थमें है अतः हमने नपुंसक लिखा है।

५ कति-सर्वनाम सदा बहुवचनमें आता है और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः =एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ चतुर्भ्य (ज्ञानेभ्यः) सम्भवन्ति

एकादीनि ;॥॥ ज्ञानानि ;॥॥ भाज्यानि ;॥॥
युगपद्* एकस्मिन् ;। जीवे ;। आ* चतुर्भ्यः ;॥॥ ज्ञानेभ्यः
सम्भवन्ति T

=एक ज्ञानको आदि लेकर (=एकादीनि)भाज्यरूप वा विभाग किये (=भाज्यानि)
=एक साथ (=युगपद्) एक जीवमें चारज्ञान तक (=आ)
=सम्भवहैं, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान होंगे यदि चार होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे

---

१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एक है जैसाकि अगली टिप्पणियोंसे प्रगट होगा।

२ वार्तिकः—संख्या वचनोवैकशब्दः =(वृत्ति) अथवा संख्या वचनोऽयमेकशब्दः = अथवा(सूत्रमें)यह एक शब्द संख्यावाचीहै ॥ एक =एकत्वसंख्या।

एकम आदिः यस्य् तानि इमानि एकादीनि कथम् ?* =एक है आदि जिनके ने ये एकादि हैं। (प्रश्न) कैसे ?
एकस्मिन् ;। आत्मनि ;। मतिज्ञानम् ;॥॥ एकम् ;॥॥ =(उत्तर) एक आत्मामें एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है
(श्रुतज्ञान दो प्रकार है एक अक्षरात्मक श्रुतज्ञान दूसरा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान)
यद् अक्षर श्रुतम् ;॥॥ द्वि+अनेक+द्वादशभेदम् ;॥॥ =जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो दो अनेक द्वादश भेदरूप है
उपदेशपूर्वकम् ;॥॥ =(वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) उपदेश द्वारा होता है (जैसाकि इस अध्यायका बीसवां सूत्र है)
तद् भजनीयम् ;॥॥ स्यात् T वा =वह (अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) भजनीय है या भाज्य रूप है किन्हीं जीवोंके होता है
न * वा * इति ** =किन्हींके नहीं(अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षा एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सक्ता है)
इतरत् ;॥॥ पूर्ववत् * =अन्य पूर्व (पहिले) सदृश होय है अर्थात् दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों तीन ज्ञान हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हों अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान हों, चार हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान हों

परः ।। आह T असंख्यासहाय- = दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असंख्या असहाय

प्रधान्यवचने ।। एकशब्देन ।। सति ।। एकादीनि ।।।। = प्रधान अर्थका वाचक (इस सूत्रमें आये हुये) 'एक' शब्दके होते 'एकादीनि' है

केवलादीनि ।।।। इति ※ अर्थः एकस्मिन् आत्मनि क्षायिकत्वात् = सो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे

एकम् ।।।। केवलज्ञानम् ।।।। मतिश्रुते ।।।। = एक केवल ज्ञान होता है। (दो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं

इत्यादिपूर्ववत् ※ = इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि

इस सूत्रमें 'एक' शब्दका असंख्या असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारों क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवके एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना संभवहै यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होंगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे, यदि तीन एक कालमें होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान होंगे, यदि चार ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान होंगे ॥ (देखो तत्त्वार्थ-राजवार्तिक पृष्ठ ६३) ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसक्ता है और केवलज्ञान भी अकेला होसक्ता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट है (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

श्रुतज्ञानस्य ।।।। तु ※ मतिज्ञानेन ।।।। नियतः ।। सहभावः ।। = किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है
(अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)

तद् पूर्वकत्वात् ।।।। = क्योंकि उस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेको मतिज्ञान कारण है ॥

यस्य ।। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति = परंतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है

अत्र ※ आह T केवलज्ञानस्य ।।।। पूर्वैः ।।।। मतिज्ञानादिभिः = यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे

किम् ।।।। सहभावः ।। भवति T न इति ※ उच्यते T = क्या सहभाव होता है ? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहां केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

एकशब्दः संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचनः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

एकशब्दः। संख्यावाची। आदिशब्दः। अवयववचनः। =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकड़ा (=टूंक) के अर्थमें है

(१) पृष्ठ ४७७ की दूसरी टिप्पणीमें हम दिखाचुके हैं कि तत्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द संख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतमें यहीं 'एक' शब्दअसंख्या असहाय प्रधान अर्थ का वाचक है अब इसार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ संभव होने पर (भी) वक्ताकी इच्छासे (=विवक्षातः) प्रथमकावाची 'एक' शब्दहै (=अनेकार्थ सम्भवे विवक्षातः प्राथम्यवचनः एकशब्दः) अनेकार्थ ये हैं कि कहीं संख्या (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे 'एको द्वौ बहवः' एक दो बहुत ॥ कहीं अन्य (अर्थ) में जैसे 'एके आचार्याः = अन्ये आचार्याः = दूसरे आचार्याः कहीं असहाय (अर्थ) में जैसे 'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीराः' ते शूरवीर अकेले विचरतेहैं। कहीं प्रधान अर्थ में जैसे एकहतां सेनां करोमि = प्रधानहतां सेनां करोमि इति अर्थः =प्रधान द्वारा सैनाको नष्ट करता हूं ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रथम अर्थ में जैसेः—एकमागमनं = प्रथमागमनम् इति = पहिला आना हुआ ॥ सूत्रमें 'प्रथम वा पहिले' के अर्थमें 'एक' शब्द लाये हैं और नवमां सूत्र 'मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानिज्ञानम् " है तब एकादीनि" वाक्य का अर्थ 'प्रथम वा पहिले ज्ञानकों आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे वा भाज्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित हैं ॥

[२] तत्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने "आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी 'अवयव' और सामीप अर्थ में लियाहै "आदि शब्दश्चावयववचनः" "सामीप्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकड़े का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ॥ कहीं पर व्यवस्था (अर्थ) में (आदि शब्द) वर्तता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः (=ब्राह्मणादिक चार वर्ण हैं) ब्राह्मणव्यवस्थाः (=कि ब्राह्मणकी व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः इत्यर्थः कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अर्थ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था वा रचना है। कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे भुजंगादयः परिहर्तव्या (भुजंगादिक परिहार करने योग्य हैं) भुजंगप्रकाराः विषवंत इत्यर्थः (=भुजंगका प्रकार कहिये भुजंग सदृश विषवान सर्वजीव त्यागने योग्य हैं) ऐसा अर्थ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सर्व) जीवोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकड़ा, टूंक, वा भाग अर्थ में वर्तताहै जैसेकि ऋगादिमधीते ऋगवयव-मधीते इति अर्थ =ऋग्वेदके (=ऋग्) कुछ भाग को (=अवयवम्) पढ़ता है (=अधीते) ऐसा अर्थ है ॥

एकआदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि ॥ आ कुतः ? आ चतुर्भ्यः ॥ तद्यथाएकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि

एकः। आदिः। येषाम्। तानि। इमानि। एकादीनि भाज्यानि। विभक्तव्यानि।

=एक है आदि जिनके (=येषाम्) ते (=तानि) इतने (=इमानि) एकादीनि हैं =सो भाज्यानि (कहिये) है भेदरूप करने पर वा विकल्परूप करने पर(=विभक्तव्यानि) अर्थात् एक ज्ञानको आदिलेकर(=एकादीनि)भाज्यरूप वा विकल्परूप(=विभक्तव्यानि)

यौगपद्येन। एकस्मिन्। आत्मनि। आ* चतुर्भ्यः। आ* कुतः ? *

=एक कालविषैं एक (=एकस्मिन्) आत्मामें चार (ज्ञान) तक हो (सक) ते हैं =(प्रश्न) (सूत्रमें) आ (अव्यय) क्योंकर (=कुतः) है (उत्तर-सीमा वा अभिविधिके लिये है कि एक साथ एक आत्मामें चार पर्यंत ही ज्ञान होसक्ते हैं सब पांचो नहीं होते)

तद्यथा* एकं। तावत्* केवलज्ञानं। न तेन। सह* अन्यानि। क्षायोपशमिकानि।

=जैसे (=तद्यथा) एक हो तो (=तावत) केवलज्ञान हो । नहीं तिस (केवलज्ञान) करि =सहित (=सह) अन्य (चार) क्षायोपशमिकज्ञान

अब 'एक' शब्दका प्रथम अर्थ और 'आदि' शब्दका अवयव अर्थ लेकर "प्रथमका अवयव" यह अर्थ "एकादि" वाक्यका हुआ ॥ (प्रश्न) किस (प्रथम) का (अवयव वा भाग) । (उत्तर) परोक्षज्ञानका (प्रथम अवयव) अर्थात् मतिज्ञान ॥ अतः एकादिका अर्थ मतिज्ञान हुआ यहां पर स्मरण रहै कि सूत्रमें 'एकादीनि' वाक्य है सो"एकादिरादीनि" (=एकादिको आदि लेकर जो ज्ञान हैं वे एकादीनि कहेजाते हैं) इस अर्थमें है क्योंकि:- वार्तिक–"ततोन्यपदार्थे वृत्तावेकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिरुष्ट्रमुखवत्=ततः अन्यपदार्थे वृत्तौ एकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिःउष्ट्रमुखवत्" =अन्यपदार्थ वृत्तिमें (=समासमें) एक"आदि"शब्दकी निवृत्ति वा निषेध "उष्ट्रमुख" (बहुव्रीहि समासरूप वाक्यके) सदृश है अर्थात् जैसे जिसका मुख ऊंट सरीखा हो वह उष्ट्रमुख (पुरुष) कहा जाता है और जिसका मुख ऊंटके मुख सदृश पुरुष सरीखा हो वहभी उष्ट्रमुखही कहा जाता है यहांपर जैसे उष्ट्रमुख शब्दका बहुव्रीहि समास करते समय दो मुखशब्दोंका उल्लेख रहताहै और समासमें एकही मुखशब्द रह जाताहै एक मुखशब्दकी निवृत्ति होजातीहै अर्थात् एक मुखशब्द न्यून हो जाता है वैसेही एकादीनि यहां परभी दो "आदि" शब्दोंमें एकही "आदि" शब्द रह जाता है एक 'आदि' शब्दका लोप होजाता है ॥ आदि शब्दका अर्थ समीप भी है मतिज्ञानके समीप श्रुतज्ञान है अतः 'एक' शब्द जो सूत्रमें है उससे मतिज्ञान और आदि शब्दके उल्लेखसे श्रुतज्ञानका ग्रहण हुआ ॥ मतिज्ञान श्रुतज्ञानको आदि लेकर यसा अर्थ "एकादीनि" वाक्यका हुआ ॥ एक+आदि+आदि=एकादि+आदीनि=एकादीनि

युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपद्* अवतिष्ठन्ते T द्वे ;॥॥ मतिश्रुते ;॥॥ त्रीणि;॥॥ मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि;॥॥ वा* मति-श्रुत-मनःपर्ययज्ञानानि;॥॥ चत्वारि ;॥॥ मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानानि ;॥॥ न* पञ्च ;॥॥ सन्ति T केवलस्य ;॥॥ असहायत्वात् ;॥॥

=एक काल में तिष्ठते हैं । दो हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों ।
=तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों । अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान
=मनःपर्ययज्ञान हों । चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान
=मनःपर्ययज्ञान हो ॥ नहीं होते हैं (एक काल में) पांच ज्ञान
=क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होते हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते है । (प्रश्न) ये "क्षायोपशमिकज्ञान तौ एक काल एकही प्रवर्तता कहा है । इहाँ च्यारी कैसे कहे ? ताका उत्तर जो ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होते च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है । बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है । ताकी एक ज्ञेयतैं उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्तकी कही है । पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम जिनिका होय है ते लब्धिरूप एककालही है । इहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=बड़ीपुरी) भक्षण करतैं रूपादिक पांचका ज्ञान एककालही दीखे है वर्णसांकलीका दीखे है स्वाद लेही है । गंध नाका आवै ही है ॥ स्पर्श भी सचीकणा आदि जानैं ही है । भक्षण करतैं शब्द होय है ऐसें पांचका ज्ञान एक काल भी देखिये है । ताकूं कहिये, जो इहां उपयोगका फिरण की शीघ्रता होतैं काल भेद न जान्या जाय है । जैसे कमलका पत्र दोय च्यारि में सुईका प्रवेश होते काल भेद जान्या न जाय अरु काल भेद है ही । तैसे इहां भी जानना ॥ पं० जयचंदजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६ ॥

(२) उक्त पांचों ज्ञानोंमेंसे केवलज्ञान असहायज्ञान है वह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों को कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं ॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोंमें और केवलज्ञान में विरोध रहनेके हेतुसे पांचों ज्ञानोंका एक साथ होना असम्भव है ॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पड़ता है उस समय नक्षत्रों का प्रकाश दब जाताहै । वहांपर यह नहीं कहा जासकता कि नक्षत्रोंकी विद्यमानताही नहींहै वैसेही जिस समय आत्मामें अत्यन्त जाज्वल्यमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोंका अस्तित्वही नष्ट होजायेगा फिर यह कहना कि

केवलज्ञान क्षायिकज्ञान है और असहायज्ञान है इसमें पांचों ज्ञान नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? ॥(उत्तर)जैसे जब कोई स्थान सर्वथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होचुका है कोई भागभी उस स्थानका अशुद्ध नहीं कहा जासकता है वैसेही अब सर्व ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियोंका सर्व प्रकार नाश होचुका है तब उन कर्मकी प्रकृतियोंका क्षयोपशम कहना और अत्यन्त नाश होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये एक साथ आत्मामें मतिज्ञानको आदि लेकर चार तक ज्ञानोंका जो नियम है वह निर्बाध और निर्दोष है ॥

इस विषयमें अब हम श्वेताम्बर आम्नायका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ सहभाव है कि नहीं है ? (उत्तर) "केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सहभाव नहीं है । परंतु कोई कोई आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोंका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादिज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसेकि नेत्रादि इन्द्रियां। केवलज्ञानकी दशामें मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि मणि चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज, प्रकाश करनेमें अकिंचित्कर हैं। और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयार्थ मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है ।, श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है । अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमें अपाय सद्द्रव्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान रह सकता है और केवलज्ञानी को इन्द्री द्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं है ॥ किं चान्यत् । औरभी यह बात है कि मतिज्ञानादि चारों ज्ञानोंमें पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमें और मिलित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसे भगवान केवली को तो एकही कालमें सर्वभावके ज्ञापक वा ग्राहक और अन्य ज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते हैं और प्रतिक्षण वा प्रति समय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है । और यहभी है कि पूर्व मतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं । और केवलज्ञान क्षयसेही उत्पन्न होता है । इसलिये भी केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि शेष चार ज्ञान नहीं होते ॥" समाधा० पृष्ठ २८, २९ ॥ हमारा हृदय भी इस बातको स्वीकार नहीं करता कि केवलज्ञान की विद्यमानतामें

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥॥ मत्यादीनि॥॥ ज्ञानव्यपदेशम्॥॥ एव*	=कथनानुसार (=यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामही
लभन्ते T उत* अन्यथा* अपि*	=पाते हैं। अथवा (=उत) अन्यथा भी हैं अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और
इति* अतः* आह T	=नाम से भी कहे जाते हैं॥ ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अन्य चार ज्ञानका अकिंचित्कर रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो इस सूत्रका "आद्ये परोक्षम्" वाक्य व्यर्थ हुआ जाता है। और पांचों ज्ञानका अस्तित्व युगपद् हुआ जाता है॥

(प्रश्न) असंज्ञी पंचेंद्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत सब जीव पंचेन्द्रिय हैं। जिनके केवलज्ञान है वे भी जीव जब पंचेन्द्रिय हैं और पांचों इन्द्रियें उनके विद्यमान हैं तब इन्द्रियोंके कार्य मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान होने चाहिये क्योंकि समर्थकारण इन्द्रियोंके रहते कार्य ज्ञान अवश्यभावी है। अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समयमें मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निर्मूल है (उत्तर) सयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय बतलाया है वह द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे है भावेंद्रियकी अपेक्षासे नहीं है क्योंकि भावेन्द्रियकी विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणीय-कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल क्षयके विना सर्वज्ञपना भी नहीं होसक्ता है यदि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके भावेंद्रियकी सत्ता मानी जायगी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षय निर्मूल न होसकेगा अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकेंगे॥ जहां पर भावेन्द्रिय है वहीं पर मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिकज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल द्रव्येन्द्रियके अस्तित्व कालमें नहीं क्योंकि द्रव्येन्द्रियकी सत्ताको निःशंकिक माना है वह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है। इस लिये जब केवलज्ञानके उदय रहने पर भावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता तब केवलज्ञानके साथ, कारण भावेन्द्रियके अभावमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते। अतः एक आत्मामें भाज्य रूप मतिज्ञान से लेकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यह बात निर्बाध है किन्तु पांचों ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं॥

॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

विपर्ययो मिथ्येत्यर्थः । कुतः ? । सम्यगधिकारात् ॥ चशब्दः समुच्चयार्थः । विपर्ययश्च सम्यक्चेति ॥

सूत्रम्-मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (भवति ज्ञानम्)

मति-श्रुत-अवधयः ;। विपर्ययः ;। च भवतिT ज्ञानम् =मति-श्रुत-अवधि विपर्यय, उलटे या मिथ्याज्ञान भी (=च) होते हैं ॥
अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं
मति आदि पांचों ज्ञानोंको जिनको सम्यग् ज्ञान कह आये हैं उनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्या, वा विपरीत ज्ञान भी होते हैं और सम्यग् ज्ञान भी होते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

विपर्ययः ;। मिथ्या* इति* अर्थः ;। =(इस सूत्रमें) विपर्यय (शब्द) अयथार्थ अन्यथा वा मिथ्या ऐसा अर्थ (में) है

कुतः ?* सम्यग्-अधिकारात् ;। =(प्रश्न) क्योंकर (विपर्यय शब्द मिथ्या अर्थ में है) (उत्तर) सम्यक् अधिकारसे
अर्थात् इस सूत्र में सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणिसे आरही है"

चशब्दः ;। समुच्चय-अर्थः ;। =(सूत्र में) चशद वा अव्य समुच्चय के लिये अथवा समुदाय के लिये है

विपर्ययः ;। च* सम्यक्* च* इति* =अयथार्थ अन्यथा (विपर्यय) भी (=च) है यथार्थ (=सम्यक्) भी (=च) है

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एक है । ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति नवम सूत्रसे आतीहै ॥ (२)च अव्ययके बहुतसे अर्थ हैं उनमें से यह समुच्चयके लिये ग्रहण किया है इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्यग् ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं ऐसा अर्थ है। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'चशब्द समुच्चयार्थः'से यह अभिप्राय लिया है कि उससे सूत्रमें मुख्य और व्यवहार दोनों प्रकार के सम्यक्त्वोंका ग्रहण है यदि सूत्रमें चअव्यय न होता तो 'मतिश्रुतावधयो विपर्ययः' ऐसा सूत्र होता और उसका अर्थ यह होता कि मति-श्रुत-अवधि मिथ्या (ज्ञान) होते हैं ॥ (प्रश्न) 'मतिश्रुत अवधि मिथ्या ज्ञान होते हैं' इससे यह बात नहीं निकलती कि 'मतिश्रुतावधि' सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकते हैं फिर चशब्द सूत्रमें व्यर्थ है । (उत्तर) श्लोक वार्तिक के रचयिता कहते हैं कि यदि सूत्रका अर्थ बिना च अव्यके यह मानलें कि उससे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रगट होते हैं तब सूत्रमें विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है चशब्दसे संशय और अनध्यवसायका ग्रहण है अर्थात्

कुतः पुनरेषांविपर्ययः ?

अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी हैं और सम्यग्ज्ञान भी हैं

कुतः * पुनः * एषाम् ‖ विपर्ययः ;। ?

=(प्रश्न) बहुरि इन (ज्ञानों) के विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

मतिज्ञानादि संशय अनध्यवसाय स्वरूप भी हैं इस अर्थके करनेमें 'च शब्द' का सूत्रमें लाना व्यर्थ नहीं है ॥ श्लोक वा० पृष्ठ २५५ श्लोक ९, १०, ११ देखो ॥ यहां पर स्मरण रहे कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता है अतः उसके विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान है और श्रुतज्ञान मनकी सहायतासे होता हैं इसलिये उस के भी विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधि-ज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनध्यवसाय ही हैं संशय नहीं क्योंकि यह 'स्थाणु है वा पुरुष है ?' ऐसे अनेक कोटियोंको स्पर्श करनेवाले ज्ञान का नाम संशय है और जहां पर अंधकार रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्थाणु है वा पुरुष है ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेसे उन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वक्र कोटर आदि स्थाणुके विशेष एवं शिर हाथ आदि पुरुषके विशेषों का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो चुका है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इस रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विशेषाप्रत्यक्ष और विशेष स्मरण है वहीं पर संशयज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परंतु अवधिज्ञानमें इन्द्रियोंके व्यापारकी कोई अपेक्षा नहीं न मनके व्यापारकी कोई अपेक्षा है क्योंकि अवधि-ज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अजन्य माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी विशुद्धता रहने पर वह सामान्य विशेष स्वरूप अपने विषयभूत पदार्थोंको जानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन संशय स्वरूप नहीं होसकता लेकिन हां ! मिथ्यात्व नाम कर्मके विपरीत अज्ञान स्वरूप मिथ्यादर्शनके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वरूप है तथा जिस पदार्थकी ओर अवधिज्ञानका उपयोग लगा हुआ है कारण वश उसका पूरा ज्ञान नहोनेके पहिले ही दूसरे किसी ज्ञानके विषयभूत दूसरेही पदार्थ की ओर उपयोग लग जाय उस समय मार्गमें जाते हुये पुरुष को तृण स्पर्शके ज्ञानके समान अनिश्चयात्मक अवधिज्ञान होजाता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन अनध्यवसाय स्वरूप भी है किन्तु जिस समय जिस पदार्थ को अवधिज्ञान विषय कर रहा है उस समय यदि वह उपयोग दृढ़ होगा तो अवधि ज्ञानका अनध्यवसाय स्वरूप विपरिणमन नहीं हो सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५६)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो भी संशय विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों प्रकारके ज्ञानोंका यहां ग्रहण है परंतु स्मरण रहे कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत वा मिथ्याज्ञान होसकते हैं न कि मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन:॥॥ सह※
एकार्थ-समवायात्॥

=(उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) (आत्मा और मतिज्ञानादिक का)
=एकमेकतारूप (=एकार्थ) संबंध, सम्मेलन, वा संश्लेष (के हेतु) से (=समवायात्)
(मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)

सरजस्क-कटुक-आलाबु-गत-दुग्धवत्※
=जैसेकि गिरी वा रज सहित कडुवी (=कटुक) तुम्बीमें (=अलाबु) क्षेपा हुआ (=गत) दूध

अर्थात् जैसे गिरी सहित वा रज सहित (=सरजस्क) कडुवी तुम्बीमें दूध रखनेसे कडवा होजाता है तैसेही दर्शन मोहनीय कर्म के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मति आदि ज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं — दोनों (मिथ्यादर्शन परिणाम और मति आदि ज्ञान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के संबंधमें मति आदि ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान , श्रुतज्ञान , अवधिज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं । उक्त मतादिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते हैं इसलिये मिथ्यात्वके संबंधसे मतिज्ञान आदि मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं । परंतु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके कारणोंके सर्वथा नष्ट होजाने पर सम्यक्त्व गुणकी प्रगटता से जिस समय आत्मा विशुद्ध होजाता है उस समय उदय होता है । बिना सम्यक्त्वगुणके उदय नहीं होसकता इस लिये मिथ्यात्वके संबंधसे सर्वथा दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते । उन दोनों ज्ञानोंमें जिस समय दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मका उपशम (अर्थात् मनःपर्ययज्ञान छठे गुणस्थानमें भी होजाता है अतः यह प्रत्याख्यानादिके उपशमकी अपेक्षा कथन है होजाता है उस समय आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ संबंध न रहनेके कारण वह मिथ्याज्ञान नहीं होसकता तथा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के सर्वथा नष्ट होजाने पर आत्मामें केवलज्ञान का उदय होता है । उस समय परिपूर्ण विशुद्धता केवलज्ञानमें प्रगट होजाती है इसलिये वह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

ननु च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति; न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः ॥ तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभिः रूपादीनुपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति ॥ अत्रोच्यते—

ननु* च* तत्र* आधार-दोषात् ;। दुग्धस्य ;॥।
रस-विपर्ययः ;। भवति। न* च* तथा*
मति-अज्ञान-आदीनां ;॥। विषय-ग्रहणे ;॥। विपर्ययः ;।

=फिर (=च) प्रश्न (=ननु) वहां (तुर्वामें) आधारके दूषणसे दूधका
=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कडुआ होजाता है) बहुरि (=च) नहीं है तैसे
=मतिअज्ञानादिकोंके विषय ग्रहण (करने) में विपरीतिता अर्थात् ज्ञानमें तो विषय
का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है

तथाहि* सम्यग्दृष्टिः ;। यथा* चक्षुरादिभिः ;॥।
रूपादीन्;। उपलभते T तथा* मिथ्यादृष्टिः;। अपि*
मति-अज्ञानेन;॥। ; यथा* च* सम्यग्दृष्टिः;। श्रुतेन;॥।
रूपादीनि ;। जानाति T निरूपयति T च* तथा*
मिथ्यादृष्टिः ;। अपि* श्रुत-अज्ञानेन ;॥। यथा* च*
अवधिज्ञानेन;॥। सम्यग्दृष्टिः;। रूपिणः;। अर्थान्;।
अवगच्छति T तथा* मिथ्यादृष्टिः;। विभंगज्ञानेन;॥।
इति* अत्र* उच्यते T

=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे
=रूपादिकों को जानता है (=उपलभते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भी
=कुमतिज्ञानकरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला श्रुतज्ञानकरि
=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे
=मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे
=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी वा मूर्तीक वस्तुओं को
=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुअवधिज्ञानकरि (जानता है)
=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहते हैं कि

(१) जानाति T निरूपयति T इति* अपि* पाठान्तरम् ;॥। =जानता है कथन करता है ऐसा भी अन्य पाठ है

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३२,

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थः । तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सत-असतोः ;। =विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थों) का या प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का
अविशेषात् ;। =विशेषरूप वा प्रभेदरूप ज्ञान वा ज्योंका त्यों विवेक न होने (के हेतु) से
यदृच्छ-उपलब्धेः ;॥ उन्मत्तवत्* =अपनी यद्वातद्वाइच्छा द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पुरुष) के समान
विपर्ययः ;। भवति[1] ज्ञानम् ;॥॥ =विपरीत वा मिथ्याज्ञान होता है भावार्थ जिस प्रकार मदमाता वा उन्मत्त पुरुष भार्याको माता और माता को भार्या समझता है यह उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है परंतु किसी समय वह भार्याको भार्या और माताको माता कहता है तो भी उसका यह जानना सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता क्योंकि उसको भार्या और माताके भेदका यथार्थ विवेक वा ज्योंका त्यों ज्ञान और विचार नहीं उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे सत् और असत् पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान न होनेके हेतु से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान (विभङ्ग अवधिज्ञान) भी मिथ्या ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

सत्[2] ;॥॥ विद्यमानम्[3] ;॥॥ असत्[2] ;॥॥ अविद्यमानम्[3] ;॥॥ =सत् विद्यमान वा वर्तमान (वस्तु) है असत् अविद्यमान वा अनछती (वस्तु) है
इति* अर्थः ;। तयोः[2] ;॥॥ अविशेषेण ;। =ऐसा तात्पर्य है इन दोनों (सत् असत्) का यथार्थ विवेक न होने से
यदृच्छया ;॥ उपलब्धेः ;॥ विपर्ययः ;। भवति T =अपनी मनमानी इच्छाकरि (=यदृच्छया) ग्रहण करनेसे विपरीत वा मिथ्या (ज्ञान) है

(१) इस सूत्रका दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है ॥ ज्ञान शब्दकी नींवां और विपर्ययकी ३१वां सूत्रसे अनुवृत्ति लीग. है
(२) तयोः शब्द सत् और असत् शब्दके लिये है और सत् असत् विद्यमान अविद्यमानके कारण नपुंसकलिंगी हैं अतः तयोः नपुंसकलिंगी है ॥
(३) सत्=प्रशंसा=प्रशस्त तत्वज्ञान (ख) विद्यमान । असत्=अप्रशस्त अर्थात् अप्रशस्त तत्वज्ञान (ख) अविद्यमान (देखो तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ६४)

कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयाद्व्यवस्यति ॥ यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते । यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च ॥ तदपि न तत्सम्यग्ज्ञानम् ॥ एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्यः ॥ तथा हि कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति ।

कदाचित्* रूपादि ;॥ सत् ;॥ अपि* असत् ;॥ =क ी (=कदाचित्) रूपादिक छती वा विद्यमान (वस्तु) को भी अविद्यमान है
इति* प्रतिपद्यते T असत् ;॥ =ऐसा कहता है(=प्रतिपद्यते)वा अंगीकार करता है(=प्रतिपद्यते)अविद्यमान(वस्तु) को
अपि* सत्;॥ इति* कदाचित्* सत्;॥ सत्;॥ एव* =भी विद्यमान है ऐसा (कहता है) कभी विद्यमान को विद्यमानही
असत्;॥ अपि* असत्;॥ एव* इति* मिथ्या- =अविद्यमान को भी अविद्यमान ही ऐसा मिथ्या-
दर्शन-उदयात् ;। अध्यवसाति T यथा* पित्त-उदय- =दर्शनके उद्रेकसे वा उदयसे निश्चय करता है (=अध्यवस्यति) जैसे पित्तके उदयसे
आकुलितबुद्धिः ;। मातरम् ;। भार्या ;॥ इति* भार्याम् ;॥ =बबराई हुई है बुद्धि जिसकी (ऐसा पुरुष) जननीको भार्या वा पत्नी ऐसा पत्नीको
अपि* माता ;॥ इति* मन्यते T यदृच्छया ;॥ =भी जननी ऐसा मानता वा जानता है अपनी मनमानी इच्छा से
मातरम् ;॥ माता ;॥ एव* इति च भार्याम् ;॥ अपि* =माताको माता ही ऐसा और (=च) भार्या को भी
भार्या ;॥ एव*इति*तदपि*न* तत्सम्यग्ज्ञानं ;॥॥ एवं* =भार्याही (मानता है) वहभी (=तदपि) उसके (=तद्) सम्यग्ज्ञान नहीं है इस प्रकार
मति-आदीनां ;॥॥ अपि*रूपादिषु ;॥॥ विपर्ययः ;। वेदितव्यः ;। =मतिज्ञान आदिकोंका भी रूपादिकमें विपरीतता जानना योग्य है (सो ही कहते हैं कि)
तथाहि*कश्चित्*मिथ्यादर्शन-परिणामः ;। आत्मनि ;। अवस्थितः=जैसे (=तथा हि) किसी आत्मामें ठहरा हुआ मिथ्यात्वपरिणाम
रूपादि-उपलब्धौ ;॥ =(नेत्रादि करि) रूपादिकों के जानने में (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि के)
सत्याम् ;॥ अपि* =जैसाका तैसा(=सत्याम्)यथार्थ वा समान(=सत्याम्)(ज्ञान)होने परभी(=अपि)
कारणविपर्यासम् ;। भेदाभेदविपर्यासम् ;। =कारण विपर्यास को भेदाभेद विपर्यासको
च* स्वरूप-विपर्यासम् ;। जनयति T =और (=च) स्वरूप विपर्यास को उपजाता है ।

---

(१) आकुलितबुद्धिः (=घबराई हुई है बुद्धि जिस की) बहुव्रीहि समास होने के कारण पुल्लिंग में यह वाक्य लिखा गया है ॥

कारणविपर्यासस्तावत्- रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति केचित्कल्पयन्ति ॥ अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति ॥

तावत* कारणविपर्यासः ;। रूपादीनाम् ;। एकम् ;॥ कारणम्;॥ अमूर्त्तम्;॥ नित्यम्;॥ इति केचित* कल्पयन्ति। =प्रथम कारण विपर्यास (कहा जाता) है । रूपादिकों का एक (ही) =कारण अमूर्तीक नित्य है ऐसी कितनेक (वादी) कल्पना करते हैं अर्थात् ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि रूपादिकोंका कारण एक अमूर्तीक नित्य ब्रह्मही है ब्रह्महीसे हुये हैं । सांख्यमती कहते हैं कि रूपादिकों का कारण अमूर्तीक नित्य प्रकृति है प्रकृतिसे ही ये रूपादिक उपजे हैं ॥ (यद्यपि नेत्रोंको ये जैसे हैं तैसे ही दीखे हैं)

अपरे ;। पृथिवी-आदि-जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;। चतुर्-त्रि-द्वि-एक-गुणाः;। तुल्य-जातीयानां;। कार्याणाम् ;॥ आरम्भकाः;। इति* =दूसरे अर्थात नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि पृथिवी जलअग्निवायुकी (=आदि) =जातिरूप जुदी जुदी (=भिन्नाः) परमाणुं (यथाक्रम वा क्रमसे) गंधरसरूपस्पर्श चार =रस रूप स्पर्श तीन (गुणवाली) रूप स्पर्श (दो गुणवाली) स्पर्श एक गुणवाली हैं =(सो अपने अपने)समान जातियोंके (स्कंधरूप) कार्योंको आरम्भ करनेवाली हैं अर्थात् पृथवी आदि चारों अपनी अपनी जातिके भिन्न भिन्न स्कंधरूप कार्योंको उपजाते हैं

(१) पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः । आप्येषु रसरूपस्पर्शाः । तैजसेषु रूपस्पर्शौ । वायवीयेषु स्पर्शः ॥

पार्थिवपरमाणुषु ;। गन्धरसरूपस्पर्शाः ;। =पृथिवी से होने वाले परमाणुओं में गन्ध-रस-वर्ण-स्पर्श (ये चार गुण) हैं
आप्येषु ;। रस-रूप-स्पर्शाः ;। =जल से होने वाले (परमाणुं) नि में रस, वर्ण और स्पर्श (ये तीन गुण) होते हैं ॥
तैजसेषु ;॥ रूप-स्पर्शाः ;। =अग्नि से होने वाले (परमाणुं) नि में रूप और स्पर्श (ये दो गुण) होते हैं (और)
वायुवीयेषु ;। स्पर्शः ;। =पवन से होने वाले (परमाणुं) नि में स्पर्श (एक गुण) होता है ॥
आप्येषु और वायुवीयेषु पुंलिंगी नपुंसकलिंगी दोनों हैं ॥

अन्ये वर्णयन्ति-- पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषां समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि ॥ इतरे वर्णयन्ति--पृथिव्यप्तेजोवायवः काठिन्यादिद्रवत्वोष्णत्वेरणत्वादिगुणा जातिभिन्नाः परमाणवः कार्यस्यारंभकाः ॥ भेदाभेदविपर्यासः कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये ;। वर्णयन्ति T पृथिवी-आदीनि ;॥॥
चत्वारि ;॥ भूतानि ;॥॥ भौतिकधर्माः ;।
वर्णगन्धरसस्पर्शाः ;। एतेषाम् ;।
समुदायः ;। रूपपरमाणुः ;। अष्टकः ;। इत्यादि ;॥॥
इतरे ;। वर्णयन्तिT पृथिवी-अप्-तेजस्-वायवः ;।
काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-ईरणत्वादि-
गुणाः ;। जातिभिन्नाः ;। परमाणवः ;।
कार्यस्य ;॥॥ आरम्भकाः ;।

=दूसरे (अर्थात् बौद्धमती) वर्णन करते हैं कि पृथिवी जल-तेज-वायु (=आदि)
=चार विशेष गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेष द्रव्योंके स्वभाव और धर्म
=रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) का
=समूह रूप परमाणु अष्टक है ऐसे और (बातें भी मानते) हैं
=अन्य (अर्थात् चार्वाक मती) कहते हैं कि भूमि, जल, अग्नि, पवन, (क्रमसे)
=कठोरतादि, बहनापनादि, तप्तादि, प्रेरणत्वादि (=ईरणत्वादि)
=गुण वाले भिन्न भिन्न जातिवाले परमाणु हैं ।
=(ते भिन्न भिन्न जाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के
=आरम्भ करने वाले हैं । (इस सबका भावार्थ यह है कि) भूमि के परमाणु के काठिन्यादिगुण और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादिगुण और अग्निके परमाणुओंके ऊष्णत्वादिगुण और पवनके परमाणुओं के ईरणत्वादिगुण हैं ते भिन्न भिन्न परमाणु पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी जातिरूप उत्पन्न करते हैं। (इस प्रकार तो पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)

भेदाभेदविपर्यासः ;। कारणात् ;॥ कार्यम्;॥॥
अर्थान्तरभूतम् ;॥॥ एवꣳ इतिꣳ

=भेदाभेद विपर्यासः जैसे कारणसे कार्य
=भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणु नित्य हैं तिन से स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना ॥ स्वरूपविपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सन्त्येव वा । तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव । न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति ॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धान्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति । ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति ॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति । ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थान्तरम्‌ । भूतम्‌ ॥ एव* इति* च* परिकल्पना ॥ =और (=च)(कारणसे कार्ये) अभिन्न पदार्थ ही होताहै इस प्रकार (किसी किसीकी) कल्पना वा मानना है । जैसे घट पटादिक और ग्राम वन पर्वतादिक ब्रह्मसे उत्पन्न हुये हैं वा ब्रह्मही हैं जुदे नहीं हैं ॥ (इत्यादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय तहां अभेदही कल्पना जहां अभेद होय तहां भेदही कल्पना, ऐसे विपर्यय यौगियोंकी है)

स्वरूपविपर्यासः । रूपादयः । निर्विकल्पाः । सन्तिT =स्वरूप विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात इनकी कल्पना नहीं होसक्तीहै (ऐसी वैभाष्यक मतवालों की कल्पना है)

न* सन्ति T एव* वा* =अथवा रूपादिक कोई पदार्थ नहीं हैं

तद्-आकार-परिणतम् ॥ विज्ञानम् ॥ एव* =उन (रूपादिक) के आकारपरिणया विज्ञान ही है

न* तद्-आलम्बनम् ॥ वस्तु ॥ बाह्यम् ॥ इति* =तिस (विज्ञान) के आश्रयभूत वा अवलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (रूपादिक) नहीं हैं (विज्ञान अद्वैतवादियोंका जो बौद्धमतका एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)

एवम्* अन्यान् । अपि* परिकल्पनाभेदान् । =इस प्रकार भिन्न भिन्न बहुत (=परि) कल्पना के भेदों को भी

दृष्टेष्टविरुद्धान् । मिथ्यादर्शनउदयात् । =जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं मिथ्यात्व के उदय से

कल्पयन्तिT तत्र* च* श्रद्धानम् ॥ उत्पादयन्तिT =मानते हैं । और (=च) तहां प्रतीति वा रुचि (=श्रद्धान) को उत्पन्न करते हैं

ततः* तत् ॥ मतिअज्ञानम् ॥ श्रुत्-अज्ञानम् ॥ =तिससे वह (=तद्) कुमतिज्ञान (वह) कुश्रुतज्ञान

च* अवधिअज्ञानम् ॥ भवतिT पुनः* सम्यग्दर्शनम् ॥ =और (वह) कुअवधिज्ञान वा विभंग अवधिज्ञान होता है ॥ और सम्यक्त्व

तत्त्व-अर्थ-अधिगमे । श्रद्धानम् ॥ उत्पादयतिT =यथार्थ वा यथावस्थित(=तत्त्व)वस्तु वा पदार्थके(=अर्थ)जाननेपर प्रतीति उपजाता है

ततः* तद् ॥ मतिज्ञानम् ॥ श्रुतज्ञानम् ॥ =तिससे वो मतिज्ञान (वह) श्रुतज्ञान

अवधिज्ञानम् ॥ भवतिT आहT प्रमाणम् ॥ =(वह) अवधिज्ञान होता है । पूंछता है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

द्विप्रकारं वर्णितम्। प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यतआह ॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

द्विप्रकारम्+॥॥वर्णितम्+॥॥प्रमाण-एक-देशाः+च नयाः+।	=दो प्रकार वर्णन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (जे) नय (ते)
तद्-अनन्तर-	=(प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र में) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर)
उद्देश-भाजः+। निर्देष्टव्याः+। इति* अतः* आह T	=नाममात्र कहे (=उद्देशभाज) (अब) कथन किये जाने योग्यहैं। इसलिये कहतेहैं कि

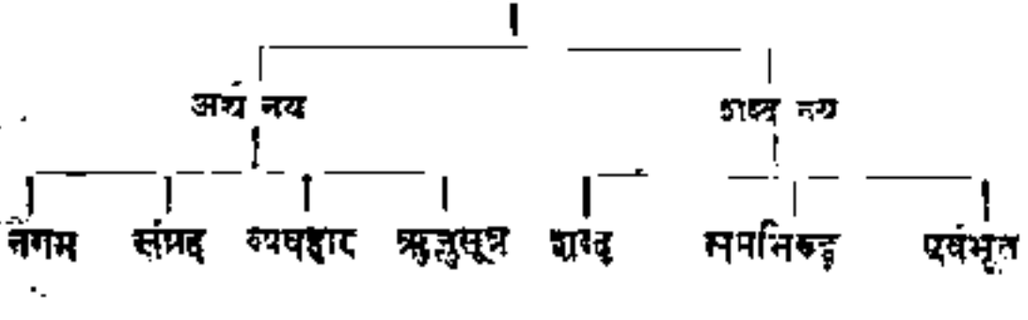
नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द समभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

=नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता (:सप्त) नया) : (भवन्ति) ॥३३॥

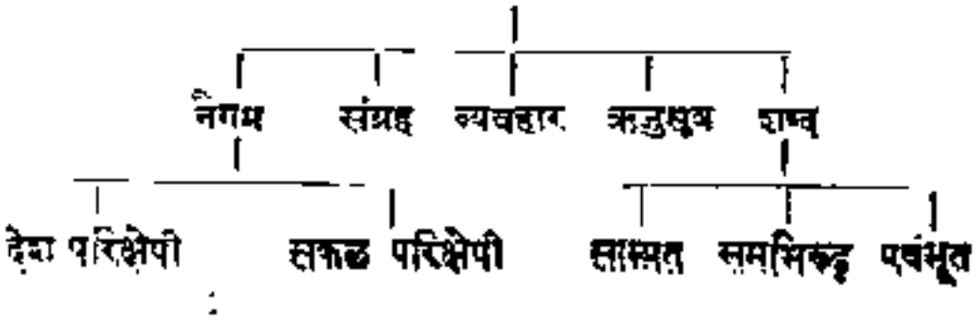
नैगम-संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-	=नैगम संग्रह (=सङ्ग्रह), व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द,
समभिरूढ-एवम्भूताः+। सप्त+। नयाः+। भवन्ति T	=समभिरूढ, और एवम्भूत सात नय विद्यमान हैं (=भवन्ति) अर्थात

(१) व्यवहारर्जुसूत्र = व्यवहार + ऋजुसूत्र (दोनों वाक्य ठीक हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ ७४)॥ (२) एवम्भूत = एवंभूत (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और नीचे की टि०)। म पदान्त हो वा किसी प्रत्यय के अंतमें हो और इस म के पश्चात् कोई व्यंजन आवे तो म का विकल्पकरि अनुस्वारमें परिवर्तन होजाता है यदि इस म के पश्चात् श्-ष्-स्-ह् आवे तो म अवश्य ही अनुस्वार में पलट जावैगा। यदि हम इस म को अनुस्वार में न पलटें तो उस अनुनासिक ङ्-ञ्-ण्-न्-म् में परिवर्तन होगा जिस वर्ग का व्यंजन इस म के पीछे आवे और यदि इस म के पश्चात् य्-व्-ल् में से कोई आवे तो म अनुनासिक य्-व्-ल् में क्रमानुसार वा यथायोग्य पलट जावैगा। अतः एवम्+भूतानयाः शब्द का म अनुस्वार में पलटकर एवं भूतानयाः ऐसा शब्द बना। इसलिये एवम्भूतानया और एवंभूतानया दोनों वाक्य ठीक हैं॥ (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १३) (३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में हमारे यहां के तेतीसवां सूत्रके स्थान में "नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः" चौंतीसवां सूत्र है। इस चौंतीसवां सूत्रके लगता ही "आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ" (=आदिकी नैगमनय) के दो (भेद। शब्द (नय) के तीन भेद हैं) ऐसा सभाष्य० में पैंतीसवां सूत्र है॥ (देखो पृष्ठ ४९४) ॥

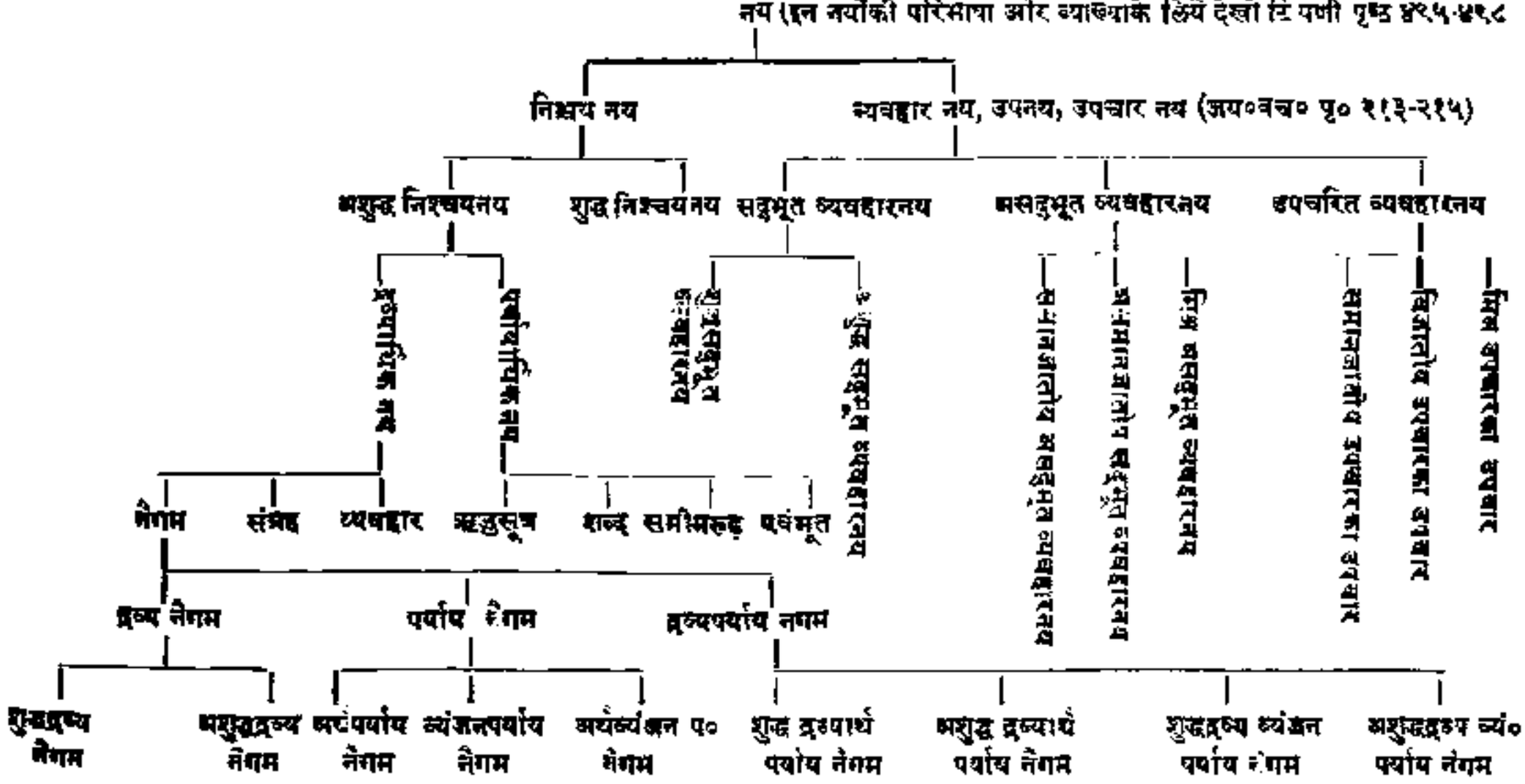
नय (देखो प० जयचंद की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९५) दोनों आम्नायों की ये वंशावली मिलतीसी है।



नय (देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रम् पृष्ठ ३१)



वस्तुमें अनेक धर्म (=स्वभाव) होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यता लेकर



पदार्थका व्यवहार भेद और उपचार दोनोंका ग्रहण करने वाली उपनय या उपचारनय है अर्थात् यह व्यवहार नय है जहां नयके 'निश्चय नय और व्यवहार नय' दो भेद किये हैं सूत्र (३३)में वर्णित व्यवहारनय वह है जो संग्रह नयके द्वारा ग्रहणकिय हुये पदार्थके भेद प्रभेद करती है ॥

अविरोधरूप साध्य पदार्थ को जानै सो नय है । उसके उपर्युक्त सातभेद हैं ॥

(१) नय=वस्तुके एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं ॥ (२) वस्तु के किसी सत्य वा यथार्थ अंशके ग्रहण करने वाले ज्ञानको निश्चय नय कहते हैं । जैसे मिट्टीके घटको मिट्टीका घट कहना ॥ (३) किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं । जैसे मिट्टी के घड़े को घीके रहने के निमित्तसे घी का घड़ा कहना ॥ (४) "भाव क्रोध आदिक रागादिक नय अशुद्ध निहचै परवान" बानतरायजी अनुवादित द्रव्य संग्रह ॥ "तहां जीवकूं मतिज्ञानादिक का कर्त्ता कहिए सो अशुद्ध निश्चयनय है" अर्थ प्रकाशिका ॥ जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान चार ज्ञानों का कर्त्ता कहना सो तो अशुद्धनिश्चय नय है और (५) शुद्ध दर्शन ज्ञानका अर्थात् केवल दर्शन और केवलज्ञानका कर्ता कहना सो शुद्ध निश्चय नय है ॥ "निहचै (नयसे) शुद्ध बुद्ध निजगुनमें केवल दर्शन ज्ञान सरूप" ॥ द्रव्य संग्रह ॥ (६) जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करै सो द्रव्यार्थिक नयहै (७) जो विशेष अथात् गुण अथवा पर्याय को विषय करै सो पर्यायार्थिक नयहै(८) नैगम, संग्रह, व्यवहार, द्रव्यार्थिक नयहैं और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयहैं इनकी पारभाषा हमने सूत्रार्थ में दी हैं यहां पर केवल इतना दिखाना है कि व्यवहार शब्द जो इनसात नयके प्रसंगमें हैउसका अर्थ "संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको विधि पूर्वक भेद प्रभेद जहांतक करै" "फिर किसी प्रकारका विभाग न हो सकै" "सो जहां ऋजुसूत्रका विषयहै ताकू पहलें तहां संग्रह व्यवहार दोऊ नय चले जाय है" ऐसा है अर्थ० पृष्ठ २०१ परन्तु नयचंक्राबलीमें (पृष्ठ ४२४) निश्चयनयके निकट जो व्यवहार नय दीई जिसको उपनय और उपचार नय भी कहतेहैं और जिसके आठ भेद कहे हैं वह "किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानका नामहै" जैसाकि इस पृष्ठकी संख्या (३)में कहाहै इसका विशेष ऐसेहै कि "जहां अन्य पदार्थके भावकों अन्य पदार्थविषैं आरोपण करै तथा परनिमित्ततैं भए जे नैमेत्तिक भाव ताकूं ही वस्तु का निजभाव कहैं । तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतैं आरोपण कीजिए तथा एक देशमें सर्वदेश का उपचार करै तथा कारणविषैं कार्यका उपचार करै इत्यादि सर्वही व्यवहार (नय) कहावै है, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८६ । हमारी समझमें व्यवहारनय जो सातनयोंमें गर्भित है और उपचारनय, उपनय वा व्यवहारनय जो निश्चय नयके निकट वंशावलीमें दी है इन दोनोंमें यही उपर्युक्त दिया हुआ अंतर है यदि हम विचारलें कि संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थ का भेद प्रभेद व्यवहारनयसे न करैं तो व्यवहार नहीं चल सकताहै और उपचार नय उपनय (वा निश्चयनयके निकटस्थ वाली व्यवहारनय) से भी व्यवहार चलता है तो इस अवस्था में दोनों नय व्यवहार की चलाने वाली सामान्यरूप से कहीं कही जा सकती हैं॥

(१) जितने द्रव्य हैं—वे अपनी भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की समस्त पर्यायों से

( ) एक अखंडद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूत व्यवहार नय कहतेहैं। जैसे-जीवके केवलज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं॥ (जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ २३) उसनयके शुद्धसद्भूत व्यवहार और अशुद्धसद्भूत व्यवहार ये दो भेद हैं॥

( ) शुद्धगुण और शुद्धगुणीका भेद कहना जिस प्रकार जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद कहना जिस प्रकार सिद्ध जीवकी सिद्ध पर्याय है यह शुद्ध सद्भूत व्यवहार है॥ ( ) अशुद्धगुण और अशुद्ध गुणीका भेद कहना जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं अथवा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीका भेद कहना जैसे संसारी जीवकी देव आदि पर्याय है यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है॥

( ) "अन्य स्वतुका गुण अन्यके कहै सो असद्भूत व्यवहार है" जय० पृष्ठ २१४ जिसके द्वारा स्वजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह स्वजात्य सद्भूतव्यवहारनय है जैसे परमाणु बहु प्रदेशी हैं। यहां पर बहुप्रदेशी पुद्गल द्रव्य परमाणुका सजातीय है परंतु परमाणु बहु प्रदेशी नहीं वह एक प्रदेशीही है इसलिये एक प्रदेशीके स्थानमें बहु प्रदेशी कहनेसे "परमाणुको बहु प्रदेशी कहना" समान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है। ( ) जिस नयके द्वारा विजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह विजात्यसद्भूत व्यवहार है जैसे जहां पंचेंद्रियादिक देह सो पुद्गल स्कंध हैं तिनको जीव कहना सो असमान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति संबंधी असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्यसद्भूत व्यवहारनय है जैसे जहां मतिज्ञानको मूर्तीक कहना क्योंकि मूर्तीकसे उपजे है तथा रूके है। यहां मतिज्ञान तो अमूर्तीक जीवका धर्म है और मूर्तीकपना पुद्गलका धर्म है यह मिश्र असद्भूत व्यवहार हुआ॥ (अन्य उदाहरण) जैसे ज्ञान ज्ञेयमें वर्तता है यहां पर ज्ञेयमें जीव अजीव दोनों प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंका ग्रहण है उनमें जीव पदार्थ ज्ञानका सजातीय है और अजीव पदार्थ ज्ञानका विजातीय है दोनोंको ज्ञानका आधार कहना स्वजातिविजात्यसद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करे उसको उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे हाथी घोड़ा, गृह मेरे हैं इत्यादि। इसके भी तीन भेद (१) स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा समान जातीय उपचारका उपचार (२) विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा विजातीय उपचारका उपचार (३) स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा मिश्र उपचारका उपचार है॥ जिस नयके द्वारा स्वजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार है जैसे स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं यहां पर स्त्री पुत्र, पुत्री, माता, पिता आत्मा की

अन्वयरूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है । सो

अपेक्षा से स्वजातीय हैं । उनको मेरा कहना स्वजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयका विषय है अथवा समान जातीय उपचारका उपचारहै ॥ ( ) जिसके द्वारा विजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हो वह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै । जैसे वस्त्र आभरण आदि मेरेहैं । यहांपर वस्त्र आभरण आदि अचेतन पदार्थ आत्माके विजातीयहैं । उनको मेरा कहना विजातीय आरोपित असत् है इसलिये वह विजात्युपचरितासद्भूत् व्यवहार नय का विषय है अथवा विजातीय उपचारका उपचार है ( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति दोनों संबंधीआरोपति असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयहै जैसे देश, राज्य, गढ आदि मेरे हैं यहां पर देश आदिके कहनेसे उनमें रहने वाले मनुष्य तिर्यंच आदि जीव और ग्रह, कूप आदि अजीव दोनों प्रकारके पदार्थों का ग्रहण है । उनमें मनुष्य आदि आत्माके स्वजातीय, और ग्रह, कूप आदि विजातीय हैं अतः राज्य, पुर, देश, गढ़ आदि मेरे हैं इस स्थान पर स्वजातीय विजातीय दोनों प्रकार के पदार्थों को मेरा कहना स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारनय का विषय है अथवा मिश्र उपचार का उपचार है । ऐसे व्यवहार नय अनेक प्रकार प्रवर्तें है ॥

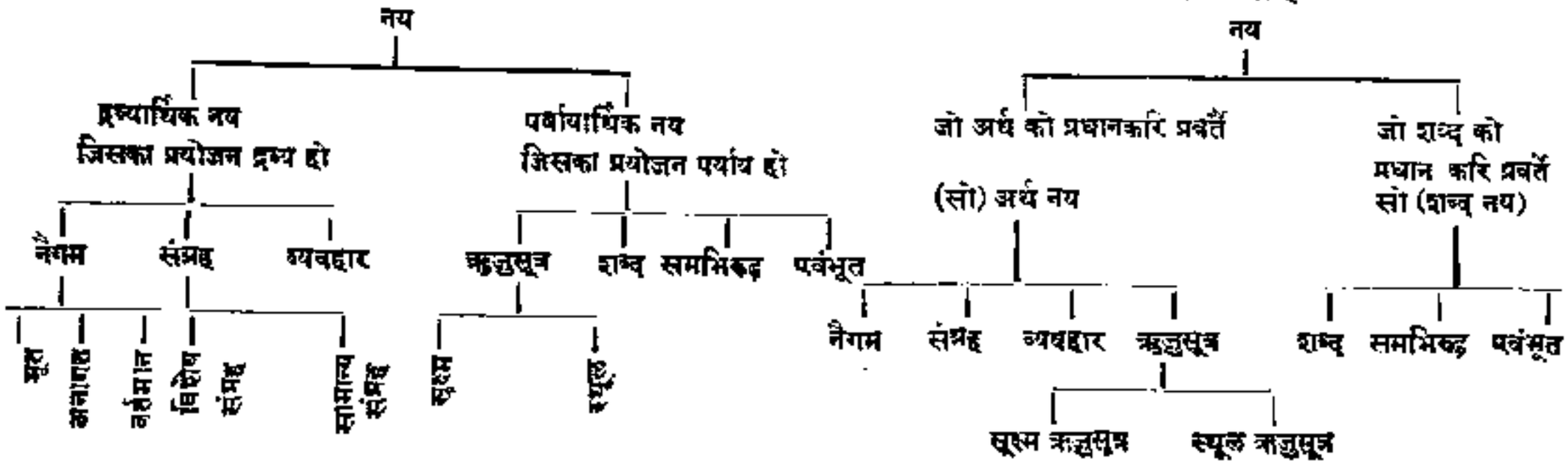
"या नैगमके भेद तीन है । द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम, द्रव्यपर्यायनैगम । तहां द्रव्य नैगमके दोय भेद हैं । शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम । बहुरि पर्यायनैगमके तीन भेद अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम, अर्थव्यंजनपर्यायनैगम । बहुरि द्रव्यपर्यायनैगमके च्यारि भेद शुद्धद्रव्यार्थपर्याय नैगम, अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनैगम, शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम, अशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम ऐसे नैगमनयके नवभेद भये । तहां उदाहरण- जो, संग्रह नय का विषय सन्मात्र (= सत् मात्र) शुद्धद्रव्य है ताका यहु नैगमनय संकल्प करै है जो सन्मात्र द्रव्य समस्तवस्तु है, ऐसे कहै तहां सत् तौ विशेषण भया तातैं गौणहै । बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातैं मुख्य है यहु शुद्धद्रव्यनैगम है । बहुरि जो पर्यायवान् है सो द्रव्य है, तथा गुणवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारनय भेद करि कहै है । ताका यहु नैगमनय संकल्प करै है : तहां पर्यायवान् तथा गुणवान् यहतौ विशेषण भया तातैं गौण है बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातैं मुख्य है । ऐसैं अशुद्ध द्रव्य नैगमनय भया" ॥

( ) बहुरि प्राणीके सुखसंवेदन है सो क्षण ध्वंसी है ऐसे क्षणध्वंसी ऐसा तौ सत्ताका अर्थ पर्याय है सो विशेषण है बहुरि सुख है सो संवेदनका अर्थपर्यायहै सो विशेष्य भया तातैं मुख्य है । तातैं यहु अर्थपर्याय नैगम भया ॥

अतीत पर्यायोंको को, भविष्यत पर्यायोंको तथा वर्तमान पर्यायों को वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसे ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं। उसके तीनभेद हैं (१) भूत नैगमनय (२) भावी वा भविष्यत नैगमनय (३) वर्तमान नैगमनय। जहांपर अतीतकालमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको भूत नैगमनय कहते हैं। जैसे "अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्षं गतः"

( ) बहुरि पुरुषविषैं चैतन्य है सो सत् है इहां सत् नामा व्यंजन पर्याय है सो विशेषणहै बहुरि चैतन्य नामा व्यंजन पर्याय है सो विशेष्यहै तातैं मुख्य है। यहु व्यंजन पर्याय नैगमहै ॥ ( ) बहुरि धर्मात्मविषै सुख जीवपणां है। इहां सुख तौ अर्थपर्याय है सो विशेषणहै। बहुरि जीवित व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातैं मुख्य है। यहु अर्थव्यंजनपर्याय नैगम है ॥

( ) बहुरि संसार विषैं सत् विद्यमान सुख है सो क्षणमात्रहै। इहां सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है। सुखहै सो अर्थ पर्याय है सो विशेष्य है, तातैं मुख्य है। यह शुद्धद्रव्य अर्थ पर्याय नैगम भया ॥ ( ) बहुरि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखीहै इहां जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो विशेष्य है। सुख है सो अर्थ पर्याय है सो विशेषण है तातैं गौण है यहु अशुद्धद्रव्य अर्थपर्यायनैगम भया ॥ ( ) बहुरि चित् सामान्य है सो सत् है इहां सत् ऐसा शुद्धद्रव्य है सोतो विशेषण है तातैं गौण है। चित् है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातैं मुख्य है। ताका यहु शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ( ) बहुरि जीव है सो गुणी है इहां जीव है सो अशुद्धद्रव्य है, सो विशेष्य है सो मुख्य है। बहुरि गुण है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेषण तातैं गौण है। यह अशुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ॥ " उक्त सात नयोंके चित्र मान चित्र भी हैं



आज दिवालीके दिन श्री वर्द्धमान भगवान् मोक्षको गये। यहां पर यद्यपि भगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष बीत गये परंतु संसारमें ऐसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका संकल्प आजके दिनमें किया जाता है। भूत नैगम नयकी अपेक्षासे ही ऊपरका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहां पर होने वाले पदार्थमें होचुकनेके समान संकल्प किया जाता है वा कथन किया जाता है उसको भावी वा भविष्यत् नैगम कहते हैं। जैसे अर्हन् सिद्ध एव अर्थात् अरहंत भगवान सिद्धही हैं। यद्यपि अरहंत आगे सिद्ध होंगे अभी सिद्ध हुये नहीं हैं होने वाले हैं तथापि होचुकनेके समान कथन किया गया है इसलिये इसको भावि नैगम कहते हैं॥ (३) जहांपर कोई काम करना आरंभ कर दिया हो चाहे वह थोडा बना हो चाहे थोडा भी न बना हो तथापि उसको बने हुयेके समान कहना यह वर्तमान नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष रोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है और उसे किसीने पूछा क्या करते हो? वह उत्तर देता है कि रोटी बनाता हूं किन्तु यहां रोटी बनानेरूप पर्याय अभीतक प्रगट नहीं हुई केवलमात्र लकडियें जल और अन्य सामान रख रहा है तथापि वर्तमान नैगम नयसे ऐसा वचन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा हूं'।

(२) जो एक वस्तुकी समस्त जातिको और उसकी सब पर्यायोंको संग्रहरूप करके एक स्वरूप कहे, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अथवा द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेदादि सबका समझना सो है॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण अर्थात् भेद प्रभेद कर सो व्यवहारनय है। जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त भेद प्रभेदरूप द्रव्योंका सामान्यतासे ग्रहण होता है। परन्तु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चार प्रकारके हैं। अजीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये पांच प्रकारके हैं। इस प्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद होसकें उनको जाने सो व्यवहारनय है। सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंका लोकव्यवहारके अनुसार वा शास्त्रसे भेद प्रभेद जहांतक करेंकि फिर किसी प्रकारका विभाग न होसके। सो जहां ऋजु सूत्रका विषय है तिसके पहलेतक संग्रह और व्यवहार दोनों नय चले जाय हैं॥

(४) अतीत अनागत दोनों पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण कर सो ऋजुसूत्रनय है॥ अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय (=कालका सबसे छोटे भाग) में पारणमती (पलटती) रहती है। सो एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। अर्थ पर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है। अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता। जैसे कोई पुरुष कहींसे आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहां भाई कहांसे आरहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आरहा हूं' यह ऋजुसूत्रनय का विषय है और ठीक है।

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहे उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोडकर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जाने वा कहे सो समभिरूढनय है। जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह समभिरूढनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहे उसको एवं भूत नय कहते हैं॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना पूजन, अभिषेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना॥ यहां पर "एवंभूयत"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवंभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है॥

---

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका कुछ भी विचार न कर प्रसिद्ध अर्थका ज्ञान लेना समभिरूढनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण, वज्र, जल, मयंक, वायु, सूर्य्य, दृष्टि, वाणी, दिशा, माता, वाणी, भूमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सब अर्थोंको छोड़ कर उस गायको सोती उठती, बैठती, चलती सब अवस्थाओंमें गाय कहना यह समभिरूढ नयका विषय है। ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोंका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोंको छोडकर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनाही लेना, एवं उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिषेक करते समय इत्यादि सब अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विषय है। परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खडी रहने वाली या सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम्। सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य-विशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः। स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ;। सामान्य-विशेष-लक्षणम् ;॥। वक्तव्यम् ;॥। =इन (नयों) का संक्षेपस्वरूप और ब्यौरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है

तावत्* सामान्य-लक्षणम् ;॥। अनेक-धर्म-आत्मनि ;। =प्रथम (=तावत) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला

वस्तुनि ;। अविरोधेन ;। हेतु-अर्पणात ;॥। =वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे

साध्य- =साध्य (पदार्थ) के (जिन पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)

विशेषस्य ;। याथात्म्य-प्रापण- =विशेषका वा व्यौरेवारका सच्चा स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को

प्रवण-प्रयोगः ;। नयः ;। =व्यापाररूप प्रयोग सो नय है म वार्थ वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=बिना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है

सः ;। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः ;। च पर्यायार्थिकः ;। इति* =वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

---

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ में आवे अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक से लेते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाश रूप किये पदार्थका विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष ब्यौरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनंत धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृष्टमान वा प्रकृष्ट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको जान लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद प्रभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं है मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा उक्त नयके लक्षण में प्रकृष्ट शब्दके स्थान में जो प्रकृष्ट शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयो द्रव्यार्थिकः ॥ पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः।

द्रव्यम् ;॥ सामान्यम्;॥ उत्सर्गः ;। अनुवृत्तिः ;॥ इति*अर्थः ;। =द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति ये एकार्थ हैं (=अर्थ)
तद्विषयः ;। द्रव्यार्थिकः ;। =द्रव्य है विषय जिसका सो द्रव्यार्थिक है अर्थात् यह द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यका ही विषय करती है। पदार्थोंके विकार (=पर्याय) और अभाव को विषय नहीं करती क्योंकि द्रव्य से अन्य पर्याय और अभाव कोई पदार्थ नहीं

पर्यायः ;। विशेषः ;। अपवादः ;। व्यावृत्तिः ;॥ इति* अर्थः ;। =पर्याय, विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति ये एकार्थ हैं
तद्विषयः ;। पर्यायार्थिकः ;। =पर्याय है विषय जिसका सो पर्यायार्थिक है अर्थात् यह नय केवल जन्म मरण आदि पर्यायों को ही विषय करती है द्रव्यको विषय नहीं करती है क्योंकि पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं ॥

पदार्थके एक देश का भेद प्रभेदरूप कथन है यह संशय आदि सब प्रकार के दोषों से रहित है ॥ इसरूप से नयका यह सामान्य लक्षण निर्दोष है ॥ (१) यह नयका प्रकरण बहुत महत्वका और कार्यकारी है, अतः उचित है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक से इनकी निरुक्ति भाषा अनुवाद सहित दी जावे ॥

द्रव्यम् अस्ति इति मतिः अस्य सः द्रव्यास्तिकः द्रव्य-भवनम्=द्रव्यहै ऐसी है बुद्धि(=मति) जाकी सो द्रव्यास्तिक है (अर्थात्)द्रव्यका होना
एव* न* अतः * अन्ये;। भावविकाराः;। अपि* अभावः;। =ही है इस (द्रव्य) से अन्य पदार्थके विकार (=भावविकार) कहिये पर्याय नहीं है और अभाव भी (कोई पदार्थ)
नञ्तद् व्यतिरेकेण ;। अनुपलब्धेः ;॥ इति* द्रव्यास्तिकः ;। =नहीं है क्योंकि द्रव्य विना (=तद्-व्यतिरेकेण) पर्यायकी प्राप्ति नहीं है ऐसे द्रव्यास्तिकहै
पर्यायः एव अस्ति इति मतिः;॥ अस्य सः पर्यास्तिकः;। जन्मादि- =पर्याय ही है ऐसी है मति जिसकी सो पर्यास्तिक है। जन्म मरण आदि
भावविकारमात्रम् ;॥ एव भवनं;॥ न ततः अन्य द्रव्यम्;॥ =पर्यायमात्र (=भावविकारमात्र) ही होना (भवनं) है तिस (पर्यायमात्र) से अन्यद्रव्य नहीं
अस्ति।तद्-व्यतिरेकेण;। अनुपलब्धेः;॥ इति पर्यायास्तिकः;। =है। क्योंकि उस (पर्याय) विना (=व्यतिरेकेण)(द्रव्यकी) अनुपलब्धिहै ऐसे पर्यायास्तिकहै

तयोर्भेदा नैगमादयः ।

तयोः ।। भेदाः ।। नैगम-
आदयः ।।

=उन दोनों (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों) के भेद नैगम
=संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत हैं अर्थात्

अथवा* द्रव्यम् ।।॥ एव* अर्थः ।। अस्य ।। न गुणकर्मणी ।।॥ तद् अवस्थारूपात् ।।॥ इति* द्रव्यार्थिकः ।।
=वा द्रव्यही है प्रयोजन जिसका गुण कर्म जो हैं ते (प्रयोजन रूप) नहीं है
=क्योंकि वे (=तद्=गुण और कर्म) (द्रव्य की) अवस्थारूप हैं ऐसा द्रव्यार्थिक है

पर्यायः ।। एव* अर्थः ।। अस्य ।। (सः पर्यायार्थिकः) रूपादि-उत्क्षेपण-आदि-लक्षणः ।।
=पर्याय ही है प्रयोजन (=अर्थ) जिसका सो पर्यायार्थिक है क्योंकि रूपादिगुण
=और उत्क्षेपण वा ऊपर को फेंकना आदि कर्मरूप (पर्याय ही हैं)

न* ततः* अन्यत्* द्रव्यम् ।।॥ इति* पर्यायार्थिकः ।।
=तिन (पर्यायों) से (भिन्न) अन्य द्रव्य (कोई पदार्थ) नहीं है ऐसा पर्यायार्थिक है

अथवा* अर्यते T गम्यते T निष्पद्यते T इति* अर्थः ।।॥ कार्यं ।।॥ द्रवति T गच्छति T इति द्रव्यम् कारणम् ।।॥ द्रव्यम् एव अर्थः अस्य ।। कारणम् एव कार्यम् न अर्थान्तरम् न च कार्य कारणयोः ।।॥ कश्चित् रूप भेदः
=अथवा प्राप्त किया जाय (=अर्यते) जाना जाय (=गम्यते) बनाया जाय (निष्पद्यते)
=ऐसा अर्थ है ॥ कार्य को प्राप्त करै (=द्रवति), कार्यरूप परिणमै (=गच्छति)
=ऐसा द्रव्यही वही कारण है । द्रव्य ही है अर्थ जिसका (अर्थात्) कारण ही
=कार्यहै । कोई दूसरी वस्तु नहीं है । और कार्य कारणमें कुछ स्वरूपभेद नहीं है
अर्थात् कार्य और कारण दोनों एक ही स्वरूप हैं भिन्न नहीं है

तद्-उभयम् ।।॥ एकाकारम् ।।॥ एव*पर्वांगुलि-द्रव्यवत्* इति* द्रव्यार्थिकः ।। परि-समंतात्* आयः ।। पर्यायः ।। पर्यायः ।। एव* अर्थः ।। कार्यम् ।।॥ अस्य ।। न * द्रव्यम् ।।॥ अतीतानागतयोः ।। विनष्टानुत्पन्नत्वेन ।।॥ व्यवहार-अभावात् ।। सः ।। एव* एकः ।। कार्यकारणव्यपदेशभाक् ।।
=वे दोनों (कार्य और कारण) एक आकार होहैं जैसे अंगुली और उसकी गांठैं (=पर्व)
=एकद्रव्य (=द्रव्य) है । ऐसा द्रव्यार्थिक (नय) है ।(जिसका) चारो ओर से (=परि)
=सब ओर से (=समंतात् =पार) उत्पाद हो सो पर्याय है ॥ पर्याय ही है
=प्रयोजन (=अर्थ) कहिये कार्य जिसका न कि द्रव्य है (अर्थात् द्रव्य प्रयोजन नहीं है)
=क्योंकि अतीतकालका द्रव्यांशनष्ट हो चुका आगामी कालका द्रव्यांश अभी उत्पन्न नहीं
=(अतः) उसका व्यवहार नहीं होसकता ॥ सो ही एक (वर्तमानकाल वर्ती पर्याय)
=कार्यकारण (दोनों नामको) धारण करने वाली है अर्थात् कारण और कार्य दोनों नामोंको धारण करने वाली उस वर्तमान कालीन पर्याय हीको पर्यायार्थिकनय विषय करसकता है द्रव्यको नहीं ॥

तेषां विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, संग्रह, व्यवहार ये द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं ॥ नीचे की टिप्पणी देखो ॥

तेषाम् ¦ विशेष-लक्षणम् ¦॥ उच्यते T =उन (नैगमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण कहा जाता है

इति॰ पर्यायार्थिकः ¦ । अथवा॰ अर्थनय॰ ¦॥ अर्थः ¦। प्रयोजनम्¦॥ द्रव्यम्¦॥ एव॰ अर्थः¦ अस्य¦ इति॰ द्रव्यार्थिकः¦। प्रत्यय अभिधान-अनुप्रवृत्ति-लिंग-दर्शनस्य-निह्नोतुम्-अशक्यत्वात् ¦॥

=ऐसा पर्यायार्थिक है। अथवा अर्थ शब्दका (=अर्थनय) अभिप्राय (=अर्थ) =प्रयोजन है। द्रव्य ही है प्रयोजन जिस (नय) का यह द्रव्यार्थिक है =क्योंकि (द्रव्यकी) प्रतीति (=प्रत्यय=विश्वास, निश्चय ज्ञान,) नाम (=अभिधान) =(द्रव्य के अनुकूल) प्रवर्तन रूप (इन) चिन्होंसे (=लिंग) देखे जाने वाले (द्रव्य) के =छिपाने को अशक्यमर्थ है अर्थात् संसार में जो द्रव्यकी प्रतीति होती है, जो संज्ञा है। एवं द्रव्यके अनुकूल प्रवृत्ति रूप चिन्ह हैं उनका लोप नहीं हो सकता-सारांश-द्रव्यका ज्ञान, द्रव्यका नाम, और द्रव्योंमें प्रवृत्ति इन चिन्होंसे देखे जाने वाले द्रव्य का अपलाप वा अभाव नहीं कहा जा सका है॥

पर्यायः¦। अर्थः¦। प्रयोजनम्¦॥ अस्य¦ इति॰पर्यायार्थिकः¦। वाक्+विज्ञान-व्यावृत्ति-निबन्धव्यवहारप्रसिद्धेः ¦॥

=पर्याय है अर्थ कहिये प्रयोजन जिस (नय) का ऐसी पर्यायार्थिक है =क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (=वाक्) =और जानत भाव (=विज्ञान) का ज्ञानकी निवृत्ति और प्रवृत्ति (=व्यावृत्ति) के =आधीन (=निबन्ध) वा कारणभूत (=निबन्ध) जो व्यवहार है उसकी प्रसिद्धि है

अर्थात् मृद् पिंडसे घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है तहां मृद् शब्दकी और मृद्ज्ञान की निवृत्ति है और घट शब्दके और उसके ज्ञानकी प्रवृत्तिरूप जो व्यवहार है वह होता है। यदि पर्यायको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय न होता तो संसारसे घट, पट, मठ, पुत्र पिता आदि व्यवहारों का लोप ही होजाय ॥

(१) अथवा अर्थनय और शब्दनय ऐसे भी दो भेद होते हैं अर्थात् नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार अर्थ वा प्रयोजनको प्रधानकरि प्रवर्तती हैं इससे इनका अर्थनय कहते हैं और शब्द, समभिरूढ, एवंभूत शब्दको प्रधान करि प्रवर्तती हैं अतः इनको शब्दनय कहते हैं ॥

अनभिनिवृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः ॥

अन्-अभिनिर्वृत्त-अर्थ-संकल्पमात्र ग्राही नैगमः ॥। =अनिष्पन्न वा अपूर्ण (=अन्-अभिनिर्वृत्त) पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाली =नैगमनय है अर्थात संसार में जितने द्रव्यहैं वे अपनी भूतभविष्यत्

(१) गम् (भ्वादि प्रथमगणके) धातुमें 'नि' उपसर्ग और अच् (=अ) प्रत्यय लगाने पर निगम (शब्द) बनजाता है। यहां निगम (शब्द) का अर्थ संकल्प है जैसे-" संकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयं तत्प्रयोजनः" श्लोक वार्तिक श्लोक १८ पृष्ठ २६९, तत्र संकल्प मात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः (=तहां पदार्थ का संकल्पमात्र का ग्रहण करने वाला नैगम नय है) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक श्लोक १७ ॥ निगम शब्दसे कुशल अर्थमें अण् प्रत्यय करने पर अथवा निगम शब्द से भवअर्थ में अण् प्रत्यय करने पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है। "निगच्छन्त्यस्मिन्निति निगमनमात्रं वा निगमः" =निगच्छन्ति अस्मिन् इति वा निगमन मात्रं निगमः=(पदार्थ) जिसमें प्राप्त हों सो निगम है अथवा जो प्राप्त होना मात्र है सो निगम है ॥ "निगमे कुशलो भवो वा नैगमः" (राज० वा०) निगमे कुशलो नैगम वा निगमे भवो नैगमः =निगम (संकल्प) में (जो) कुशल हो सो नैगम है वा निगम में होय सो नैगम है अतः संकल्पमें जो कुशल हो अथवा जो संकल्प में होने वाला हो वह नैगम है ॥ ऐसा नैगम शब्द का अर्थ है ॥

"अर्थ संकल्प मात्रग्राहो नैगमः" (=पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला वा विषय करने वाला है सो नैगम नय है) तत्त्वार्थ राज वार्तिकपृष्ठ ६५। " नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः " =अनेक (=नैकं=न-एकं) (पदार्थ जिसमें) प्राप्त हों सो निगम अर्थात् विकल्प है तहां (विकल्प वा निगम में) प्राप्ति (=भव) सो नैगम है ॥ (नयचक्र संग्रह में गर्भित आलाप पद्धति पृष्ठ १४६)। विकल्प =संकल्प के अर्थ में भी यहां हो सका है। विकल्प =विविधकल्पना ॥ देखो वैद्य कोष पृष्ठ ६६८, ७४५ ॥ उपर्युक्त नैगम की परिभाषायें जो राज वार्तिक श्लोक वार्तिक, आलापपद्धतिसे की हैं वे एकार्थ वाचीहैं। पूज्यपाद स्वामीकी परिभाषामें "अनभिनिर्वृत्त" शब्द अधिक है शेष भाग, उक्त तीनों परिभाषाओं से लगभग मिलता हुआ है अब प्रश्न यह है कि 'अनभिनिर्वृत्त' का परिभाषा पर क्या प्रभाव है ॥ (उत्तर) सीमा बद्ध होने से नैगमनयके वर्तमानकालनैगम और भविष्यत्कालनैगम दो भेदों को गर्भित करती है भूतकालनैगम का भेद छूटजाता है क्योंकि अर्थ प्रकाशिका और हिंदीअनुवाद तत्त्वार्थ राजवार्तिक और आलापपद्धति इत्यादि ग्रन्थोंमें नैगमनयके भूतकाल नैगम, वर्तमानकाल नैगम और भावीकाल नैगम तीन भेद कहे हैं अब इन तीनों भेदोंकी परिभाषा और उदाहरण देकर हमको यह दिखलाना है कि सर्वार्थसिद्धि में दीहुई परिभाषा नैगमनयकी औरों की अपेक्षा सीमाबद्ध है।

वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से अन्वय रूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी

( ) जो अतीत पर्यायोंमें वर्तमानवत् आरोपण करै वा संकल्प करै सो भूतनैगमनय है जैसे "अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः" आज दिवाळीके दिन पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे हैं यहां पर यद्यपि भगवानको मोक्ष गये हुये सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये अर्थात् २४५२ साल बीत गये परंतु संसारमें ऐसा व्यवहार होता है अतः नैगमनय की अपेक्षा ऐसा वचन बाधित नहीं वरन ठीकही समझा जाता है ॥ ( ) जो आगामी पर्यायों को वर्तमानवत् संकल्प करै सो भविष्यत् नैगमनय है जैसे एक मनुष्य काठसे इन्द्रकी प्रतिमा बनाना चाहता है अभी वह केवल इन्द्रकी प्रतिमा बनानेकी योजना कर रहा है यदि उससे पूंछा जाता है भाई क्या कर रहे हो ? तो उत्तर मिलता है कि मै इन्द्र बना रहा हूं यद्यपि अभी इन्द्रकी प्रतिमा उपस्थित नहीं है किंतु इन्द्रकी मूर्ति बनानेका संकल्पहै तौभी मैं इन्द्र बनारहा हूं यह वचन नैगमनयकी अपेक्षा ठीकहै ॥ ( ) " कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते " = कर्तुम् आरब्धम् ईषत् निष्पन्नं वा अनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते = (वर्तमानमें पर्याय वा) वस्तु आरम्भ करने पर कुछ पूर्ण भया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (लगभग परिपूर्ण होने परही है) उसको परिपूर्ण कहा जाय सो वर्तमान नैगमनय है (" जैसे ओदनः पच्यते " =भात पक गया है) देखो आलाप पद्धति ॥ अर्थात् वर्तमान में जो कार्य करने के लिये हाथमें लिया है सो पूर्ण भया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट समयमें परिसमाप्त होगा उसको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लेना वर्तमान नैगमनय का विषय है अथवा यों भी कह सकते हैं कि जो कार्य वर्तमान कालमें हाथमें लेलिया है वह होते होते ऐसी अवस्था में पहुंच गया है कि उसको व्यवहारमें कहते हैं कि वह पूर्ण है यद्यपि उसकी परिपूर्णतामें अत्यन्त न्यूनता अवशेष है जैसे एक समाज यात्राको गई हुई है सबकी संमिलित रसोई में दाल भात हो रहा है दाल भात ऐसे पक्के हैं कि केवल एक दो पलमें वह अग्निसे नीचे उतारे जाने को ही है रसोईया पुकारता है कि चलो भाइयो खालो दाल भात निष्पन्न है अब कुछ भी देरी वा विलम्ब नहीं है (वास्तविकमें केवल सड़सी वा कपड़ा द्वारा आग से पृथिवी पर उतारने की देरी है योंहीं कि रसोईया ने सड़सी लगा कर दाल वा भातको अग्निसे उचका दिया) बस इतनेही में दाल भात पूर्णतया परिपक्व होगये और नैगमनयका विषय जाता रहा ॥ हमारी समझमें वर्तमान नैगमनय भी सूक्ष्म दृष्टिसे भविष्यत नैगमनय में ही गर्भित हो जाती है यह दोनों भेद उक्त वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते हैं केवल भूतनैगमनय अन्तर्गत नहीं होती अतः वृत्तिकार की परिभाषा सीमाबद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा ।

कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति। स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः। तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः॥ तथा एधोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणं कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति। स आह ओदनं पचामीति। न तदौदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते॥ एवम्प्रकारो लोकसंव्यवहारः अनभिनिर्वृत्तार्थ

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है सो भविष्यत् पर्यायोंका, उन पर्यायों का जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसा ज्ञान तथा वचन नैगमनयहै॥ इसमें भूतनैगम अन्तर्गत नहीं हुई। देखो टिप्पणी ५०६, ४९९। पृष्ठ

कञ्चित् * पुरुषम् ;। परिगृहीत परशुम् ;। =किसी मनुष्य को कुल्हाड़ा लिये हुये
गच्छन्तम् ;। अवलोक्य ÷ कश्चित्* पृच्छतिT किम् ;॥=जाते हुए देख कर कोई पूछता है किस-
अर्थम् ;॥ भवान् ;। गच्छतिT इति*सः आह प्रस्थम् ;। =लिये आप जाते हो। वह कहताहै धान्यमापनेका लकड़ीका परिमाण (=अस्थ)
आनेतुम् इति * ; असौ ;। तदा * प्रस्थपर्यायः ;। =लेनेको (जावाहूं)। उस समय वह (=तदा) प्रस्थ पर्याय
सन्निहितः ;। न * ; तद्-अभि- =निकटस्थ नहीं है। उस (प्रस्थ) को आगे वा भविष्यत् में (=अभि)
निर्वृत्तये ;॥ सङ्कल्पमात्रे ;॥॥ =निष्पन्न करनेके लिये अर्थात् लकड़ी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें
प्रस्थव्यवहारः ;। तथा एधस्-उदक-आदि- =प्रस्थका उद्योग वा व्यवहार है। वैसे ही (=तथा) लकड़ी जल आदिक
आहरणे ;॥॥ व्याप्रियमाणम् ;॥॥ कञ्चित्*पृच्छति T =लाने में (=आहरण) लगेहुयेको कोई पूछता है
किम्;॥॥ करोतिT भवान्;। इति*सः;। आहT ओदनम्;*=आप क्या करते हो। वह कहताहै भातको
पचामि T इति तदा* ओदन पर्यायः;। सन्निहितः;। न*=पकाताहूं। उस समय भातका पर्याय निकटस्थ नहीं है
तद्-अर्थे ;। व्यापारे ;। सः ;। प्रयुज्यते T एवम् * =उस (भात) के लिये व्यवहार वा उद्योगमें वह (पुरुष) लगा हुआहै इसी (=एवम्)
प्रकारः ;। लोक संव्यवहारः ;। अभिनिवृत्त-अर्थ- =प्रकार संसारका व्यवहार है। अनुपस्थित (=अनभिनिर्वृत्त) पदार्थ को

---

(१) अवलोक्य। सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है (देखो पृष्ठ १६) (२) 'आनेतुम्' हेत्वर्थ भूतकृदन्त है।
(३) प्रयुज्यते-युज् यहां दिवादि चौथे गणका अकर्मक आत्मनेपदी धातु है। इसमें य विकरण और प्र उपसर्ग लगाने से प्रयुज्य हुआ, ते जोड़कर प्रयुज्यते बना लिया।

संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः १। नैगमस्य १। गोचरः १।
स्वजाति-अविरोधेन ३। एकध्यम् १॥ उपनीय÷
पर्यायान् २। आक्रान्तभेदान् २। अविशेषेण ३।
समस्तग्रहणात् ५॥
संग्रहः १।

=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
=अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
=पर्यायोंको वा प्राप्त होने वाले भेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
=समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
=संग्रह (नय कही जाती) है अर्थात् अपनी जातिके सब पदार्थोंको बिना किसी विरोधताके (एक जातिके कितने ही पदार्थोंमें भी विरोध नहीं होता परंतु उसका भिन्न जातिके पदार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि, नाम,अनुकूल प्रवृत्ति इन चिन्होंकी समानता रखने वाला जो सादृश्य है वही जाति है अर्थात् जिन पदार्थोंकी प्रतीति समान होगी, नाम भी समान होगा, अनुकूल प्रवृत्ति भी समान होगी ऐसे पदार्थोंके समूहका नाम जाति है अथवा जहां स्वरूपका अनुगम है (=ग्रहण) है जिस प्रकार गोत्व स्वरूप समस्त संसारकी गौओंमें रहता है इस लिये वह जाति है वह जाति चेतन अचेतन आदि पदार्थ स्वरूप है चेतन आदि पदार्थों से भिन्न नहीं। तथा उसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्व, घटत्व, द्रव्यत्व,सत्व आदि अनेक शब्द है इस लिये जहां जो शब्द होगा उसीके अनुसार उसका नाम भी भिन्न होगा तथा प्रवृत्ति भी उसी नियत शब्द के अनुसार होगी।

(२) उक्त संस्कृत वृत्तिमें जो अविरोध शब्दहै उसका अर्थ स्वरूपसे नचिगना है वा स्वरूपसे न प्रच्यवन होना है॥ अपनी जाति है सो स्वजाति है। नहीं चिगना है वा नहीं डिगना है सो अविरोध है, अपनी जातिसे नही चिगना (जो) है सो स्वजात्यविरोध है। अपनी जातिसे नहीं चिगने द्वारा एक प्रकारपनाको प्राप्त होना है सो "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" है। ऐसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें आये हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" वाक्यकी निरुक्ति है। (=प्रकृति धातु प्रत्यय आदि अवयवोंके अर्थ को कह कर समास के अर्थ को जतलाना) सो निरुक्ति है।

(३) तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें संग्रहनयका लक्षण पर्से कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्त ग्रहण संग्रहः" उपर्युक्त वृत्तिमें दी हुई संग्रह नयकी परिभाषा से जब इस परिभाषा की तुलना करते है तो "पर्यायान् आक्रान्तभेदान् अविशेषेण" वाक्य राजवार्तिक से अधिक पाते है शेष पाठ दोनोंका लगभग एकसा है परंतु तात्पर्य दोनों परिभाषाओं का एकसा है क्योंकि अधिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविशेषकरि" ऐसा है॥

सत् द्रव्यं घट इत्यादि। सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः। द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः। तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुध्य-

---

एक रूपसे पर्यायोंके भेदोंको व्यक्तनकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है। सारांश यह है कि अपनी जाति को प्रगट करके पर्यायका भेद न करके समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है॥

सत् ;॥॥ द्रव्यम ;॥॥ घटः ;। इत्यादि ;॥॥ =सत, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) हैं॥

सत् ;॥॥ इति* उक्ते ;॥। सत् ;॥॥ इति* वाग्-विज्ञान- =सत् ऐसा कहने में सत् ऐसा वचनकरि तथा ज्ञानकरि

अनुप्रवृत्तिलिङ्ग- =अन्वयरूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग) वा जोड़रूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग)

अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम् ;। सर्वेषाम् ;। =अनुमान किये हुये (=अनुमित) सत्ताको आश्रयभूत सब (वस्तु) निका

अविशेषेण ;। संग्रहः ;। =सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुयें सत्ता रूप हैं

तात्पर्यः—सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रभेद सब सत्तासे अभिन्न हैं अतः एक सत्व धर्मसे उन सबका ग्रहण होजाता है

द्रव्यम्;। इति उक्ते;॥॥ अपि तान्;। तान् पर्यायान्;। द्रवति T =द्रव्य ऐसा कहनेमें भी (जो) जिन जिन पर्यायोंको प्राप्त होता है (=द्रवति)

गच्छति T इति उपलक्षितानां ;। जीव-अजीव- =अथवा (जिन जिन पर्यायोंको) पाता है ऐसे उपलक्षित जीव और जड़

तद्-भेद-प्रभेदानाम् ;। संग्रहः ;। =तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रभेदोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य कहने में गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रभेद सबको समझ लेना चाहिये

तथा* घटः ;। इति* उक्ते ;॥॥ अपि* घटबुद्धि- =वैसेही (=तथा) घट (=घड़ा) ऐसा उच्चारण करने में भी घड़ाका ज्ञान तथा

---

(१) द्रव्य ऐसा उच्चारण करने पर जीव अजीव और उनके भेद प्रभेद जितने भी द्रव्य कहे जाने वाले हैं उन सबमें द्रव्यत्व अभेदरूपसे रहता है—जीव आदि कोई भी द्रव्यत्वसे भिन्न नहीं अतः एक द्रव्यत्व धर्मसे सबका ग्रहण होजाता है॥

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनयः ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः ॥ को विधिः ?। यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहारः प्रवर्तत इत्ययं विधिः।

अभिधान-अनुगमलिंग-
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः ¦।
एवम्* प्रकारः ¦। अन्यः ¦। अपि *

=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा जोड़रूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सब घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी
(जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)

संग्रहनयः ¦।
=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह-विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)

(२) संग्रहनय-आक्षिप्तानाम् ¦। अर्थानाम् ¦।
=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम) पदार्थों का

विधिपूर्वकम् ¦॥। अवहरणम्¦॥। व्यवहारः ¦।
=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है

कः ¦। विधिः¦। यः¦। संग्रह-गृहीतः¦। अर्थः ¦। तद्-
=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तद्)

आनुपूर्व्येण ¦॥। एव * व्यवहारः ¦। प्रवर्तते T
=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है

इति* अयम् ¦। विधिः ¦।
=ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे ग्रहे पदार्थको आदिसे लेकर भेद करै सो) है ॥

---

(१) संग्रहो द्विविधः ¦। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि ¦॥। द्रव्याणि =संग्रह (नय) दो प्रकार है। सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्यं
परस्परमविरोधीनि। विशेष संग्रहो यथा =आपसमें (स्वरूपसे) विरुद्ध होने वाले नहींहैं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे
सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया है। =समस्त जीव परस्पर अविरोधीहैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रच्यवन होनेवाले नहींहै

(२) "अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (=विधिपूर्वक) भेद करना (=अवहरण)
सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयका तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां"का वही तात्पर्यहै जो इसकाहै
(३) विधिपूर्वक=आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि, आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल, अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक
=आनुपूर्व्येण) देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ५७) (४) अवहरण =व्यवहरण=भेद किया जाना, देखो पं०जयचंदजी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ१०१

तद्यथा—सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते । यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति । द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते ।

तद्यथा* सर्वसंग्रहेण ;। सत्संगृहीतम् ;॥। = सो (=तद्) ऐसें हैं (=यथा) कि सर्वका संग्रहकरि सत् ग्रहण किया गया है

च* तत् ;॥। अन्-अपेक्षितविशेषम् ;॥। = और (=च) वह (=तद्) अर्थात् सत् विशेषकी विवक्षा रहित है

संव्यवहाराय ;। न* अलम्* = सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तावने)के लिये समर्थ (=अलं) वा योग्य (=अलं) नहीं है

इति* व्यवहारनयः ;। आश्रीयते T = ऐसें व्यवहारनय अवलंबन कीगई है वा आश्रय कीजाती है (तब कहें हैं कि)

यत्;॥। सत्;॥। तत्;॥। द्रव्यम्;॥। वा* गुणः;। इति* = जो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि जैसे (=तद्यथा) संग्रहनयका विषय सत् पदार्थ है किंतु सत शब्दसे संसारका व्यवहार हो नहीं सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता है ऐसे सत् विषैं भेद करैं तब संसार का व्यवहार चलता है ॥

द्रव्येण ;॥। अपि* संग्रह-आक्षिप्तेन ;॥। जीव-अजीव- = (और यहां) द्रव्य (शब्द) करि भी संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये जीव अजीव के

विशेष-अन्-अपेक्षेण ;॥। संव्यवहारः ;। न* शक्यः ;। = भेदकी (=विशेष) अपेक्षा न होने से योग्य व्यवहार नहीं होसकता है

इति* जीवद्रव्यम्;॥। वा* अजीवद्रव्यम्;॥। इति* = ऐसें जीव द्रव्य है और (=वा) अजीव द्रव्य है ऐसे

व्यवहारः ;। आश्रीयते T = व्यवहारनय आश्रय कीगई है अर्थात् जब हमने सत्के दो भेद किये तो यहां पर भी संग्रहनयका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव है यह व्यवहारसे कहना पडता है

---

(१) सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंमें 'यत्संग्रहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका संग्रहकरि जो (सत्) ग्रहण किया गया है परंतु सत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है तथा जयचंद रायजीने और अन्य भाषा अनुवादकों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संग्रहीतम्' पाठ दिया है यद्यपि 'यत्' से भी वही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने वृत्तिमें 'यत्संग्रहीतं' ही पाठ रक्खा है ॥

जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते । एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः

जीव-अजीवौ ;। अपि*
संग्रह-आक्षिप्तौ ;।
संव्यवहाराय ;। अलम्* न* इति* प्रत्येकम् ;॥
देवनारकादिः ;। च* घटादिः ;। व्यवहारेण ;।
आश्रीयते T

=(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी
=जो संग्रहनयके विषयभूत हैं संग्रहनय गोचर हैं वा ग्रहण संग्रहनयसे कियेगये हैं
=व्यवहार (प्रवर्तावने) के लिये समर्थ नहीं है । प्रत्येक (जीव और अजीव)
=(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि
=आश्रय किये गये हैं अर्थात् यहां संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गयेहैं परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भेद माने विना संसारका व्यवहार नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहारकी सिद्धि के लिये जीव द्रव्यके देव नारक आदि भेद व्यवहार से मानने पड़ते हैं । और अजीव के घट, पट, मठ, गृह इत्यादि भेद मानें विनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सक्ता है इसलिये अजीव के घट, पट, मठ, गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं

एवम्* अयम् ;। नयः ;। तावत् * वर्तते T
यावत् * पुनः * न * अस्ति T विभागः ;। ॥३॥

=इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है
=जबतक फिर विभाग नहीं हो (सक) ता है अर्थात् ऋजुसूत्र नय के विषयके

(१) "व्यवहारोऽपि द्वेधा । सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रह भेदको व्यवहारो यथा-जीवः संसारिणो मुक्ताश्च "

=व्यवहारनय भी दो प्रकार है - सामान्य संग्रहभेदक व्यवहार अर्थात् सामान्य संग्रह नय की भेद करने वाली व्यवहारनय
=जैसे द्रव्यहैं सो जीवरूप और अजीवरूप हैं । विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार अर्थात् विशेषरूप संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारनय
=जैसे जीव हैं सो संसारी और मुक्तरूप हैं ॥ (आलापपद्धति से उद्धृत)

(२) नाम स्थापना द्रव्य ये तीन निक्षेप संग्रहात्मकहैं उनसे संग्रहआत्मक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे भिन्न भिन्न व्यवहार नहीं होसक्ता क्योंकि वे तीनोंही जाति वाचक हैं व्यक्तिवाचक नहीं है । इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप ही समर्थ है उसीका यहां ग्रहण है । इस रीतिसे इस व्यवहार नयका वहींतक विषय समझना जहांतक फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहोसके ॥

सर्वार्थ-

५१३

॥३॥ ऋजुं प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्रः । पूर्वान्परांस्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकालविषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमानं समयमात्रं तद्विषयपर्यायमात्रग्राह्योऽयमृजुसूत्रः ॥

सिद्धि

पहिले पहिले संग्रहनय और व्यवहारनय दोनों चले जाते हैं

ऋजुम् ; प्रगुणम् ; सूत्रयति T =सीधे (=ऋजु) और सरल (=प्रगुण) (विषय वा वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)
तन्त्रयते T इति* ऋजुसूत्रः ;। =फैलाता है (तन्त्रयते) ऐसा ऋजुसूत्रनयहै (तंत्रयति भी आता है, देखो राजवा० पृ० ६६)
त्रिकालविषयान् ;। पूर्वान् ;। परान् ;। =तीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) निमें से अतीत–अनागत (विषयों) को
अतिशय्य-वर्तमान-काल-विषयान् ;। आदत्ते T =उल्लंघकरि वा छोड़का विद्यमानकालके विषयों को (ऋजुसूत्रनय) ग्रहण करता है
अतीत-अनागतयोः ;। विनिष्ट– =क्योंकि भूत और भविष्यत (विषयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और
अनुत्पन्नत्वेन ;॥ व्यवहार-अभावात् ;। तच्च* =न उत्पन्न होनेसे व्यवहार नहीं होता है । तात्कालिक (=तच्च-वैद्यकोश पृ० ३०१)
वर्तमानम् ;॥ समयमात्रम् ;। तद्-विषय- =विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (ऋजुसूत्रनय) का विषय
पर्यायमात्र-ग्राह्यः ;। अयम् ;। ऋजुसूत्रः ;। =पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह ऋजुसूत्रनय है अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय में परिणमती (पलटती) रहती है

सो एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं । अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है । ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को कहता है वा ग्रहण करता है अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) ऋजुम् ; —यह ऋजुशब्द त्रिलिंगी है (ऋज् + कु) स्त्र लिंग में विकल्प से ङीप् होता है जैसे ऋज्वी ;। ऋजुः ;। ॥ त्रिलिंग, पुल्लिंग नपुंसक लिंग में यहां आया है

(२) प्रगुणम्–यह त्रिलिंगी है ॥ प्रगुणा ;॥ स्त्रीलिंगमें है ॥ यहांपर त्रिलिंग पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंगमें ऋजु शब्दवत् जानना चाहिये

५१३

ननु संव्यवहारलोपप्रसंग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोक-संव्यवहारः सर्वनयसमूहसाध्यः

ननु* संव्यवहारलोप-प्रसंगः ;।
=प्रश्न (=ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रसंग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्यौपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलेगा जो ऋजु सूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करेगी

इति* चेत्* न*
=ऐसी शंका (=चेत्-होने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नहीं है

अस्य नयस्य विषयमात्र-प्रदर्शनम् क्रियते।
=इस (ऋजुसूत्रनय) का केवल विषय (=विषयमात्र) दिखाया गया है

हि* लोकसंव्यवहारः ;। सर्वनयसमूहसाध्यः ;।
=क्योंकि (=हि) लोकका व्यवहार वा कार्य सबनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात् लोक व्यवहार में जिस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

---

(१) ऋजुसूत्रो द्विविधः सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एक समय-अवस्थायी पर्यायः स्थूलर्जुसूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति
=ऋजुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जैसे एक समय तक-ठहरने वाली पर्याय और स्थूलऋजुसूत्रनय जैसे
=मनुष्य आदि पर्याय हैं वे (=तद्) आयुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥
आलाप पद्धतिसे उद्धृत

( ) जिस प्रकार सूतका गिरना सरल होता है उसी प्रकार जो सरल विषयको सूचित करता है उसका नाम ऋजुसूत्रनय है ॥ यह नय त्रिकाल संबंधी विषयोंमें से वर्तमान कालीन विषयोंको ग्रहण करता है क्योंकि जो पर्याय बीत चुकी अथवा जो पर्याय अभी उपस्थित नहीं हुई आगे जाकर उपस्थित होगी इन दोनों पर्यायोंसे व्यवहार नहीं चल सकता है इसलिये शुद्ध एक समय मात्र ही ऋजुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ ऋजुसूत्र नयके कुछ अच्छे अच्छे उदाहरण देते हैं कि (क) 'कषायो मैषज्यं' काढा औषध है यहां पर जिन पदार्थोंका काढा है उन पदार्थोंका रस निकाल कर जिस समय साक्षात् औषध स्वरूप काढा बन जाता है वही शुद्ध वर्तमान कालीन एक समयवर्ती ऋजुसूत्रनयका विषय है किन्तु पहिले ही पहिले जिसका रस अभी तक प्रगट नहीं हुआ आगे जाकर प्रगट होने वाला है अतः जो साक्षात् औषध नहीं है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह वर्तमान एक समयवर्ती नहीं-भविष्यत् कालकी अपेक्षा रखता है ॥

(ख) ऋजुसूत्र नय का विषय प्रत्यक्ष भी है परंतु जिस समय अन्न आदि पदार्थ सेर आदि द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रत्यक्ष ऋजुसूत्र नय का विषय हो सकता है परन्तु जिस ने पहले तुलसुका अथवा आगे जाकर तुलेगा वह ऋजुसूत्र नय का विषय नहीं हो सकता क्योंकि जो तुल चुका वह भूतकाल का विषय है जो आगे तुलेगा वह भविष्यत् कालका विषय है भूतकाल की पर्याय और भविष्यत् कालकी पर्याय ऋजुसूत्र नयका विषय है नहीं किन्तु वर्तमानकाल की एक समय वर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल वा भविष्यत् काल की अपेक्षा होनेवाला प्रत्यक्ष ऋजुसूत्र नयका विषय होना असंभव है॥

(ग) कुंभकारका अभाव ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि कुंभको करने वाला कुंभकार कहा जाता है जिस समय कुंभकार पुरुष कुंभ-घड़ा न बनाकर उसकी शिविक छत्रक आदि पर्याय बना रहा है उस समय वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा घड़ेका बनाने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिविक छत्रक आदि पर्यायोंके आगे जाकर घट पर्याय बनने वाली है इसीलिये भविष्यत् कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं एवं जिस समय वह घड़ा बना रहा है उस समय घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोंसे हो रही है और यही शुद्ध वर्तमान काल ऋजुसूत्र नयका विषय है किन्तु उस समय कुंभकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये ऋजुसूत्र नयका विषय कुंभकार नहीं हो सका किन्तु कुंभकार का अभाव उसका विषय है। तथा —

(घ) कोइ पुरुष कहीं से आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा — कहो भाई कहां से आ रहे हो ? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय सर्वथा गमन क्रिया का अभाव है इसलिये शुद्धवर्तमान की अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आ रहाहूं' यह ऋजुसूत्र नयका विषय है॥

(ङ) किसी बैठे आदमी को देखकर यह पूछना कि भाई ! इस समय तुम किस स्थान पर हो ? उस समय वर्तमान में वह जितने जितने आकाशके प्रदेशों में विद्यमान है उतने ही प्रदेशोंका नाम लेकर कहे कि मैं यहां पर हूं, किसी पुरी, ग्राम, घर आदिका नाम नहीं ले, वह शुद्ध वर्तमान कालकी अपेक्षा कथन होनेसे ऋजुसूत्रनय का विषय है। अथवा उस समय जितने आत्मप्रदेशोंके आकारमें उसका रहना हो उतने ही प्रमाण आत्म प्रदेशों का अवलंबन कर वह यह कहे कि मैं यहां पर हूं वह ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का शुद्ध वर्तमान समयमें यही आकार है, अन्य नहीं॥

(ख) पच्यमान— जो रंध रहा है और पक्व— जो रंधचुका है यह ऋजुसूत्र नय का विषयहै । यहां पच्यमान और पक्वका अर्थ कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह समझ लेना चाहिये । (प्रश्न) पच्यमान यह वर्तमान पर्याय और पक्व यह अतीत पर्याय है, इन दोनों का एक स्थान में कैसे समावेश होगा ? (उत्तर) पहिले ही पहिले अब समयका कोई विभाग नहीं है उस समय भातका कुछ अंश रंधाहै सीझा है, वा नहीं रंधा है नहीं सीझा है यदि नहीं सीझा है तब द्वितीयादि समयोंमें भी वह नहीं सीझ सकता इसलिये पाकका अभाव ही कहना होगा । परन्तु प्रति क्षण वह सीझता अवश्य है इसलिये बटलोई में रक्खे हुये चांवलोंमें सीझे और वे सीझे की अपेक्षा ऋजुसूत्र नयका कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह विषय बाधित नहीं यदि यहांपर यह अपेक्षा न मानी जायगी और पच्यमान अवस्था और पक्व अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तो पच्यमान (मिश्रित) कथंचित् पच्यमान और पक्व इस प्रकारसे विषयोंके तीन भेद होजानेसे समय भी तीन प्रकार का मानना होगा परन्तु तीन भेदों को सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय में वे तीनों भेद नहीं रहसके हैं इसलिये कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्वमें सर्वथा विरोध नहीं माना जासक्ता। इसलिये यहां यह बात समझलेनी चाहिये किसी रसोईयाका यह अभिप्राय हो कि जो चांवल भली प्रकार से सीझ गये हैं कोई भी कच्चा शेष नहीं रहा है उस (रसोईया) की अपेक्षा तो भलेप्रकार रंधे हुये चांवल ही पक्व हैं । और जिस रांधने वाले का यह अभिप्राय हो कि वह कुछ सीझे और कुछ न सीझे कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व ऐसे पच्यमान चावलों को ही पक्व कहना चाहता है उसकी अपेक्षा पच्यमान ही पक्व है । क्योंकि वह पच्यमानों को ही पक्व मानना सुखप्रद समझता है इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि ऋजुसूत्र नयका पच्यमान अर्थात् कथंचित् पच्यमान कथंचित् पक्व उदाहरण निर्दोष है तथा पक्व रंध चुकने के पश्चात् एक समय वर्ती पदार्थ भी ऋजुसूत्र नयका विषय है । ऐसेही क्रियमाण कृत (कथंचित् क्रियमाण कथंचित् कृत), भुज्यमान भुक्त (कथंचित् भुज्यमान कथंचित् भुक्त) वध्यमान बद्ध (कथंचित् वध्यमान कथंचित् बद्ध) और सिध्यत् सिद्ध (कथंचित् सिध्यत् कथंचित् सिद्ध) आदि भी ऋजुसूत्र नयके उदाहरण समझलेने चाहियें । अर्थात् जो किया जारहा है और जो किया जा चुका है और जो भोगा जारहा है और जो भोगा जाचुका है जो सिद्ध किया जारहा है और जो सिद्ध किया जाचुका है ये सब ही ऋजुसूत्र नयके विषय पड़ते हैं, क्योंकि इन सबों में भी कुछ अंशोंमें वर्तमान पर्यायका ग्रहण होता है, जितने अंशों में वर्तमान पर्यायका ग्रहण है उतने ही अंशों में ऋजुसूत्र नयकी विषयता है इसलिये कथंचित पदसे कहागया है । यहां पर विरोधादि बातों का विस्तार और समाधान पच्यमान पक्वके समान है तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ६७ से अनुवादित ॥

॥ ४ ॥ लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचारः — पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति ॥ संख्याव्यभिचारः — जलमापो वर्षा ऋतु

लिङ्ग-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति- =लिङ्ग, वचन (=संख्या) साधनादि अन्याय वा दोषोंके (=व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति)
परः ‖ शब्दनयः ‖ =लगा हुआ (=परः) वा तत्पर (=परः) है सो शब्दनय है अर्थात् लिंग, वचन, साधन, कारक
काल, उपग्रह 'आदि व्यभिचारनय' कहा हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह शब्दनय
है' । पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगके भेदसे लिंग तीन प्रकार है । एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (पद्म चन्द्र कोश पृष्ठ ४१९ और वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण तृतीया विभक्ति का है परंतु यहां पर (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं । साधन व्यभिचार को पुरुष व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते हैं जैसा कि आगे जाकर (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ४१८ से ४२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण माने हैं संबंधको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है । भूतकाल, भविष्यत्काल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उपसर्ग व्यभिचार है" पं० पन्नालालजी दूनी० अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और पं० गजाधर लालजी अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक युक्त पृष्ठ ४८० की टिप्पणी देखो ।

तत्र* लिंग-व्यभिचारः ‖ पुष्यः ‖ तारका ‖ =तहां लिंगदूषणः—(जैसे) पुष्य पुल्लिंग है उसको तारका स्त्रीलिंग
नक्षत्रम् ‖ इति*; संख्याव्यभिचारः ‖ =(वा) नक्षत्र नपुंसकलिंग ऐसा कहना । वचन दूषणः—(जैसे)
जलम् ‖* आपस् ‖ वर्षाः ‖ ऋतुः ‖ =जलम् एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

---

(१) "स च लिंगसंख्यासाधनादि व्यभिचार निवृत्त परः" तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ सः = शब्दनयः । सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा शब्दशः मिलती है (२) वर्षाः' स्त्रीलिंग, नित्य बहुवचन है (३) आपस् – 'आपस्' शब्द सदा बहुवचन स्त्रीलिंग अप् शब्दका है । 'अप्' शब्द भी सदा बहुवचन और स्त्रीलिंग होता है (वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ३५, पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३०) ॥ 'आपः स्त्री द्वयवरः ॥ तत्र आपः'

आम्रा वनं वरणा नगरमिति ॥ कारकव्यभिचारः सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचारः पुरुषव्यभिचारः

आम्राः ;। वनम् ;॥॥ =आम्रा (=आमके वृक्ष) बहुवचनको वनम् एकवचन (कहना और)
वरणाः ;। नगरम् ;॥॥ इति* =वरणा (प्राकार वा कोट) बहुवचनको नगर एकवचन ऐसे (कहना)
कारकव्यभिचारः ;। सेना ;। पर्वतम् ;। अधिवसतिT =कारक व्यभिचारः—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) बसे है
साधनव्यभिचारः ;। पुरुषव्यभिचारः ;। ="साधनव्यभिचार ताकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये" पं० जय० वचनिका पृष्ठ २०२

(=आप्स्) "स्त्रियाम् बहुत्वे च नित्यम्" नहीं 'आप्स्' शब्द स्त्रीलिंगमें और बहुवचन में सदैव आता है ॥ इस अप् शब्द का एकवचन और द्विवचन नहीं होते हैं इसकी सर्व विभक्तियां बहुवचन में ऐसे है कि आपः (=आप्स् प्रथमा विभक्ति); अपः (द्वितिया विभक्ति); अद्भिः (तृ०वि०); अद्भ्यः (च०वि०), अद्भ्यः (पं०वि०); अपाम् (ष०वि०); अप्सु (स०वि०) ॥

(१) कारक व्यभिचारका अन्य उदाहरण तत्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ १७३ में इस प्रकार दिया है "तथा करोति क्रियते इति कारकयोः कर्तृकर्मणोर्भेदेऽप्यभिन्नमर्थत एवाद्रियते । स एव करोति किंचित् स एव क्रियते केनचिदिति प्रतीतेरिति तदपि न श्रेयः परीक्षायां । देवदत्तः कटं करोतीत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्त कटयोरभेद प्रसंगात् ॥"

तथा* करोतिT क्रियतेT इति* कारकयोः ;॥। कर्तृकर्मणोः ;॥। भेदे"। अपि* अभिन्नम् ;॥॥ अर्थतः* एव* आद्रियतेT =और करोति (=करताहै) क्रियते (=किया जाताहै) ऐसे कर्ता और कर्म कारकोंमें =भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थमें ही (व्याकरणों द्वारा) आदर किये जाते हैं
अर्थात् करोति कर्तामें प्रत्यय है और क्रियते यह कर्ममें प्रत्यय है इन कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद है तौ भी व्याकरण वाले उनको एक मानकर कहतेहैं कि
सः ;।* एव* करोतिT किंचित्* सः एव* क्रियतेT केनचित्* इति =वो ही कुछ करता है और वो ही किसीसे (=केनचित्) किया जाता है ऐसी ॥
प्रतीतेः ;॥ इति* =क्योंकि (संसारमें) ऐसी प्रतीति है ॥ (इसलिये कर्ता कर्म दोनों एक ही हैं।
परस्पर एक दूसरेकी पर्याय हो सकते हैं ऐसे कारक दोष आता रहता है)

तत् ;॥॥ अपि* न* श्रेयम् ;॥॥ परीक्षायाम् ;॥ =तौ भी परीक्षा करने पर (यह) श्रेयु नहींहै । (यदि कर्त्ता कर्मका अभेद माने तो)
देवदत्तः ;। कटं ;। करोतिT इति* अत्र* अपि* ='देवदत्तः कटं करोति' देवदत्त चटाई बनाता है ऐसे यहाँ पर भी
कर्तृ-कर्मणोः ;॥॥ देवदत्त कटयोः ;। अभेद-प्रसंगात् ;। =कर्ता देवदत्त और कर्म चटाई में अभेदता वा एकत्वका संयोग आता है
(अतः कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोषको दूर करना बाधित और अयुक्त है)

(१) इस टिप्पणीसे हमको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारको और पुरुष व्यभिचारको एक ही माना है और तत्वार्थ राजवार्तिक

तथा तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक के कर्त्ताओं का मत पूज्यपाद स्वामीसे मिलता है न कि साधन व्यभिचार को कारक व्यभिचार माना है जैसाकि औरोंका भ्रम है ॥ इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके दो संस्करण मुद्रित हुये हैं प्रथम आवृत्तिमें छापे की इतनी अशुद्धियां हैं कि दो बार शुद्धाशुद्धि पत्र देने पर भी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं जिनको हमने शुद्ध करके अनुवाद शब्दशः किया है और स्थान स्थान पर उनका उल्लेख भी किया है ॥ दोनों आवृत्तियों का क्रमसे पाठ ऐसे हैं कि "संख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वनमिति ॥ वरणा नगरं साधन व्यभिचारः ॥ कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति ॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि·····" इत्यादि पृष्ठ १३८ ॥ "संख्याव्यभिचारः—जलमापो वर्षा ऋतुराम्रा वन वरणा नगरमिति ॥ साधन व्यभिचारः— (कारक व्यभिचारः) सेना पर्वतमधिवसति ॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ उपर्युक्त दोनों पाठों की तुलना करने से ज्ञात होताहै कि प्रथम संस्करणमें "वनमिति ॥ वरणा नगरं" अशुद्ध था उसको द्वितीय संस्करणमें "वनं वरणा नगरमिति" करके इतना पाठ शुद्ध कर दिया। परंतु पश्चात् 'साधन व्यभिचार' वाक्य लिख कर "(कारक व्यभिचारः)" उसके निकट कोष्टकमें कर दिया, यह ठीक नहीं किया, 'सेना पर्वतमधिवसति' वचनके पश्चात् और "पुरुष व्यभिचारः" के प्रथम "साधन व्यभिचारः" लिखना ठीक होता जैसा कि हमने वृत्तिका पाठ पृष्ठ ५१८में लिखा है। क्योंकि ( ) पं० जयचंद्रजीने वचनिका पृष्ठ २०३ में यह उल्लेख किया है "बहुरि साधन व्यभिचार ताकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये—एहि मन्ये रथेन यास्यसि। नहि यास्यसि न यातस्ते पिता" ऐसा ही लेख हस्त लिखित वचनिका में है ॥ दूसरा हेतु यहहै कि 'साधन'का अर्थ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के कर्त्ताओंने अस्मद्-युष्मद्, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष ऐसा लिया है और 'अन्य' वैयाकरणों ने 'साधन" का अर्थ करण कारक या तृतीया विभक्ति लिया है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ ७७१ पद्म० कोश पृष्ठ ४१९) और कारक छह (कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण) है इसलिये साधन कारक व्यभिचार, करण कारक व्यभिचार हो सकते हैं। परंतु 'सेना पर्वतमधिवसति" (=सेना पर्वत को बसती है) इस उदाहरण में साधन कारक व्यभिचार नहीं है वरन अधिकरण कारक के स्थानमें कर्म कारक है ऐसा व्यभिचार है अर्थात् जहां छठा कारक (अधिकरण कारक) का प्रयोग होना था वहां द्वितीय कारक वा कर्मकारक का प्रयोग किया है सायार्थ ऐसा है कि "सेना पर्वतेऽधिवसति" (=सेना पर्वतमें बसती है के स्थान में "सेना पर्वतमधिवसति" ऐसा है ॥ यदि करण कारक व्यभिचार वा साधन कारक व्यभिचार का उपर्युक्त उदाहरण होता तो हम एक प्रकार से इस बात को मान लेते कि "साधन व्यभिचारः—(कारक व्यभिचारः)" एक है क्योंकि साधन व्यभिचार कारक व्यभिचारोंमें से एक है इस अवस्था में

और मध्यम पुरुष के स्थान में उत्तम पुरुष लाना, अस्मद् (=मैं) के स्थान में युष्मद् लाना और युष्मद् (=तू) के स्थानमें अस्मद् लाना (जैसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात है ।

साधनकारकव्यभिचारः—(साधनकारकव्यभिचार) ये दोनों वाक्य, वाक्यशेष पूरा कर देने से अर्थात् 'साधन व्यभिचारमें कारक शब्द जोड़ने से और कारक व्यभिचारमें साधन शब्द लगानेसे एक होजाते हैं ॥ परंतु उक्त उदाहरण (सेनापर्वतमधिवसति)में तो साधनकारक व्यभिचारका कुछ भी अंश नहीं है ॥ हमारी समझमें साधनकारक व्यभिचारके दो अर्थ हैं ( ) साधन (तृतीया करण) कारक द्वारा जो दोष उत्पन्न हो सो साधन व्यभिचार है अर्थात् अन्य कारकका प्रयोग होना ठीक होता उसके स्थानमें करण कारक (=तृतीया विभक्तिका) प्रयोग पाया जाना । ( ) साधन कारकमें (कः) दोष अर्थात् करण कारक (=तृतीया विभक्ति) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पाया जाना सो साधनकारक व्यभिचार या करण कारक व्यभिचार हो सकता है ॥ इसलिए हमारी समझमें संस्था द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुवाद पृष्ठ ६७८ के नीचे जो निम्न टिप्पणी दी है वह असावधानीसे लिखी है "१ सर्वार्थसिद्धिमें साधनव्यभिचारः (कारकव्यभिचारः) सेनापर्वतमधिवसति । पुरुषव्यभिचारः यहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता, अर्थात् साधनका अर्थ कारक माना है और साधन व्यभिचार सेना पर्वत में रहती है यह उदाहरण दिया है । पुरुषव्यभिचार एक भिन्न व्यभिचार माना है और उसका यहि 'मन्ये रथेनत्यादि उदाहरण दिया है" ॥

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, जयचंदजी कृत वचनिका और अर्थ प्रकाशिका में जिस क्रमसे उक्त व्यभिचारोंके नाम दिये हैं उसी क्रमसे उनकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये हैं इससे यह बात झलकती है कि "कारकव्यभिचारः सेनापर्वतमधिवसति ॥" इस वाक्यका स्थान "यहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" के पश्चात् होना चाहिये और "काल-व्यभिचारः" इत्यादि वाक्यके पहिले होना चाहिये अर्थात् "कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति । साधनव्यभिचारः, पुरुषव्यभिचारः—यहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कालव्यभिचारः" इतने लेखके स्थानमें "कारकव्यभिचारः— सेना पर्वतमधिवसति" इस इतने लेखके स्थानको परिवर्तन करते हुये ऐसा पाठ होना चाहिये "साधन व्यभिचारः पुरुषव्यभिचार—यहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति ॥ कारकव्यभिचारः— सेना पर्वतमधिवसति ॥ कालव्यभिचारः इत्यादि" क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचार निवृत्तिपरः" ऐसी परिभाषा 'शब्दनय' की दी है । इसके 'आदि' शब्दमें कारकव्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार गर्भित हैं ।

उक्त शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा, पश्चात् संख्याव्यभिचार को दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड़ कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार को ग्रहण करना, पश्चात् "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड़ कर फिर साधनव्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना। "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पड़ता है क्योंकि संभव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी संमिलित हों जैसा कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७, ६८ में "आदि" शब्द करि कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए "एवमादयोः व्यभिचारा अयुक्ताः" (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त हैं) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ६७, ६८ में लिंगसंख्या साधनादि" वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, साधनव्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और "आदि" शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे 'आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी हैं वे सर्व अयुक्त हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२, २७३ में "कालकारक लिंगसंख्यासाधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नयः" यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्त्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है॥ पं० गजाधरजी ने २७२, २७३ उक्त पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ठ ४८३ से ४८८ तक)॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार, "साधनव्यभिचार जाकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार, उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८४, ८५ में पं० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनने कारकव्यभिचारका कथन छोड़दिया है। पृष्ठ ४८० से पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग संख्या के व्यभिचारों के पीछे 'साधनव्यभिचार जाकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते हैं फिर कालव्यभिचार इत्यादिका। हमने पाठ तो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार' को 'साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें॥ विचार में आया वही लिखा आगे पाठक महोदय भूल चूक सम्हार लेवें॥

[२]एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति[१] ॥

एहि T मन्ये T रथेन ‖ यास्यसि T = (तू) आउ, (मैं) मानता हूं वा समझता हूं, (तू) रथ (चढ़) करि जायगा, (सो)
न*हि * यास्यसि T यातः ‖ ते ‖ पिता ‖ इति = (तू) नहीं जायगा, इस प्रकार (=इति) तेरा पिता (चला) गया ॥

(सभ्य शब्दों में उक्त वाक्य का अनुवाद ऐसे होगा कि) तुम आओ मैं मानता हूं वा समझता हूं तुम रथ चढ़ करि जावोगे सो नहीं जावोगे, इस प्रकार (तो) तुम्हारे पिता चले गये ॥ उपर्युक्त संस्कृतवाक्य में और तदानुसार शब्दार्थ हिंदी अनुवाद में भी 'एमि' उत्तम पुरुष एक वचन के स्थान में "एहि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है। "मन्यसे" मध्यम पुरुष एक वचन के स्थान में "मन्ये" उत्तम पुरुष एकवचन लाया गया है और "यास्यामि" उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान में "यास्यसि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है ॥ (मैं) के स्थान में "तू" और "तू" के स्थान में "मैं" फिर 'मैं' के स्थान में 'तू' लाया गया है हिन्दी अनुवाद में इन तीनों को मिलाके ऐसे साधन वा पुरुष व्यभिचार हुआ।

(१) इस वाक्य का पाठ सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियों में, तत्त्वार्थराजवार्तिक तथा राजवार्तिक दोनों अनुवादों में एकसा है ॥ श्लो क-वार्तिक में एक 'स' अधिक है और 'पितेति' वाक्य की संधि नहीं की 'पिता इति' ऐसे रूप में है अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि स यातस्ते पिता इति" ऐसा पाठ है ॥ पं० जयचन्द जी की वचनिकामें "न" अधिक है और 'इति' नहीं है, अर्थात् "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि, न यातस्ते पिता" है ॥

(२) "एहि" अदादि द्वितीय गण के इ धा ई गमन अर्थवाली धातु से लोट लकार वा आज्ञाद्योतक क्रिया के मध्यम पुरुषका एकवचन रूप है इसका अर्थ "एहि कहिये तू आउ" (=तू आउ) पद्मा० दूनीवाले पृष्ठ २६५ "एहि त्वमागच्छ" (=तू आउ) सर्वार्थ प्र० स्वकरण पृ० १३८ टिप्पणी, द्वितीय आवृत्ति पृ० ८० टिप्पणी ॥ "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता । अर्थात् आओ मैं ऐसा समझता हूं कि तुम रथसे आओगे परन्तु अब न जाओगे तुम्हारा पिता चलागया। इस वाक्य के शब्दोंका अर्थ तो यह होता है। पं०गजाधरलालजी अनूदित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृ० ४७८ ॥अब हमको यह बात निश्चय करनाहै कि "एहि"वाक्य का अर्थ कौनसा ठीक है अर्थात् 'तू आउ' अथवा तू 'जाओ'॥

( ) इ भ्वादि प्रथम गण परस्मैपद और आत्मने पद का धातु 'जाना' अर्थ में आता है ॥ इ की गुणसंज्ञा अ है अ विकरण जोड़कर = अय् + अ बनता है पश्चात् ति-ते अन्य पुरुष, एकवचन, वर्तमान कालके परस्मैपद वा आत्मनेपदका प्रत्यय क्रमसे लगाकर अयति, अयते = जाता है वह ।

( ) इ और ई भ्वादि प्रथम, अदादि द्वितीय, दिवादि चतुर्थ गणों में भिन्न भिन्न अर्थ लिये हुये आते हैं उन सबों को छोड़ कर यहां पर इ-ई अदादिगण के जाना वा गमन अर्थ में आये हैं (वैद्यकोश १५,१७ पृ०)अङ्ग के अन्त का स्वर और अङ्ग के उपांतकहस्व स्वरके पितलंबक्

हिंदी अनुवाद में यदि उक्त पुरुष दूषण हम दूर करदें तो भी हंसीका प्रसंग बना रहैगा जैसे मैं जाताहूं तू समझता है "मैंरथ चढ़ करि जाऊंगा" तू रथ चढ़ करि नहीं जावेगा, तेरा बाप (दादा भी कभी) ऐसे गया है ? भावार्थ जो महत्व का कार्य तेरे बाप दादा से नहीं हुआ है तुझ से कैसे हो सकता है कदापि नहीं हो सक्ता है ॥ परन्तु संस्कृत में यदि इस शब्द नयके अनुकूल पुरुष दूषण दूर कर के "एमि मन्यसे रथेन यास्यामि नहि यास्यसि यातस्ते पितेति" करदें तो मज़ास जाता रहेगा और सीधा साधारण संस्कृत वाक्य का यह अर्थ हो जावेगा ॥ जैसे किसी बहुत बूढ़े मनुष्य को कोई बच्चा मिला और दोनों को किसी बरात में जाना है तो उक्त वृद्ध पुरुष कहता है। (बच्चे तू मेरे साथ चलता है तो चल) 'मैं (तो) जाता हूं तू समझता है 'मैं रथ चढ़ करि जाऊंगा' (सो अब) तू (रथ चढ़ करि) नहीं जावेगा। (क्योंकि तू तो अभी ग्राम से आया है, घर भी नहीं पहुंचा है इससे तुझको जानकारी नहीं है कि जो रथ वस्तुतः तेरे घरमें था उस पर तो) तेरा पिता (चढ़ कर बरात को)

(मि-सि ति। अम्-स्-त्। आनि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ऐ-आवहै-आम है। आत्मनेपदी) प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञक आदेश हो जाता है परन्तु शेष ङित् संज्ञक प्रत्यय वस्-वस्-तस्.....हि-तम्-ताम्-त-अन्तु इत्यादि के पहिले गुण संज्ञा नहीं होती (धातुचन्द्रिका पृष्ठ७२)इसलिये इ—ई धातुओं का मि,पित् संज्ञक प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञा होकर ए—ऐ ऐसा रूप बना। अदादि द्वितीय गण के धातु के साथ कोई विकरण नहीं लगता है इसलिये पुरुषगत प्रत्यय धातुओं के साथ तत्क्षण लगाये जाते हैं॥ एमि—इ धातु का और एमि (ही) ई धातु का उत्तम पुरुष एक वचन, परस्मैपद, वर्तमान काल का क्रिया का रूप हुआ, जिस 'एमि' का अर्थ है (मैं) जाता हूं क्योंकि जब हम एहि के स्थान में एमि करेंगे तब यह अर्थ काम देगा ॥ हि प्रत्यय ङित् संज्ञक है और वह मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद, लोट वा आज्ञा द्योतक क्रिया का है इसके पहिले अङ्ग के अंत के स्वर और अङ्ग के उपान्तक ह्रस्व स्वर का गुण संज्ञक आदेश नहीं होता है इसलिये इ+हि, ई+हि=इहि=तू आउ, ई+हि=तू आउ रूप बने और अर्थ हुआ ॥ (देखो धातु चन्द्रिका पृष्ठ ७६) ॥ अब प्रश्न यह है कि इन इहि-ईहि रूपों का एहि कैसे बना और क्या अर्थ होगा ॥ आङ् उपसर्ग के कई अर्थ होते हुये जब आङ् (=आ) उन क्रियाओं के पहिले आता है जो हलन-चलन-ग्रहण करने इत्यादि अर्थों की द्योतक होती हैं तो उनका अर्थ विपरीति हो जाता है जैसे गम्=जाना, आगम्=आना ॥ इसी प्रकार आ+इ, आ+ई का आद्गुणः सू० (६-१-८७) से ए-ए रूप बने क्योंकि इ-ई की गुण संज्ञा ए है इसमें उपर्युक्त ही प्रत्यय लगाने से एहि-एहि रूप बने। इसलिये 'तू आउ' यह अर्थ हुआ। इससे हमने अनुवाद में तू जाओ अर्थ न लिखकर एहि का अर्थ तू आउ अथवा तुम आओ ऐसा किया है ॥

चला गया है ॥ श्रीयुत श्रीचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ वह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और वह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से वह भले ही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी "एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल "मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में 'मन्यसे' मध्यम पुरुष कर दिया जावै और 'यास्यसि' मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि' उत्तम पुरुष करदिया जावै तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजावैगा और उपहास वा परिहास का प्रसंग जाता रहैगा, परन्तु शब्द नय से जिसको हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते हैं। "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यते रुत्तमः एकवच्च" ३।४।१०६ ॥ =प्रहासे ३। च*मन्य--उपपदे ३॥ धातोः ५। (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः १। (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यसि की) मन्यतेः ५ उत्तमः १। एकवत्* च* ॥

प्रहासे ३। च *	= और (= च) प्रहास वा हंसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो।
मन्योपपदे ३। धातो ५। मध्यमः १।	= मन्य--उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = ऐसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात् जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत वा विषयभूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।
मन्यतेः ५ उत्तमः १	= और मन्य धातु से (=मन्यतेः--यह मन्यति की पंचमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।
एकवत्* च*	= वह एकवचन भी (=च) हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे खाना जाना चले जानादत्यादि के सम्बन्धमें हंसी करना हो और मन्य धातु उक्त विषयभूत क्रियाके पास आवै, वा पहिले आवै अथवा प्रथम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, और उक्तमन्य

धातु के पश्चात् प्रथम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा, वह प्रत्यय एक वचन भी (=च) होगा ॥ जैसेः— "एवं मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति। नहि भोक्ष्यसे। मुक्तः सोऽतिथिभिः" इस वाक्यमें 'भुज्' धातु है जिसका अर्थ 'भक्षण करना' है इस 'खाना' क्रिया के संबन्ध में किसी प्राणीसे परिहास वा हंसी करना है और उक्त वाक्य में मन्य (मन्=समझना, दिवादिगणका य विकरण है) धातु विषयभूत वा प्रकरणमें लाई गई 'भुज्' धातुसे पहिले आई है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस 'भुज्' धातु के पश्चात् स्यसे (=भुज्+स्यसे=भोक्+स्यसे=भोक्ष्यसे) मध्यम पुरुषका प्रत्यय लाया गया है और 'मन्य' धातु जो वाक्यका उपपद (=अप्रधान, गौण, अनुक्त) है उसके पीछे इ (=मन्+य, विकरण+इ(=न्ये) उत्तम पुरुष एक वचन प्रथम लाया गया है। बस यही इस सूत्रका ज्योंका त्यों अर्थ और आशय है ॥ अब इसमें प्रहास यह हुआ मान लीजिये कि एक वृद्ध पुरुष के यहां भात अथवा भी नहीं बना है और एक न्यून वयस्कके की भात खाने की बहुतही इच्छा है परस्पर उनमें उपहास भी होता रहता है तो वह वृद्धका पुरुष हंसी में कहता है तू जैसा समझता है "मैं भात खाऊंगा" तू नहीं खायगा, वह भात तो महमानों द्वारा खा लिया गया" यहां भात खीर इत्यादि कुछ भी विद्यमान नहीं है न था केवल प्रहास और उपहास ही है ॥ ध्यान रहे कि यह हंसीरूप अर्थ जब तक ही संस्कृत वाक्य का रहेगा तब तक हम शब्दनयके प्रतिकूल 'मन्ये' धातुमें मध्यम पुरुष के स्थानमें जो उत्तम पुरुष है और भोक्ष्यसे उत्तम पुरुषके स्थान में मध्यम पुरुष है बना रहने दें यदि शब्दनयके अनुसार हम उक्त उदाहरण को वैसा करदें एवं मन्यसे ओदनं भक्ष्ये इति, नाहं भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः अर्थात् मन्ये उत्तम पुरुषके स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष करदें और भोक्ष्यसे मध्यम पुरुष के स्थान में भोक्ष्ये उत्तम पुरुष करदें तो हंसीका विषय जाता रहेगा और उक्त वाक्यका साधा साधा साधारण अर्थ होजावेगा वह अर्थ यह होजावेगा कि उक्त उदाहरणमें जब उस पुरुषके यहां भात यथार्थमें हुआ था और महमान उस भातको सबका सब वास्तविकमें खागये तो यह सच्ची बात बिना किसी हंसीके कह सका है कि जैसा तू मानता है 'मैं भात खाऊंगा; नहीं खायगा, वह (भात तो) महमान खागये ॥ उक्त सूत्र अन्य प्रकारसे ऐसे भी है "प्रहासे मन्य धातौ युष्मदन्यतरस्मदेकवच्च" अर्थात् प्रहास (अर्थे) में मन्यवाच (मन्य धातु जिसके वाचन वा पठनमें हो ऐसे) धातुसे युष्मद् (मध्यम पुरुष) हो और मन्य धातुसे अस्मद् (उत्तम पुरुष) हो और वह (अस्मद्) एक वचन भी हो ॥

कालव्यभिचारः—विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता । भाविकृत्यमासीदिति ॥

कालव्यभिचारः ;। विश्वदृश्वा ;।	=कालव्यभिचार (जैसे) समस्त लोक को जिसने देखलिया है वा जान लिया है ऐसा
पुत्रः ;। अस्य ;। जनिताT	=पुत्र इसके उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात यहां समस्त ब्रह्मांडका देख लेना भविष्यत् कालका कार्य है उसका भूतकालमें होना मान लिया गया है अतः यहां भविष्यत्काल में होनेवाले कार्यके स्थानमें भूतकालमें हुआ कार्य कहदेना कालव्यभिचार है ॥
भावि-कृत्यम् ;॥। आसीतT इति॥	=होनहार (=भाविन्) कार्य (कृत्यम्) हुआ ऐसे यहां होनहार कार्य इतनावाक्य आगामी कालका वाचक है और आसीत (=हुआ) यह वाक्य अतीतकालका वाचक है इसलिये यहां अनागत कालमें वा आगे होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति वा क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम उक्त प्रहासका वाक्यों द्वारा प्रचार वा व्यवहार देखते हैं इसलिये व्यवहारनयसे भी 'यहि मन्ये रथेन' इत्यादि वाक्य ठीक है। अब हम शब्दनयकी प्रधानता मानकर और व्यवहारको गौण करके यह दिखाना चाहते हैं कि यदि युष्मद् मध्यम पुरुषके स्थानमें अस्मद् उत्तम पुरुष करदिया जावे और अस्मद् उत्तम पुरुषके स्थानमें युष्मद् मध्यम पुरुष करदिया जावे तो वह शब्दनयसे ठीक न होगा क्योंकि साधनका भेद रहते भी पदार्थोंको एक माना जावेगा तो 'अहं पचामि त्वं पचसि' (मैं पकाता हूं, तू पकाता है) यहांपर भी युष्मद् अस्मद् रूप साधनोंका भेद है इसलिये यहांपर भी एक मानना पड़ेगा फिर भिन्न भिन्न रूपसे जो दो प्रयोग होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो वैयाकरणोंने समाधान दिया है वह अयुक्त है ॥ (देखो तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ ७३)

(१) इस वाक्यमें विश्वदृश्वा जो पुत्रका विशेषण है इसके द्वारा भूतकाल प्रगट किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत्, अनद्यतनभूत क्रिया द्वारा अतीतकाल प्रगट किया है ॥ दृश्वा शब्द दृश्वन्का प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है ॥

(२)जनिता—जन्—उत्पन्न होना, दिवादिगण, आत्मनेपदी, अकर्मक, सेट् धातु है; जन+इ और ता लुट् भविष्यत् काल प्रथम पुरुष, एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे 'जनिता' (=उत्पन्न होगा) यह बना ॥ (३) आसीत्—अस् अदादि द्वितीयगण, अकर्मक, परस्मैपदी, सेट् धातु 'होना' अर्थ में यहां आया है अनद्यतनभूत कालकी क्रियामें 'अ' जोड़ा 'ई' आगम आया, फिर 'त्' प्रथम पुरुष, एक वचन, उक्त भूतकालका परस्मैपद प्रत्यय लगाने से (अ+अस्+ई+त्) = आसीत् (= हुआ) बना ॥

काल व्यभिचारके दोनों उदाहरण व्याकरण और व्यवहारनय से ठीकहैं परंतु शब्दनयसे दूषित हैं जैसाकि तत्त्वार्थ श्लोक

ये ;। हि॰ वैयाकरणाः व्यवहारनय-अनुरोधेन ;॥। = ये व्याकरणवाले व्यवहारनयके अनुसरणमें (पाणिनीय अष्टाध्यायी ३-४-१)
"धातुसंबन्धे ;। प्रत्ययाः ;।" इति सूत्रम् ;॥। आरभ्य॰ = ऐसे सूत्रको कि "धात्वर्थ संबन्ध में अथवाकालोक्त भी प्रत्यय हो" आरम्भकरि अर्थात् धात्वर्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर

विश्वम्दृष्टवानस्य ;। पुत्रः ;। जनिता T भाविकृत्यम् ;॥। आसीत् T = विश्वको जिसने देख लिया है ऐसा इसके पुत्र उत्पन्न होगा; होनहार कार्य हुआ
इति अत्र कालभेदे ;। अपि एकपदार्थम् ;। आहुः ;। यो ;। विश्वं ;॥ = इस प्रकार यहां काल भेद (होने) पर भी एक पदार्थ को मानतेहैं। जो विश्व को
दृक्ष्यति T सः ;। अपि पुत्रः ;। जनिता T इति भविष्यत्कालेन = देखेगा सो ही (=अपि) पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा अनागत कालकरि
अतीतकालस्य ;। अभेदः ;। अभिमतः ;। तथा॰ = अतीत कालका अभेद माना गया है और (=तथा)
व्यवहार-दर्शनात् ;॥। इति॰ = लोक व्यवहारमें ऐसा देखना होता है अर्थात् संसारमें ऐसा देखा जाता है भावार्थ धात्वार्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं

ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता, भाविकृत्यमासीत्' यहां पर जो भविष्यत् कालके कार्य को भूतकालमें मानने से कालका भेद रहने पर भी भविष्यत् और अतीतकाल को वैयाकरण एक मानते है और दोनों कालोंके अभेद मानने में यह हेतु देते हैं कि संसार में वैसा व्यवहार होता है। (परंतु)

तत् ;॥। न॰ श्रेयम् ;॥। (तन्न श्रेयः) = वह (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांत) अच्छा नहीं है
(पाठान्तरम्-तत्र॰-यः ;।) = [अन्य पाठ-तहां जो (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांतहै सो]
परीक्षायाम् ;॥। मूलक्षतेः ;॥। कालभेदे ;। अपि अर्थस्य ;। = परीक्षा (करने)से जड़से जाता रहता है। क्योंकि कालभेद रहने पर भी (भिन्न २) पदार्थका
अभेदे ;। अति प्रसंगात् ;। = एक माननेमें नियमके अतिविरुद्ध होजाता है (=अतिप्रसंगात्-(देखो वैद्यकोश पृ॰ १०) कि
रावणशंखचक्रवर्तिनोः ;। अपि॰ = रावण और शंखचक्रवर्तीके भी (जो यथा संख्य और अनुक्रम से)
अतीत-अनागतकालयोः ;। एकत्व-आपत्तेः ;॥। = अतीत और भविष्यत् कालमें (हुआ और होने वाला है दोनोंमें) एकता आपड़ती है अर्थात् दोनोंमें एकता हुई जाती है अथवा दोनों एक हुए जाते हैं

वार्तिक के पृष्ठ २७२, २७३ से सिद्ध है जिसका शब्दशः अनुवाद हम टिप्पणी में देते हैं

आसीत्Tरावण:¦।राजा¦।शंखचक्रवर्ती¦।भावेष्यतिTइति* = (प्रश्न) रावण राजा हो चुका शंखचक्रवर्ती भविष्यत् कालमें होगा ऐसे
शब्दयो: ¦। भिन्नविषयत्वात् ¦।।। एकार्थता¦।। = दोनों (रावण और शंख) शब्दोंके भिन्न भिन्न विषय होने से एक पदार्थपनासे
न* इति* चेत्* =रहित (=न) है ऐसा ही (=इति) यदि (=चेत्) माने तो अर्थात् रावण और शंखको
भिन्न २ मानना चाहिये एक मानना बाधित है ।।
तत् ¦।।। एव* =(उत्तर) तैसेही (=तत् एव)
विश्वदृश्वा ¦।। जनिता T इति* =विश्वदृश्वा (जो होचुका) और जनिता (जो आगे होगा) ऐसे
अनयो: ¦। =दोनों (शब्द जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं एकार्थताकप - एक अभिप्राय वाले)
आप* मा* भूत् T =भी (=अपि) नहीं (=मा) हो (सक) ते (=भूत्)
विश्वं ¦।। दृष्टवान् ¦। =(विश्वदृश्वा वाक्यका अर्थ) विश्वको आगामी कालमे देखने वाला (=विश्वं दृष्टवान्)
न* नहि* =ऐसा (अर्थ) कदापि नहीं होसका है(=नहि)वा किसी प्रकारसे नहीं होसका है(=नहि)।।
विश्वदृश्वित्व¦—इति*शब्दस्य¦।य:¦।अर्थ:¦।अतीतकालस्य¦। =विश्वदृश्वित्व ऐसे शब्दका जो अर्थ है सो अतीतकालका वाचक है
जनिता ¦।। इति* शब्दस्य ¦। अनागतकाल: ¦। =जनिता ऐसे शब्दका (अर्थ) अनागतकाल है (दोनों शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ है)
पुत्रस्य ¦। भाविन: ¦। अतीतत्व-विरोधात् ¦। =अत: भविष्यत्कालका होनेवाला (=भाविन:) पुत्र अतीतकालमें हुआ (यह) विरोध है
अतीतकालस्य¦। अपि* अनागतत्व-आरोपात् ¦। =(प्रश्न) भूतकालके भी भविष्यत्कालपना आरोप करनेसे
(भविष्यत्कालमें होने वाला पुत्ररूप कार्य अतीतकालमें हुआ दोनोंके)
एकार्थता ¦।। अभिप्रेता ¦" इ*—* चेत्* =एक पदार्थपना है यदि (=चेत्) ऐसा मान लिया जाय (=अभिप्रेता) तो । (उत्तर)
तदि* न* परमार्थ:* कालभेदे ¦ अपि* =उस (उपचार की) अवस्था में (=तहि) कालभेद रहने पर भी यथार्थत: (=परमार्थत:)
अभिन्न-अर्थ-अवस्था ¦।। =एक पदार्थरूप (=अभिन्नार्थ) वा अभेदरूप अवस्था नहीं (मानी जा सकती) अर्थात्
उपचारसे कालका अभेद मानकर भविष्यत् कालके कार्य को भूत कालका कार्य मान
भी लिया जाय तब भी यह पदार्थ रूपसे एक नहीं माना जासका औपचारिक ही रहैगा।

?उपग्रह व्यभिचारः $\frac{1}{1}$	= उपग्रह दूषण अथवा उपसर्ग व्यभिचारः-(जैसे)
सन्तिष्ठते T	= संतिष्ठते (= वह अपनी प्रतिज्ञानुसार चलता है वा प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है)
प्रतिष्ठते T	= प्रतिष्ठते (= वह चल देता है अथवा वह गमन करता है अर्थात् 'स्था'

(१) हमको इस टिप्पणी में यह दिखलाना है कि यहाँ पर 'उपग्रह' शब्द का अर्थ 'उपसर्ग' कैसे हुआ। उपग्रह शब्द के सात अर्थ हैं (क) कारागार, कारागृह, बन्धनागार, बन्दीगृह, बन्धनालय, (ख) बन्दीगृह में डालना (ग) बन्दीगृह में रहने वाला, बन्धुआ (घ) दया (ङ) धूमकेतुग्रह, राहुकेतुग्रह, (देखो पद्मबन्धकोश ७६, वैद्यकोश १३६ पृ०) (च) सहायता (छ) किसी वस्तु को किसी वस्तुके साथ जोड़ना वा लगाना (वैद्यकोश १३६ पृ०)उपग्रह शब्द इस अन्तके अर्थमें मेरी समझमें लिया गया है अर्थात यहाँ एक वस्तु जो उपसर्ग है उसको दूसरी वस्तु जो 'स्था' धातु है उसके साथ जोड़ना अथवा लगाना। क्योंकि निपातोंमेंसे प्र—परा—अप—सम्—अव—अनु—निस्—निर्—दुस्—दुर्—वि—आङ्—नि—अधि—अपि—अति—सु—उत्—अभि—प्रति—परि—उप बारह निपात उपसर्ग जब ही कहलाते हैं जब किसी क्रिया के साथ आवें नहीं तो इन निपातों को उपसर्ग कदापि नहीं कह सकते इसलिये इस समानता के हेतु से "उपग्रह" का अर्थ 'उपसर्ग' मान लिया है वा ले लिया है, यही अर्थ निम्न उल्लेखित वाक्योंसे निकला है, "सो उपग्रह कहिये उपसर्ग (व्यभिचार) है "पं० पन्नालाल दूनी वाले राजवार्तिक पृ० २६४॥ ऐसे उपसर्ग के चलते आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद वचन भया। बहुरि परस्मैपदी का आत्मनेपदी भया। ऐसे उपग्रह व्यभिचार है" 'पं० जयचन्दजि० पृष्ठ २०४ "बहुरि आत्मनेपदीकूं परस्मैपद भया ऐसे ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय न्याय माने हैं तथापि शब्द नय का यही विषय है" अर्थ प्रकाशिका पृ० ८५ (भावार्थ दूसरे तीसरे वाक्य का यह है कि व्यवहार नय उपसर्ग व्यभिचार को न्याय मानती है परंतु शब्द नय उसको अन्याय ठहराता है परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आया कि संस्थानुवादित राजवार्तिक पृष्ठ ४७६ में " उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मने पद है "ऐसा अर्थ उपग्रह शब्द का कहाँ से लिया है और कैसे हो गया॥

(२) ष्ठाः (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपदोपग्रहः। समवप्रविभ्यः स्थः अष्टाध्यायी १-३-२२। इति व्यभिचार सूत्रम्॥ संव्यवप्रात् स्थः। जैनेन्द्र व्याकरणम् १ अध्यायः २ पादः २१तम सूत्रम्॥ इति व्यभिचार सूत्रम्॥

ष्ठाः ? गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपद-उपग्रहः=स्था धातु से गमन निवृत्ति(=ठहरना) अर्थ में परस्मैपदका लगाना होता है।
सम्-अव—प्र—विभ्यः ? स्थाः (आत्मने पदम्) =(परन्तु)—सम्—अव—प्र—वि पूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद।

धातुभ्वादि प्रथमगण (यहां पर) परस्मैपदका है । इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर 'तिष्ठति' बन जाता है ॥

अष्टाध्यायी ३॥ १ - ३—२२ इति' व्यभिचार-सूत्रम् ३॥

=अष्टाध्यायी के अध्याय प्रथम, पादतीन, सूत्र बाईसवें से हो ऐसे (यह) =व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को उलटने वाला सूत्र है भावार्थ 'स्था' धातु से नियमकरि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र ने उक्त धातु के प्रथम सम्—अव—प्र—वि उपसर्ग लाकर पलट दिया और आत्मने पद का प्रयोग नियुक्त किया ॥ (इसही प्रकार)

सम्—वि—अव—प्रात् " स्थः ३ (आत्मने पदम्) जैनेन्द्र व्याकरणम् १—२—२१ इति व्यभिचार-सूत्रम् ॥

=सम—वि—अव प्र पूर्वक 'स्था' धातुके परे आत्मने पद =जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय, द्वितीय पाद, इक्कीसवां सूत्र से हो =ऐसे यह (भी) नियत नियम को पलटने वाला (=व्यभिचाररूप) सूत्र है

(१) "संतिष्ठते प्रतिष्ठते, विरमत्युपरमत्युपग्रह व्यभिचारः" (राजवार्तिक पृष्ठ ६८)=उपग्रह व्यभिचारः संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति बस यही पाठ सर्वार्थसिद्धिमें है केवल अन्तमें 'इति' अधिक है सो पाद पूरण के लिये है इसका कोई अर्थ विशेष रूप से नहीं है इसका अर्थ (पं० पन्नालाल दूनी के अनुवाद पृष्ठ २६४ में ऐसे हैं कि 'भर संतिष्ठते की स्थान में प्रतिष्ठते कहै तथा विरमति के स्थान में उपरमति कहै सो उपग्रह कहिये उपसर्ग व्यभिचार है ॥ इस अनुवाद से उनका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ बोलने में कोई मनुष्य जोड़ता है वा लगाता है सो ठीक नहीं लगाता है अशुद्ध उपसर्ग लाता है अर्थात् जहां सम् उपसर्ग लाना चाहिये वहां प्र उपसर्ग लगाता है और रम् धातु के साथ भी जहां वि उपसर्ग लाना चाहिये वहां उप उपसर्ग लाता है ऐसे एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाने के कारण उपसर्ग व्यभिचार हुआ वा उपसर्ग सम्बन्धीय दूषण हुआ, कोई किसी प्रकार का उल्लेख उक्त अनुवादक ने परस्मैपद और आत्मनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया । आगे पाठकगण विचारलें ॥

इसी प्रकार 'संतिष्ठते अवतिष्ठते इति' (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७३) वाक्य का अनुवाद पं० गजाधर जी ने पृष्ठ ४८७ में यह किया है कि "संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है ॥ 'संतिष्ठेतावतिष्ठेतेत्याद्युपग्रहभेदने' तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक २७१

विरमत्युपरमतीति ॥

'स्था धातु के ग्यारहअर्थों में से यहां इस 'तिष्ठति' के अर्थ वह ठहरता है वा वह रहता है केवल दो लेते हैं । सम् और प्र उपसर्गोंके बलसे उस 'तिष्ठति' परस्मैपदका (अष्टाध्यायी १-३-१२ वां सूत्र से) आत्मने पद होकर सम्—तिष्ठते और प्र—तिष्ठते, सन्तिष्ठते और प्रतिष्ठते दोनों रूप क्रम से बन गये । ऐसे सम् और प्र दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद 'स्था' धातु का आत्मने पदी होकर उक्त धातु व्यभिचरित(= नियत नियमसे भ्रष्ट) हो गया । अतः इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं । ऐसे ही

विरमति T उपरमति T इति * = वह ठहरता है (वा विश्राम करता है) । वह (इंद्रियों के विषयों से) हटाता है अर्थात् रम् भ्वादि गण का आत्मने पदी धातु है उसमें अ विकरण और ते आत्मनेपदी वर्तमान काल का प्रत्यय लगाने से रमते (= वह रमता है) बनता है परन्तु वि और उप लगाने से परस्मैपद हो जाता है ।

संतिष्ठेत अवतिष्ठेत इत्यादि उपग्रह भेदने ॥ = संतिष्ठेत (=वचन के अनुसार चले) अवतिष्ठेत (=वह दृढ़ रहे) इत्यादिक = उपग्रह (व्यभिचार) के भेद हैं । अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाना भी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे' दो अर्थ उपग्रह व्यभिचार के हुए ।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातों के सम्बन्ध में भी हमारी वही समालोचना है जिसको कि हमने संतिष्ठते प्रतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२६, ५३० में दी है ॥ विरमति उपरमति वाक्य श्लोक वार्तिक में हमको कहा पर नहीं मिले अतः "श्लोक वार्तिक कार भी 'प्रतिष्ठते स्थान पर 'अवतिष्ठते कहना और विरमति जगह पर उपरमति, कहना उपग्रह व्यभिचार मानते हैं" संस्था के राज० पृष्ठ ४८० की यह टिप्पणी ठीक नहीं है (देखो श्लोक वा० पृष्ठ २७३) जहां 'तथा संतिष्ठते अवतिष्ठते इति" यह उल्लेख है जिसका अनुवाद-अनुवादक महाशय ने स्वयं पृष्ठ ४८७ पर "तथा संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है" ऐसा किया है ॥

(२) रमुक्रीडायामित्यात्मनेपदेोपग्रहः. ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च ॥ अष्टाध्यायी प्रथमाध्याये तृतीयापादे ८२ ८४ सूत्रे इति व्यभिचारसूत्रे ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः ।१।३।८३॥ उपात् ।१।३।८६ जैनेन्द्र व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि ॥ देवदत्तमुपरमति ॥

रमु-क्रीडायाम् इति अत्र आत्मनेपद-उपग्रहः = रम् (भ्वादि प्रथमगण के) धातु से क्रीड़ा (अर्थ) में यहां आत्मनेपद का जोड़ना होता है

वि—आङ्—परिभ्यः च उपात् रमः = (परन्तु) वि—आङ्—परि और (=च) उप (उपसर्गों) से आगे रम् धातु रहने पर

एवम्प्रकारं व्यवहारनयमन्याय्यं मन्यते। अन्यार्थस्यार्थेन सम्बन्धाभावात्।

एवम्*प्रकारम् $\frac{1}{1}$ = इसप्रकार (शब्द नय वा शब्द नय का अनुयायी वा शब्द नयका मानने वाला,)
व्यवहार नयम् $\frac{2}{1}$ अन्यायम् $\frac{2}{1}$ मन्यते T = व्यवहारनयको अन्याय वा अनुचित वा न्यायबहिर्भूत मानता है
अन्य-अर्थस्य $\frac{6}{1}$ अन्य-अर्थन $\frac{3}{1}$ सम्बंध-अभावात् $\frac{5}{1}$ = क्योंकि भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ से संयोग वा मेल नहीं हो सकता है

[यह सिद्धांत सिद्धि बात है] ॥ भावार्थ उक्त छहो व्यभिचार और इस प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयतो ठीक समझता है उस नय की अपेक्षा से वैसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परंतु शब्द नय की प्रधानता से वे प्रयोग ठीक नहीं है शब्द नय उनको अन्याय वा अयुक्तरूप मानता है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बंध हो जाय तो घट का पट हो जाय पट का गृह हो जाय वा मठ हो जाय इत्यादि।

[परस्मैपदम्] = परस्मैपद हो [८३, ८४ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]
अष्टाध्यायी प्रथम—अध्याये तृतीय पादे ८३।८४ = अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाद में ८३ वां ८४ वां सूत्र है
इति व्यभिचार सूत्रे = ऐसे दोनों सूत्र [=सूत्रे] व्यभिचार रूप हैं [=नियत नियम के विरोधक हैं]
वि-आङः पस्य रमः। उपात् (रमः परस्मैपदम्) = वि—आङ्—परि (प) उप (उपसर्गों) पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद हो
जैनेन्द्र व्याकरण प्रथमाध्याये तृतीय पादे। ६५ = जैनेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाद में ६५ वां
१६। इति व्यभिचार सूत्रेऽपि = ९६ वां (सूत्र) हैं। ऐसे दोनों सूत्र भी (=सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं॥
देवदत्तम् उपरमति = देवदत्त को हटाता है अर्थात् देवदत्त को (विषयों से वा किसी ऐसी ही वस्तु से) रोकता है॥ यहां परस्मैपद क्रिया हेतु अर्थ में है। उपरमति के सदृश अर्थ देती है। यह एक प्रकार का क्रिया का उदाहरण है जिसमें हेतुद्योतक प्रत्ययणिच् (इ का प्रभाव सम्मिलित हो॥

(१) इस "एवम्प्रकारं व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह टिप्पणी इस लिये लिखनी पड़ती है कि सर्वार्थसिद्धि के द्वितीय संस्करण के एवम्प्रकारं व्यवहारनयं न्याय्यं मन्यते' पाठ पर समालोचना करें; यद्यपि प्रथमावृत्ति में 'एवम्प्रकारं व्यवहार नयमन्याय्यं मन्यते' ऐसा पाठ वर्तमान है॥ प० जयचन्दजी ने पृष्ठ २०५ में इस वाक्य की यह वचनिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है तातैं अन्याय माने हैं"=या प्रकार व्यवहारनय है (तिस (व्यवहारनय) को =तातैं) अन्याय माने है (प्रश्न) कौन अन्याय माने है? (उत्तर) शब्दनय वा शब्दनय का अनुयायी प्राणी।

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस बातका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमें पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे है "बहुरि कारकव्यभिचार 'सेनापर्वतमधिवसति' इहां सेना पर्वतके समीप बसै है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, तहां द्वितीया कही। तातैं कारकव्यभिचार भया। या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातैं अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यतै संबंध होय, तो घटका पट होय जाय पटका महल होय जाय। तातैं जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। इहां कोई कहै। लोक विषै तथा शास्त्र विषै विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तौ आवौ, इहां तो यथार्थस्वरूप विचारये है। औषधी रोगीके इच्छा के अनुसार तौ है नां ही॥

ऊपर के लेख में बाह्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार को और संकेत करने वाला मानकर कह सके है कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य को कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय माने है" हमारे समक्ष रखते है; और कहते है कि पं० जयचंदजीने कारकव्यभिचार अंतमें कहा है और पं० सदासुखजीने 'उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अंतमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते है कि भाव भी ठीक है इस हेतु से कि 'कारक व्यभिचार को और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् "सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते' विरमति उपरमति इन वाक्यों को दोनरूप कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल वा अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रयोग व्यवहार में तो आते ही हैं॥

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मैपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका एही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमें उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग, व्यवहारनय न्याय मानते है तौ भी शब्दनयका एही विषय है कि इन सब प्रयोगोंको जो व्यवहार में प्रचलित है व्यभिचरित वा दूषित माने॥ अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त है अन्याय रूप है, आपकी यह धारणा ठीक नहीं है वरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार नयके अनुकूल हैं इनसे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इनको दूषित मानती है॥"

लोकसमयविरोध इति चेत् । विरुध्यताम् । तत्त्वमिह मीमांस्यते न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति ।

लोक-समय-विरोधः ¦। इति* चेत्*	=जगत् वा संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत) ऐसा है तो विरोध आवेगा ? अर्थात जो प्रयोग व्यवहारनय और व्याकरणके अनुकूल हैं परंतु शब्दनयसे वे दूषित हैं उनको यदि दोषरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा। उत्तरमें कहतेहैं कि:-
विरुध्यताम्।T तत्त्वम् ¦।॥ इह* मीमांस्यतेT	=विरोध किया जाउ। इहां तो=यथार्थस्वरूप (तत्त्वम्) विचारा गयाहै परीक्षा किया गयाहै
न* भैषज्यम् ¦।॥ आतुर-इच्छा-अनुवर्ति ¦।॥	=क्योंकि औषधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है

कई कोशोंमें हमको 'प्रकार' 'व्यवहारनय' 'न्याय' (नकि न्याय्य जो त्रिलिंगी है) पुल्लिंग ही मिले बहुत सी टटोल की परंतु नपुंसक लिंगी नहीं मिले (देखो:—प्रकार: अमर कोष वर्ग २३ श्लोक १६२: आप्टे-आङ्गल संस्कृत कोष पृष्ठ २२८: पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ २४८; वैद्यसंस्कृताङ्गल कोष ५५६; नीति=(न्याय) नय: अमरकोष वर्ग ६२ श्लोक ९; इसी सूत्रमें सात आठ स्थानों पर नय शब्द आया; पद्म० पृष्ठ २०८; वैद्य० पृष्ठ ३७०) उक्त वाक्यमें 'प्रकारम्' व्यवहारनयम् (=व्यवहारनयको) दोनों शब्द द्वितीया विभक्ति वा कर्मकारकमें हैं ॥ मन् दिवादि चतुर्थ गणका धातु आत्मने पदी है य् इस गणका विकरण है 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान क्रियाका द्योतक प्रत्यय है अतः मन्यते बना अर्थ मानता है यहां पर कर्तरि प्रयोग है। बस यही तीन विशेष शब्द हैं जिससे वाक्यका अर्थ निकलता है अतः शब्दशः अर्थ हुआ कि "इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको अन्याय मानती है ॥ प्रथम इसके कि हम द्वितीय आवृत्ति के पाठ पर कुछ समालोचना करें इस बातको दिखाना चाहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके चार वाक्योंके अर्थका कैसा घनिष्ठ संबन्ध वा प्रसंग मिलता है "इस प्रकार (शब्दनय) व्यवहारनयको अन्याय मानता है" इसके लगता ही वाक्यमें इस प्रथम वाक्यका हेतु दिया है कि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थकरि संबन्ध नहीं होसक्ता है ॥ तीसरे वाक्य में इस हेतु पर प्रश्न करदिया कि यदि शब्दनय व्यवहारनयको अन्याय मानैगो तो लोक (व्यवहार)के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात व्याकरण) के विरोध होगा क्योंकि उक्तलिंग, संख्या, साधन, कारक, काल और उपसर्गके संबन्धमें जो उदाहरण दिये हैं और उनको शब्दनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही लोक व्यवहारकी अपेक्षासे ठीक हैं उन सबका लोकमें व्यवहार होता है प्रयोग होता है बोलचालमें आते हैं और व्याकरणके नियमोंके अनुकूल हैं ॥ इसके उत्तरमें चौथा वाक्य दिया कि "विरुध्यताम" लोक और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ चिंता नहीं। फिर इस कहनेका भी हेतु दिया कि इस स्थानमें तत्त्व (पदार्थके यथार्थ स्वरूप) का निर्णय है लोक विरुद्ध और व्याकरणशास्त्र वा अन्य शास्त्रके विरुद्ध हुआ करो क्योंकि औषधि चाहे खट्टी हो-मीठी हो-कडवी हो-कषैली इत्यादि हो रोग को दूर करने वाली गुण की

दी जावैगी न कि रोगीकी इच्छाके अनुकूल इसके समर्थनमें देखो पं०जयचंदजीका लेख पिछला पृष्ठ५३३, राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ६८, संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिक पृष्ठ ४८०,४८१, पं०पन्नालालबूजी वाले अनुवादि राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २६२, अब यह समझमें नहीं आता कि "एवम्प्रकारं व्यवहारनय न्याय्यं मन्यते" इस वाक्यका वैसा किस प्रकारका अनुवाद करै कि जो शब्दार्थ हो और विभक्त्यर्थ सहित हो और वृत्तिके उपर्युक्त चार वाक्योंसे संबंध भी कर जाय और साथ ही साथ द्वितीयावृत्तिके संपादक की "जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते···इत्यादि" टिप्पणीके भी अनुकूल होजाय यद्यपि यह टिप्पणी सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करण में नहीं है और वृत्ति पाठमें भी "न्याय्यं" के स्थानमें प्रथम आवृत्तिमें "अन्याय्यं" है ॥

उपर्युक्त वाक्यका शब्दार्थ और विभक्त्यर्थ अनुवाद यह है कि 'इस प्रकार (यह) व्यवहारनयको न्याय वा उचित मानता है" कौन और किस प्रकार व्यवहारनयको न्याय मानता है । वैयाकरण 'सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते, विरमति उपरमति, ऐसे प्रयोगों को जो लोक व्यवहार में भी आते हैं व्याकरण और व्यवहारनयकी अपेक्षा न्याय मानता है यदि यह अर्थ लिया जावे तो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके दो से पांच संख्या तकके वाक्योंका संबंध उपर्युक्त अनुवादसे मेल नहीं खाता है ॥ इस लिये हमारी समझ में प्रथमावृत्तिका पाठ ठीक और शुद्ध है द्वितीय संस्करणमें वर्ण्य 'अन्याय्यम' शब्दके स्थानमें 'न्याय्यम्' कर दिया है ॥ उपर्युक्त पूर्ण टिप्पणी का अनुवाद यह है कि:—

() जलं पततीति वक्तव्ये आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अआपशब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक प्रत्ययोपनिबन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव, बहुत्वस्य जले अन्वयायोगात् । तथापि शब्दानुशासनं शास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचकप्रत्ययसमभिव्याहारः कर्तव्यएवभवति,

जलम् ।। पततिT इतिः वक्तव्ये ।। आपः ।। पतन्तिT इति•	=पानी गिरता है इस प्रकार कहने पर आपः (बहुत से जल) गिरते हैं ऐसा
व्यवहारः ।। जायतेT अत्र• अप् शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक-	=व्यवहार होता है । यहां अप् शब्द के आगे बहुततावाचक
प्रत्यय-उपनिबन्धनं ।। वस्तुतः• निरर्थकम् ।। एव• जले ।।	=प्रत्यय का लगाना यथार्थतः वा यथार्थरूपसे अर्थहीन ही है क्योंकि जलविषे
बहुत्वस्य ।।।। अन्वय-अयोगात् ।। तथापि• शब्दानुशासनं-	=बहुत्वका संबन्ध वा जोड़ अयुक्त है । तौ भी व्याकरण (=शब्द अनुशासन)
शास्त्रमहिम्ना ।। बहुत्ववाचक-प्रत्ययसमभिव्याहारः ।।	=शास्त्र के प्रभावसे बहुवचन वाची प्रत्ययका संबन्ध (अर्थात् प्रयोग)
कर्तव्यः ।। एव• भवति T	=करना ही होता है

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ॥॥ समभिरूढः ॥।	=बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात) समभिरूढ है

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें दी हुई परिभाषा दोनोंका पाठ शब्दशः एक है ॥
सम-अभि-रोहणात्-रोहण (पु०एक पर्वत-पहाड़ (न०) चढ़ना, उगना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ३८६, वैद्यकोश पृष्ठ६१६)में है,यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है ॥

(२) अर्थसमभिरोहणात्— "नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानाअर्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है। (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़कर, उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवां सूत्र "भुवः प्रभवः" =भुवः कर्तुः प्रभवः अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चौदहवां और कर्तुः की तीसवांसूत्रसे ली है
=भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत,से गंगाजी निकलती है। के नीचे निम्न उल्लेखित वार्तिक दी हुई है उसके निमित्तसे 'उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद हुआ ॥ "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकके सूचित करनेमें वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यपन्त (ल्यप्=य, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ १६) अर्थात् वह संबन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमें य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पै) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है ॥ अधिकरणका उदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है ॥
(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमें 'प्रासादम्' कर्मकारकके सूचित करनेमें उसी शब्द प्रासाद को अपादान कारकमें लाये हैं वैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमभिमुखेन रूढः समभिरूढः" विग्रह वाक्यमें समभिरोहण शब्दको कर्मकारकमें नहीं लाये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है ॥
(उत्तर) पूज्यपाद स्वामीने 'नानार्थसमभिरोहणात्'का इसके लगता ही वाक्यमें तात्पर्य दे दिया है। उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सक्ता है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिको (=समभिरोहणम्) वा ग्रहणको (=समभिरोहणम्) उल्लंघनकर (=समतीत्य) वा छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमें प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है ॥ इसलिये 'प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' हो अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमें 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य' के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया ॥

यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः ॥ गौरित्ययं शब्दो वागादिषु अर्थेषु वर्तमानः पशावभिरूढः । अथवा अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः । तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः॥ शब्दभेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्यं भवितव्यम्

यतः* नानार्थान्[1]। सम्-अतीत्य÷एकम्[1]। अर्थम्[1]। आभिमुख्येन [1]। रूढः [1]। समभिरूढः [1]।
=(अर्थात्) जहां (=यतः) अनेक अर्थों को उल्लंघन करि एक अर्थ को (अर्थ में)
=प्रधानता से (=अभिमुख्येन) रूढ हो - प्रसिद्ध हो सो समभिरूढ है ॥
(इसलिये शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे एकही अर्थको जो जाने वा कहे सो समभिरूढनय है)

गौः[1]। इति* अयम्[1]। शब्दः[1]। वाग्-आदिषु[1]। अर्थेषु [1]। वर्तमानः [1]। पशौ [1]। अभिरूढः [1]।
=गो ऐसा यह शब्द वचन (पृथ्वी, वाणी, गमन, तारे, आकाश, हीरा, किरण) आदि
=अर्थोंमें विद्यमान है (तोभी) चोपाये (अर्थ) में अति प्रसिद्ध (=अभि-रूढ) है अर्थात् गो बैलनामा पशुके अर्थ में चलत फिरते सोवते बैठते उठते खाते पीते, अकडते, जगते इत्यादि सब अवस्थाओंमें ग्रहण किया जाता है ॥

अथवा* शब्दप्रयोगः [1]। अर्थगति-
अर्थः [1]। तत्र* एकस्य [1]। अर्थस्य [1]। एकेन [1]। गतार्थत्वात् [1]॥ पर्याय-
शब्दप्रयोगः [1]। अनर्थकः [1]।
=वा शब्दोंका प्रयोग (किया जाता)है सो अर्थज्ञान (=अर्थगति)के वा अर्थप्राप्ति (=अर्थगति)के
=लिये (=अर्थ) है । तहां एक अर्थका एक (शब्दके प्रयोग) से
=आभप्राय सिद्ध होजानेसे (=गतार्थत्वात्-गतार्थेषणासे) (दूसरे) समानार्थ बोधक
=शब्दका अनुष्ठान, वा काममें लाना निष्प्रयोजन है भावार्थ शब्दोंका जो प्रयोग किया जाता है वह अर्थज्ञानके लिये किया जाता है यदि वह अर्थज्ञान एकही शब्दके प्रयोगसे सिद्ध हो जाय तो फिर दूसरे पयाय शब्दका कहना व्यर्थ है

शब्दभेदः[1]। चेत्* अस्ति[T] अर्थभेदेन[1]। अपि* अवश्यम् [1]॥ भवितव्यम् [1]॥
=(प्रश्न) जो (=चेत्) शब्द भेद है तो ? (उत्तर) अर्थभेद (सहित) भी
=अवश्य होना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नोत्तरका तात्पर्य यह है कि यदि यह

(१) समतीत्यः—यह संबंधसूचक भूतकृदन्त है (२) आभिमुख्येन—यह पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होसकता है ॥

इति नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः ॥ इन्दनादिन्द्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येवं सर्वत्र ॥

कहा जाय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होते हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद वहां रहता है उसका उत्तर यह है कि यदि शब्द भेद होगा तो अर्थ भेद भी नियम से होगा क्योंकि जितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है। उक्तंचः—"जित्तिय मित्ता सद्दा तित्तिय मित्ताणि होंति परमत्था" यावन्मात्राः शब्दाः तावन्मात्राः परमार्था भवन्ति जितने शब्द होते हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होते हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ;। समभिरूढः ;। =ऐसे नाना अर्थोंमें से एक अर्थ को प्राप्त होने से (=समभिरोहणात) समभिरूढ है (और अनेक अर्थोंमें से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहने वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरूढनय है ॥ जैसे

इन्दनात् ;॥। इन्द्रः ;। =परम ऐश्वर्यरूप क्रिया करने (के हेतु) से इन्द्र है अर्थात जब परमैश्वर्यरूप क्रिया करै तब इन्द्र है।

शकनात् ;॥। शक्रः ;। पुर-दारणात् ;॥। =समर्थरूप प्रवर्तने से शक्र है, पुर (नगरादि) के भेदन करने से

पुरन्दरः ;। इत्येवम्* सर्वत्र* =पुरन्दर है ॥ इस प्रकार ही सब स्थानोंमें (जाना जाता) है

(ऐसे समभिरूढनय इन अर्थोंमेंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

भावार्थः— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शचीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यका भोक्ता होनेसे इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ हैं। इस रीतिसे पर्यायोंके अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ़ अर्थ को ही समभिरूढ नय विषय करता है यहां पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहे इन्द्र परमैश्वर्यका भोग करै वा न करै किसी भी अवस्थामें हो तब भी वह समभिरूढ नयका विषय है।

(१) दारण शब्द वैद्यकोश पृष्ठ ३३० में नपुंसकलिंगमें दिया है इससे इन्दन, शकन भी भाव द्योतक होने से नपुंसक लिंगमें है।

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः। यथा क्व भवानास्ते। आत्मनीति। कुतः। वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्तिः स्यात्, ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिःस्यात्॥६॥ येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवम्भूतः॥

अथवा* यः। यत्र अभिरूढः। सः। तत्र अभिमुख्येन। आरोहणात्॥ समेति। (सम-एति)
समभिरूढः। यथा*क्व* भवान्। आस्ते? आत्मनि। इति* कुतस्?*
वस्तु-अन्तरे* वृत्ति-अभावात्॥

=अथवा जो जहां (=यत्र) अभिरूढ है वा प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
=प्राप्तहोकरि (=आरोहणात) बसता है (=समेति) वर्तता है (=समेति) रहता है
=(तिससे) समभिरूढ है॥ जैसे कहां आप तिष्ठते हैं? आत्मामें (तिष्ठता हूं)
=ऐसे (समभिरूढ) है। (प्रश्न) क्योंकर (आत्मामें वा निजरूपमें तिष्ठते हो)
=(उत्तर) अन्य वस्तुमें प्रवृत्तिका वा स्थितिका अभावसे अर्थात् भिन्न वस्तुका भिन्न
वस्तुमें ठहरना नहीं होसकता है। प्रधानतासे आत्माका रहना आत्मामें ही है
दूसरे पदार्थोंमें उसका रहना नहीं हो सकता है (और)

यदि* अन्यस्य॥ अन्यत्र* वृत्तिः॥ स्यात्T
ज्ञानादीनाम्। रूपादीनाम्। च*
आकाशे। वृत्तिः॥ स्यात् T
( ) येन। आत्मना। भूतः।
तेन। एव* अध्यवसाययतिT
इति* एवम्भूतः।

=जो (=यदि) अन्य (पदार्थ) का अन्य स्थानविषैं (स्थिति वा प्रवृत्ति वा रहना हो
=तो ज्ञानादिकोंका (जो आत्मगुण हैं) और रूपादिकोंका (जो पुद्गलके गुण हैं)
=आकाशमें प्रवृत्ति वा स्थिति वा प्रवर्तना वा रहना होजाय(सो आकाशमें है नहीं)
=जिस स्वरूपकरि (अर्थात् अर्थ क्रियासे कोई पदार्थ परिणत) हो
=उस ही (स्वरूप अर्थ क्रिया परिणाम) से निश्चय कराता है वा प्रतीति कराता है
=ऐसा एवम्भूत (नय) है॥ (एवंभूतः भी ठीक है देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१)

(इसी एवंभूत की परिभाषाका भाव इसके लगता ही वाक्यमें दिया है (देखो पृष्ठ ५४२)

---

(१) समेति = सम्+एति 'इ' अदादि दूसरा गण परस्मैपदका धातु यहां आना अर्थमें आया है। 'ति' पत् सञ्जक प्रत्ययके (देखो पृष्ठ ५२२, ५२३) पहिले 'इ' धातुकी गुणसंज्ञा होकर 'ए' हो जाताहै। 'ए'में 'ति' प्रथम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान काल्का प्रत्यय जोड़नेसे एति = बन जाताहै उसमें 'सम्' उपसर्ग लगाने से (सम्+एति) समेति बन जाताहै॥ समेति=वह साथ साथ रहताहै अर्थात् आत्मा आत्मामें रहता है बसताहै तिष्ठताहै

(२) पूज्यपाद स्वामी की इसी एवंभूतनयकी परिभाषाको शब्दशः तत्त्वार्थ राजवार्तिकके रचयिताने ग्रहण कीहै (देखो त०रा०वा० हिंदि पृष्ठ ३८)

इस बात पर हम एक पूर्ण टिप्पणी लिखते हैं कि पदान्त म्-न् और अपदान्त म्-न् की अवस्था में क्या क्या परिवर्तन होते हैं और दोनों प्रकार के अनुस्वार पदान्त और अपदान्त में क्या क्या परिवर्तन होते हैं

(१) पदान्त म्—मोऽनुस्वारः (अष्टाध्यायी ८।३।२३) इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ वें (पदस्य) से है और हलि शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' ८।३। २२सूत्रसे लीगई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (=पदस्य ¦ मः ¦ अनुस्वार ः हलि ¦) का अर्थ मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् (अर्थात् व्यंजन) पश्चात् में हो तो (ऐसा होता है)॥ जैसे हरिम् वन्दे में म् पदान्त है और व्यंजन पश्चात् में है इसलिये हरिं वन्दे हुआ वैसेही एवम्भूतः में म् पदान्त है भू उसके पीछे व्यंजन है अतः एवंभूतः होगया इसलिये एवम्भूत और एवंभूत दोनों रूप ठीक हैं (इस सूत्रकी विशेष व्याख्या के लिये देखो पृष्ट ५, ६)॥ 'गम्यते' (=वह गया है) यहां म् अपदान्त है इस से अनुस्वार न हुआ॥

(२) पदान्त न्—अन्तका न् जब उसके पश्चात् च्-छ्-त्-थ्-ट्-ठ् आवै तौ (यह न्) अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है जैसे विडालान् ताडयति पुरुषः (=वह मनुष्य बिल्लियों को मारता है) =विडालाः ताडयति पुरुषः अब यह विसर्ग निम्न उल्लेखित नियमसे स् में परिवर्तित होजाता है अतः विडालांस्ताडयति पुरुषः ऐसा हुआ (नियमः—विसर्ग के पश्चात् यदि च्-छ् हो तौ श् में यदि त्-थ् हो तो स् में यदि ट्-ठ् हो तौ ष् में यह विसर्ग पलट जाता है)

(३) अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायी के आठवां अध्याय का तीसरे पादका चौबीसवां सूत्र है ८-३-२४। इस सूत्रसे पहिले का सूत्र 'मोऽनुस्वार' उपर्युक्त तेईसवां है इससे अनुस्वारः की अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्र में आती है तब चौबीसवां सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि " नः च अपदान्तस्य झलि (अनुसारः) " च से तेईसवां सूत्र के मो (=मः) का आकर्षण होता है इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः मः अपदान्तस्य झलि अनुस्वारः" झलि प्रत्याहारहै और उसमें झल्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजातेहैं अर्थात् क्-ख्-ग्-घ् ङ्-च्-छ्-ज्-झ्-ञ्। ट्-ठ्-ड्-ढ्-ण्। त्-थ्-द्-ध्-न्। प्-फ्-ब्-भ्-म्। य्-र्-ल्-व् ह्। 'झलि' का अर्थ है इन चौबीस अक्षरोंके पहिले आने वाला। अपदान्त = विभक्ति वा कारक जिसके अंतमें न हो। सूत्र का अर्थ यह हुआ अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थान में अनुस्वार होवै यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौबीस अक्षरों में से किसी अक्षर के पहिले हो इसलिये 'अन्तराय' के न् का अनुस्वार होकर अंतराय होगया और 'वन्दे' का 'वंदे' होगया क्योंकि दोनों के न् के पश्चात् क्रमसे त्-द् है॥ ५४०

जैसे यशांसि+इ = यशांसि, यह यशांसि यश् नपुंसकलिंगीका बहुवचन है यहां पर अपदान्त नका अनुस्वार होगया ॥ बहुत यश = यशांसि

आक्रंस्यते = आ+क्रम्+स्यते, क्रम् धातुके मका अनुस्वार होगया ॥ आक्रंस्यते = वह पकड़ेगा, (वह) विजयकरेगा, जीतेगा ॥

(४) अपदान्त अनुस्वारः—अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८ = अनुस्वारस्य परसवर्णः ययि=अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण हो यदि (उक्त अनुस्वार के) परे में यय् प्रत्याहार के अक्षरों में से कोई भी आवे अर्थात् अनुस्वार के पश्चात् में क-ख-ग-घ-ङ। च-छ-ज-झ-ञ। ट-ठ-ड-ढ-ण। त-थ-द-ध-न। प-फ-ब-भ-म। य-र-ल-व अक्षरों में से कोई भी एक अक्षर आवे तो उक्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण (ङ-ञ-ण-न-म-य-र-ल) हो जावे जैसे शामतः यहां "नश्चापदान्तस्य झलि" उपर्युक्त सूत्र से मका अनुस्वार होकर शांतः ऐसा हुआ फिर इस सूत्र से परअक्षर तः उस तकार का सवर्णीय न् होकर शान्तः रूप बना । ऐसेही अङ्कितः = चुभगया, गड़गया, ॥ अञ्चितः = पूजाकिया गया आदर किया गया, सिकोड़ लिया गया । कुण्ठितः = प्रतिघात किया गया, गुम्फितः = गूथागया, रचागया, गांठागया, रूपबनगये ॥ शान्तः का अर्थ शामयुक्त वा शान्त वाला है कुर्वन्ति = वे करते हैं । वृषन्ति – वे उत्पन्न करने के योग्य हैं, वे सोचते हैं ॥ इन दोनों शब्दों के न् पहिले नश्चापदान्तस्यझलि उक्त सूत्र से अनुस्वार में परिवर्तित हो जाते हैं पश्चात् इस सूत्र से उन के पश्चात् त् होने के कारण न् परसवर्ण त् के में पलट जाते हैं ॥

(५) पदान्त अनुस्वारः—"वा पदान्तस्य" ८।४।५९ = (पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) वा इस सूत्र में अट्कुवाङ्नुम्व्यवायेऽपि सूत्रकी अनुवृत्ति आती है ॥ पदान्तस्य अनुस्वारस्य परसवर्णः वा ययि = पदान्त अनुस्वारका परसवर्ण विकल्पसे हो (चाहे परसवर्ण करो मनन चाहे मतकरो) यदि (उक्त पदान्त अनुस्वारके) पश्चात् ऊपर कहे हुये ३५ व्यञ्जनों में से कोई एक व्यंजन आवे तो ॥ जैसे त्वम् करोषि, यहां "मोऽनुस्वारः" सूत्र से म् को अनुस्वार किया तो त्वं करोषि बना, फिर जब सवर्ण हुआ तो त्वङ्करोषि । तू करता है। ऐसा रूप बना नहीं तो त्वं करोषि रूपही बना ॥ ऐसेही त्वम् चिनोषि से त्वञ्चिनोषि रूप हुआ, फिर त्वञ्छिनोषि रूप बना, नहीं त्वं चिनोषि रहा तू चुनता है ॥) त्वम् डीयसे = तू उड़ताहै, = त्वं डीयसे, फिर वा पदान्तस्य से त्व एडीय से रूप बना । डी चांधेगणका आत्मने पदी, अकर्मक धातु है।त्वम् पण्डितः (तू पंडित है) त्वं पण्डितः 'मोऽनुस्वारः से हुआ, फिर "वा पदान्तस्य" से त्वम्पण्डितः रूप बना, नहीं तो त्वं पण्डितः ही, रूप रहा ॥ ( ) त्वम् धनाढ्यः (तू धनवान् है) 'मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वं धनाढ्यः रूप हुआ, अब "वा पदान्तस्य" द्वारा त्वन्धनाढ्यः रूप बना, नहीं त्वं धनाढ्यः ॥ ( ) तं कथं चित्रपदं डयमानं नभः स्थं पुरुषोऽवधीत्=तङ्कथञ्चित्र पदण्डयमानन् नभः स्थम्पुरुषोऽवधीत् । आकाश में(= नभः स्थं) उड़ते हुये (=डयमानं) उस (=तं) चित्र विचित्र पर वाले पक्षेरु को (चित्र पक्षं) पुरुष ने कैसे मारा (=अवधीत्) ॥

सर्वार्थ-

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षण एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति। यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति। यदैव गच्छति तदैव गौः।

स्व–अभिधेय–क्रिया परिणतिक्षणः एव *	=(जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो
सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति *	=वह शब्द (प्रयोग उस ही समय) उचित है न कि और समय (=अन्यदा)

भावार्थ जिस वस्तुको जिस नामकरि कहै उसही अर्थकी क्रियारूप वह वस्तु परिणमती हो तो तिसही काल उस वस्तुको उस नाम से कहै अन्य काल वही वस्तु अन्य परिणतिरूप परिण में तौ पूर्व उक्त नाम से उस वस्तुको न कहै

यद्द एव * इन्दति T तद्द एव * इन्द्रः।	=जैसे जब ही परमैश्वर्यरूप क्रिया करता है तब ही इन्द्र है।
न * अभिषेचकः। न * पूजकः इति *।	=न कि (वह ही प्राणी) अभिषेक करने वाला न पूजा करने वाला ऐसा (इन्द्र) है

अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परमैश्वर्य का भोग कर रहा हो उसी समय उसको इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है (नाम निक्षेप) वा जहां पर किसी पदार्थमें इन्द्रकी स्थापना है (स्थापना निक्षेप) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे जाकर इन्द्र होने वालाहै(=द्रव्य निक्षेप)वह एवं भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्ततीनों अवस्थाओंमेंपरमैश्वर्यका भोग नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस क्षणमें उनकी जिस जिस अर्थ क्रियाका परिणमन हो रहा है उस उस क्षणके उस उस परिणमनकी अपेक्षा से एवं भूतनयकी योजना कर लेनी चाहिये यदि अर्थ क्रियाकी परणतिका दूसरा दूसरा काल होगा तौ वे एवंभूतनयके विषय नहीं हो सकते(देखोनीचे गोकादृष्टान्त)

यद्द एव * गच्छति तद्द एव * गौः	=जब(=यद्द) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (बैल है)

(१) गो–इस शब्द के बीस अर्थ से भी अधिक हैं यह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में आता है (वैद्यकोश पृष्ठ २५० देखो) गो पुल्लिंग में बैल–वृषभ (पशु) के अर्थमें यहां लिया गयाहै और उस की प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग गौः है और गो जब गऊ–गाय के अर्थ में स्त्रीलिंग है तब भी उसका प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंगकारूपपुरुष लिंगकेसदृश गौः' (ही) होताहै इस लिये प्रश्न यह उठताहै कि वृत्ति में दियेहुयेगौः

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ॥

न * स्थितः न * शयितः इति *
अथवा *
येन आत्मना येन ज्ञानेन भूतः ।
परिणतः तेन एव * अध्यवसाययति ।

=न बैठा हुआ वा न ठहरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
=अथवा (एवम्भूतनयकी उक्त परिभाषा में आये हुये शब्द)
="येनात्मना भूतः" (कहिये किसी पदार्थके) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ
=परिणया (आत्माको) तिस (ज्ञान) युक्त ही निश्चय कराता है वा प्रतीतिकराता है
(=ऐसा एवम्भूत-नयहै) अर्थात् उक्त परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पहिले 'अभिधेय किया लिया' अब 'ज्ञान' अर्थ लिया (आत्मना =ज्ञानेन) इसलिये आत्मा जिस क्षण में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही कहना एवम्भूतनयका विषय है ॥

यथा*इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः
आत्मा एव * इन्द्रः च * अग्निः इति *

=जैसे इन्द्र(का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि(का आकाररूप) ज्ञान परिणया
=आत्माही इन्द्र और अग्नि ऐसे (क्रमसे)है अर्थात् जैसे जिस क्षणमें आत्मा इन्द्र पदार्थके ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहदेना वा जिस समय अग्नि पदार्थ के ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह देना एवं भूत नयका विषय है ॥

ऐसे व्याकरणके रूपका अनुवाद बैल होना चाहिये वा गऊ होना चाहिये "न स्थितो न शयितः इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द पुलिंग में लाये है इस से स्पष्ट है कि बैल से तात्पर्य है अतः "गौः" का अनुवाद गौ (बैल) किया है यदि स्थितः के स्थान में 'स्थिता' होना जो स्त्रीलिंग है और शयितः के स्थान में 'शयिता' स्त्री लिंग होता तो अनुवाद गौः रूप का गाय (गऊ) होता ।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते । अग्नि ज्ञान परिणत त्वादात्मा अग्नि श्चेति एवम्भूतनयलक्षणम् ॥
इन्द्र ज्ञान परिणतः आत्मा इन्द्रः उच्यते । = इन्द्रका (आकार रूप) ज्ञान परिणया आत्मा इन्द्र कहा जाता है
च=अग्निज्ञान परिणत त्वात् आत्मा अग्निः = और अग्निके ज्ञान परिणमन से आत्मा अग्नि (कहलाता) है
इति * एवम्भूतनयलक्षणम् = ऐसा एवम्भूतनयका विषय (=लक्षण) है ॥ अब शंका यह है कि

उक्ता नैगमादयो नयाः । I उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम – आदयः नयाः ।	=नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, (१) एवंभूत (ये सात) नय
उक्ताः । उत्तरोत्तर–सूक्ष्मविषयत्वात् ।	=कहेगये हैं ॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अल्प विषय (वाली) होने से

टिप्पणी–यदि अग्नि शब्दसे परिणत आत्माको एवंभूतनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो जलाना, रान्धना, पकाना आदि जितने धर्म अग्नि में हैं वे सब आत्मा में भी मानने पड़ेंगे इस लिये आत्मा अग्नि नहीं कहा जा सकता १ (उत्तर) नाम या स्थना आदि जिस स्वरूप से कहे जाते हैं वे उस से अभिन्न रहते हैं और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते हैं। आत्मा का जो अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अभेद है परंतु अग्निके जो जलाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्नियें ही रहतेहैं आत्मा में नहीं हो सकते इस लिये नो आगम भाव अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने वाला दाहकपना आगमभाव अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता। इस रीतिसे यदि आत्मा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पड़ेंगे यह जो ऊपर शंका की गई थी वह निर्मूल सिद्ध हो चुकी।

(१) यहां पर 'एवंभूयत इति' 'ऐसा होना' इस एवंभूतनय के अर्थकी प्रतीति या निश्चय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवंभूतनय माना है कारणमें कार्यका उपचार है अर्थात् एवंभूतनयके अर्थकी प्रतीति में कारण शब्दहैं और कार्य एवं भूतनय है

(I नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयः तन्मात्रग्राहित्वात् । नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः । यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥

नैगमात् संग्रहः अल्पविषयः ।	=नैगम नयसे संग्रहनय थोड़ी विषय वाली है
तन्मात्र (= तद – मात्र) ग्राहित्वात् ।	=क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल अल्पविषयकी (= तन्मात्र) ग्राही है
नैगमः तु * भाव - अभाव विषयात् ।	=और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) ग्रहण करने (केहेतु) से
बहु विषयः	=महाविषय वाली या बहुत विषयक है। (बहुविषय=बहुत है विषय जिसका)
यथा * एव * हि * भावे सङ्कल्पः ।	=क्योंकि (=हि) जैसा ही सत् (रूप) में सङ्कल्प है अर्थात् सत् रूप में मानना है
तथा * अभावे नैगमस्य सङ्कल्पः ।	=वैसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कल्प वा मानना है भावार्थ ।

नैगमनयके पीछे संग्रहनय कही गई है सो इसका विषय सत् द्रव्यत्व आदिही है इसके परस्पर निषेधरूपअसत् आदि यह विषय नहींहैं इसलिये नैगमनयसे संग्रहनय अल्प विषयक वा थोड़ी विषय वाली है

एवम्•उत्तरत्र•अपि•योज्यम्

=इस प्रकार यहां से आगे (=उत्तरत्र) भी लगाओ वा लगाने योग्य है अर्थात् संग्रहनयके पश्चात् व्यवहार नय है सो इसका विषय संग्रहनयके विषयका भेद है यहाँ अभेद विषय रहगये अतः संग्रहनयसे व्यवहारनय अल्प विषय वाली है व्यवहारनय के पश्चात् ऋजुसूत्र है सो इसका विषय वस्तुका वर्तमान पर्याय मात्रहै अतीत अनागत पर्यायें रहगई अतः व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका थोड़ा विषय है॥

ऋजुसूत्रनय लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह आदिका भेद नकरके केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस एक पर्यायमें भी लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह काल आदिके भेदसे अर्थका भेद प्रकाशन करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे शब्दनयका अल्प विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय अर्थ पर्याय और शब्दपर्याय सबको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय शब्दनयसे अधिकतर है॥

इसके पश्चात् समभिरूढ़ नय कहागया है सो एक वस्तु के अनेक नाम हैं तिनको पर्यायशब्द कहते हैं जिन पर्याय शब्दोंका एकही अर्थ मानने वाली तो शब्द नय है परन्तु समभिरूढ़नय जिस शब्दको ग्रहण करता है तिसी अर्थरूपको कहता है क्योंकि उन पर्याय शब्दोंके जुदे जुदे अर्थ भी हैं॥ जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि ये तीन शब्द एक ही शचीपति अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यता का भोग होने से इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर-नगर विदारण करने से पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं इस रीतिसे पर्यायों के अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थको ही

सर्वार्थ-

५४६

एषा क्रमः पूर्व पूर्व हेतुकत्वाच्च ।

च*पूर्व पूर्वहेतुकत्वात्	=और (=च) पहिली पहिली (नय अगली अगली नयका) कारणरूप होने से
एषाम् क्रमः	=इन (सातों नयनि) कें (पठनका नैगम संग्रहादि सूत्रमें) अनुक्रम है अर्थात्

समभिरूढनय विषय करता है । समभिरूढनय किसी नियत अर्थको ही द्योतन करता है । अतः शब्दनयसे समभिरूढ अल्प विषयी है एवंभूत पदार्थ क्रियारूप हुये हुये कालमें प्रवर्तता है सो जो वस्तु जिसनामकरि कही गई है तिस ही अर्थकी क्रियारूप परिणमती होय तो उसही काल उस वस्तुको उसनामकरि ग्रहण करनेवाला एवम्भूतनय है अन्यकाल में अन्य परिणतरूप परिणमें तौ तिसको उसनामकरि न कहै जैसे गो को समभिरूढनयकी अपेक्षासे बैठते, उठते, सोवते, चलते, फिरते, अकड़ते इत्यादि सबही अवस्था में गऊ-गाय कहते हैं परन्तु एवम्भूतनयकी अपेक्षासे उक्त गो जिस समय गमन करती हो उसी समय गो-गऊ गाय कहै यदि वह बैठी हो सोती हो लेटी हो पड़ी हो तो उसको गो न कहै । अतः समभिरूढनयसे एवम्भूतनय अल्प विषयी है यहां पंडितवर जी की वचनिकासे एक उदाहरण उद्धृत करते हैं जिससे पूर्वपूर्व नयका विषय उत्तरोत्तर नय से अल्प है स्पष्ट हो जाता है

(१) एक मनुष्य ने कहा नगरमें पक्षी बोल रहा है नैगम (२) दूसरे ने कहा कि इस नगरमें एक वृक्ष है उसपै पक्षी बोल रहा है-संग्रह (३) तीसरे ने कहा इस वृक्ष की एक बड़ी डाली पै पक्षी बोल रहा है-व्यवहार (४) चौथेने कहा इस डालीमें एक छोटी डाली है तापै बोल रहा है-ऋजुसूत्र (५) पांचवें ने कहा छोटी डाली के एक भागपर बोल रहा है-शब्द नय (६) छठेने कहा पक्षी अपने शरीरमें बोल रहा है-समभिरूढ (७) सातवें ने कहा कि पक्षी के शरीर में कंठ है सो कंठमें पक्षी बोल रहा है-एवम्भूतनय-ऐसे उत्तरोत्तर विषय छूटता गया । ग्रामे वृक्षे विटपे शाखायां तत्प्रदेशेऽस्ति कायें कंठे च रौति शकुनिः यथा तथा नैगमादीनाम् । अन्य दृष्टान्तः-नैगमनयने वस्तुके सत्-असत् दोनों ग्रहण किये, संग्रह ने सत् ही लिया, व्यवहारनयने सत्का एक भेद लिया, ऋजुसूत्र ने वर्तमान सत् ही को लिया शब्दनयने वर्तमान सत्में भी भेदकरि एक कार्य पकड़ा, समभिरूढने उस कार्यके अनेक नामथे उनमेंसे एक नामको ग्रहण किया, एवम्भूत-नयने उपर्युक्त एक नामको भी जिस क्रियारूप जिसकालमें परिणमें तिसको ग्रहण किया ॥ ऐसे ही जिस पदार्थ को साधनाहै उस पदार्थ पै इन सातों नयोंको लगालेना योग्य है ॥

(१) नैगमः संग्रहस्य हेतुः । संग्रहो व्यवहारस्य हेतुः । व्यवहारः ऋजुसूत्रस्य हेतुः । ऋजुसूत्रः शब्दस्यः हेतुः ।

एवमेते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः । द्रव्यस्यानन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते ॥

एवम् एते नयाः पूर्वपूर्वविरुद्ध-महाविषयाः उत्तर-उत्तर-अनुकूल-अल्पविषयाः

यथाक्रम एक नय दूसरी नयसे अल्प विषय वाली है और पहिली पहिली नय कारण रूप है अगली अगली नय कार्यरूप है सो सूत्रमें इन सातों नयों का इसही क्रमसे पाठ है वा उल्लेख है

=ऐसे ये (सात) नय पहिले पहिले विरुद्धरूप महाविषय वाले हैं

=(और) आगे आगेकी (नय) अनुकूल रूप अल्प विषय वाली है; अर्थात् पहिले नयने जितने पदार्थको विषयकररक्खा है उसको आगेका नय विषय नहीं करता इसलिये पहिला नय विरुद्ध महाविषयवाला है तथा आगेके नयका जो विषय है वह पहिलेके नयमें गर्भित है इसलिये आगेका नय पहिले नयके अनुकूल अल्पविषयवालाहै। (ऐसे नयके भेद क्यों होतेहैं सो कहतेहैं)

द्रव्यस्य अनन्तशक्तेः प्रतिशक्तिभिद्यमानाः बहु विकल्पाः जायन्ते ।

=क्योंकि द्रव्यकी अनन्त शक्ति है,(इससे)शक्ति शक्तिप्रति भेदको प्राप्त भये(नय)

=बहु विकल्परूप उत्पन्न होते हैं अर्थात् उक्त नय अनन्त शक्तिरूप द्रव्यकी अतिशक्ति की अपेक्षा भिन्न भिन्न होते जाते हैं अतः नयोंके बहुसे भेद हैं

शब्दः समभिरूढस्य हेतुः । समभिरूढः एवम्भूतस्य हेतुः । इत्यर्थः

संग्रहस्य हेतुः नैगमः । व्यवहारस्य हेतुः संग्रहः ।

=संग्रहनयका हेतुः नैगमनय है व्यवहारनय का हेतु संग्रहनय है

ऋजुसूत्रस्य हेतुः व्यवहारः । शब्दस्य हेतुः ऋजुसूत्रः ।

=ऋजुसूत्रनयका हेतु व्यवहारनय है । शब्दनयका हेतु ऋजुसूत्रनय है

समभिरूढस्य हेतुः शब्दः । एवम्भूतस्यहेतुः समभिरूढ-इति अर्थः

=समभिरूढनयका हेतु शब्दनय है । एवम्भूतनयका हेतु समभिरूढ है

=ऐसा अर्थ "उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयत्वादेषां क्रमः पूर्वपूर्व हेतुकत्वाच्च" का है

(१) जन् दिवादि चौथेगण आत्मनेपदी अकर्मक धातु उत्पन्न होना अर्थ में है सार्वधातुक प्रत्यय इ,से,ते इत्यादिकेपहिले इसका रूप जा हो जाता है य विकरणहै अन्ते प्रथमपुरुष बहुवचन आत्मनेपदी वर्तमान काल क्रिया का प्रत्यय है जा+य+न्ते हुआ प्रथम अ उस प्रत्यय के पहिले गिरजाता है जिस प्रत्यय के अ आरम्भमें हो इसलिये जा+अन्ते=जायन्ते ॥ जन्यते कर्मणि रूप है ॥ जायते प्रथमपुरुष एकवचन वर्तमानकाल आत्मनेपदी है ॥

न एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपायं विनिवेश्यमानाः पटादिसँज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थ क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव *	=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनस्वरूप शक्तिसे जैसे
तन्तु-आदयः यथा-उपायम् *विनिवेश्यमानाः	=सूतके तार आदिक यथायोग्य उपायद्वारा नियतकिये हुये वा पायेहुये
पटादि संज्ञाः च *	=वस्त्रादिक नाम पानेवाले होते है और (=च)
स्वतन्त्राः	=(सूतके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार
असमर्थाः ते एते	=(वस्त्रादि नाम पानेवाले) नहीं होसक्ते हैं। (तैसे) ते इतने (नय)
गुण प्रधानतया	=गौण मुख्यपनाकरि वा प्रधान अप्रधानरूपसे
परस्परतन्त्राः	=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन रूप हुये (आश्रय)
सम्यग्दर्शन-हेतवः	=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं
	[और यदि वे उक्त नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्तिका कारण कदापिनहीं होसक्ते भिन्नभिन्नसूतके तारोंके सदृश कार्यकारी नहीं होते]

भावार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा करनेवाले सूतकेतार जिस समय बुनजाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राणियोंके शीत निवारण उष्णनिवारण आदि प्रयोजनीय कार्यों के सिद्ध करने में समर्थ होजाते हैं किन्तु वेही तार जब भिन्न भिन्न रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसक्ते उसी प्रकार परस्पर सापेक्ष-आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और कहीं गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विवक्षित ही नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि वे [नय] परस्पर सापेक्ष न होंगे तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सूतके तारोंके समान कभी भी कार्यकारी न होंगे और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होंगे ॥ ५४८

(१ गुणः—ज्ञान विनय आदि गुणतन्त्र आदि च.द्द अर्थोंसे अधिक अर्थोंमें यह शब्द आता है यहांपर अप्रधान वा गौण अर्थमें है(पद्म०कोश१३३)

(२ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् देवागम १०८) परस्पर निरपेक्षनय मिथ्या हैं परस्पर सापेक्ष नय कार्यकारी हैं ॥

"तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यासः। तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काश्चिदर्थमालां जनयन्ति। भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः। एकश्च बल्वजो बन्धने समर्थः। इमे पुनर्नया निरपेक्षाः सन्तो न काश्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रां प्रादुर्भावयन्तीति॥" नैष दोषः। अभिहितानवबोधात्। अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते।

"तन्त्वादय इव ··" इति* विषमः। उपन्यासः।	=(प्रश्न) "तन्त्वादय इव ··" ऐसा (उपर्युक्त) उदाहरण असमेल है
तन्त्वादयः। निरपेक्षाः। अपि *	=(क्योंकि) तारादिक (एक दूसरेकी) अपेक्षारहित भी (एक तार दूसरे से भिन्न
काश्चित्* (=कान्+चित्) अर्थ-मालाम्॥	=भिन्न रहने परभी) कोई एक (=काश्चित्) बयोजनपात्राओंका (=अर्थमालान्)
जनयन्ति। कश्चित्* प्रत्येकम्* तन्तुः।	=उत्पन्नकरतेहैं। कोई एक (=कश्चित्) पृथक् पृथक् (=प्रत्येकम्) तार
त्वच्-त्राणे॥ समर्थः। भवति। हि*	=त्वचाके रक्षा करने में (अर्थात् सीवनें इत्यादि में) समर्थ होता ही (=हि) है
एकः। च * बल्वजः।	=और (=च) कोई एक (तार) जो वकलसे उपजाहै वा जन्माहै अर्थात् वकलका तार
बन्धने॥ समर्थः।	=(भार-मनुष्य आदिक के) बांधने में समर्थ है
पुनः * इमे। नयाः। निरपेक्षाः। सन्तः।	=बहुरि (=पुनः) ये (=इमे-परस्पर) अपेक्षारहित विद्यमान (=सन्तः) नय
काश्चित् * अपि * सम्यग्दर्शनमात्राम्॥	=किन्हीं भी (=अपि) सम्यक्त्वकी मात्राओंको वा सम्यग्दर्शन के अंशोंको
न*प्रादुर्भावयन्ति। इति*। न * एषः। दोषः।	=प्रकाश वा प्रगट नहीं करती हैं ऐसी (शंकापर कहतेहैं कि) यह दूषण नहीं है।
अभिहित-अनवबोधात्। अभिहितम्।	=कथितका बोध न होने (के हेतु) से (अर्थात्) कहे हुये के (=अभिहितम्)
अर्थम्। अनवबुध्य-परेण। इदम्* उपालभ्यते।	=तात्पर्य को न समझ करि प्रत्यर्थीसे (=परेण) यह उलहना दिया गया है

(१) भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थः = होता ही है कोई एक भिन्न भिन्न तन्तु त्वचा के रक्षाकरने (सीवने आदि) में समर्थ॥ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नकी दृढ़ता में पूर्णतया विश्वास करके शब्दों पर अत्यन्त बल देकर उपर्युक्त वाक्यको कहता है और इस गौरव उच्चारण में 'भवति हि' को प्रथम लाकर 'समर्थः' अन्त में लाता है अतः इस वाक्य का शब्दशः अनुवाद जो टिप्पणी में दिया है वही होगा।

(२) वल्क, वल्कल (पु०न०) वल्कुट (न०) = छाल; वल्कज, वल्कलज, वल्कुटज = छाल से उपजा, छालका; वल्व वा वल्वजकोशमें नहीं मिला अतः द्वितीया वृत्तिमें अशुद्ध छपगयाहै॥ (३) अन्-अवबुध्य, संबन्ध सूचक भूतकृदन्तहै। पर (पु०) शत्रुके अर्थमें है परंतु यहां 'यादी'के अर्थमें आयाहै॥

एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति ॥ यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि केवलं तन्त्वादिकार्यं; तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव ॥ अथ तन्त्वादिषु पटादिकार्यशक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते। नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन-

---

एतत् ; ॥ उक्तम् ; ॥ निरपेक्षेषु ; । तन्त्वादिषु ; = यह कहा है (कि) परस्पर अपेक्षा रहित तारादिकों में
पट-आदिकार्यम् ; ॥ न* अस्ति I इति * =वस्त्रादिक कारज (अर्थात् वस्त्र-निवाड़-इत्यादि बुनने रूप कार्य) नहीं होता है
यत् ; ॥ (=यद् ; ॥) तु* तेन ; । उपदर्शितम् ; ॥ =और (=तु) जो (कार्य) तिस (तार) करि (वादीद्वारा) बतलाया गया है
न* तत् ; ॥ पटादिकार्यम् ; ॥ किंतर्हि* =वह वस्त्रादि कार्य नहीं है परन्तु (=किं तर्हि) वा किन्तु (=किं तर्हि)
केवलम् ; ॥ तन्त्वादिकार्यम् ; ॥; तन्त्वादिकार्यम् ; ॥ =केवल तारा दिकोंका (न्यारादी) कार्य है। तारादिकोंका (वादीद्वारा उपदर्शित)कार्य
अपि तन्त्वादि-अवयवेषु ; । निरपेक्षेषु न अस्ति एव =भी तारादिकोंके अंशोमें परस्पर अपेक्षारहित ही (=एव) नहीं है
अर्थात् तारादिकोंका (वस्त्रादिक बुननेके कार्यसे न्यारा वादीद्वारा वर्णित) कार्य भी
कितने ही धागे वा तार परस्पर यथा योग्य मिलनेहैं तभी होताहै अन्यथा नहीं ॥
इति* अस्मद्-पक्ष (=अस्मत्पक्ष)-सिद्धिः ; ॥ एव* =इस प्रकार हमारा (=अस्मद्) पक्ष (कि सापेक्ष ही कार्य उत्पन्न करते हैं
परस्पर निरपेक्ष रहने पर कोई भी कार्य नहीं हो सक्ता) सिद्धि ही (=एव) है
अथ* तन्त्वादिषु ; । पटादि- =प्रश्न (=अथ) (निरपेक्ष) तन्तु आदिक (के अवयवनि)में वस्त्रादिक (बुनेजाने) का
कार्यम् ; ॥ शक्ति-अपेक्षया ; ॥ अस्ति I इति उच्यते I=कार्य शक्तिकी विवक्षा से है ऐसें कहिये है
निरपेक्षेषु ; । अपि* बुद्धि- =(उत्तर) परस्पर अपेक्षारहित नयों में भी (उनके भिन्न भिन्न) ज्ञान और
अभिधान रूपेषु ; । कारणवशात् ; । सम्यग्दर्शन- =(उन के न्यारे न्यारे) नाम के कारण वशसे सम्यगदर्शन के

हेतुत्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

हेतुत्व–परिणति–सद्भावात् ‡।	=कारण तका विशेष रूप परिण मनके सद्भाव से
शक्त्या ‡ ॥ आत्मना ‡। अस्तित्वम् ‡ ॥।	=शक्ति (=शक्त्या) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्वहै-सर्वांश-निरपेक्ष नयों में भी उन के नाम और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण पनेको शक्तिरूप से अस्तित्व है
इति* उपन्यासस्य ‡।	=ऐसे दृष्टान्तकी (कि जैसे पुरुषके उद्योगसे तन्तु आदि परस्पर मिलने पर पटादि वस्तुओंको उपजाते हैं वैसे ही उक्त सात नय परस्पर सापेक्ष होकर
साम्यम् ‡ ॥। एव *	=सम्यक्त्व को उपजातीहैं। समानताही है (विषमता वा अनमेलता नहीं है) ॥

"अथ तन्त्वादिषु····न्यासस्य" वाक्य का तात्पर्यः—वादीको इस शंकापर कि निरपेक्ष तंतुओं में शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य करनेकी सामर्थ्य है इस लिये निरपेक्षतंतु वस्त्रादि कार्य स्वरूप कहे जा सकतेह (जैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें कहते हैं कि निरपेक्ष नयोंको भिन्न भिन्न नाम और उन का न्यारा न्यारा ज्ञान भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति में कारण रूप शक्ति रखता ही है॥ इस लिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण बन सकते हैं इस रीति से दृष्टांत और दार्ष्टांत दोनों में समानता रहने से तंतुओंके उक्त उदाहरणको विषम वा अनमेल उदाहरण बतलाना असंगत है॥

ध्यान रहै कि यथार्थ में किसी अभिप्राय विशेषको नय कहते हैं जितने अभिप्राय हो सकतेहैं उतने ही नय कहे जा सक्ते हैं अंतः अभिप्रायों के भेद अनंत होने से नयवाद भी अनंत हैं। वे स्थूल रूपसे परिणत किये जाते हैं इसलिये संक्षपातें नय हैं॥

(१) जिस पदार्थको जाना जाताहै वह विषयहै और जिसके द्वारा जाना जाताहै वह विषयीहै। निक्षेप विषय हैं नय विषयी हैं। नाम स्थापना–द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके विषय भूतहैं अर्थात् ग्रहण किये जातेहैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय भूत है॥ समभिरूढ नय और एवं भूतके अन्तर वा भेदकेलिये देखो पृष्ठ५७०॥अतीत अनागत दोनों पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्यायोंको ग्रहणकरै सो ऋजु सूत्र नयहै। वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र-और स्थूलऋजु सूत्रसे दो भेद रूपहै॥ एक समय वर्ती पर्याय जो अवाच्यहै और जिसको अर्थ पर्याय कहतेहैं (क्योंकि वस्तु समय समय परिणमेहै)सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषयहै॥और एक पर्यायके आरम्भसेअंत तक ग्रहण करैसो स्थूल ऋजुसूत्रहै जैसे मनुष्यादि पर्यायहैंसो अपने अपने आयु परिमाण रहती हैं॥ ऋजुसूत्र नय और समभिरूढनय में भेद यह है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान उक्त पर्यायोंको ही ग्रहण करता है॥

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं । नयानां चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्व- । मध्यायेऽस्मिन्निरू-
पितम् ॥ १ ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायां प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानदर्शनयोः ‖॥ तत्त्वम् ‖॥ नयानाम् ‖ च *	=ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा ज्योंकात्यों स्वरूप और(=च) नयोंका
एव * लक्षणम् ‖॥ ज्ञानस्य ‖॥ च * प्रमाणत्वम् ‖॥	=ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पांच) ज्ञानके प्रमाणता (ज्ञान को ही प्रमाणता सिद्ध करना)
अध्याये ‖। अस्मिन् ‖ । निरूपितम् ‖ ॥ ॥१॥	=इस (प्रथम) अध्याय में वर्णन कियेगये हैं ॥ दोहा, "दर्शन बोध यथार्थता नयलक्षण वरणाय ॥ ज्ञान पंचके मानता । कही आदि अध्याय" जय० २२१
इति * सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ‖॥ तत्त्वार्थ-वृत्तौ ‖॥ प्रथमः ‖। अध्यायः ‖।	=इस प्रकार सर्वार्थ सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में =तत्त्वार्थके विवरण में पहिला अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परंतु समभिरूढनय उस शब्द से प्रगट होने वाले अर्थको ही ग्रहण करताहै जैसे ऋजुसूत्रनय उत्पन्न होने से मरण पर्यन्त इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतीको इन्द्र कहताहै परन्तु समभिरूढनय इन्दन शील ऐश्वर्यवान होतेहुये कोही इन्द्र कहताहै इन्द्र जिस समय पूजा करता है उस समय ऋजुसूत्रनय से इन्द्र है परन्तु समभिरूढ नय से इन्द्र नहीं है ॥

ऋजु सूत्र और एवम्भूतनयों में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्र नय वस्तुकी वर्तमान कालकी पर्याय को ग्रहण करताहै परन्तु एवम्भूतनय जिस कालमें जो क्रिया करता हो वा किया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगट करताहै वा कहताहै जैसे ऋजु सूत्र नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतिको इन्द्र कहताहै चाहे वह किसी समय कोई भी कार्य कर रहा हो परन्तु एवम्भूतनय देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो उसी अवस्था में इन्द्र कहताहै पूजन अभिषेकादि करते हुये को इन्द्र नहीं कहैगा इसी प्रकार जिस समय वह शक्तिरूप क्रिया को करे उसी समय शक्र कहैगा अन्य समय में शक्र नहीं कहैगा । न इन्द्र कहैगा जब कि वह शक्ति रूप क्रिया कर रहा हो ॥

( ) ऋजुसूत्र–समभिरूढ और एवम्भूत नयों में यह अन्तरहै कि ऋजुसूत्रनय वस्तुकी एक समय मात्र पर्यायको अथवा आरम्भसे अन्त तक एक पर्यायका ग्राही है, समभिरूढनय नाना अर्थको उलंघन करके जो एक ही अर्थ में रूढ (प्रसिद्ध) हो उसका ग्राही है परन्तु एवम्भूतनय जो जिस समय जो क्रिया कर रहा हो उसको उस कालमें उस क्रिया ही के संबंध वा संयोग से प्रगट करता है जैसे गाय पर्याय लीजिये तो ऋजुसूत्रनय जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसको गाय समझताहै । समभिरूढनय गाय शब्दके पृथिवी माता वचन इत्यादि अनेक अर्थोंको छोड़कर जिसमें चलने की शक्ति हो ऐसे गाय (पशु) को लेताहै वह चलती हो बैठी हो सोती हो खारही हो सब अवस्था में समभिरूढनयकी अपेक्षा से वह गाय (पशु)ही है परन्तु एवम्भूतनय जिस समय वह चले फिरै उस समय गाय कहैगी सोते बैठी हुई को गाय न कहैगी चाहे उसमें चलने फिरनेकी शक्ति हो परन्तु उस समय चलती फिरती नहो तो एवम्भूत उसको गाय नहीं कहैगा ॥